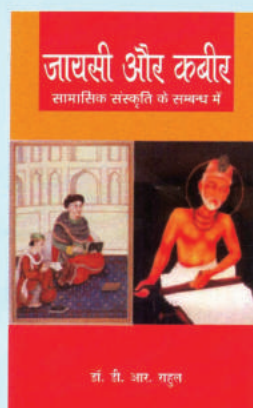
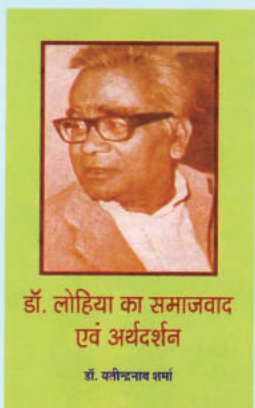


कृतिका परिवार के लेखकों एवं जिज्ञासु पाठकों के लिए
नवीनतम प्रकाशन



आराधना ब्रदर्स

प्रकाशक एवं वितरक

124/152, सी ब्लॉक, गोविन्द नगर, कानपुर-208006 (उ.प्र.)

मो. : 09935007102 फोन : 0512-2651490

ई-मेल : aradhanabooks@gmail.com

कृतिका

वर्ष : 6, संयुक्तांक : 11-12 जनवरी-दिसम्बर 2013

कृतिका

RNI : UPHIN/208/30136

ISSN : 0975-0002

वर्ष : 6, संयुक्तांक : 11-12

कृतिका

जनवरी-दिसम्बर 2013

साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी
एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक
अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 11-12, वर्ष : 06, जनवरी-दिसम्बर 2013

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 06

अंक : 11-12,

जनवरी-दिसम्बर 2013

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

प्रधान सम्पादक

डॉ. चन्द्रमा सिंह

मुख्य सम्पादक

डॉ. किशन यादव

डॉ. कश्मीरी देवी

डॉ. सुरेश एफ. कानडे

डॉ. राधा वर्मा

कला सम्पादक

डॉ. नीना शर्मा 'हरेश'

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 11-12, वर्ष : 06, जनवरी-दिसम्बर 2013

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की

अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 06 अंक : 11-12, जनवरी-दिसम्बर 2013

सामान्य अंक	:	60.00 रुपये	
इस अंक की सहयोग राशि	:	400.00 रुपये	
यू. एस. 25 \$		यूरो 40 \$	
व्यक्तिगत सदस्यों के लिये			
वार्षिक सदस्यता	:	400 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	2000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	5000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
संस्थाओं के लिये			
प्रति अंक	:	400 रुपये	(डाक व्यय सहित)
वार्षिक सदस्यता	:	800 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	4000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	6000 रुपये	(डाक व्यय सहित)

विशेष : सभी भुगतान नकद/मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट/चेक 'सम्पादक कृतिका' के नाम Payable at Orai भेजें। कृपया चेक के साथ बैंक कमीशन के रूप में निश्चित अतिरिक्त राशि जोड़ दें।

- ☞ विधिकवादों के लिये क्षेत्र, उरई न्यायालय के अधीन होंगे।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।
- ☞ शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मंडल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व संचालन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) से प्रकाशित।

सम्पादक-डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 11-12, वर्ष : 06, जनवरी-दिसम्बर 2013

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 06

अंक : 11-12,

जनवरी-दिसम्बर 2013

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

रीडर-हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

उ.प्र. विकलांग उद्धार डॉ. शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226017 (उ. प्र.)

सम्पर्क - 07607782917, 09415924888

Email : dr.virendrayadav@gmail.com . Email : virendra_kritika@rediffmail.com

Email : kritika_orai@rediffmail.com- <http://kritika-shodh.blogspot.com>

क्षेत्रीय प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

अरविन्द शुक्ला

आराधना ब्रदर्स, प्रकाशक एवं वितरक

124 / 152-सी-ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर-06.

दूरभाष - 09935007102, 0512-2651490

Email : kritika_orai@rediffmail.com

रामबाबू गौतम

220, व्हीलर स्ट्रीट

क्लीफसाइट पार्क, व्यै जर्सी, अमेरिका-07010

Email : kritika_orai@rediffmail.com

डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह

म. नं. नन्दन सदन II पलोर, शेरशाह रोड,

शकरी गली, पो. आ. गुलजार बाग, पटना-07

दूरभाष - 09279211509, 09334626350

Email : drsurendra25@gmail.com

डॉ. चन्द्रमा सिंह

नयकागाँव, जी. टी. रोड

सासाराम (बिहार) 821115

Email : dr.chandramasinghkritika@rediffmail.com

डॉ. सुरेश एफ. कानडे

प्लॉट नं. 48, साई बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम

हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड, नासिक 422013 (महाराष्ट्र)

सम्पर्क-09422768141, Email : sureshkande2009@rediffmail.com

डॉ. कश्मीरी देवी

म. नं. 1651 / 21 हैफेड चौक, रोहतक (हरियाणा) 124001

सम्पर्क - 0912384888, Email : kashmiridevi2009@rediffmail.com

डॉ. राधा वर्मा

'शर्मा हाऊस', न्यू ढली, शिमला-171012 (हि0प्र0)

मोबाइल: 9459584920, Email : dr.radhaverma@yahoo.com

डॉ. नीना शर्मा 'हरेश'

व्याख्याता, हिन्दी विभाग

आनन्द आर्ट्स कालेज, गुजरात 250260

सम्पर्क - 09925019160, Email : dr.neenasharma2009@rediffmail.com

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 11-12, वर्ष : 06, जनवरी-दिसम्बर 2013

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृति अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस शोध पत्रिका का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ-साथ सात समुन्दर पार यू.एस.ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निदेशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हों, बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर उपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर समय-समय पर कृतिका परिवार विषय-विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकलता है जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका में एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकर्मीयों को समय-समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- ☞ कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- ☞ मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जाती हैं।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें, पुस्तक का संदर्भ, पत्र-पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- ☞ कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- ☞ कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- ☞ स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियों के साथ लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेप पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- ☞ किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- ☞ कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भलीभाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- ☞ रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा कृति देव 10 में 14 फांट साइज में MS-Word Software में टाइप करके ई-मेल करें या साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।

—कृतिका परिवार

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 11-12, वर्ष : 06, जनवरी-दिसम्बर 2013

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स 1956 (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत

‘कृतिका’ – हिन्दी अर्द्धवार्षिक के सम्बन्ध में स्वामित्व

तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा-पत्र

(फार्म-4)

1. प्रकाशन स्थल : 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
2. प्रकाशन अवधि : अर्द्धवार्षिक
3. मुद्रक का नाम : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
नागरिकता : भारतीय
पता : 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
4. प्रकाशक का नाम : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
नागरिकता : भारतीय
पता : 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
5. सम्पादक का नाम : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
नागरिकता : भारतीय
पता : 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
जो समाचार पत्र के स्वामी हों : 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतद्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जून 2013

हस्ताक्षर

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

मुद्रक : महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स,
15, आजाद नगर, उरई (जालौन)

सम्पादक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 11-12, वर्ष : 06, जनवरी-दिसम्बर 2013

कृतिका परिवार

मुख्य परामर्शदाता एवं मानद संरक्षक

- ♦ रूपनारायण सोनकर, दून व्यू कॉटेज स्प्रिंग रोड, मसूरी-248179, उत्तराखण्ड
- ♦ डॉ. आदित्य कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.वी. कालेज, उरई (जालौन)
- ♦ डॉ. आनन्द कुमार खरे, एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन)
- ♦ डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, रीडर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग (पी.जी.) महाविद्यालय, पुखरायां, कानपुर देहात (उ. प्र.)
- ♦ डॉ. उमारतन यादव, रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)

प्रमुख अप्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति

- ♦ डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव, 64 लांगसवर्ड, झाइव, स्कारवोरो ओनटारियो, कनाडा, एम.आई.वी. 3 ए. 3
- ♦ डॉ. अजीत सिंह राही, पो. बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस.डब्ल्यू., आस्ट्रेलिया
- ♦ डॉ. तिलकराज चोपड़ा, हाज़ल वेग 15ए 53340 मेकन्हाईम, जर्मनी
- ♦ डॉ. दिव्या माथुर, नेहरू सेन्टर, 8 साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन-डब्ल्यू 1 के 1 एच. एफ.
- ♦ श्री रामबाबू गौतम, 220, व्हीलर स्ट्रीट क्लीफसाइट पार्क, व्यै जर्सी-07010

विशेष परामर्शदात्री समिति

- ♦ डॉ. हेमा देवरानी, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बाबू शो0 कला महा., अलवर, राजस्थान
- ♦ डॉ0 रावेन्द्रकुमार साहू, सहा. प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शास. स्व. स्नात. महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
- ♦ डॉ. वीणा श्रीवास्तव, एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन)
- ♦ डॉ. ज्योति सिन्हा, प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी. जी. कॉलेज, जौनपुर (उ. प्र.)
- ♦ डॉ. पुनीत बिसारिया, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, नेहरू पी. जी. कालेज, ललितपुर

संपादकीय परामर्शदात्री समिति

- ♦ डॉ0 बिनोद कुमार पाल, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार।
- ♦ डॉ. अलका द्विवेदी, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स कालेज, कानपुर
- ♦ डॉ. अंजु दुआ जैमिनी, 839ए सेक्टर-21 सी. पार्ट-2, फरीदाबाद (हरियाणा)
- ♦ डॉ. हरिनिवास पाण्डेय, प्रवक्ता हिन्दी, जवाहर लाल नेहरू कालेज, पासीघाट (अ. प्र.)
- ♦ डॉ. शुभा जौहरी, रीडर, इतिहास विभाग, राष्ट्र संत तु0म0 नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर (म0)
- ♦ डॉ. गोवर्धन सिंह, अध्यक्ष, भोजपुरी विभाग, वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- ♦ डॉ. हितेन्द्र जे मौर्या, प्रवक्ता, इतिहास विभाग, महा स0 राव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा (गुज.)
- ♦ डॉ. अरविन्द कुमार शुक्ल, प्रवक्ता-राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, समथर, झाँसी
- ♦ श्री राघवेन्द्र सिंह राजू, 7 जाफ़लिन रोड, लखनऊ (उ.प्र.)
- ♦ डॉ. प्रदीप कुमार दीक्षित, एसो0 प्रो0, संस्कृत विभाग, अकबरपुर कालेज, अकबरपुर (र0 ब0 नगर)
- ♦ डॉ. आलोक रंजन, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, मारवाड़ी कॉलेज, भागलपुर (बिहार)
- ♦ डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह, प्र. समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर, चमोली

- ♦ डॉ. आशा वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. कालेज, कानपुर
- ♦ डॉ. सुनीता शर्मा, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, गुरुनानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब)
- ♦ डॉ. एल. के. कुन्दन, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, राँची कालेज, राँची
- ♦ डॉ. अखिलेश शुक्ल, सहा प्रा., समाजशास्त्र विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा
- ♦ डॉ. परमात्मा शरण गुप्ता, अर्थशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) उ. प्र.

मुख्य सम्पादक मण्डल

- ♦ डॉ. चन्द्रमा सिंह, नयकागाँव जी.टी. रोड, सासाराम (बिहार)
- ♦ डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह, नन्दन सदन II फ्लोर, शेरशाह रोड, शकरी गली, पो.आ. गुलजार बाग, पटना
- ♦ डॉ. किशन यादव, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)
- ♦ डॉ. सुरेश एफ. कानडे, प्लॉट नं. 48, साई बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड, नासिक-422013 (महाराष्ट्र)
- ♦ डॉ. नीना शर्मा 'हरेश', व्याख्याता हिन्दी, आनन्द आर्ट्स कालेज, गुजरात (गुजरात)
- ♦ डॉ. कश्मीरी देवी, म. नं. 1651/21 हैफेड चौक, रोहतक (हरियाणा) 821115
- ♦ डॉ. राधा वर्मा, वर्मा निवास, गाहन, कमला नगर, संजौली, शिमला (हि. प्र.)

विशेष सम्पादन सहयोग

- ♦ डॉ. अजय सिंह, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, हंडिया कालेज, हंडिया, इलाहाबाद
मोबाइल : 09415638535 ई-मेल : drajaysingh@gmail.com
- ♦ डॉ. सियाराम, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया
मोबाइल : 09219828316 ई-मेल : siyaramhindi@rediffmail.com
- ♦ डॉ. रणविजय सिंह, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
मोबाइल : 09919123763 ई-मेल : rajuranvijay@gmail.com

सम्पादक

- ♦ डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
रीडर-हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
उ.प्र. विकलांग उद्धार डॉ. शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ-226017 (उ. प्र.)
सम्पर्क : 09415924888, 07607762917
Email : dr.virendrayadav@gmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com
Email : virendra_kritika@rediffmail.com
http://kritika-shodh.blogspot.com

प्रबन्धन

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152-सी ब्लॉक, गोविन्दनगर, कानपुर-208006, उ.प्र.

दूरभाष -09935007102, 0512-2651490

Email : kritika_orai@rediffmail.com, aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 11-12, वर्ष : 06, जनवरी-दिसम्बर 2013

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 06

अंक : 11-12,

जनवरी-दिसम्बर 2013

अनुक्रमणिका

शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
सम्पादकीय.....		i-viii
समकालीन विमर्श के कुछ अनछुए पहलू		
1. शासन और अर्थव्यवस्था में घोटालों के बदलते सन्दर्भ	डॉ० ज्योति खरे	1-10
2. भारतीय संविधान में सूचना पाने का अधिकार : एक मूल्यांकन	डॉ० आदित्य प्रकाश सिंह	11-13
अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति : स्वस्थ जनतान्त्रिक मूल्यों की तलाश		
3. परमाणु क्षमता संपन्न राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उनकी छवि	डॉ० प्रीति चौधरी	14-17
4. भारत अमेरिका करार 123 की उपयोगिता एवं मूल्यांकन	अरविन्द कुमार शुक्ल	18-25
अछूते सन्दर्भ-नन्हें जीवन की करुण कहानी		
5. बाल श्रम एवं अधिनियम : एक विश्लेषण	डॉ० वीरेश पाण्डेय	26-29
6. मेव युवा वर्ग में बढ़ता तनाव एवं परिवार की भूमिका	डॉ० मिथिलेश गुप्ता	30-34
7. बाल अपराध एक जटिल समस्या	डॉ० अशोक कुमार यादव	35-37
भारत में धर्म दर्शन के उभरते क्षितिज		
8. वैदिक वाङ्मय में योग विज्ञान की उपादेयता	डॉ० आर.पी. चतुर्वेदी	38-44
9. महात्मा बुद्ध, विपस्सना और सम्यक् जीवन	डॉ० उत्तरा यादव	45-51
10. मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में श्रेष्ठ प्रकरण की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता	डॉ० जय सिंह	52-54

11. पारलौकिक पुरुषार्थ की अवधारणा	डॉ० वी.एन. शुक्ल, डॉ० वन्दना शुक्ला	55-57
12. रामायण में औषध एवं चिकित्सा विज्ञान की उपादेयता	डॉ० मुन्ना लाल चौधरी	58-60
13. सभ्य समाज की भूमिका का मूल्यांकन	डॉ० गीता यादव	61-65
14. आत्म अनुशासन : लक्ष्यों और उपलब्धियों के बीच का पुल	डा० श्वेता गर्ग	66-67
राष्ट्रनिर्माण में अग्रज पीढ़ी का योगदान		
15. डॉ० राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव	68-78
16. शिक्षा जगत के अलौकिक प्रकाश पुंज—डॉ० राधाकृष्णन	डॉ० ज्योति सिनहा	79-81
कला, संस्कृति एवं लोकसाहित्य के विविध सन्दर्भ		
17. प्राचीन बुन्देलखण्ड की कला एवं संस्कृति के बदलते सरोकार	डॉ० कुमार यशवन्त एवं रश्मि सिंह	82-85
18. संस्कृति साहित्य में सामाजिक चेतना	डॉ० शिवानी शुक्ला	86-89
19. भारतीय लोकगीत : सामाजिकता और स्त्री विमर्श के अहम पहलू	डॉ० रचना भारतीय	90-94
20. राजस्थान एवं गढ़वाल की स्त्रियों की सामाजिक अभिव्यक्ति का प्रमुख स्रोत : लोकगीत	डॉ० हेमा देवरानी	95-105
वर्तमान भारत में शिक्षा की दशा एवं दिशा		
21. नई सदी में भारत की शिक्षा व्यवस्था : समस्याएँ, चुनौती एवं सुझाव	डॉ० रवीन्द्र नाथ यादव	106-108
22. ओशो और स्त्री शिक्षा : एक मूल्यांकन	डॉ० रामयश द्विवेदी	109-112
23. लोकतांत्रिक शिक्षा व्यवस्था में बालकों में मूल्य संवर्द्धन शिक्षकों की भूमिका	अजय कुमार श्रीवास्तव	113-117
24. प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० राजेश बाबू एवं बृजवाला शर्मा	118-123
25. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनत् सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के आकांक्षा स्तर एवं तनाव का तुलनात्मक अध्ययन	प्रो० सीमा द्विवेदी	124-131
26. प्राथमिक शिक्षा के उन्नयन में सरस्वती शिशु मंदिरों का योगदान	श्रीमती बृजवाला शर्मा	132-134
27. बाल केन्द्रित शिक्षा : गिजु भाई बधेका के संदर्भ में	डॉ० शुभा पी० काण्डपाल	135-139

समकालीन साहित्य के बदलते परिदृश्य : दशा एवं दिशा

28. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में लालित्य	डॉ० राधा भारद्वाज	140-147
29. आधुनिकता की अवधारणा	श्रीमती कामाक्षा बिसेन	148-151
30. उत्तर-औपनिवेशिक चुनौतियों की दास्तान : परछाई नाच	डॉ० सुमन सिंह	152-155
31. उलटवांसी शैली और संत साहित्य	डॉ० श्रीपति कुमार यादव	156-159
32. कबीर की भक्ति का आध्यात्मिक और सामाजिक धरातल	डॉ. बिपिन कुमार	160-165
33. कबीर की नैतिक चेतना का यथार्थ	डॉ० शिवशंकर यादव	166-169
34. अज्ञेय की कविता और प्रकृति	डॉ० गौरी त्रिपाठी	170-173
35. भारतेन्दु का नाट्य गौरव : राष्ट्रीय चेतना का नवीन आख्यान	डॉ० आलोक राय	174-186
36. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जयशंकर प्रसाद के चुनिदाँ नाटकों में सत्ता का प्रतिरोध	डॉ. मीना सिंह	187-191
37. नागार्जुन के उपन्यास और भूमिपुत्रों का संग्रामी तेवर	अनिल कुमार सिंह एवं योगेन्द्र कुमार	192-200
38. नागार्जुन : आम जन के कवि	डॉ० आभालता चौधरी	201-205
39. परसाई जी के व्यंग्य-समकालीन यथार्थ के संदर्भ में	डॉ० आराधाना सिंह	206-209
40. दलित कविता : चिन्तन से जगाती चेतना	डॉ० अशोक एम. पवार	210-215

अप्रवासी सृजन

41. भिखारी ठाकुर के साहित्य में ग्रामीण व शहरी मजदूर	डॉ० धनंजय सिंह	216-227
आधी दुनिया का स्याह यथार्थ		
42. महिला सशक्तिकरण सामाजिक-आर्थिक चुनौतियाँ एवं समाधान	डॉ० मंजू अवस्थी	228-233
43. वैश्वीकरण का भारतीय महिला सशक्तिकरण पर नकारात्मक प्रभाव	डॉ० अंजना जैन	234-236
44. पंचायती राज एवं महिला सशक्तिकरण के उभरते क्षितिज	डॉ० अनुपमा यादव	237-240
45. वैश्वीकरण व निजीकरण से प्रभावित कामकाजी महिलाओं का जीवन	डॉ० मीना मनराल	241-245

भाषा एवं प्रौद्योगिकी (संचार क्रांति) के उभरते क्षितिज

46. वैश्विक परिदृश्य और मीडिया की अनिवार्यता : एक मूल्यांकन	डॉ० कल्पना वशिष्ठ	246-248
47. भाषा प्रौद्योगिकी के उभरते क्षितिज, गहराती, चुनौतियाँ	डॉ० शोभारानी श्रीवास्तव	249-253

48. मीडिया की भाषा और नारी	डॉ० सविता मसीह	254-256
49. भाषा के संदर्भ में मीडिया की दशा और दिशा	डॉ० पुष्पा शाक्य एवं डॉ० चन्दा जैन	257-258

पर्यावरण एवं ग्लोबल वार्मिंग : एक विश्वव्यापी समस्या

50. विनाश को आमंत्रित करता अत्यधिक प्राकृतिक सम्पदा का दोहन	डॉ० योगेश ज्ञानी एवं डॉ० धीरज कुमार गुप्ता	259-262
51. पर्यावरणीय दृष्टि से उत्तर प्रदेश अत्यन्त संवेदनशील	डॉ० संतोष कुमार	263-270

भारत में शिक्षा क्षेत्रीय शिक्षा के बदलते सरोकार

52. जनपद जालौन के स्नातक स्तरीय महाविद्यालयों के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की व्यवसायिक सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन	दयाशंकर	271-276
53. सहायता प्राप्त एवं स्ववित्त पोषित शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों की शैक्षिक अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० राजेश बाबू	277-280
54. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्तर के छात्र/छात्राओं की अन्तर्मुखी बहिर्मुखी प्रतिभा का अध्ययन विकासखंड जौरा जिला मुरैना के संदर्भ में	अरविंद सिंह तोमर, डॉ० रामयश द्विवेदी	281-287
55. उरई नगर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों की विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन	इसरार अहमद	288-293

भारत में चिन्तन-चिन्ता के विविध परिदृश्य

56. इक्कीसवीं शताब्दी में भारत के समक्ष यक्ष चुनौतियाँ	डॉ० शम्स आलम	294-296
57. निर्वाचन और लोकतन्त्र के बदलते सरोकार	डॉ. भावना यादव	297-306
58. बिहार में सिंचाई और कृषि उत्पादन की झलक	डॉ० प्रभा कुमारी	307-312
59. झारखण्ड में पर्यटन विकास की सम्भावनाएँ	डॉ० प्रेम प्रकाश राजपूत, ओम जी	313-318
60. जनजातीय महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति तथा मानवाधिकार	अनीता रानी	319-323

इतिहास के आईने में

61. असहयोग आन्दोलन एवं खिलाफत आन्दोलन के दौर में जनपद-जालौन	डॉ० रणविजय सिंह	324-341

पोथी की परख/समीक्षायन

62. सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लोकनायक : स्वामी विवेकानंद	डॉ. हरिनिवास पाण्डेय	342
63. भारतीय शिक्षा : मुद्दे, विकल्प और नीतियाँ	डॉ० सियाराम	343
64. भारतीय लोकतन्त्र : मुद्दे, विकल्प और नीतियाँ	डॉ० के० के० सिंह	344
65. विकासशील भारत : परिदृश्य और विकल्प के नवीन सरोकार	डॉ० हेमा देवरानी	345
66. शताब्दी की दहलीज पर भारतीय सिनेमा : संघर्ष और मुक्ति के नये क्षितिज	रामबाबू गौतम	346
67. लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति : परम्परा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य	डॉ० विजय कुमार वर्मा	347
68. आज का भारत : वैचारिकी एवं समकालीन विमर्श	डॉ. मनजीत सिंह	348
69. महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय, समाज और संवेदना	डॉ० कमलेश सिंह	349
70. भारतीय शिक्षा बदलता परिदृश्य : चुनौतियाँ एवं समाधान की दिशाएँ	डॉ० राजेश कुमार गर्ग	350
71. स्वामी विवेकानन्द : सांस्कृतिक चेतना के वैश्विक प्रहरी	डॉ० अजीत सिंह राही	351
72. डॉ० राममनोहर लोहिया : वैचारिकी विमर्श	डॉ० सुरेश एफ० कानडे	352
73. डॉ० राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ० हितेन्द्र जे मौर्या	353
74. डॉ० राममनोहर लोहिया : समाजवादी विमर्श	डॉ० बिनोद कुमार पाल	354
75. वर्तमान सदी का भारत : नई चुनौतियाँ, नए सवाल	अंशुबाला	355
76. साहित्य में कथ्य और शिल्प के सामाजिक सरोकार	डॉ० एस० के० शर्मा	356

I Eikndh;—

प्रकृति का नियम है कि हमारी उपलब्धियाँ बृहत्तर होते-होते अंत की ओर अग्रसर होने लगती हैं। बीसवीं सदी में इस अंतवाद की धारणा कई लेखकों में दिखाई देने लगती है। अर्थात् सन् 1968 ई० में पेरिस के छात्रों ने विद्रोह कर दिया तथा इसी समय रोला वार्थ के द्वारा लेखक के अवसान का ऐलान कर दिया गया। बीसवीं सदी के अंत तक विचारधारा कला, साहित्य, इतिहास, आधुनिकतावाद तथा अनेक चिंतनों का अंत मान लिया गया। अप्रत्याशित रूप से यह देखने को मिला कि फ्रेडरिक, नीत्शे ने सन् 1883 ई० में यह लिखा कि ईश्वर मर चुका है, हम लोगों ने इसकी हत्या कर दी है। आधुनिकता की अनवरत यात्रा में दुनिया धीरे-धीरे एक बाजार में तब्दील होती देखी गयी। यह अचानक नहीं हुआ बल्कि इसको ऐसा होने पर बनाने में सुनियोजित प्रयास किये गये। यह सब बीसवीं सदी में साम्राज्यवाद, साम्यवाद एवं फासीवाद के पतन के बाद दुनियाँ भर में सांस्कृतिक वर्चस्व के नये अभियान के तहत हुआ और अपने आन्तरिक विकास को अवरुद्ध पाने वाली इन शक्तियों ने बाह्य प्रगति का रास्ता तलाशा और परिणामतः पूँजीवाद को फासीवाद में शरण मिल गयी। इसीलिए शायद बीसवीं सदी के अवसान पर आधुनिकता अपनी यात्रा को उत्तरोत्तर पूरी करती हुई अभूतपूर्व परिवर्तन, 'इतिहास के अंत', 'सभ्यताओं के टकराव' एवं 'नयी सभ्यता के अस्तित्व के चौराहे पर खड़ी दिखाई देती है। इस सन्दर्भ को यदि हम वर्तमान परिदृश्य में देखें तो हाँ पर यह स्पष्ट सा हो गया है कि कभी बाजार हम पर निर्भर था लेकिन अब हम बाजार पर निर्भर हो गये; बिकाऊ वस्तुओं का मूल्य होना जरूरी नहीं था, किन्तु अब जो टिकाऊ नहीं है वह मूल्यवान भी नहीं है। आज के उत्तर आधुनिक या उपभोक्तावादी समय में दृश्य माध्यमों के जरिये स्त्री अर्द्ध नग्न होकर मूल्य की रक्षा में लगी हुई हैं। यह मूल्य रक्षा प्राइज से वैल्यू तक के अन्तराल को समझना नहीं चाहती। ऐसे में हमारे समय के सामने यह बड़ा सवाल है कि 'वैल्यू' से 'प्राइज' क्यों नहीं नियंत्रित हो पा रहा है या 'प्राइज' से 'वैल्यू' की रक्षा क्यों नहीं हो पा रही है या कि 'प्राइज' ही 'वैल्यू' क्यों बनता जा रहा है ? क्या यही आधुनिकता का वह चरम है जिसे छूने-पाने के लिये हम आधुनिक और उत्तरोत्तर-आधुनिक होने के लिए आकुल-व्याकुल थे ?

इसमें कोई शक नहीं कि वैज्ञानिक उपलब्धियाँ और औद्योगिक उन्नति की परिणतियाँ हमें आज एक विडम्बनापूर्ण चरम पर ले आयी हैं। कभी हमने प्रकृति के रहस्यों को खोलने के लिए विज्ञान की मदद ली थी, और आज हम वैज्ञानिक खोजों में लगे होने के साथ-साथ वैज्ञानिक उपलब्धियों के साइड-इफेक्ट से निजात पाने का रास्ता प्रकृति के भीतर ही तलाश रहे हैं। आधुनिकता की तुलना में इस उत्तर आधुनिक समय में स्थितियाँ काफी उलट-पुलट हो गयी हैं। जिस प्रकार मार्क्स ने कहा कि उसने हीगेल के दर्शन को उलट दिया है। उसी प्रकार मार्क्स के आधार और अधिरचना सम्बन्धी अवधारणा को उलट दें तो उत्तर आधुनिकता का एक दृश्य उपस्थित हो जाता है। मार्क्सवादी के अनुसार समाज का आधार आर्थिक ढाँचा है अर्थात् अर्थ आधार है, जिस पर समाज की अधिरचना निर्मित है। उत्तर-समय में अर्थ ही महत्वपूर्ण है, यही अधिरचना है जिसका आधार है उत्तर-औपनिवेशिक उपभोक्तावादी समाज। इस प्रकार उत्तर आधुनिकता को एक फैशन कह देने मात्र से वह सच्चाई झुठलाई नहीं जा सकती, जहाँ अर्थवाद के सामने समाजवाद अपने व्यावहारिक धरातल पर विफल होता हुआ दिखाई देता है। "उत्तर — आधुनिकतावाद को फैशन कहने का मतलब इसे खारिज करना नहीं है, क्योंकि कम से कम

दर्शनशास्त्र या समाजशास्त्र में फैशन कभी एक तुच्छ या आकस्मिक वस्तु नहीं होती। वह हमेशा एक सच्ची और भेद खोलने वाली वस्तु होती है। उत्तर-आधुनिकतावाद तो वस्तुतः उस मोह भंग को उजागर करता है, जो कि हमारे समय में समाजवाद की अवधारणा की विफलता से पैदा हुआ है, साथ ही ज्ञानोदय से जगी उम्मीदों पर पानी फिरने से और नतीजतन व्यवस्था के सामने बुद्धिजीवी के घुटने टेकने से। ड्राइंग रूप में रखा हुआ टी. वी. हमारा ज्ञान गुरु रूपी बोधि वृक्ष बन गया है। जहाँ एक ओर एक चैनल पर कारुणिक दृश्य हमारे हृदय को दहला रहा है, तो वहीं दूसरी ओर रिमोट का बटन दबाते ही बगल वाले चैनल पर ब्रा और पैन्टी का विज्ञापन देखने को मिल जाता है, यही नहीं अगले चैनल पर महात्मा जी का प्रवचन चल रहा है, तो किसी पर घर-घर की कहानियाँ जिनकी टी. आर. पी. बताती है कि दूसरों के घरों की राम कहानी में लोगों की रुचियाँ बढ़ी हैं। दिलचस्प बात यह है कि आज कहानी के बुनावट और विकास को सुनिश्चित करने के लिए दर्शकों या जनता की रुचियों की परख जैसा मेहनत वाला काम नहीं किया जाता बल्कि कथा की विकास यात्रा और क्लाइमेक्स जैसी चीजें दर्शकों द्वारा ही तय की जा रही हैं। एक टी. वी. सेट पर बहुरंगी ब्रह्माण्ड कुल मिलाकर घर बैठे सारा संसार और संसार का सारा रूप-स्वरूप ऐसे उपलब्ध है कि ज्ञान प्राप्त हो ही जाता है। फलस्वरूप आज आदमी बुद्धत्व को प्राप्त होकर समरस हो गया है, भावुकता और संवेदना की उद्दीपन सामान्य सी परिस्थितियाँ बन गयी हैं। इसलिए यहाँ उत्तर आधुनिकता विचारों की पूर्णता में नहीं, विखण्डन में विश्वास करती हैं। इसी कारण एक शब्द के अनेक अर्थ, अनेक चैनल, अनेक एकता केन्द्र और अनेक पार्टियाँ हो रही हैं। प्रायोजित या प्रस्तुत यथार्थ मिथ्या होता है और उसके परे का यथार्थ ही सत्य होता है। व्यक्ति का कहना कुछ और होता है और आशय कुछ और ही लोग निकाल लेते हैं। अर्थात् वर्तमान युग संशय का है। उत्तर आधुनिकता का मूल्य तत्व संशयवाद या निषेधवाद ही है। कोई वस्तुगत सत्य नहीं, कोई मूल्य नहीं, आदर्श नहीं, जिसके आधार पर जीवन को सुलझाया जाए। आज की तारीख में पूरा विश्व अविश्वास में जी रहा है। और उसके समक्ष एक बड़ा संकट विश्वास का भी है।”

यह भूमण्डलीकरण का युग है। आर्थिक उदारीकरण, विश्व बाजारवाद, निजीकरण, उपभोक्तावाद आदि इसके उपोत्पाद हैं। वैश्वीकरण की खूबियों की तुलना में उसकी खामियाँ बहुत अधिक हैं। इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि देश के धनी लोग ज्यादा सम्पन्न हो जाते हैं जबकि आम आदमी का जीवन अधिकाधिक दूभर हो जाता है। वैश्वीकरण ने सम्पूर्ण विश्व को एक धुरी पर लाकर खड़ा कर दिया है। यह विभिन्न राष्ट्रों-राज्यों की राजनैतिक सीमाओं के आर-पार सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक लेन-देन की प्रक्रियाओं और उनके प्रबन्धन का प्रवाह है। विश्व अर्थव्यवस्था में आया खुलापन, आपसी जुड़ाव एवं परस्पर निर्भरता के फैलाव को वैश्वीकरण कहा जा सकता है। ऐसा कुछ लोगों का मानना है कि वैश्वीकरण ने ‘बसुधैव कुटुम्बकम्’ के आदर्श पर चलने वाली प्रक्रिया के तेज विस्तार से विश्व अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव ला दिया है। इसलिए आज वैश्वीकरण प्रत्येक क्षेत्र का मुख्य विषय बन गया है, क्योंकि इसने समाज के प्रत्येक क्षेत्र को विशेष रूप से प्रभावित किया है।

आर्थिक उदारीकरण, आर्थिक सुधार, खुली अर्थ नीति, निजीकरण तथा भूमण्डलीकरण कुछ ऐसे शब्द हैं जो विश्व के नये विधान की पैरवी में बार-बार इस्तेमाल होते हैं। इन शब्दों से यह अहसास दिलाया जाता है कि वैश्वीकरण एक जरूरी आर्थिक प्रक्रिया है, जिसके बगैर इक्कीसवीं सदी में मानव जाति का कल्याण संभव नहीं हो सकता है। जाति, धर्म और राष्ट्र के जटिल बंधनों में कैद सोचने-समझने वाले

मध्यमवर्गीय व्यक्ति को यह बात तर्कसंगत और उचित भी लगती है। वह सोचता है कि बंधनों से मुक्त होकर वह उन सारी सुविधाओं को भोग सकेगा, जिनका मजा न्यूयार्क या पश्चिमी देशों में रहने वाला एक आम नागरिक ले रहा है, किंतु यह एक छलावा मात्र है। प्रतिबंधों से मुक्ति के इस विकल्प का अधिकांश फायदा एक खास वर्ग—विशेष तक ही सीमित होता जा रहा है। जाहिर है कि 'पूंजी के निर्माण' की प्रक्रिया में पहला और अधिकांश फायदा प्रारंभिक पूंजी लगाने वाले का होगा, फिर कुछ हद तक क्रय क्षमता रखने वाले उपभोक्ता लाभान्वित होंगे। किंतु क्रय—क्षमताविहीन गरीब एवं आदमी या तो किंकर्तव्यविमूढ़ होकर सारी प्रक्रिया को देखता रह जाएगा, या फिर प्रचार—विज्ञापन के भ्रमजाल में फंसकर वह जिंदगी की मूल जरूरतें, मुहैया करने के लिए कमाए पैसे को 'गोरेपन बढ़ाने वाली क्रीम' या फिल्मी सितारों के मनपसन्द साबुन या 'लहर नमकीन' पर खर्च कर डालने पर आमादा होगा। यह सब भूमंडलीकरण के भुक्तभोगियों की एक सच्चाई है। परिणामतः भूमंडलीकरण ने जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है।

भूमंडलीकरण औद्योगिक क्रांति का दूसरा नाम है। विश्व व्यापार संघटन द्वारा प्रस्तुत आर्थिक वैश्वीकरण को सीधा सा नाम दिया गया है भूमंडलीकरण। उत्पादन एवं वितरण सभी मिलकर कर सकें। विश्व नगर का सपना साकार हो। पश्चिम के विकसित देश और अन्य विकसनशील देश आगे बढ़ सकें। नयी तकनीकी से उत्पादन और सूचना तकनीकी से जुड़कर विश्वस्तर पर व्यापार संभव है। वैचारिक आधार है कि आज विश्व सबके बहुत निकट हो गया है अर्थात् 'ग्लोबल विलेज' की अवधारणा अवतीर्ण हो गयी है। सच्चाई यह है कि भूमंडलीकरण ने दुनिया को 'भूमंडी' बनाम बाजार का रूप दे दिया है।

भारत में भूमंडलीकरण की शुरुआत सन् 1991 ई0 से हुई। उस समय तक हमारे शासक वर्ग को यह पक्का यकीन हुआ था कि हम कमजोर हैं और हमारे सामने कोई विकल्प नहीं है। तब पाया गया कि अपनी कमजोरी से पार पाने का सिर्फ एक ही रास्ता है—भूमंडलीकरण, क्योंकि एक तरफ हमारी नीतियाँ नाकाम हो रही थीं और दूसरी ओर विश्व बैंक—अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश भारत में ग्लोबलाइजेशन का नुस्खा लागू करने के लिए तैयार बैठे थे।

पिछले दो दशकों में व्यक्तिवाद बढ़ा है और इसी परिप्रेक्ष्य में प्रगतिशील शक्तियाँ कमजोर हुई हैं। यह विश्वास भी कमजोर हुआ है कि संगठित प्रतिरोध से कुछ हासिल किया जा सकता है। भूमंडलीकरण से जीवन के सभी क्षेत्र प्रभावित हो रहे हैं — राजनीति, अर्थनीति, संस्कृति, कला, साहित्य तथा भाषा। वस्तुतः इस अभियान ने देश की सीमाओं को तोड़ने के साथ-साथ उसी के साथ बाजार की सारी नीतियाँ प्रवेश कर रही हैं। बाजार का एक ही मूलमंत्र होता है—लाभ कमाना। इसी दृष्टि को मदद नजर रखते हुए इस नीति का दूरगामी परिणाम हिंदी भाषा तथा भारतीय भाषाओं पर हुआ है, जो भविष्य में विविधोन्मुख चुनौतियों के रूप में हमारे सामने सम्मुख खड़ा है। आर्थिक उदारीकरण—वैश्वीकरण का नया साम्राज्यवादी रूप है। साम्राज्यवाद की प्रकृति यही होती है कि वह वणिक वृत्ति से लाभ कमाए। पिछले कई सालों में साम्राज्यवाद के फैलने, फलने—फूलने की कथा बयान होती है। देशी उत्पादन खत्म हो रहे हैं, विदेशी कंपनियों के आक्रमण से देशी उद्योग बंद हो रहे हैं, भारतीय किसान देशी बीज खो चुके हैं, अत्यंत भयावह स्थिति का सामना न कर पाने की वजह से किसान आत्महत्या कर रहे हैं। बेरोजगारी में इजाफा हुआ है। युवाओं का बहुत बड़ा वर्ग 'कार्य संस्कृति' से विलग हुआ है। पर्यावरण प्रदूषण, मीडिया द्वारा आक्रामक मुद्रा में विज्ञापन के सहारे उपभोक्ता संस्कृति का खुला नर्तन, सांस्कृतिक आक्रमण से आतंकित भारतीय समाज मन, नारी देह का उन्मुक्त प्रदर्शन या यों कहें संस्कृति का विकृतीकरण—ऐसी कई

चुनौतियाँ बाहें फैलाकर खड़ी हैं। ऐसे नाजुक समय में एक समग्र विशाल भारतीय मन की जरूरत है।

वैश्वीकरण मुट्ठीभर लोगों के हित का मायाजाल है, क्योंकि वैश्वीकरण का सबसे अधिक लाभ विकसित देशों को हुआ है। जहाँ पश्चिम में आर्थिक स्वावलंबन के नाम पर मनुष्य को मुक्त होने का अहसास दिलाया है, वहीं दूसरी ओर बौद्धिक गुलामी का एक नया दौर शुरू हो चुका है। किंकर्तव्यविमूढ़ मुद्रा में खड़े भारतीय मनुष्य को उबारना आज के समय की सबसे बड़ी चुनौती है। परिणामतः बौद्धिक और सांस्कृतिक गुलामी के इस दौर में हमें और अधिक सचेत होकर जागरूक होना होगा।

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया विविधांगी होने पर भी उससे एक ही बात सम्मुख आती है वह है—“दुनिया एक जैसी” होना ही भूमण्डलीकरण है। यह एक जैसी होने की प्रक्रिया दो स्तरों पर ही रही है। एक भौतिक स्तर या वस्तु रूप के स्तर पर और दूसरी मानसिक स्तर पर। भौतिक स्तर की प्रक्रिया सहज समझी जा सकती है जैसे — दुनिया भर के पुरुषों की पोशाक एक जैसी होती जा रही है — शर्ट—पैंट, कोट आदि। महिलाओं की पोशाकों के बारे में भारत में काफी विविधता है। धीरे-धीरे एक जैसी होती जाएगी। ऐसे संकेत मिलने लगे हैं जैसे शर्ट—पैंट आदि। मोटरकार कंपनियाँ अनेक होने पर भी विविध मॉडल्सों का उत्पादन कर रही हैं। तब भी स्वयंचलित चौपहिए की कल्पना एक ही है। इसी प्रकार गेहूँ व मक्का, चावल आदि से बनी हुई विविध चीजों का उपयोग बढ़ रहा है। ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जैसे — बालपेन, स्टेपलर, पिन, डिजिटल पाउडर, साबुन, टूथपेस्ट, फेश पाउडर, लिपिस्टिक, ब्रेड, कोल्ड ड्रिंक, मिनरल वाटर की बोतलें, कम्प्यूटर, फ्रिज, टेलीविजन, मोबाइल, डिश अन्टेना, क्रेडिट आदि वस्तुएं दुनिया भर में एक जैसी हैं या होती जा रही हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण दुनिया की संस्कृति एक जैसी हो रही है। इमारतें, रास्ते, दुकानें, सुपर बाजार, मनोरंजन के साधन, यातायात के साधन व उनका उपयोग करने वाले व्यक्तियों की पोशाखें, उनका जीवन व्यवहार एक जैसा होता जा रहा है। हमारी भौगोलिक सीमाएँ एवं वातावरण अलग होने पर भी हम एक जैसे बनने के लिए प्रत्यनशील हैं। दुनिया के प्रत्येक क्षेत्र का व्यक्ति अपने क्षेत्र के अनुसार विचार करता है उसकी मानसिकता उस वातावरण से जुड़ी रहती है। इसलिए वह उसी तरह विचार एवं व्यवहार करता है। जैसे अमेरिकन व्यक्ति जिस प्रकार विचार एवं व्यवहार करता है, भारतीय व्यक्ति उस प्रकार नहीं करता है। इसलिए उसकी संस्कृति अलग होती है। परंतु भूमण्डलीकरण की वजह से धीरे-धीरे एक जैसी बनती जा रही है। आज लोग एक जैसा विचार करते हैं। अपने पूरे जीवन से सम्बन्धित समस्याओं व समाधानों के प्रति जागरूक होने की प्रक्रिया चल पड़ी है। वृद्धावस्था के प्रति लोग सजग होने लगे हैं। आज दुनिया भर में विवाह की उम्र बढ़ने लगी है अर्थात् परंपरा को छोड़, परिस्थितियों के आधार पर निर्णय लिये जाने लगे हैं। सामाजिक रीतिरिवाजों व बंधनों में शिथिलता आ गयी है। कुछ व्यक्ति विवाह के बंधन में न पड़कर अकेला जीवन बिताना पसंद कर रहे हैं। छोटे परिवार की संकल्पना विकसित हो रही है। मनोरंजन के प्रति दृष्टिकोण बदलता जा रहा है। इसलिए वर्ल्ड कप खेलों जैसी संकल्पना को निरंतर बढ़ावा मिल रहा है। शिक्षा से संबंधित विचारधारा एक जैसी होती जा रही है। बुद्धि के अनुसार अनेक शैक्षणिक क्षेत्रों को विकसित किया जा रहा है। पूरी दुनिया की एक भाषा होनी चाहिए यह विचार धीरे-धीरे प्रिन्ट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में प्रसारित हो रहा है।

भूमण्डलीकरण की आर्थिक प्रक्रिया दुनिया भर में पूँजी, व्यापार या आयात—निर्यात में बिना शर्तों के लागू करना है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना श्रेय व सेवा को खुलेपन से बेचने के लिए बढ़ावा देना है तथा

बिना बाधा एक देश से दूसरे देश जाने देना है। उसके स्थलान्तरण या व्यापार के लिए सीमाएँ खोलना है। उद्योगों के सभी क्षेत्रों में प्रोत्साहन देना, साथ ही व्यक्तिगत उद्योगों को पूर्ण स्वतंत्रता देना, सरकारी नियमावली शिथिल करना आदि है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यह दुनिया एक बाजार है तथा इस बाजार में व्यापार व व्यवहार सभी का समावेश आवश्यक है। परन्तु भूमण्डलीकरण की यह प्रक्रिया यहीं नहीं रुकती। यह आर्थिक प्रक्रिया ऐसी है कि एक बार आरंभ होने पर मानवीय जीवन के विविध क्षेत्रों को स्वयं में शामिल करती चली जाती है। इस प्रक्रिया में फिर आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण, केन्द्रीकरण, शहरीकरण, वैयक्तिकीकरण इत्यादि प्रक्रिया भी शामिल हो जाते हैं और मानवीय जीवन की रोटी से लेकर अन्य सुविधाओं की स्पर्धा आरंभ होती है। इतना ही नहीं बुद्धिप्रमाणता, वैज्ञानिकता, विवेकवाद, उपभोगवाद इत्यादि का भी आरंभ होता है। उपरोक्त सभी बातों से किसी के भी मन में यह बात आ सकती है कि इन सबका संस्कृति से क्या संबंध है ? साहित्य एवं संस्कृति से संबंधित लेखक या पाठक को इस विचार को गहराई से समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

आर्थिक व व्यावहारिक दृष्टि से देखने से यह ज्ञात होता है कि भूमण्डलीकरण में अनेक छोटी-बड़ी प्रक्रियाएँ घटित होती रहती हैं। ये प्रक्रियाएँ विविध स्तरों पर, विविध क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार से घटित होती हैं। कुछ लोग भूमण्डलीकरण को समझते समय अच्छा या बुरा निर्णय देते हैं एवं अपनी राष्ट्रीय निष्ठा के अनुसार विवाद को भी जन्म देते हैं। परन्तु यहाँ भूमण्डलीकरण विवाद का विषय नहीं है लेकिन एक बात जरूर स्पष्ट हो जाती है कि भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया सांस्कृतिक सपाटीकरण की ओर ले जाने वाला एक प्रवाह है, जो धीरे-धीरे सबको अपने आपमें शामिल कर लेगा। जो लोग आर्थिक क्षेत्र से जुड़े हैं, वे इसका समर्थन करते हैं क्योंकि उन्हें अपने व्यवसाय का विस्तार दुनिया में कहीं भी करना आसान हो सके। विभिन्न देशों की राजकीय सीमाएँ व उनकी प्रशासनिक नियमावलियाँ शिथिल हों। एक दूसरे से दूसरे देश में सहजता व बिना रुकावट के जाया जा सके। व्यवसाय या उद्योग धंधों के लिए राजकीय सीमाओं का अस्तित्व न हो एवं सम्पूर्ण दुनिया में एक जैसी अर्थव्यवस्था हो। शायद इसीलिए 'बसुधैव कुटुम्बकम्' की कल्पना साकार हो रही है, बहुउद्देशीय कम्पनियों के लिए तो यह कल्पना सोने पर सुहागा है।

एक दूसरी दृष्टि से देखें तो वैश्वीकरण के फलस्वरूप आम आदमी जीवन में पिछड़ रहे हैं। विकसित व ताकतवर राष्ट्रों के इरादों को अमल में लाने का संगठित प्रयास विभिन्न एजेन्सियों द्वारा आज जोरों पर चल रहा है। विश्व बैंक जैसी संस्थाओं के द्वारा यह कार्यक्रम चालाकी से विश्व-भर में चलाया जाता है। भूमण्डलीकरण के सहज प्रकट हो रहे परिणामों से सामाजिक, आर्थिक परिदृश्य में एक नया स्वरूप उभर रहा है, जिसमें एक नये तरह के उत्तर आधुनिक युद्ध के चिह्न दिखते हैं, और इस युद्ध में आई. एम. एफ., वर्ल्ड बैंक, डब्लू. टी. ओ. अपने समस्त भूमण्डलीकरण और उदारीकरण के अस्त्रों के साथ संलग्न है। तीसरे विश्वयुद्ध को बाजार में तब्दील करने की अमेरिका और अन्य शक्तिशाली पश्चिमी राष्ट्रों की मनमानी स्वीकार्य हो चली है। भूमण्डलीकरण दरअसल आम आदमी के कल्याण के लिए नहीं, बल्कि उच्च वर्ग की सुख-सुविधा के लिए है। मिसाल के तौर पर बाजार में वही जाता है जिसके पास बिकने के लिए कुछ न कुछ होता है या खरीदने की सामर्थ्य होती है। निर्धन लोग जिनके पास ये दोनों नहीं हैं, बाजार की शक्तियों के सामने निरर्थक हो जाते हैं। यह सत्य है कि वैश्वीकरण के फलस्वरूप अनेकानेक आधुनिक मशीनें, नवीन घरेलू चीजें, आकर्षक इलेक्ट्रॉनिक उपकरण यहाँ तक कि चलती-बोलती गुड़ियाँ तक देश के कोने-कोने में स्थित बाजारों में उपलब्ध हैं। लेकिन आम आदमी तथा निम्न वर्ग के

लोगों के लिए ये केवल दूर से देखने की चीजें मात्र हैं। निजीकरण की प्रक्रिया तेजी के साथ चलने के कारण ये लोग दिनों-दिन अधिकाधिक दुर्बल बन रहे हैं और उनकी क्रयशक्ति कम हो रही है। भूमण्डलीकरण की आड़ में बाजारवाद, उपभोक्तावाद आदि का अन्धाधुन्ध स्वागत-सत्कार करने वाले शासक केवल आर्थिक पक्ष को महत्व देते हैं, इससे संभाव्य नाना प्रकार की विपत्तियों के बारे में या तो अनभिज्ञ हैं या उन्हें अनदेखा करते हैं। डॉ. पुरुषोत्तम जी ठीक ही लिखते हैं “खुली खिड़कियों वाली अर्थ-व्यवस्था समस्त सामाजिक समस्याओं का समाधान करने वाली संजीवनी बूटी की तरह स्वीकार कर ली गई है। विज्ञापनों की चकाचौंध भरी उपभोक्ता संस्कृति आज समूची सामाजिकता की पहचान बन गई है। बाजार की सारी सोच सिर्फ मुनाफाखोरी पर केन्द्रित रहती है, इस कारण भावुकता भरी संवेदनाएँ, सांस्कृतिक परम्पराएँ और हार्दिक अनुभूतियाँ उनके लिए निरे बेमानी हो जाते हैं।”

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, जापान, अमेरिका, चीन जैसे विकसित देश अग्रसर हैं। इन सब देशों में एक समान विशेषता है कि इन देशों ने अपनी भाषा को संभाले रखा है उसका प्रचार-प्रसार किया है क्योंकि उन्हें पता है कि भाषा का अस्तित्व उनका अस्तित्व है। जापान के चलनी नोटों पर उनके लेखकों की तस्वीर होती है क्योंकि समाज का भाषा को देखने का दृष्टिकोण कैसा है, यह बात समझती है। भारत में बंगाल में निवास करने वाले लोग अपनी भाषा के प्रति काफी जागरूक हैं। उनका भाषा के प्रति अपार प्रेम है। उनकी भौतिक परिस्थिति कैसी भी हो, उन्होंने अपनी भाषा को संभाले रखा है। इसीलिए उनके पास रवीन्द्रनाथ टैगोर, सत्यजीत रे, स्वामी विवेकानन्द, अमर्त्य सेन जैसे जगप्रसिद्ध व्यक्ति तैयार हुए हैं।

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया की यह सबसे बड़ी चुनौती है कि जिस प्रकार आज सांस्कृतिक एकीकरण की बात हो रही है, इससे वैशिष्ट्यपूर्ण भाषा व संस्कृति के नष्ट होने की संभावना बढ़ गयी है। अंडमान की आदिवासी जनजातियाँ कदाचित् भूमण्डलीकरण का सामना न कर सकें परन्तु भारत में हिन्दी भाषा एवं अन्य प्रान्तीय भाषाओं का विशाल समाज बिखरा हुआ है। इसलिए हमें अपने दृष्टिकोण को बदलना चाहिए। इतिहास के बारे में निश्चित ध्येय रखना चाहिए। अपनी भाषा का प्रयोग करने के लिए सकृच्चाना नहीं चाहिए, चाहे वह कोई भी स्थान व वातावरण हो। जैसे होटल, बैंक, हवाई अड्डा, दुकानों, स्कूल, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, खेल के मैदानों में अपनी भाषा सुनाई देनी चाहिए। हमारी भाषा संसार की प्रमुख भाषाओं में से एक है। उसका सर्वत्र व्यवहार होता है। इसी आत्मविश्वास से उसका प्रयोग करना चाहिए। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सर्व बोलियों को संभालना व उनको बढ़ाना यहीं तक सीमित नहीं है, हिन्दी भाषा में अनेक भाषाओं का समूह है। उनका जतन करना भी आवश्यक है। क्योंकि भूमण्डलीकरण का पहला शिकार स्थानिक बोलियाँ हो रही हैं। तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें समय की मांग के अनुकूल भाषा की नित्य व निरन्तर समरसता बनाए रखनी होगी। चौथी महत्वपूर्ण बात यह है कि इन बोली भाषाओं में विविध प्रकार के सक्रिय साहित्य का निर्माण करने की प्रेरणा देनी होगी। कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, समाजशास्त्र, इतिहास, विज्ञान के साथ सर्वसामान्य व्यक्ति एवं जनता को आकर्षित करने वाले साहित्य को अपनी भाषा में निर्माण करना होगा। हमें यह बात अवश्य ध्यान रखनी चाहिए कि हमारी भाषा ही साहित्य, संस्कृति एवं वैभवशाली परम्परा की महान वाहक है। इन सबके बीच रचनाकार की सामाजिक प्रतिबद्धता ही उनकी कृतियों को भाषाई आधार पर मूल्यवान बनाती है।

एक अच्छे शोधकर्ता को सबसे पहले अपने आस-पास एवं वातावरण में हो रहे परिवर्तन को देखना चाहिए, फिर विचार करना चाहिए कि प्रस्तुत समस्या जनसामान्य के लिये कितनी उपयोगी और हानिकारक हो सकती है; व्यापकता एवं उपयोग की दृष्टि से। तभी उसे कलम उठानी चाहिए क्योंकि समस्या पैदा करना एक शोधकर्ता/सृजनशील व्यक्ति का काम नहीं बल्कि समस्या से रूबरू कराना और उसका कैसे समाधान किया जाये जो सम्पूर्ण मानवता के लिये उपयोगी हो। यह सब विषय उसके लेखन में/शोध में उजागर होने चाहिये, तभी उस लेखन की उपादेयता एवं उस लेखक को समाज का पथ प्रदर्शक कहा जायेगा। विरोधाभाषों की वर्तमान दुनिया में सृजनकर्ताओं/शोधकर्ताओं को व्यावहारिक स्तर पर आज जमीनी सवालात से जूझने एवं आम आदमी के हक की बात कहने के लिये एक समग्र और व्यापक नजरिये की आवश्यकता हो गयी है। हालाँकि यह एक मुश्किल ही नहीं वरन् चुनौती भरा तथा असम्भव कार्य है लेकिन इन दुर्गम कार्यों से विरक्ति होकर हम यथार्थ, मौलिक तथा कालजयी सृजन नहीं दे सकते हैं। कृतिका का यह 11-12 संयुक्तांक इन्हीं विचारणाओं और विमर्श की सार्थकता के आयाम को लेकर केन्द्रित है। इस उद्देश्य में हम कहाँ तक सफल हुये हैं यह आपकी प्रतिक्रिया पर निर्भर करेगा। पुनः एक बार हम आपके विचारों/मशविरों के कायल हैं।

कृतिका के क्रियान्वयन एवं मूर्तीकरण की प्रक्रिया इसके साथ ही रचनाओं के चयन में सम्पादक मण्डल के सदस्यों के बीच गुणवत्ता, मौलिकता एवं संख्यात्मकता को लेकर एक लम्बा विमर्श चलता है। देश एवं विदेश के रचनाकारों की रचनाएँ प्राप्त करने में काफी समय लग जाता है। इसके बाद अपने सहयोगियों की लगभग हर अंक में रचनाएँ प्रकाशित करने का आग्रह ऐसे कुछ कार्य हैं जिसको लेकर सम्पादक मण्डल के लिये निर्णय के कठिन दौर से गुजरना होता है। gekj ikl yxHkx ,d gtkj l vf/kd (कई अंकों तक की पर्याप्त सामग्री है) शोध पत्र उपलब्ध हैं। परन्तु सर्वसम्मत से विषय विशेषज्ञों (भारतीय एवं अप्रवासी मित्रों) के सर्वमान्य स्वीकृति द्वारा ही इन शोधपत्रों/आलेखों को गुणवत्ता की दृष्टि से इस अंक में स्थान दिया जा रहा है। जिन अध्येताओं, युवा शोधार्थियों एवं रचनाकारों की रचनाएँ इस अंक में नहीं आ पायी हैं। उन्हें हमारे नये कार्यालय से सम्पर्क कर सूचना ले लेनी चाहिए। हमसे ई-मेल एवं दूरभाष पर भी सम्पर्क किया जा सकता है। भारत में रहने वाले अपने रचनाकारों एवं पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे हमारे क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल के सदस्यों से सम्पर्क कर रचनात्मक सहयोग एवं सदस्यता ग्रहण कर पत्रिका की प्रति उनके द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। विदेश में रहने वाले अप्रवासी रचनाकार एवं पाठक कृतिका सम्पादक मण्डल के अप्रवासी मित्रों से रचनात्मक सहयोग तथा प्रति (कृतिका) प्राप्त कर सकते हैं। पत्रिका प्राप्त करने के लिये कृतिका के नए प्रधान कार्यालय से भी सम्पर्क स्थापित कर इसकी प्रति सुरक्षित करवा सकते हैं। यह अंक कृतिका का संयुक्तांक के रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत है। njh d fy , ,d ckj fQj ge viu Nfrdk ifjokj d l nL;k ,o ikBdk l {kek pkgr: gA

विषय-विशेषज्ञों तथा गोपनीय समिति द्वारा निर्धारित 'कृतिका' की अपनी कुछ सीमाएँ हैं और इन्हीं सीमाओं को दृष्टि में रखते हुये अनेक आलेख/शोध-पत्र तथा पुस्तक समीक्षाएँ हम चाहते हुये भी कभी-कभी प्रकाशित नहीं कर पाते हैं। (विशेषकर कविता, कहानी, गजल एवं लघु कथाएँ तो बिल्कुल ही नहीं) और न ही अगले अंक में प्रकाशन की सूचना हम दे पाते हैं। इसके लिए हमारी कुछ तकनीकी सम्बन्धित समस्याएँ हैं। हमारी इस व्यवस्था से यदि आप असन्तुष्ट हैं तो इसके लिये कृतिका परिवार क्षमा प्रार्थी है।

जैसा कि कृतिका के नियमों के अनुरूप वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर विषय-विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक निकालना सुनिश्चित रहता है। भूमण्डलीकरण के इस युग में मानव की प्रगति के अवसरों के साथ-साथ उसकी आकांक्षाएँ भी बढ़ी हैं। यह बात व्यक्ति और समाज दोनों के लिये सच है। आज हम एक नवजागरण एवं उत्तर आधुनिकता के द्वार पर खड़े हैं जहाँ पर प्रत्येक कदम पर प्रतिस्पर्धा एवं चुनौती का वातावरण विद्यमान है। राजनीति के संक्रमण काल एवं बाजारवादी इस परिवेश में हम अपने को कितना असहाय एवं लाचार पाते हैं और अधिक से अधिक धोखा देकर एवं मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति के चक्कर में हम अपने मन-मस्तिष्क को मारते रहते हैं। अपने व्यक्तिगत फायदे के अलावा हम कुछ सोचने-समझने की शक्ति खोते जा रहे हैं और Hkkjr dī Hkfo"; dī fy, vke vkneh dh fPkUrK यहाँ नदारत सी दिख रही है। इन्हीं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये अगली कड़ी के रूप में कृतिका का Lkek tokn ij dī fUnr vīd Lkek toknh foe'k&fo'k"kkd&2013&2014] Hkkjr eī Lkek tokn % n'kk ,o fn'kk %Hkkjr dī Hkfo"; dī fy, vke vkneh dh fPkUrK प्रकाशित करने की योजना है। इस विशेषांक को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के मानकों के अनुसार यह राष्ट्रीय स्तर पर दिल्ली के प्रकाशकों के द्वारा पुस्तकों की एक शृंखला के रूप में इसे प्रकाशित करने की योजना है। इस विषय पर विस्तृत सूचना अन्त के कवर पृष्ठ पर अंकित है। कृपया प्रमुख बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये अपने गम्भीर अध्ययन से सम्बन्धित शोधपरक एवं मौलिक रचना सामग्री भेजकर रचनात्मक सहयोग प्रदान करने की कृपा करें।

एक लेखक, रचनाकार एवं सम्पादक के लिए अपने शुभचिंतकों, प्रशंसकों एवं पाठकों की प्रतिक्रिया ही सब कुछ होती है। इस बात को हम गर्व एवं फक्र के साथ कह-सकते हैं कि हमें इस सम्बन्ध में अपने बुद्धिजीवी, मनीषी पाठकों से बहुत कुछ समय-समय पर मिल रहा है। इस सन्दर्भ में सम्पादित लेखों तथा सम्पादकीय में रचनात्मक और सकारात्मक बातें चिह्नित कर हमें पत्र, फोन और ई-मेल से अवगत कराते-रहते हैं। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये पाठकगण न केवल हमारी प्रशंसा और तारीफ के पुल बांधते रहते हैं बल्कि वे हमारी गलतियों को भी बताते एवं एहसास कराते रहते हैं। ये सब प्रतिक्रियाएँ हमारी पूरी टीम का मार्गदर्शन कर हमें प्रोत्साहित कर नयी ताजगी एवं ऊर्जा का संचार कर और आगे कुछ नया करने को प्रेरित तथा उत्साहित कर हिम्मत बढ़ाती हैं vkj gkf'k, ij dj fn, x; l enk; dī fy, u;k l?k"kk dju dk ,d vkReh; 'kfDr Hkh inku dī rh g। इस परिप्रेक्ष्य में मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि जब कोई व्यक्ति स्वार्थ से परे रहकर जनहित के पक्ष में कार्य करने का संकल्प लेता है तो अदृश्य शक्तियाँ भी उसकी मदद करती हैं।

— सम्पादक मण्डल

◆ fo'k"k l puk & Ñfrdk dī bl l; Drkd dk iLrd dī :lk eī vkjk/kuk cnl] i:dk'kd ,o forjd] 124@152&lh&cykd] xkfonuxj] dku ij&208006] Jh vjfoUn: 'kDyk&ek0&09935007102 l lEidī dj iklr dh tk l drh gA

शासन और अर्थव्यवस्था—घोटालों के सन्दर्भ में

डॉ० ज्योति खरे

असिस्टेंट प्रोफेसर—वाणिज्य विभाग

राजकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर—चमोली (उत्तराखण्ड)

लगभग 65 वर्ष से अधिक आजादी के बीत जाने के पाश्चात भारतीय अभी भी पूर्णतया आजाद नहीं हुए हैं। पहले लड़ाई अंग्रेजों से छुटकारा पाने की थी अब मंहगाई, भ्रष्टाचार, आतंकवाद जैसे विशाल राक्षसों से छुटकारा पाने की है। पहले भी आमजन अंग्रेजों व बादशाही हुकूमत के बीच अपने आप को फँसा पाते थे और अब पूँजीपतियों, अफसरशाहों व राजनीतिज्ञों के बीच अपने आपको फँसा पाते हैं। गरीब अब भी लाचार और बेबस है। जस्टिस वर्मा समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि देश में सुशासन की कमी है। वैश्वीकरण के दौर में अमीरी—गरीबी की खाई निरन्तर बढ़ती जा रही है। हमारे देश की व्यवस्था सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्था पर टिकी है किसी भी देश की समृद्धि उस देश की अर्थव्यवस्था से ही ज्ञात की जाती है। और हमारे देश की अर्थव्यवस्था की डोर न्यायपालिका, देश के पूँजीपतियों, राजनीतिज्ञों, अफसरशाहों के हाथ में है। जो अपने आपको सदा से ही भगवान मानते हैं। लोकतांत्रिक देश होने के बावजूद आज भी जनता उनकी कठपुतली है।

उदारीकरण और वैश्वीकरण के दौर में पूरी दुनिया में जो विकास हुआ उससे असमानता बढ़ी और भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। 1970 व 80 के दशक में आर्थिक वृद्धि, कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्रों के निवेश में बढ़ोत्तरी के फलस्वरूप गरीबी में तेजी से गिरावट आई, किन्तु आर्थिक सुधारों के बाद भी असमानता और सम्पत्ति के संग्रह में भारी वृद्धि हुई है।

टीवी चैनल्स, समाचार पत्रों पर घोटालों, अपहरणों भ्रष्टाचारों आदि के समाचार रोज हम देखते व सुनते हैं। इन सभी घोटालों, भ्रष्टाचारों, रिश्वतखोरी आदि सभी का केन्द्र बिन्दु है अर्थ यानि धन। और देश का विकासशील/विकसित होना भी इसी धन रूपी अर्थ पर निर्भर है। भ्रष्टाचार के सर्वेक्षण में बर्लिन स्थित अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ट्रांसपेरेंसी इन्टरनेशनल ने 01 दिसम्बर 2011 को अपना सर्वेक्षण—2011 जारी किया। इस सर्वे में भी भारत को जहाँ 2005 में 97वें स्थान पर रखा था, वहीं 01 दिसम्बर 2011 के सर्वे में भारत को 95वें स्थान पर रखा है। एंटी करप्शन ग्रुप द्वारा जारी करप्शन परसेप्शन इंडेक्स में भी भारत ने पिछले सालों के मुकाबले गिरावट दर्ज की है। भारत के संदर्भ में ट्रांसपेरेंसी इन्टरनेशनल ने मुख्यतः जिन 183 देशों में फैले भ्रष्टाचार को 0 से 10 के स्केल पर आँका है। इसमें 0 रैंक पाने वाले को सबसे भ्रष्ट एवं 10 रैंक को भ्रष्टमुक्त देश घोषित किया गया है। जहाँ पिछले साल भारत को 10 में से 3 अंक मिले थे, वहीं इस बार 3.1 अंक मिले हैं।¹ जो निश्चित रूप से भारत में निहित भ्रष्टाचार को दर्शाता है। हाँगकाँग में स्थित पॉलिटिकल एण्ड इकोनोमिक रिस्क कंसल्टेन्सी लिमिटेड द्वारा किये गये 16 देशों के सर्वे में भारत चौथे सबसे भ्रष्ट देश के रूप में गिना गया था। रिश्वत दाता सूचकांक 2011 के सर्वे में भारत का स्थान 19 है।

तालिका-1²

रिश्त दाता सूचकांक 2011 एशियाई देशों की स्थिति

रैंक	देश का नाम	अंक (स्केल)
14	जापान	8.0
30	साइरस	6.3
38	भूटान	5.7
46	बेहरान	5.1
60	मलेशिया	4.3
75	चीन	3.6
86	श्रीलंका	3.3
95	भारत	3.1
100	इण्डोनेशिया	3.0
120	ईरान	2.5
120	बांग्लादेश	2.7
134	पाकिस्तान	2.5
154	नेपाल	2.2
175	इराक	1.8
180	अफगानिस्तान	1.5

स्रोत :- क्रॉनिकल, सिविल सर्विसेज, जनवरी 2012

भारतीय अर्थव्यवस्था के तीन प्रमुख अंग हैं – विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका। तीनों प्रकार की व्यवस्थाओं के अपने अलग-अलग ही रूप दिखते हैं।³ कुशलतम सामंजस्य से ही देश की उन्नति सुनिश्चित है यह तीनों ही एक दूसरे पर निर्भर हैं। और एक दूसरे से पूर्णतया प्रभावित होते हैं। महंगाई, भ्रष्टाचार जैसे दबावों ने भारत व भारतीयों के लिये चुनौती खड़ी कर दी है। एक प्रसिद्ध विचारक ने भी अपने लेख में लिखा है कि भ्रष्टाचार बीमारी नहीं लक्षण है।⁴ अर्थात् भ्रष्टाचार तो शुरुआत है परन्तु भारतीय अर्थव्यवस्था में इस कदर पिछले डेढ़ दशक में महंगाई और भ्रष्टाचार ने अपने पोंव पसारे कि इसने घोटालों का रूप ले लिया। घोटाला या काँड-इस तरह के शब्द तभी प्रयोग किये जाते हैं जब भ्रष्टाचार गहनता/चरम सीमा पर पहुँच जाये तथा एक ही नहीं बल्कि समूह (कई व्यक्ति) दोषी हों। या उस भ्रष्टाचार को अंजाम देने में लिप्त हों। तालिका द्वारा स्पष्ट हो जायेगा कि भारतीय अर्थ व्यवस्था जिनके हाथों में है उनके द्वारा पिछले कुछ दशक में किस हद तक धन का दुरुपयोग किया गया है जिससे वह अमीर और गरीब की खाई को और बढ़ा रहा है और देश की अर्थ व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है।

तालिका-2⁵
भारत के दस मुख्य घोटाले

क्र.सं.	नाम	लागत	मुख्य आरोपी (चेहरे)
1	ब्लैक मनी (कालाधन घोटाला)	7280000 करोड़	हसन अली खान
2	CWG घोटाला	70000 करोड़	सुरेश कलमाड़ी
3	2 जी स्पेक्ट्रम घोटाला	176000 करोड़	ए राजा एवं एम.के कनिमोझी
4	स्कॉरपीन पनडुब्बी घोटाला	18978 करोड़	रविशंकरन
5	स्टैम्प पेपर घोटाला	20,000 करोड़	अब्दुल करीम तेलगी
6	बोफोर्स घोटाला	400 मिलियन	ओटावियो क्वात्रोंची
7	खान घोटाला	300000 करोड़	नवीनपटनायक सरकार
8	चारा घोटाला	950 करोड़	लालू प्रसाद यादव
9	हवाला घोटाला	US\$ 18 बिलियन	एल. के. आडवाड़ी
10	सत्यम घोटाला	14000 करोड़	वी राममिलिंगां राजू

तालिका 3⁶
वर्ष 2012 में हुये घोटाले

क्र.सं.	नाम	लागत	मुख्य आरोपी (चेहरे)
1	कर चोरी घोटाला	1000 करोड़	राष्ट्रमण्डल खेलों के तहत काम करने वाले सरकारी विभाग एवं निजी एजेंसियाँ
2	लैकफैड घोटाला	300 करोड़	बाबूसिंह कुशवाहा, सरकार
3	कोलब्लाक आबंटन	10.7 लाख करोड़	केन्द्र सरकार
4	टाटा घोटाला	—	ले. जनरल तेजन्दर सिंह
5	डायल हवाई अड्डा घोटाला	—	दिल्ली सरकार
6	एन0 आर0 एच0 एम0 घोटाला	10000 करोड़	यूपी सरकार एवं प्रशासनिक अधिकारी

स्रोत— हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, 30 दिसम्बर 2012।

इस भ्रष्टाचार एवं घोटालों का असर हमारे देश की अर्थव्यवस्था पर भयानक रूप से पड़ा है। जबसे घोटालों का सिलसिला तेजी से चला अर्थव्यवस्था चरमरा गई। हालांकि आज की मंदी अर्थव्यवस्था के कई कारण हैं किन्तु उन सभी कारणों में प्रमुख घोटाले ही हैं। दूसरे देश तो चाहे वह यूरो संकट या ऋण संकट से जूझ रहे हों लेकिन हमारे देश घोटालों की वजह से बहुत हद तक गरीबी, मंहगाई, मुद्रास्फीति व बेरोजगारी आदि, जैसे दानवों से लड़ रहा है। क्योंकि घोटालों के कारण करोड़ों, खरबों रुपये ब्लॉक (Block)/बंद हुए पड़े हैं। किसी भी अर्थव्यवस्था को सुचारु रूप से व विकसित बनाने के लिये उसका

कुशलतम उपयोग आवश्यक है। स्वयं पूर्व वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा व बाबा रामदेव जी ने भी कहा कि यदि विदेशों में जमा कालाधन हमारे देश में वापस आ जाये तो देश का 3/4 कर्ज चुकाया जा सकता है, मनरेगा जैसी 60 से अधिक योजनाएँ चलाकर बेरोजगारी व गरीबी दूर की जा सकती है, हर महत्वपूर्ण शहर में एम्स जैसे अस्पताल खोले जा सकते हैं।

उनके कथन से स्पष्ट हो जाता है कि सिर्फ एक घोटाले के धन से इस प्रकार राहत मिल सकती है तो यदि उपरोक्त तालिका में वर्णित सभी घोटालों के धन को काम में लाया जाये तो हमारा देश मंदी की स्थिति को देख नहीं सकेगा, साथ ही देश का विकास भी चरम सीमा पर होगा और अपने प्रतियोगी देशों को हम काफी पछाड़ सकते हैं। यहाँ हम देश की अर्थव्यवस्था पर घोटालों के प्रतिकूल प्रभाव पर नजर डालते हैं।

घोटालों का अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव

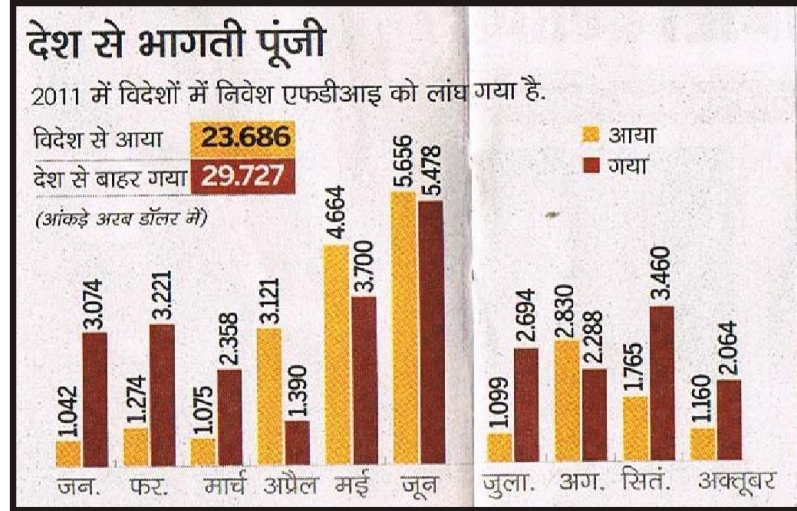
1) कमजोर रुपया^१ – अन्य आर्थिक कारणों के अतिरिक्त, घोटालों की वजह से भी देश की जनता का विश्वास सरकार से उठ गया। विदेशी संस्थागत निवेशक (fiis) भारत से पैसा निकाल कर अमेरिकी बॉण्ड और कीमती धातुओं (सोना, चाँदी) में रखने में जुट गये। जिस कारण रुपया की माँग कम हुई और भारतीय मुद्रा में कमजोरी आई। बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज सूचकांक सेंसेक्स में आई गिरावट सीधे तौर पर रुपये की कमजोरी के रूप में देखने को मिली। वर्ष 2011 में रुपये में गिरावट को तालिका द्वारा देखा जा सकता है।

तालिका 4^१



स्रोत— इण्डिया टुडे, साप्ताहिक पत्रिका, 4 जनवरी 2012

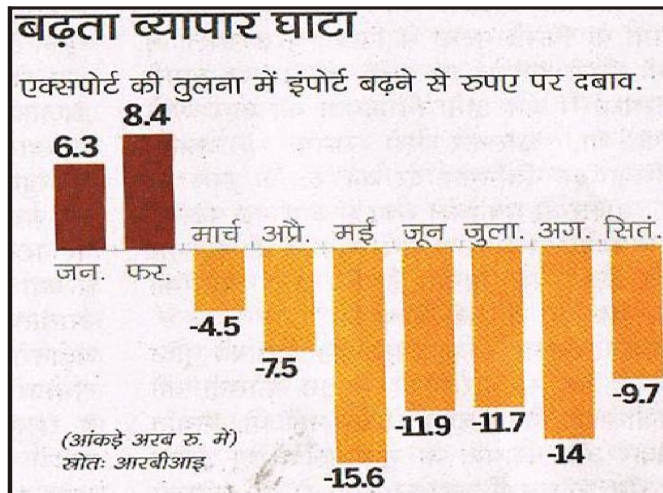
2) देश से भागती पूँजी – लगातार सरकार चिंतित है कि देश में विदेशी पूँजी को किस प्रकार बढ़ाया जाये क्योंकि देश में जितनी अधिक पूँजी होगी (संतुलित देशी व विदेशी पूँजी) उतना ही देश अधिक विकास कार्यों में विनियोग करेगा और देश विकसित होगा किन्तु पिछले दशकों में देखा गया है कि लगातार देश की पूँजी कम होती गई है। कालाधन घोटाला इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

तालिका 5¹⁰

स्रोत— इण्डिया टुडे, साप्ताहिक पत्रिका, 4 जनवरी 2012

3) बढ़ता राजकोषीय घाटा — आई आई एम — अहमदाबाद के फाइनेंस के प्रोफेसर जयंत वर्मा बताते हैं कि रुपये में 50 के नीचे का स्तर प्राथमिक रूप में मंहगाई और राजकोषीय घाटे पर असर डालता है।

4) बढ़ता व्यापार घाटा — जब विदेशी खरीददार मुद्रा के इतनी ज्यादा गिरावट देखते हैं तो लाभ का साझा करने की खातिर वे भारतीय निर्यातकों के साथ मोलभाव करने लगते हैं ऐसे में भारतीय निर्यातकों को न चाहते हुए भी सहमत होना पड़ता है, विदेशी आयातकों के पास कहीं और से माल खरीदने का विकल्प भी बना रहता है। जिससे विदेशी मुद्रा के मुकाबले देश की मुद्रा भारी मात्रा में विदेशों में चली जाती है। इसका कारण सरकारी नीतियां हैं जिसका सीधा असर देश के आयात निर्यात पर पड़ता है।

तालिका 6¹¹

स्रोत— इण्डिया टुडे, साप्ताहिक पत्रिका, 4 जनवरी 2012

5) बढ़ती बेरोजगारी – सरकार बेरोजगारी को हटाने के लिये रोज कुछ योजनायें बनाती है। कभी बेरोजगारी भत्ता देने की बात कहती है तो कभी वोकेशनल पाठ्यक्रम, ट्रेनिंग की बात करती है। किन्तु घोटालों से स्पष्ट है ना ही भत्ते बेरोजगारों तक पहुँचते हैं और ना योजनायें ही सुचारु रूप से संचालित हो पाती हैं। सरकार की नीतियों से सिर्फ शिक्षा का बाजारी करण हो रहा है जिस कारण योग्य एवं कुशल युवा तैयार ही नहीं हो पा रहे हैं। फरवरी 2012 के नैसकौम चेयरमैन किरन कार्किंक ने मीडिया से बताया की सिर्फ देश के 25 प्रतिशत तकनीकी स्नातक युवक ही सीधे रोजगार पाने योग्य हैं।¹² अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की ताजा रिपोर्ट ग्लोबल एम्प्लायमेंट ट्रेडस 2012 प्रिवेटिका ए.डीपर जॉब्स क्राइसिस के अनुसार सन् 2012 ई0 की शुरुआत के साथ ही दुनिया के सामने बेरोजगारी की समस्या विकराल रूप में आ गई है। हमारे यहाँ (भारत में) सफल घरेलू उत्पादकता में बढ़ोत्तरी अधिक उत्पादन का परिणाम रहा है न कि रोजगार के अवसर में वृद्धि के कारण।¹³ अर्थात् बेरोजगारी निरन्तर बढ़ रही है।

6) औद्योगिक उत्पादन में कमी – जब हमारे देश को योग्य व कुशल कारगर युवा ही प्राप्त नहीं होंगे तो उद्योग पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ेगा ही। एक औद्योगिक उत्पादन में निरन्तर कमी के दो प्रमुख कारण हैं। प्रथम मंहगाई, द्वितीय योग्य एवं कुशल श्रमिकों की कमी। और इन दोनों के लिये ही हमारे देश की सरकार ही जिम्मेदार है जो नीति व योजनायें बनाती है और उनका क्रियान्वन अपने फायदे को देखते हुये करती है न कि देश के विकास को ध्यान में रखती है। घोटालों के विस्तार से अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भ्रष्टाचार और घोटालो के आरोप में घिरी सरकार ने लम्बे समय तक कोई फैसले नहीं लिये जिस कारण मैन्यूफैक्चरिंग नीति लागू करने में 10 महीने की देरी का विनिर्माण क्षेत्र को नुकसान उठाना पड़ा।

7) बढ़ती मंहगाई – सैंडर्ड एंड पुअर्स का मानना है कि यूरोप मंदी की गिरावट में फंस चुका है, भारत की स्थिति बदतर हुई है, इसके लिये केवल वैश्विक परिस्थिति नहीं बल्कि घरेलू कारण और सरकार का ढीला रवैया भी जिम्मेदार है।¹⁴ मंहगाई स्वाभाविक रूप से विकास दर को प्रभावित करती है किन्तु सरकार ने मंहगाई रोकने की कोई प्रभावी कोशिश नहीं की।

8) घटती आर्थिक वृद्धि दर – आर.बी.आई. ने 2012-13 वित्तवर्ष में जी.डी.पी. 7.3 प्रतिशत से घटाकर 6.5 प्रतिशत कर दी थी वर्ष के अन्त में यह 5.5 ही रह गई है। सी.एस.ओ. (केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन) द्वारा जारी किये गये अनुमान के मुताबिक वर्ष 2012-13 के दौरान जी.डी.पी. (सकल घरेलू उत्पाद) की वृद्धि दर 5 प्रतिशत रहने का अनुमान है जबकि बीते वित्त वर्ष में यह 6.2 प्रतिशत रही थी जो एक दशक का सबसे निचला स्तर है। सी.एस.ओ. द्वारा व्यक्त किया गया यह अनुमान सरकार और राज्य सरकार के अनुमान से काफी कम है। आई.एम.एफ. की सहायक लारा पपी ने कहा कि आठ प्रतिशत की वृद्धि के दौर में वापस जाने के लिये भारत को कई कदम उठाने होंगे और निवेश बहुत तेजी से बढ़ाना होगा किन्तु यह इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या सुधारों के सभी मोर्चों पर सरकार ने जिसके लिए प्रतिबद्धता दिखाई है, वह दमखम दिखा सकती है।¹⁵ क्योंकि माना जा रहा है कि विनिर्माण, कृषि एवं सेवा क्षेत्र के खराब प्रदर्शन के कारण आर्थिक वृद्धि दर घटी है। इसके लिये बहुत हद तक सरकार का समय पर निर्णय लेने में तथा नीति को लागू करने में ढुलमुल रवैया ही जिम्मेदार है। पिछले दशक में आर्थिक वृद्धि दर स्थिति तालिका द्वारा स्पष्ट हो जाती है।

तालिका 7¹⁶

घटती आर्थिक वृद्धि दर

क्र.सं.	वर्ष	दर प्रतिशत
1	2003	8.3
2	2004	6.2
3	2005	8.4
4	2006	9.2
5	2007	9.0
6	2008	7.4
7	2009	7.4
8	2010	10.4
9	2011	7.7
10	2012	6.0

स्रोत— इण्डिया टुडे, साप्ताहिक पत्रिका, 9 जनवरी 2012

9) बढ़ता कर्ज संकट — अन्तर्राष्ट्रीय ट्रांसपेरेसी रिपोर्ट के अनुसार एक अहम बात यह भी सामने आई कि जहाँ पर सरकारें और सरकारी प्रतिष्ठान रिश्वतखोरी और कर की चोरी को रोकने में असफल रहते हैं, वहाँ पर कर्ज का संकट पैदा होने का डर रहता है।

आवश्यकता एवं सुझाव

1) मूल्यों को जागरूक करना¹⁷ — सिविल सोसायटी वाले दावा करते हैं कि एक लोकपाल देश का पूरा भ्रष्टाचार मिटा देगा पर वह भूल जाते हैं कि देश में नेताओं और अफसरों के अलावा उद्योग पत्तियों, व्यापारियों, ठेकेदारों, खान मालिकों आदि की एक बहुत बड़ी जमात है जो भ्रष्टाचार का भरपूर फायदा उठाती है और उनका संरक्षण भी करती है। सच तो यह है कि भारतीय अब पैसे की दौड़ में मूल्यों की बात नहीं करते। उन्हें भ्रष्टाचार से कोई तकलीफ नहीं। लोग भ्रष्टाचार की आलोचना में तो खूब आगे रहते हैं पर सदाचार को स्थापित करने के लिये अपनी सुविधाओं का त्याग करने के लिये सामने नहीं आते। इस मानसिकताओं को समाप्त कर जनता को अपने जीवन से भ्रष्टाचार दूर करने के लिये प्रेरित किया जाए ताकि हुक्म रान भी सुधरें और जनता का भी सुधार हो और तभी देश का विकास हो सकेगा।¹⁸

2) न्यायपालिका की कार्यक्षमता में सुधार¹⁹ — जरूरत है भ्रष्टाचार के कारणों को गहराई से समझने की। सिर्फ राजनेताओं को कठघरे में खड़ा कर इस समस्या से निजात नहीं पाई जा सकती बल्कि न्यायपालिका की कार्यप्रणाली और कार्य क्षमता को भी देखना होगा। क्योंकि राजनेताओं को तो चुनाव लड़ने की और अगले पांच साल राजनीति में जिंदा रहने की मशक्कत करनी पड़ती है, किन्तु न्यायपालिका के सदस्यों को मान, सम्मान, वेतन, सुरक्षा और मनोरंजन सबकी बेहतर सुविधायें मिली हुई हैं। न्यायपालिका से जुड़े सदस्यों के सामने किसी प्रकार की असुरक्षा नहीं रहती। वे इस सेवा में सबसे सुरक्षित हैं, फिर ये क्यों भ्रष्टाचार करते हैं ? ये सोचने का विषय है। अगर ये लोग सहयोग न करें तो राजनेता एक पैसे का भ्रष्टाचार नहीं कर सकते, पर इनका लालच और हवस नेताओं को भय मुक्त कर

देता है। अतः यथा संभव इस बुराई को दूर करने का संकल्प लेना होगा।

3) कार्यप्रणाली में पारदर्शिता लाना – सरकार ने देश की अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिये तथा इसके प्रमुख दोषी भ्रष्टाचार को मिटाने के लिये कई विधेयक तथा नियम तो बना दिये जैसे आर.टी.आई, आर.टी.एस., सिटीजन चार्टर, व्हिसिल ब्लोअर आदि किन्तु अभी भी इसमें पारदर्शिता लाने की आवश्यकता है ताकि नौकरशाह की कार्य प्रणाली में सुधार हो और आम जनता अपने अधिकारों को जान सके तथा उनका प्रयोग करें ताकि देश का विकास किया जा सके।

4) फास्ट ट्रैक कोर्ट की स्थापना²⁰ – जिस तरह सी0बी0आई0 मामला हाथ में लेने से पहले प्रारम्भिक जाँच करती है इससे मामले की आगे की जाँच के ठोस आधार निकालने के बाद ही आगे बढ़ा जाता है वैसी ही व्यवस्था भ्रष्टाचार के मामलों को निपटाने में भी की जा सकती है। देश में ऐसे मामलों पर फास्ट ट्रैक कोर्ट बनाने चाहिये ताकि घोटालों पर अब तक जो जाँच जारी है उसे जल्दी ही पूरी कर आरोपी को दण्ड दिया जा सके।

5) प्रशासन की जवाबदेही तय करना – गरीबों के लिये इस वक्त देश में जितनी बड़ी योजनायें चलाई जा रही हैं और जिस तरह पैसा खर्च किया जा रहा है उतना शायद ही किसी और देश में कभी हुआ हो और साथ ही खर्च के मुकाबले जितना कम फायदा भारत में हुआ, उतना शायद ही कहीं हुआ है। हमारे दश में न अनाज की कमी है, न साधनों की फिर किस बात की कमी है यह राजनेताओं और प्रशासकों का अपने आपसे पूछना चाहिए।²¹ अर्थात् योजनाओं के क्रियान्वयन के सन्दर्भ में जवाबदेही निश्चित होनी चाहिये।

6) संगठित क्षेत्रों को सुधारना – भारत में चुनौती, रोजगार में वृद्धि के साथ गैरसंगठित क्षेत्र की बढ़ोत्तरी हुई है, जहाँ रोजगार नियमित नहीं हैं, कार्य के घंटे निर्धारित नहीं हैं, छुट्टी की, भविष्य निधि की व्यवस्था नहीं है। अतः सरकार को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। जिससे रोजगारों को सुरक्षा प्रदान हो सके और कार्यकुशलता में वृद्धि हो सके।

7) एडवोकेसी एण्ड लीगल एडवाइजर सेन्टर – यह संस्था आम लोगों की भागीदारी से लोगों को भ्रष्टाचार के खिलाफ जागरूक बनाना, अधिकारों के प्रति जागरूक करना, निश्चित अवधि में प्राप्त आकड़े की जाँच करना आदि कार्य करती है इस संस्था को और अधिकार दिये जायें जिससे वह मजबूती से अपनी भूमिका निभा सके।

8) शिक्षा प्रणाली का पुनः अभिविन्यास – शिक्षा प्रणाली का पुनः अभिविन्यास करना होगा ताकि योग्य एवं कुशल श्रमिक बल तैयार किये जा सकें, इसके लिये आवश्यक है कि सरकार संस्थानों को स्थापित करने से पहले पूर्ण मापदण्डों को, उनकी गुणवत्ता को अच्छी तरह से, विश्वास से परखे, तभी उन्हें अनुमति दे।

9) राजनीतिज्ञ पार्टी के आय व्यय का स्पष्टीकरण – अभी तक के अध्ययन से स्पष्ट हो गया है कि इन सभी घोटालों के लगभग 75 प्रतिशत के लिए देश के राज नेता ही जिम्मेदार हैं। जिस कारण योजनायें अपना असर नहीं दिखा पातीं और विकास दर दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। अतः आवश्यकता है कि प्रत्येक नेता के आय-व्यय उनका, लेखों का विवरण सम्पत्ति आदि का विवरण व स्पष्टीकरण प्रतिवर्ष होना चाहिए इसके लिये समय-समय पर पैनल गठित कर जाँच कराई जा सकती है और भ्रष्टाचार को कम करने में कदम उठाया जा सकता है।

10) नीतियों व कानूनों को समय सापेक्ष होना – कई योजनायें तो ऐसी हैं जो अंग्रेजों के समय से चली आ रही हैं, तब और अब की आर्थिक स्थिति में काफी परिवर्तन है। परन्तु सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों में कोई परिवर्तन नहीं जिस कारण जितना लाभ जनता को होना चाहिये, नहीं हो पा रहा। अतः नीतियों में आज के आर्थिक परिदृश्य को देखते हुए सुधार अति आवश्यक है।

शशि शेखर ने अपने लेख में कहा है कि राष्ट्रीय जनतांत्रिक गढ़बन्धन की सरकार ने सन् 1998 ई० में पी०सी० जैन के नेतृत्व वाली कमेटी की रिपोर्ट में पाया कि 1382 कानूनों को बदलने की जरूरत है। इनमें से सिर्फ 415 को ही अब तक परिवर्तित किया जा सका है। 17 अभी प्रक्रिया में हैं और नौ जाँच के दौर से गुजर रहे हैं यानि कि 50 प्रतिशत से भी अधिक कानूनों पर तो अभी काम ही शुरू ही नहीं हुआ है। कानून सिर्फ अपराध रोकने के लिये नहीं होते बल्कि उनमें देश और समाज का मनोभाव भी झलकता है।²²

11) निवेश को बढ़ाना – मंहगाई का बने रहना इस बात को दर्शाता है कि हमारी अर्थव्यवस्था में अनुत्पादक पैसा बहुत ज्यादा है। मंहगाई और मंदी की वजह से लोग बैंकों में या फिर निवेश योजनाओं में पैसा नहीं लगा रहे, सोने और जमीन-जायदाद में निवेश कर रहे हैं जिससे सोने का आयात-निर्यात संतुलन को गड़बड़ कर रहा है और जमीन-जायदाद में हो रहा निवेश इस क्षेत्र में व्यर्थ की ऊंची कीमतें बनाये हुए है। निवेश बढ़ाने के लिए सरकार को अपनी नीतियाँ और कामकाज बेहतर करना होगा। सरकारी तौर-तरीके निवेश की राह में सबसे बड़ी बाधा हैं।²³

निष्कर्ष : यदि घोटालों की सूची पर गौर करें तो स्पष्ट होता है कि केवल एक वर्ष में ही लगभग 6 घोटालों का खुलासा हुआ है। इस वर्ष की शुरुआत में ही एक और हेलीकाप्टर घूसकाण्ड²⁴ भी सामने आया जिसमें 360 करोड़ रुपये की घूसखोरी का खुलासा हुआ।

वरिष्ठ साहित्यकार गिरिराज किशोर ने अपने लेख में लिखा है— कि “भ्रष्टाचार फसल में लगने वाले उस कीड़े की तरह है जो फसल को भी खोखला कर देता है और जमीन को भी। जड़ों में बीमारी फैलती है जिसके पत्ते और दाने, दोनों शिकार हो जाते हैं। अच्छा किसान पत्तों और दानों की रखवाली पहले नहीं करता, वह जड़ों में लगे कीड़े को मारता है।”²⁵ और ये घोटाले भ्रष्टाचार रूपी कीड़े की देन हैं जो हमारे देश की विकास रूपी फसल को नष्ट कर रहे हैं। इससे निपटने के लिये दंडात्मक व संवेदनात्मक दोनों रूप से सोचना होगा। सन् 2009 ई० की मंदी के बाद जरूरी हो गया है कि सरकार अर्थव्यवस्था की बेहतरी के लिए सक्रिय हो जाये। भारत के सामने प्रशासनिक सुधार व सुशासन दो बड़ी चुनौतियाँ हैं। अब अर्थव्यवस्था लगभग इस मोड़ पर पहुँच गई है जहाँ पर सरकार, प्रशासन, जनमानस सभी को जागरूक होना होगा। सिर्फ राजनेताओं को कठघरे में खड़ा कर भ्रष्टाचार से नहीं निपटा जा सकता, साझे प्रयास की जरूरत है। चाणक्य ने कहा था कि शहद के गोदाम की रखवाली करने वालों के होठों पर शहद लगा होता है पर इसका मतलब यह नहीं है कि हम भ्रष्टाचार को बर्दाश्त करें।²⁶ जरूरत है भ्रष्टाचार के कारणों को गहराई से समझने की तथा साझे प्रयास से यथासम्भव इस बुराई को दूर करने का संकल्प लेना होगा। तभी शायद हम अपनी अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने में कामयाब हो पायेंगे। आरोप-प्रत्यारोपों के बजाय भ्रष्टाचार का प्रभावी हल सोचा जाये ताकि धनवान धन का भोग करें, पर सामाजिक सरोकारों के साथ।²⁷

अगर हम सर्वेक्षण में पिछले साल के आँकड़ों को देखें तो चार समस्याएँ साफ तौर पर नजर आती

है— घटती विकास दर, बढ़ती मंहगाई, वित्तीय घाटा और चालू खाते का घाटा। जीडीपी की विकास दर सबसे बड़ी चीज है जो एक साथ कई चीजों पर असर डालती है। अगर यह घटेगी, तो राजस्व घटेगा, जिसके बाद फिर वित्तीय घाटे का बढ़ना तय है। ये चीजें ऐसी हैं, जो हमारी रेटिंग को न सिर्फ बढ़ने से रोक देती हैं, बल्कि नीचे ले जाती हैं। इन समस्याओं से हम लोक-लुभावन नीतियों के जरिये नहीं निपट सकते। इनके समाधान का रास्ता समझदारी भरी आर्थिक नीति से ही निकलेगा।²⁸ अतः सरकार को अपना काम काज इस तरह से बेहतर बनाना होगा कि जो पैसा वो खर्च कर रही है उसका पूरा-पूरा उपयोग हो और उसकी बर्बादी रुके।

संदर्भ सूची

1. जनवरी 2012, क्रॉनिकल, सिविल सर्विसेज, मासिक पत्रिका।
2. पूर्वोक्त।
3. 30 जुलाई 2011, राष्ट्रीय सहारा, दैनिक समाचार पत्र।
4. 15 अगस्त 2011, अमर उजाला, दैनिक समाचार पत्र।
5. गूगल सर्च।
6. 30 दिसम्बर 2012, हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र।
7. 22 मई 2012, अमर उजाला, दैनिक समाचार पत्र।
8. 4 जनवरी 2012, इण्डिया टुडे, साप्ताहिक पत्रिका।
9. इण्डिया टुडे, साप्ताहिक पत्रिका, 4 जनवरी 2012।
10. पूर्वोक्त।
11. पूर्वोक्त।
12. इण्डिया टुडे, साप्ताहिक पत्रिका, 4 जनवरी 2012।
13. 26 मार्च 2012, अमर उजाला, दैनिक समाचार पत्र।
14. 2 दिसम्बर 2011, अमर उजाला, दैनिक समाचार पत्र।
15. 8 फरवरी 2013, हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र।
16. 9 जनवरी, इण्डिया टुडे, साप्ताहिक पत्रिका।
17. 17 दिसम्बर 2012, हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र।
18. 16 फरवरी 2013, अमर उजाला।
19. पूर्वोक्त।
20. 13 अक्टूबर 2012, हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र।
21. पूर्वोक्त।
22. 10 फरवरी 2013, हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र।
23. 28 फरवरी 2013, हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र।
24. 10 फरवरी 2013, हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र।
25. 17 दिसम्बर 2012, हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र।
26. 31 जुलाई 2012, अमर उजाला, दैनिक समाचार पत्र।
27. 10 जुलाई 2012, अमर उजाला।
28. 28 फरवरी 2013, हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र।



भारतीय संविधान में सूचना पाने का अधिकार : एक मूल्यांकन

डॉ० आदित्य प्रकाश सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष—राजनीति विज्ञान विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बेरीनाग, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)

सूचना से तात्पर्य है कि किसी तरह की सामग्री, जिसमें रिकार्ड दस्तावेज, मेमो, ई-मेल, विचार, सुझाव, प्रेस, विज्ञप्तियाँ, सर्कुलर आदेश लागू बुक, ठेके, रिपोर्ट पेपर, सैंपल मॉडल, इलेक्ट्रॉनिक डाटा और किसी भी निजी संस्था से सम्बन्धित सूचना जिस तक किसी कानून के जरिए किसी लोकाधिकारी की पहुँच हो, वास्तव में ज्ञान एवं सूचना एक-दूसरे से परस्पर जुड़े हैं, जिससे ज्ञान के ढाँचे का निर्माण होता है अतः जितनी अधिक सूचना हमारे पास होगी उतना ही अधिक ज्ञान हमारे पास होगा जो कि हमें अधिक शक्तिशाली बना देगा। लोगों की शासन में सहभागिता तभी अर्थपूर्ण एवं प्रभावी हो सकेगी जब जनजीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण मामलों में सरकार के दिन-प्रतिदिन के कार्य कलापों के बारे में सूचना प्राप्ति तक पहुँच की अनुमति हो।

सूचना को विकास का महत्वपूर्ण साधन माना गया है जितनी ही अधिक सूचना किसी समाज के पास होगी उतना ही वह समाज विकसित होगा, विकास तभी सम्भव है जब हम नए विचारों को अपनाएँ, लेकिन ये नए विचार एक स्वतंत्र वातावरण में ही पाए जा सकते हैं।

सच यह है कि संवैधानिक व्यवस्थाओं में सबसे उपेक्षित अधिकारों में सूचना का अधिकार रहा है, यद्यपि यह सबसे अधिक महत्व वाला मानवाधिकार है। विश्व में सर्वप्रथम स्वीडन जैसे देश ने इस अधिकार को अपने यहाँ जनमामलों में पारदर्शिता लाने के लिए कानून सन् 1776 ई० बनाया था, वर्ष 1946 में संयुक्त राष्ट्र ने अपने प्रथम अधिवेशन के दौरान सामान्य सभा में प्रस्ताव संख्या 59(1) में अपनाया जिसमें कहा गया “सूचना की स्वतंत्रता एक मानवाधिकार है तथा उन सभी स्वतंत्रताओं की कसौटी है जिनके प्रति संयुक्त राष्ट्र समर्पित है।”

इस प्रकार 54 सदस्यीय शब्द मण्डल ने सन् 1980 ई० बारबडोर में सम्पन्न हुई बैठक में कहा था, लोकतंत्रीय तथा नागरिकों की शासकीय सूचना पर समुचित पहुँच हो।”

अमेरिकी राज्यों का संगठन जिसमें अमेरिकी व्यवस्था में सूचना की स्वतंत्रता, जिसमें राज्य में निहित सूचना तक पहुँच भी सन्निहित है, एक गारन्टीयुक्त मानवाधिकार है। 43 सदस्यीय यूरोपीय परिषद इसका अपना एक प्रलेख है। मानवाधिकार पर यूरोपीय अभिसमय जो कि अपने अनुच्छेद 10 में अभिव्यक्ति तथा सूचना के अधिकार को मौलिक मानवाधिकार के रूप में मान्यता देता है दक्षिण अफ्रीका, न्यूजीलैण्ड, नेपाल, स्वीडन आदि जहाँ कि सूचना के अधिकार को उनके संवैधानिक ढाँचे में सम्मिलित किया गया है।

एक ओर जहाँ विकसित राष्ट्रों ने आर.टी.आई. को वास्तविक बनाने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं, वहीं अल्पतम विकसित तथा विकासशील राष्ट्र या तो इस अधिकार से बहुत दूर है अथवा कुछ मामलों में इसको वास्तविक बनाने की चेतना धीरे-धीरे उनके अन्दर आ रही है।

भारत में सामन्तवादी सामाजिक ढाँचे ने अपने हित के लिए सदैव संवैधानिक व्यवस्था का शोषण

किया है क्योंकि जो शिक्षित तथा खुशहाल वर्ग अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए वे कभी सामाजिक कमियों को दूर करने का प्रयास नहीं किए। साथ ही गरीब, अशिक्षित वर्ग के जीवनोत्थान हेतु कोई भी सुविधा देने की आवश्यकता नहीं समझे, सर्वोच्च न्यायालय ने अनु0 19(1) के तहत सूचना के अधिकार को अर्थात् जनता को जानना चाहिए के तहत इसका बिगुल सन् 1982 में फूँका। संविधान के अनुच्छेद में वर्णित भाषण तथा अभिव्यक्ति के स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का आवश्यक अंग है। भारत में सूचना के अधिकार की गारन्टी के लिए सर्वप्रथम संघर्ष राजस्थान के अशिक्षित किसानों द्वारा किया गया। परिणामस्वरूप काफी वर्षों की अनिश्चितता के बाद अन्ततः जुलाई 2000 प्रस्तावित किया गया लेकिन इसके पूर्व भी भारत में कुछ अधिनियम थे जो विशेष परिस्थितियों में सूचना प्राप्त करने की व्यवस्था था। जैसे—Hiker; साक्ष्य अधिनियम 1872, कारखाना अधिनियम 1948, जल प्रदूषण अधिनियम 1974, पर्यावरण ऐक्ट 1986 आदि जैसे कुछ उदाहरण हैं, सूचना के अधिकार को प्रवेश देने वाला तमिलनाडु भारतीय राज्यों में प्रथम राज्य था। तत्पश्चात् इसका अनुसरण करते हुए गोवा (1997) मध्यप्रदेश, राजस्थान, कर्नाटक (2000) एवं दिल्ली (2001) इन सभी कानूनों का उद्देश्य जवाबदेह तथा पारदर्शी सरकार का मार्ग प्रशस्त करना था जो भी हो सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 इन सबका स्थान ले लेता है और यह 2002 को भी निरस्त कर देता है, 15 जून, 2005 को राष्ट्रपति ने अपनी सहमति प्रदान करते हुए 12 अक्टूबर, 2005 को जम्मू कश्मीर को छोड़कर पूरे देश में लागू किया। आर.टी.आई. पर अभी तक बहुत ज्यादा पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं परन्तु इसकी प्रासंगिकता एवं उपयोगिता बहुत ज्यादा भारतीय संविधान में है। यह अधिकार एक साधारण अधिकार नहीं है। समाज के लोकतांत्रिक सरकार के ढाँचे को मजबूत आधारशिला मिले जिससे, “जनता का, जनता के लिए, जनता के” द्वारा की अवधारणा मजबूत होगी। संवैधानिक ढाँचे का स्वरूप वास्तविक, जवाबदेही व पारदर्शिता में बदलेगा, शासन व प्रशासन के भ्रष्टाचार में कमी आएगी, साथ में लोक जवाब देहिता बढ़ेगी। केन्द्र—राज्य व स्थानीय स्तर के सरकार में स्थायित्व व दृढ़ता मिलेगी। व्यक्ति व समाज विकासन्मुख होगा साथ ही स्वच्छ साफ—सुथरे समाज का निर्माण होगा।

जब से आर.टी.आई. देश में लागू हुआ तब से जनजवाबदेहिता की जिम्मेदारी अधिक बढ़ गयी है। आर.टी.आई. के लागू होने से कई प्रकार से समाज को फायदे मिले जैसे कि आज किसी भी सरकारी कार्यालय में व्यक्ति आवेदन पत्र देकर किसी प्रकार की सूचना प्राप्त कर सकता है जैसे कि सरकार व प्रशासन क्या कर रही है, क्या होने जा रहा है व क्या होगा आदि जैसे प्रश्न पूँछकर जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार से अनेक मामले सामने आयें जिससे सरकारी अभिलेख व प्रारूप का वास्तविक रूप सामने आये। यदि यह वास्तविक रूप से जमीनी स्तर तक यदि संचालित हो तो शोषित, गरीब, असहाय वर्ग शोषण होने से बचेंगे। महिलाएँ भी प्रेरित होंगी व उनमें जागरूकता आएगी। अपने अधिकारों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए, पिछड़े वर्गों के लिए और मजदूरों को विचौलियों से छुटकारा पाने के लिए पंचायत के निचले स्तर के लोग, महिलाएँ दलित एवं पिछड़े जनजातियों के सदस्य या फिर सामाजिक कार्यकर्ता या एन.जी.ओ. से अपने हित को प्रभावित कर पाएँगे।

आर.टी.आई. को प्रभावी बनाने के लिए जनसहभागिता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। सभी जनपदों व जमीनी हकीकत तक अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए जो आर.टी.आई. को क्रियान्वित करने की जिम्मेदारी व उत्तरदायित्व ले सके, प्रभावी बनाने के लिए आर.टी.आई. को और अधिक पारदर्शी बनाया

जाना चाहिए इसे क्रियान्वित करने वाले सभी अधिकारियों, संस्थानों की नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि इसके लक्ष्य को पाने के लिए वास्तविक व जमीनी रूप दें न कि यह सिर्फ फाइलों तक सीमित रह जाए।

संवैधानिक युग में आर.टी.आई. को मूल अधिकार के अन्तर्गत रखा गया है जिसमें जनता अपने जनप्रतिनिधि के कार्यों की समीक्षा करती है कि क्या हो रहा है, क्या होगा अब तक क्या हुआ आदि जैसे प्रश्न कर उत्तर प्राप्त कर सकती है। सरकार जिसमें कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका इन तीनों का एक अंग है। जो कार्यपालिका नीतियों का निर्माण करती है, जनता के वंचित आवश्यकताओं को पूरा करने की योजनाएँ एवं कार्यक्रम बनाती है।

कार्य को वैधानिकता प्रदान करने की विधायिका विधेयकों को तैयार करती है साथ ही अनुदान देना, कानून निर्माण करना, कार्यपालिका से प्रश्न पूछना आदि से सम्बन्धित कार्यों की समीक्षा करती है।

न्यायपालिका सरकार का तीसरा अंग है जो यह देखती है कि शासन व प्रशासन कार्य कर रहे हैं वह सभी कार्य संवैधानिक नियमों के अनुरूप हैं या नहीं। हम कह सकते हैं कि भारतीय जनमानस को इस अधिकार की महत्ता से अवगत कराया जाए यह अधिकार उनके जीवन का महत्वपूर्ण व जीवन के रीढ़ की आधारित उपादेयता से सम्बन्धित अधिकार है। इसके बिना लोगों की जनसहभागिता व जनजागरूकता अपाहिज व अप्रासंगिक सिद्ध होगी। इस विषय की सर्वोत्कृष्ट प्रासंगिकता यह होगी की भारतीय जनमानस इसके माध्यम से अपनी अधिकारों की कीमत जीवन जीने की कला व इसके प्रति जागरूकता व ज्ञान स्तरीय समाज का निर्माण करें जिससे विकसित व प्रभावशाली संवैधानिक समाज का निर्माण हो यही इसका मूल उद्देश्य होगा।

संदर्भ सूची

1. जानिए, सूचना का अधिकार, सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 सहित : सी0पी0 बर्थवाल भारतबुक सेन्टर 17 अशोक मार्ग, लखनऊ
2. सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 : हिन्द पब्लिशिंग हाऊस 1, महात्मा गाँधी मार्ग हाईकोर्ट के सामने, इलाहाबाद
3. India's Global Human Rights Obligations, A status Report (Part-I) : P.C. Sinha Kanishk Publishers Distributors, New Delhi.
4. India's Global Human Rights Obligations, A status Report (Part-II) : P.C. Sinha Kanishk Publishers Distributors, New Delhi.
5. Human Rights : Prakash Talwar Isha Books, Delhi
6. Reflections On The Right to Development : Arjun Sen Gupta, Archana Negi, Mavsumi Basu
7. इण्डिया टुडे, ज्ञान भण्डार, सुनहरे भविष्य के निर्माण में आपका साथी



परमाणु क्षमता संपन्न राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में उनकी छवि

डॉ० प्रीति चौधरी

असिस्टेंट प्रोफेसर—राजनीति विज्ञान विभाग

अवध गर्ल्स डिग्री कॉलेज, लखनऊ।

उत्तर कोरिया ने जिस प्रकार से दक्षिण कोरिया से अपने विवाद के मद्देनजर उस पर परमाणु हमले की चेतावनी दी है, उससे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में निश्चित रूप से संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। उत्तर कोरिया भारत और पाकिस्तान के साथ उन देशों की श्रेणी में शामिल है जिन्होंने एन0पी0टी0 यानि परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया था। भारत जहां परमाणु निरस्तीकरण के प्रति अपनी सैद्धांतिक प्रतिबद्धता के बावजूद एन0पी0टी0 एवं सी0टी0बी0टी0 को भेदभावपूर्ण संधि मानकर अस्वीकार करता रहा है, वहीं लम्बे समय से अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सम्पूर्ण परमाणु की निरस्त्रीकरण की दिशा में बढ़-चढ़कर सकारात्मक भूमिका भी निभाता रहा है। जहाँ तक राज्य के रूप में 'छवि' का प्रश्न है भारत एक सॉफ्ट पॉवर के रूप में जाना जाता है जहां लोकतांत्रिक शासन प्रणाली व संस्थाएँ जड़ जमा चुकी हैं। यानि भारत में नागरिक प्रशासन की सर्वोच्चता है। हम एक सफल चुनावी लोकतंत्र हैं।

भारत के विपरीत पाकिस्तान अपनी राजनीतिक अस्थिरता व लोकतांत्रिक संस्थाओं के अप्रासंगिक हो जाने की हद तक दुर्बलता के कारण रोग (Rouge State) यानि दुर्बल और असफल राज्य के रूप में जाना जाता है। जबकि उत्तर कोरिया लंबी राजनीतिक स्थिरता और एक दलीय कथित समाजवादी प्रशासन के कारण जड़ता की स्थिति में है। जहां शासक की मृत्यु के बाद उसके पुत्र को सत्ता मिलती है। उत्तर कोरिया की हठी प्रवृत्ति के कारण उसकी छवि एक जिद्दी 'राज्य' के रूप में हो जो बाहरी शक्तियों और चुनौतियों की परवाह नहीं करता। उत्तर कोरिया के राजनीतिक नेतृत्व द्वारा प्रायः अपने बयानों और रवैये के कारण अमरीकी वर्चस्व को चुनौती दी जाती है। यही वजह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के लिए उत्तर कोरिया का रवैया हमेशा चिंता का सबब बनता है।

दरअसल उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया अपने विभाजन के बाद से ही दो विपरीत राजनीतिक व्यवस्थाओं की छत्रछाया में फलफूल रहे हैं। जहाँ तक दक्षिण कोरिया का सवाल है, वह लोकतंत्र के पश्चिमी मॉडल के अन्तर्गत उदारवादी, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था के तले आर्थिक विकास की ऊँचाईयों को छू रहा है जबकि उत्तर कोरिया वामपंथी सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्था के तले सैन्य क्षेत्र में तो निरंतर प्रगति कर रहा है पर विकास व समृद्धि के पैमाने पर दक्षिण कोरिया से बहुत पीछे है।

उत्तर कोरिया के नाभिकीय शस्त्रों का विकास भी दक्षिण कोरिया से संभावित युद्ध की परिस्थिति को ध्यान में रखकर होता रहा है। अक्सर अमरीका व अन्य विकसित देशों द्वारा उत्तर कोरिया के परमाणु कार्यक्रम पर गंभीर चिंता व्यक्त की जाती रही है। उत्तर कोरिया ने कई बार अंतर्राष्ट्रीय परमाणु अनुसंधान अभिकरण के पर्यवेक्षकों को अपने परमाणु संयंत्रों के परीक्षण से रोका है। जबकि अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा

आयोग द्वारा समय-समय पर राज्यों के परमाणु अनुसंधान कार्यक्रमों का स्वतंत्र निरीक्षण किया जाता है। दरअसल उत्तर कोरिया पर कई बार परमाणु तकनीकी को स्मगल करने का भी आरोप लगा है। पाकिस्तान के मिसाइल कार्यक्रम तो उत्तर कोरिया से खुली मदद प्राप्त करते हैं। परमाणु व मिसाइल विकास के क्षेत्र में चीन, पाकिस्तान व उत्तर कोरिया की तिकड़ी किसी से छिपी नहीं है।

जहां तक पाकिस्तान व उत्तर कोरिया के परमाणु तकनीकी विकास से संबंधित परियोजना है उनको लेकर अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की सबसे बड़ी चिंता इन संयंत्रों के रख-रखाव व नियंत्रण प्रणाली को लेकर होती है। परमाणु तकनीकी का ज्ञान होने पर उनसे शस्त्र बनाना आसान होता है किन्तु शस्त्र बनाने के बाद उनकी सुरक्षा का मुद्दा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए चुनौती का विषय होता है। परमाणु अस्त्रों का युद्ध के हथियार के रूप में इस्तेमाल दुनिया में एक बार हुआ है और दुनिया को इसकी विध्वंसक क्षमता की पूरा जानकारी है। इसीलिए इन्हें समूची मानवता का ध्वंस करने में सक्षम हथियार के रूप में माना जाता है। जिनका इस्तेमाल पारंपरिक हथियार के रूप में नहीं किया जा सकता। दो देशों के आपसी सीमा विवादों व अन्य मसलों की शत्रुता में परमाणु अस्त्रों का इस्तेमाल का विकल्प एक कारगर धमकी के रूप में तो होता है किन्तु इसके वास्तविकता में इस्तेमाल का फैसला स्वीकार्य नहीं हो सकता। इस धमकी को एक तरह से डेटेरेंस (निरोधक) के रूप में माना जाता है। कई बार अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्वान परमाणु अस्त्रों की उपस्थिति को दुनिया की स्थिरता व शांति के लिए जरूरी मानते हैं। एंथोनी गिडिस जैसे विद्वान के अनुसार परमाणु अस्त्रों की वजह से ही दुनिया में शांति का लंबा दौर चला। उनके कहने का आशय है कि यदि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद कोई तीसरा महायुद्ध नहीं हुआ तो इसका श्रेय दुनिया में परमाणु बमों की उपस्थिति को जाता है।

परमाणु बम का प्रयोग जब सन् 1945 ई0 में पहली बार हुआ तो उसकी सामूहिक विनाश की प्रमाणिकता ने समूची दुनिया को स्तब्ध कर दिया। यह एक नये युग, जिसे परमाणु युग कहा गया, की शुरुआत की घोषणा थी। यह अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की शक्ति संरचना में वर्चस्व के अचूक हथियार के रूप में उभरा, जिसे पाने के लिए दुनिया में होड़ मच गयी। महाशक्तियों के अतिरिक्त अन्य देशों द्वारा भी इसे सुरक्षा की गारंटी के रूप में देखा गया। किन्तु परमाणु तकनीकी एक निहायत ही कठिन और उच्च स्तरीय परिष्कृत तकनीकी है। जिसकी जानकारी अत्यंत विकसित वैज्ञानिक व शोध संसाधनों के बूते होती है और इस मुश्किल तकनीकी तक पहुँच सभी देशों की नहीं होती, जिन देशों के पास इसकी जानकारी होती है, वहाँ भी इसको संरक्षित व संवर्धित करने की प्रक्रिया बहुत खर्चीली होती है। परमाणु शस्त्रों के प्रयोग से होने वाली विभिषिका से बचाव के लिए ही समय-समय पर इसके समूल उन्मूलन की बात उठायी जाती है। भारत भी सैद्धान्तिक रूप से संपूर्ण निरस्तीकरण की घोषित नीति के बावजूद अपने परमाणु कार्यक्रम को निरन्तर आगे बढ़ाता रहा है। पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध डेटेरेंस की क्षमता हासिल करने के लिए अपने परमाणु कार्यक्रम को आगे बढ़ाया, जबकि भारत, चीन 1962 में पराजित होने के बाद और उसके द्वारा 1964 में परमाणु शस्त्र बनाने की तकनीकी हासिल करने के बाद अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इस दिशा में तेजी से आगे बढ़ा और अंततः 1974 में पहला परमाणु परीक्षण करने में सफलता पायी। भारत द्वारा परमाणु परीक्षण करने के बाद ही दक्षिण एशिया में परमाणु होड़ शुरू हो गयी।

पाकिस्तान द्वारा परमाणु शस्त्र बनाने की क्षमता हासिल कर लेने के बाद उसके रख-रखाव व नियंत्रण का मुद्दा केंद्र में आ गया। अभी पिछले साल पाकिस्तान के कामरा शहर के पाकिस्तानी

वायुसेना अड्डा पर हुए उग्रवादी हमले ने एक बार फिर पाकिस्तान के नाभिकीय शस्त्रों और उनकी सुरक्षा के सवाल को केन्द्र में ला दिया है। दरअसल पाकिस्तान के परमाणु कार्यक्रम की जानकारी मिलने के साथ ही पाकिस्तान की राजनीतिक स्थिति को देखते हुए परमाणु संयंत्रों की सुरक्षा के सवाल महत्वपूर्ण हो गये थे। परमाणु अप्रसार की अवधारणा के पीछे परमाणु शस्त्रों की समुचित हिफाजत का तर्क भी मजबूती से दिया जाता है। आमतौर पर माना जाता है कि परमाणु शस्त्रों के इस्तेमाल से सम्बन्धित कोई भी फैसला अत्यन्त उच्चस्तरीय निर्णय प्रक्रिया के द्वारा ही लिया जाएगा और जिस देश में नागरिक प्रशासन की सर्वोच्चता हो और लोकतंत्र की जड़ें गहरी जमीं हों वहाँ नाभिकीय विषय से सम्बन्धित कोई भी फैसला व्यापक विचार विमर्श और जनमत को ध्यान में रखकर किया जाएगा।

ऐसे देश जहां नागरिक शासन से इतर सेना, धार्मिक संस्थाएँ और कट्टरपंथी ताकतें राज्य के प्रशासन को प्रभावित करने की क्षमता रखती हैं या फिर अपने निहित स्वार्थों व संकुचित दृष्टिकोण के कारण लोकतांत्रिक शासन को मजबूत नहीं होने देतीं, वहां नाभिकीय संयंत्रों व शस्त्रों की सुरक्षा का मसला बेहद संवेदनशील होता है। यदि कट्टरपंथी ताकतों ने नाभिकीय ठिकानों पर अपना नियंत्रण कायम कर लिया तो वे इसका इस्तेमाल राजनीतिक सौदेबाजी के लिए कर सकती हैं। परमाणु शस्त्रों की सुनिश्चित विनाशक भूमिका को देखते हुए कोई भी सरकार आतंकवादियों की किसी भी तरह की मांग के सामने घुटने टेकने को मजबूर हो सकती है।

हालांकि पाकिस्तान सरकार बार-बार अपने परमाणु संयंत्रों और शस्त्रों की सुरक्षा को लेकर दुनिया का भरोसा जीतने की कोशिश करती है, किन्तु जिस तरह से पाकिस्तान राजनीतिक अस्थिरता के दौर से गुजर रहा है और आये दिन वहां जिस तरह के संवैधानिक संकट खड़े हो जाते हैं उसके मद्देनजर राज्य संस्था की वैधता ही स्वयं कई बार सवालों के घेरे में आ जाती है।

पाकिस्तान में लोकतंत्र की कमजोर स्थिति पाकिस्तान के लिए दुखद तो है ही भारत की भी कई समस्याओं का कारण है। पाकिस्तान की शासन व्यवस्था में सेना की भूमिका और लंबे समय तक चले सैन्य शासन ने वहां की जनता का जो नुकसान किया है उसकी भरपाई मुश्किल है। आज यदि पाकिस्तान को दुनिया भर के आतंकवादियों का पनाहगाह माना जाता है तो इसकी सबसे ज्यादा जिम्मेदारी पाकिस्तान सेना व खुफिया एजेंसी आई0एस0आई0 की है। इन दोनों ने राज्य की लोकतांत्रिक संस्थाओं को कभी मजबूत नहीं होने दिया। कभी जिन आतंकी संगठनों को पाकिस्तान ने संरक्षण दिया था वे आज उनके नियंत्रण से मुक्त हो पाकिस्तान के लिए सरदर्द बन चुके हैं। यदि ऐसे आतंकी पाकिस्तान के एयर बेस पर हमला करते हैं तो इससे साफ जाहिर है कि इन संगठनों पर नियंत्रण करने वाली शक्तियाँ पाकिस्तानी राज्य की पहुंच से बाहर हैं।

तालिबानी संगठनों ने जिस तरह से अफगानिस्तान को कमजोर कर दिया है उसकी मंशा पाकिस्तान के सम्बन्ध में भी यही है। भारत के राष्ट्रीय हितों का जहां तक सवाल है शान्त और स्थिर, मजबूत पड़ोसी उसके हित में हैं, पर पाकिस्तान की पूरी राजनीति भी भारत विरोध पर आधारित है और भारत को पाकिस्तान की सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा बता, वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना और सुशासन तथा विकास जैसे मुद्दों को वहां हाशिए पर रखा जाता है। भारत में भी एक धड़ा राष्ट्रवाद के नाम पर जन भावनाओं को भड़का परमाणु राजनीति करने के लिए जाना जाता है।

पाकिस्तान का एक राज्य के रूप में आस्तित्व और उसकी वैधता भारत के धर्मनिरपेक्ष चरित्र पर

प्रहार करने से पुष्ट होती है। दो राष्ट्र सिद्धान्तों के परिणाम स्वरूप निर्मित पाकिस्तान आज पैंसठ साल बाद भी यही बात सिद्ध करने के प्रयास में ऐड़ी चोटी का जोर लगा देता है कि भारत में अल्पसंख्यक सुरक्षित नहीं हैं। अभी कुछ दिनों पूर्व में पूर्वोत्तर में हुए घटनाक्रम पर आई0एस0आई0 और उग्रवादी संगठनों ने जिस तरह से वेबसाइट्स पर घृणा व विद्वेष फैलाया है वह प्रोपगंडा व भारत की आंतरिक स्थिरता को भंग करने का प्रयास है। सूचना क्रांति के इस दौर में तकनीकी का इस्तेमाल अमन चैन के खिलाफ जिस तरह हुआ उसका सामना करने के लिए भारतीय राज्य की संस्थाओं और नागरिक समुदाय को खुद को मानसिक रूप में तैयार रखना होगा।

यह अजीब विडम्बना है कि गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, कुपोषण और बदतर मानव विकास से जूझते दक्षिण एशिया के ये दोनों प्रमुख देश कैसे जरा सी बात पर प्रतिगामी व प्रतिक्रियावादी शक्तियों के हाथ खेलने लगते हैं। भारत में यदि स्वतंत्रता व लोकतंत्र को आधी सदी से ज्यादा समय बीतने के बाद भी यदि नागरिकों के अंदर भय व असुरक्षा इस कदर घर कर जाती है कि अफवाहों के कारण ट्रेनों से एक दिन में बीस-बीस हजार एक खास समुदाय के लोग भागते हैं और इससे पलायन का जो दृश्य उपस्थित होता है वह हमारी स्वतंत्रता, समानता व लोकतंत्र की अवधारणाओं पर सवाल लगाता है। ऐसा लगता है कि हम आर्थिक विकास की दर चाहे जहाँ पहुँचा दें, बड़ी मात्रा में विदेशी निवेश चाहें जितने आकर्षित कर लें, लोकतंत्र हमारे यहां अभी शासन की शैली मात्र ही है। यदि हम अपने जीने के तरीके में पर्याप्त लोकतांत्रिक हो पाये होते तो हिंसा भड़काने वाले तत्वों को फौरन नाकाम कर देते। भारत का सौन्दर्य और पहचान ही बहुरंगी और “विविधता में एकता” की है। किसी भी एक रंग में देश को रंगने की कोशिश इस निष्प्राण कर देगी। भारत की इसी अंदरूनी ताकत की वजह से परमाणु क्षमता संपन्न राष्ट्र घोषित होने के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय समुदाय भारत के प्रति आश्वस्त रहता है क्योंकि चुनावी लोकतंत्र की जड़ें बहुत गहरी पैठ चुकी हैं, जबकि उत्तर कोरिया के एकांगी वामपंथी शासन और पाकिस्तान के कट्टरपंथी उभार, सेना की महत्वपूर्ण भूमिका और राजनीतिक अस्थिरता ने बार-बार विश्व जनमत में शक पैदा किया है।

संदर्भ सूची

1. Brighter than a thousand suns : A Personal History of the Atomic Scientist.
2. In Mortal Hands : A Cautionary History of the Nuclear Age
3. Pokharan and Beyond : India's Nuclear behavior
4. India's Nuclear Policy : Bharat Karnad
5. [Economietimes .indiatimes.com/news/India-see-pats-hand-in north Korea nuclear beat](http://Economietimes.indiatimes.com/news/India-see-pats-hand-in-north-Korea-nuclear-beat)
6. South Asia's Nuclear Security Dilemma: India, Pakistan and China-Lowell Dittmer
7. Pakistan's Nuclear Policy: Savita Pande
8. India, Pakistan and the Bomb : Debating Nuclear Stability in South : Sumit Ganguli, S. Poul Kapur



भारत अमेरिका करार 123 की उपयोगिता एवं मूल्यांकन

अरविन्द कुमार शुक्ल

प्रवक्ता-राजनीति विज्ञान

राजकीय महाविद्यालय, समथर, झांसी (उ०प्र०)

भारत को परमाणु ऊर्जा पैदा करने की अपनी क्षमता में तेजी से विस्तार करने के लिए आयातित यूरेनियम की जरूरत थी। जुलाई, 2005 में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की अमेरिका यात्रा के दौरान दोनों देशों भारत और अमेरिका ने नागरिक परमाणु सहयोग फिर से शुरू करने के बारे में चल रही वार्ता को आगे बढ़ाया। ऐसे में भारत अमेरिका के मध्य 2005-06 की रणनीतिक भागीदारी के तहत 02 मार्च 2006 को भारत अमेरिका असैन्य परमाणु सहयोग समझौता 123 सम्पन्न हुआ। भारत अमेरिका असैन्य परमाणु समझौता 123 अमेरिका के परमाणु ऊर्जा अधिनियम 1954 की धारा 123 के तहत किया गया है। इसलिए इसे 123 समझौता कहते हैं। इसके स्वरूप पर भारत और अमेरिका के बीच एक अगस्त 2007 को सहमति हुई। अमेरिका अब तक लगभग पच्चीस देशों के साथ यह समझौता कर चुका है। इस समझौते के दस्तावेज में अमेरिका ने भारत को आणविक हथियार संपन्न देश नहीं माना है। बल्कि इसमें यह कहा गया है कि आणविक अप्रसार संधि के लिए अमेरिका ने भारत को विशेष महत्व दिया है। जो संक्षिप्त में इस प्रकार है कि भारत सरकार और संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार बढ़ती वैश्विक ऊर्जा की मांग को पूरा करने के लिए एक स्वच्छ और अधिक कुशल तरीके से असैनिक परमाणु ऊर्जा के महत्व को स्वीकार करती हैं। वह दोनों बड़े पैमाने पर सहयोग और परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए ऊर्जा सुरक्षा प्राप्त करने के एक साधन के रूप में एक स्थिर, विश्वसनीय और पूर्वानुमान के आधार पर पूर्ण विकास हेतु उपयोग करेंगे। एक दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करते हुए (संप्रभुता), समानता, आपसी लाभ, पारस्परिकता और एक दूसरे के परमाणु कार्यक्रम के लिए पूरे सम्मान के साथ आपसी सम्मान के आधार पर इस तरह के सहयोग को विकसित करने के इच्छुक हैं।

उन्नत परमाणु प्रौद्योगिकी रखने वाले दोनों राज्य जनसंहारक हथियारों के प्रसार को रोकने के लिए भी प्रतिबद्ध हैं, इस समझौते के तहत दोनों के बीच सहयोग की पुष्टि हुई है। अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (आईएईए) और उसके रक्षोपाय प्रणाली के रूप में भारत और अमेरिका के लिए करार संयुक्त रूप से लागू है, और शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए परमाणु ऊर्जा के विकास और उपयोग में है कि इसके महत्व के उद्देश्यों के लिए अपने समर्थन की पुष्टि अंतरराष्ट्रीय सहयोग सुनिश्चित करने की व्यवस्था की है। करार के तहत परमाणु हथियारों या अन्य परमाणु विस्फोटक उपकरणों के प्रसार में योगदान नहीं होगा। दोनों पक्ष सामरिक साझेदारी को मजबूत बनाने को सहमत हो गए हैं, सुरक्षा और परमाणु सामग्री और प्रभावी राष्ट्रीय निर्यात नियंत्रण की पर्याप्त भौतिक सुरक्षा, परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग की सुरक्षा व उनसे संबंधित प्रतिबद्धताओं को ध्यान में रखना है कि शांतिपूर्ण परमाणु गतिविधियों व पर्यावरण की रक्षा करने के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए। सामूहिक विनाश के हथियारों के प्रसार को रोकने के लिए ध्यान रखना अपनी अपनी साझा प्रतिबद्धता माना है। सत्रह अनुच्छेदों के इस समझौते का पूरा नाम है— भारत सरकार और संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार के बीच नाभिकीय ऊर्जा के शांतिपूर्ण

प्रयोग के लिए सहयोग का समझौता।

इस प्रकार (1) दोनों पक्षों द्वारा उत्पाद सामग्री अनुबंध के विषय के संबंध के साथ रूप में आईईए GOV/1999/19/Rev-2 दस्तावेज में निहित प्रावधानों के साथ पालन करेंगे। (2) ट्रिटियम समझौते के लिए विषय के संबंध के साथ, शांतिपूर्ण प्रयोजनों के लिए इस समझौते के अनुच्छेद 9 के साथ संगत उसके स्वभाव के लिए संबंधित जानकारी का आदान-प्रदान करेंगे और हमारी सरकार भी परस्पर आदान-प्रदान के सिद्धांत पर अमेरिका जैसे उन्नत परमाणु प्रौद्योगिकी सम्पन्न अग्रणी राष्ट्रों की तरह समान जिम्मेदारियां उठाने और कार्य करने तथा समान लाभ और सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए सहमत हुई। इसी सिद्धांत पर भारत यह आश्वासन देने पर भी सहमत हुआ कि नागरिक जरूरतों के लिए इस्तेमाल होने वाली परमाणु आपूर्तियों को रणनीतिक कार्यक्रम के लिए इस्तेमाल में नहीं लाया जाएगा। इसी संकल्पना के आधार पर मार्च, 2006 में राष्ट्रपति बुश की भारत यात्रा के दौरान दोनों पक्ष पृथक्करण योजना पर सहमत हुए, जिसके अनुसार भारत 2006 से 2014 तक चरणबद्ध रूप से अपने 22 थर्मल पावर रिएक्टरों में से 14 को चिन्हित करने और उन्हें अन्तरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी की सुरक्षा, निगरानी के तहत रखने के लिए सहमत हुआ। भारत के साथ इस प्रकार का सहयोग करने के लिए अमेरिकी प्रशासन ने अमेरिकी कांग्रेस से 1954 के अमेरिकी परमाणु ऊर्जा अधिनियम की धारा 123 में उल्लिखित शर्त से कानूनी छूट दिलाने का अनुरोध किया और उसे प्राप्त किया, जिसके लिए नागरिक परमाणु सहयोग की एक शर्त के रूप में पूर्ण सुरक्षा निगरानी जरूरी है। हाइड्रैक्ट के नाम से एक कानून दिसम्बर, 2006 में अमेरिकी कांग्रेस में पारित किया गया था, ताकि अमेरिकी सरकार भारत के साथ सहयोग कर सके। उल्लेखनीय है कि हाइड्रैक्ट केवल एक अमेरिकी कानून है। यह भारत के लिए सामान्य परिस्थितियों में बाध्यकारी नहीं है। हमने अमेरिका के साथ केवल एक द्विपक्षीय करार किया है जिसे परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण इस्तेमाल से संबंधित भारत सरकार और अमेरिकी सरकार के बीच सहयोग का करार कहा जाता है। यह करार (i) हमारे रणनीतिक परमाणु कार्यक्रमों की स्वायत्तता, (ii) हमारे स्वदेशी त्रि-स्तरीय परमाणु कार्यक्रम, और (iii) हमारे अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रमों की कीमत पर नहीं है। हमारा देश इन सभी के स्वतंत्र कार्यक्रमों के प्रति वचनबद्ध है। परमाणु करार होने के बाद से अभी तक भारत में नाभिकीय उर्जा के रूप में 4,385 मेगावाट विद्युत उत्पादन क्षमता का विकास हो चुका है। परन्तु यह भारत की कुल विद्युत उत्पादन क्षमता का मात्र 2.85 प्रतिशत है। लक्ष्य यह है कि वर्ष 2020 तक परमाणु विद्युत उत्पादन को 20000 मेगावाट तक किया जाये। करार से पूर्व तक भारत का परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम तमाम उपलब्धियों के बावजूद इस लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करने की स्थिति में नहीं था।

असैन्य परमाणु-समझौता 123 के सकारात्मक व नकारात्मक पहलू निम्नवत हैं:

नागरिक परमाणु –समझौते 123 के सकारात्मक पहलू :

1. विश्व की प्रमुख शक्ति बनने हेतु परमाणु उर्जा के क्षेत्र में भारत का आत्मनिर्भरता प्राप्त करना आवश्यक है और इस समझौते से उर्जा के विभिन्न विकल्प खुलेंगे। सरकारी आँकड़े बताते हैं कि आज से 35 वर्ष पूर्व निर्धारित 10,000 मेगावाट की प्राप्ति का लक्ष्य आद्योपान्त परमाणु उर्जा से संचालित हो सकेंगे, जैसा कि वर्तमान में फ्रांस में है।
2. नवीनतम उर्जा तकनीक, कलपुर्ज, भट्टियाँ, वैज्ञानिक सहायता व प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा पारस्परिक समन्वय कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं।

3. भारत असैन्य परमाणु संयन्त्रों हेतु ईंधन और तकनीकी जानकारी परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह एनएसजी से प्राप्त कर सकता है/कर रहा है। अमेरिका इस सन्दर्भ में भारत की सहायता ही करेगा।
4. भारत के सैन्य कार्यक्रमों को अमेरिका बाधित नहीं करेगा। सैन्य इकाइयों के प्रति हमारी अतिरिक्त संवेदनशीलता को समझते हुए अमेरिका ने भारत के इस आग्रह को स्वीकार किया है और असैन्य रियेक्टरों को इससे प्रथक रखा है।
5. परमाणु उर्जा आयोग के अध्यक्ष अनिल काकोडकर ने भारत के घरेलू प्रौद्योगिकी विकास कार्यक्रम के अल्पकालिक व दीर्घकालिक लक्ष्यों की प्राप्ति में इसे महत्वपूर्ण करार माना है।
6. भारत ने स्वेच्छा से परमाणु परीक्षण के स्थगन की घोषणा की है। वह जब चाहे इस स्थगन से बाहर आ सकता है और उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों का विश्लेषण तत्कालीन सन्दर्भों में ही सम्भव है।
7. असैन्य परमाणु रिएक्टरों हेतु यूरेनियम की निरन्तर व निर्बाध आपूर्ति सुनिश्चित की जाएगी/आपूर्ति होने लगी है।
8. समझौते की अवधि 40 वर्ष निर्धारित की गई है। लेकिन इसे 10-10 वर्ष तक की अवधि के लिए बढ़ाया जा सकेगा। दीर्घावधि की सुनिश्चितता लक्ष्य प्राप्ति में सुगमता लाती है तथा पारस्परिक विश्वास को सुदृढ़ करती है।
9. भारत की अमेरिका से निकटता विश्व के राजनीतिक परिदृश्य पर उसके प्रभाव को सशक्त बनाएगी, विशेषकर समझौते के मद्देनजर भारत की विशिष्ट शर्तों को अमेरिका द्वारा स्वीकार कर लिए जाने पर।
10. डा० अनिल काकोडकर, डा० बालाचन्द्रन तथा ए गोपालकृष्णन आदि वैज्ञानिक इस समझौते से सुरक्षा सुधार में भारतीय क्षमता की बढ़ोत्तरी का दावा करते हैं, इसका कारण, कई स्रोतों से रणनीतिक भण्डार बनाने की सक्षमता का विकास होना है।
11. भारत को सीटीबीटी अथवा एनपीटी सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं करने हैं।
12. उर्जा क्षेत्र के विकास के साथ राजनीतिक, कूटनीतिक दृष्टि से भी यह समझौता महत्वपूर्ण माना जा रहा है।
13. परमाणु करार से विश्वमंच पर भारत की विश्वसनीयता को मान्यता मिली है।
14. भारत-अमेरिका नाभिकीय करार के होने के बाद भारत चौथी पीढ़ी के ऊर्जा संयंत्रों के विकास में अंतरराष्ट्रीय प्रयासों का हिस्सा बन गया है।
15. एक ध्रुवीय शक्ति अमेरिका से मधुर सम्बन्ध एवं वैश्विक मंच में भारत की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है।
16. इससे जहाँ भविष्य में एक ओर भारत को ऊर्जा प्राप्त होगी, विदेशी निवेश बढ़ेगा एवं भारतीय अर्थव्यवस्था मजबूत होगी, वहीं ऊर्जा की निर्बाध आपूर्ति से जी०डी०पी० में वृद्धि तथा परमाणु ऊर्जा क्षेत्र में विशेष निवेश की वृद्धि होगी।

नागरिक परमाणु समझौते 123 के नकारात्मक पहलू :

1. अमेरिका का मूल लक्ष्य परमाणु समझौते की आड़ में पक्षपातपूर्ण और प्रतिबन्धात्मक अन्तर्राष्ट्रीय ढांचे में भारत को घसीटना है। इससे उसकी छवि को नुकसान पहुँचना लगभग तय है।

2. भारत में असैन्य तथा सैन्य दोनों कार्यक्रम एक ही प्रकार के संयन्त्र में होते रहे हैं और यह नामुमकिन नहीं कि असैन्य संयन्त्र जब पूर्ण निगरानी में जाएंगे तो उनमें पहले से चल रहे सैन्य परमाणु कार्यक्रमों के रहस्य को अमेरिका जान सकता है।
3. मात्र असैन्य रिएक्टरों की पूर्ण निगरानी रखते हुए भी यह सम्भावना है कि सैन्य रिएक्टरों की गुप्त सूचनाएँ अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षकों को प्राप्त हो जाएँ। उपर्युक्त दोनों ही स्थितियाँ भविष्य में देश की सुरक्षा को गम्भीर खतरा उत्पन्न कर सकती हैं।
4. असैन्य को सैन्य तथा सैन्य को असैन्य क्षेत्र घोषित करने की छूट भारत को नहीं होगी।
5. 123 समझौते की धारा 2-1 में स्पष्ट कहा गया है कि यह समझौता दोनों देशों के राष्ट्रीय कानूनों के तहत होगा। अमेरिकी मामले में ये 'हाइड एक्ट' के तहत होगा। जिसकी कुछ शर्तों पर भारत में प्रश्नचिह्न लगे हैं।
6. हाइड एक्ट 40 वर्षों तक परमाणु उर्जा कार्यक्रम के बारे में भारत की वार्षिक रिपोर्ट को अमेरिकी राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रावधान करता है। इस सन्दर्भ में अमेरिकी राष्ट्राध्यक्ष किसी भी अनियमितता की भनक या संदेह होने पर समझौते पर पुनर्विचार कर सकता है। इस पुनर्विचार के दौर में सभी प्रकार की ईंधन आपूर्ति व सेवाएँ बन्द रहेंगी।
7. साइरस रिएक्टर (प्रमुख सैन्य परमाणु संयंत्र) जहाँ से 1998 का परमाणु कार्यक्रम फलीभूत हुआ को बन्द करने और बी0ए0आर0सी0 से अप्सरा रिएक्टर के कुछ हिस्सों को हस्तान्तरित करने से हमारी परमाणु उत्पादक क्षमता पर दुष्प्रभाव पड़ेगा।
8. भारत में हैवी वाटर के 6 संयंत्र कार्य कर रहे हैं। इस प्रौद्योगिकी में भारत ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। किन्तु 123 समझौते में इसके विकास की कोई योजना नहीं है। तकनीक व प्रौद्योगिकी मंत्री कपिल सिब्बल ने भी स्वयं इस तथ्य को एक साक्षात्कार में स्वीकार किया है।
9. यूरोपीय देश पुरानी तकनीक, कल पुर्जों व अनावश्यक उत्पाद को निर्यात कर सकते हैं। विशेषतः किसी भी लापरवाही या प्रशासनिक सुस्ती के कारण सम्भावना उभर सकती है।
10. पर्यावरण की दृष्टि से भी यह समझौता हितकारी नहीं है। अल्पकालीन व दीर्घकालीन दोनों दृष्टियों से स्वास्थ्य व पर्यावरण पर गम्भीर प्रभाव डालेगा। आतंकी हमलों की आशंका के साथ किसी भी प्रकार की असावधानी चेरनोबल, अमेरिका के माइल आइलैण्ड अथवा जापान के फुकुसिमा परमाणु संयंत्र जैसा विकट दृश्य उपस्थित कर सकती है।
11. समझौते के क्रियान्वयन से आशंका उभर रही है कि परमाणु करार की आड़ में खाद्य और कृषि जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र में अमेरिकी कम्पनियों के हितों को बढ़ावा मिल रहा है। इससे भारतीय कृषकों की सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।
12. अब तक भी स्पष्ट नहीं है कि करार पूर्ण असैन्य परमाणु ऊर्जा सहयोग है और इससे भारत को भी वही फायदे मिलेंगे जो अमेरिका को हासिल हैं। करार से असैन्य परमाणु ऊर्जा संबंधी सहयोग और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के तमाम पहलुओं से प्रतिबंध हट जाएगा, यह अभी स्पष्ट नहीं है। पूर्ण असैन्य परमाणु सहयोग के लाभ हासिल नहीं हैं। भारत अमेरिका के समान ही जिम्मेदारियों

और दायित्वों का निर्वहन करेगा तथा समान अधिकार व लाभ की अपेक्षा भी रख पाएगा ऐसा भी प्रतीत नहीं हो रहा है। क्योंकि एनएसजी से छूट न तो स्पष्ट है और न ही बिना शर्त।

13. करार के नकारात्मक पक्षों पर कम्युनिस्ट दलों, वैज्ञानिकों तथा जागरूक स्वयंसेवी संस्थानों ने काफी चिन्ता जाहिर की है।
14. अगर करार टूटता है तो भारत को वो सारी मशीनें, औजार व प्रौद्योगिकी वापस करनी होगी जो इस डील के तहत मिलेंगे। इसके अलावा हमारे 14 असैन्य परमाणु रिएक्टरों पर निगरानी जारी रहेगी। वहीं दूसरी तरफ अमेरिका द्वारा करार में किए गए, किसी वायदे को तोड़ा जाता है तो ऐसी हालत में क्या होगा, इसका उल्लेख इस समझौते में नहीं है।
15. परमाणु आपूर्तिकर्ताओं को परिवहन के दौरान या इसके बाद होने वाली दुर्घटनाओं के लिए स्पष्ट रूप से जवाबदेह नहीं ठहराया गया है।
16. केवल 3 प्रतिशत बिजली आपूर्ति देने वाली बेहद खर्चीली परमाणु योजनाएँ देश के हित में योगदान कर पाएंगी, इस पर भी संशय है।

प्रस्तुत तथ्यों के अनुसार निश्चित रूप से हाइड अधिनियम में अनेक विषयोत्तर विरोधी प्रावधान हैं, जो हमारे लिए अनुकूल नहीं हैं और 123 करार पर बातचीत करते समय हम ऐसे प्रावधानों को अलग रखने के प्रति काफी सावधान रहे हैं। करार का उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि भारत नाभिकीय व्यापार और उच्च प्रौद्योगिकी के व्यापार में अनुकूल भागीदारी को शामिल करे। परन्तु हम इस उद्देश्य को तब तक प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक कि अमेरिका हमारी ओर से इसका नेतृत्व न करे। यह सही है कि रूस और फ्रांस ऐसे देश हैं जो भारत के मित्र हैं और भारत के साथ नाभिकीय व्यापार में शामिल भी होना चाहते हैं, परन्तु इस बात में भी कोई संदेह नहीं है कि न तो ये दोनों देश और न ही कोई अन्य देश अपने दिशानिर्देशों में एकपक्षीय रूप से तब तक परिवर्तन कर पाते, जब तक कि अमेरिका के अनुरूप ही अन्य नाभिकीय आपूर्तिकर्ता देश अपने दिशानिर्देशों को बदलने के लिए तैयार न हो जाते।

भारत एवं विश्व में अनेक विरोधी आलोचनाओं के बाद भी इसे अमेरिकी कूटनीतिक दबाव का करिश्मा ही है और नई दिल्ली की तरफ से परमाणु अप्रसार के आश्वासन का असर, 45 देशों के परमाणु आपूर्ति कर्ता समूह (NSG) ने भारत को नाभिकीय विरादरी में शामिल कर लिया गया। इसके साथ ही भारत को (NPT) एवं (CTBT) पर हस्ताक्षर किये बिना ही तीन दशक पुराने नाभिकीय कारोबार के प्रतिबन्ध से छूट मिल गयी और जिससे भारत को आईओएओ (I.A.E.A.) में जाने की जरूरत नहीं रही। इस प्रकार अमेरिका के साथ हमारे संबंधों में चाहे जो भी आपत्तियां हों, किसी भी अन्य मित्र देश अथवा नाभिकीय आपूर्तिकर्ता समूह के किसी अन्य सदस्य में भारत के हित में बहुपक्षीय व्यवस्थाओं को बदलने की क्षमता नहीं है। इस संबंध में अमेरिका की स्थिति विलक्षण है, क्योंकि पहले तो इसी ने इन निरोधात्मक व्यवस्थाओं की पहल की और इसलिए भी कि अब भी यह नयी संवेदनशील प्रौद्योगिकियों का सबसे प्रमुख स्रोत है। भारत के लिए यह बहुत जरूरी है कि यदि हमें गरीबी हटाने के अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है तो हमें अपनी 5 से 6 प्रतिशत वार्षिक की मौजूदा आर्थिक विकास दर को सुधारना होगा। भारत की विकास दर को तेजी से आगे बढ़ाने में ऊर्जा आपूर्ति की कमी प्रमुख बाधाओं में से एक है। हम सभी तरह के ऊर्जा उत्पादनों को इस तरह से बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं कि पर्यावरण संबंधी हमारी

चिंताओं का भी ध्यान रखा जा सके। इस संदर्भ में परमाणु ऊर्जा एक तार्किक विकल्प है और यह हमारी समग्र ऊर्जा की जरूरतों में काफी योगदान दे सकता है। इस समय इसका योगदान केवल 2.85 प्रतिशत के आस-पास ही है। हमारे पास अपनी परमाणु ऊर्जा उत्पादन की क्षमता को 2020 तक 20,000 मेगावाट विद्युत उत्पादन करने और 2030 तक इसे दोगुना कर देने के लिए यह एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है। एक तरफ जहां हमारे यूरेनियम संसाधनों के इस्तेमाल से हमारा घरेलू त्रि-स्तरीय कार्यक्रम जारी है, वहीं दूसरी ओर यह करार हमारी क्षमता में तेजी से अतिरिक्त क्षमता जोड़कर हमें जल्दी ही अपने उस लक्ष्य तक पहुँचने में मददगार साबित होगा।

यह करार अन्य देशों के साथ नागरिक परमाणु ऊर्जा में सहयोग के लिए भी द्वार खोलता है। हमने नागरिक परमाणु ऊर्जा के बारे में इसी तरह के द्विपक्षीय सहयोग करारों को फ्रांस और रूस आदि देशों के साथ भी किया है। यह करार भारत को अमेरिका की ही तरह उन्नत परमाणु प्रौद्योगिकी सम्पन्न राष्ट्र की विशेष श्रेणी में रखता है जिसमें दोनों पक्षों को समान लाभ और हित होंगे। करार में पूर्ण नागरिक परमाणु ऊर्जा सहयोग की व्यवस्था है जिसमें परमाणु संयंत्र और संशोधन तथा प्रसंस्करण सहित परमाणु ईंधन चक्र से जुड़े पहलू शामिल हैं। करार में परमाणु व्यापार, परमाणु सामग्री का अंतरण, उपकरण, पुर्जों और संबंधित प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण तथा परमाणु ईंधन चक्र की गतिविधियों में सहयोग की व्यवस्था है।

करार में 2 मार्च, 2006 के आपूर्ति के आश्वासनों का तथा लगातार सुरक्षा निगरानी से इसके संबंध एवं ईंधन आपूर्ति के बाधित होने की स्थिति में सुधारात्मक उपाय करने के प्रावधान का भी पूरा ब्यौरा दिया गया है। करार में भारत के परमाणु संयंत्रों के जीवन-काल के दौरान ईंधन की आपूर्ति बाधित होने से बचने के लिए परमाणु ईंधन का एक सामरिक भंडार विकसित करने की व्यवस्था है। करार में हस्तांतरित सामग्री और उपकरणों पर अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी की सुरक्षा निगरानी लागू होने की व्यवस्था है। लेकिन प्रत्यक्ष रूप में कोई ऐसा प्रावधान नहीं दिख रहा है, जिसमें हमारे परमाणु हथियार कार्यक्रम अथवा सुरक्षा निगरानी से इतर किसी परमाणु सुविधा की जांच आवश्यक हो। इसमें यह स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि इससे किसी भी पक्ष की सुरक्षा निगरानी से इतर सुविधाओं पर कोई असर नहीं पड़ेगा और इसका कार्यान्वयन इस प्रकार किया जाएगा कि उससे किसी सैन्य परमाणु सुविधा अथवा इस करार से बाहर उत्पादित, अर्जित या विकसित परमाणु सामग्री के रास्ते में कोई बाधा नहीं आएगी अथवा किसी तरह का कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। यह करार परमाणु सामग्री के पुनः प्रयोग, परमाणु सामग्री और उसके उत्पादों के हस्तांतरण की पूर्व सहमति देता है। इसे अमल में लाने के लिए भारत सुरक्षा निगरानी में रखी गई परमाणु सामग्री का फिर से इस्तेमाल करने के लिए एक राष्ट्रीय पुनर्उपयोग सुविधा व्यवस्था (नेशनल रिप्रोसेसिंग फैसिलिटी) स्थापित करेगा। किसी भी पक्ष के अनुरोध पर छः महीने के अंदर व्यवस्थाओं और प्रक्रियाओं पर चर्चाएं शुरू की जाएंगी और इन्हें एक वर्ष के भीतर पूरा कर लिया जाएगा। अंततोगत्वा इस समझौते से भारत के उर्जा हितों का संरक्षण हो रहा है। इस समझौते से भारत को नाभिकीय ईंधन की आपूर्ति निर्बाध रूप से कतिपय शतों के साथ अपनी सम्प्रभुता अथवा अपनी परमाणु सुरक्षा/परमाणु कार्यक्रमों के विकास से समझौता किये बगैर हो सकेगी। इससे भविष्य में भारत के राजनीतिक रुतबे में वृद्धि होने की और अमेरिकी कूटनीति से भारत को सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता शीघ्र प्राप्त होने की संभावना दिखती है। भारत शक्ति राजनीति के क्षेत्र में एक मजबूत और कुशल खिलाड़ी के रूप में उभर रहा है। इससे भारत के परमाणु संयंत्रों की ताला बन्दी भी टल रही है और

परमाणु ईंधन भी मिलने लगा है। उर्जा लक्ष्य की पूर्ति की संभावनाएँ भारतीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति से संबद्ध हैं और वह कई नवीन परमाणु रियेक्टर बना रहा है जिनसे 2016 तक 5020 मेगावाट अतिरिक्त परमाणु बिजली प्राप्त होगी।

उक्त करार की सफलता एवं भारत के परमाणु उर्जा एवं राजनीतिक हितों की पूर्ति हेतु सुझाव निम्नवत हैं :

1. यदि किन्ही परिस्थितियों में करार टूटता है, तो भारत को वो सारी मशीनें, औजार और प्रौद्योगिकी वापस करनी होंगी, जो इस करार के तहत भारत को प्राप्त होंगे। इसके अलावा हमारे चौदह असेन्य परमाणु रिएक्टरों पर निगरानी जारी रहेगी। वहीं दूसरी तरफ अमेरिका द्वारा करार में किए गए किसी वायदे को यदि तोड़ा जाता है तो ऐसी हालत के लिए भारत पहले से ही जागरुक होकर अपने लिए ऐसे विकल्प तैयार रखे, जिससे करार टूटने के बाद भी स्थितियाँ भारत के नियंत्रण में रहें।
2. परमाणु रिएक्टरों पर आतंकी हमलों की आशंका के साथ किसी भी प्रकार की असावधानी होने पर, पूर्व नियोजित सुरक्षा चक्र तैयार रहे।
3. यूरोपीय देश पुरानी तकनीकि, कल पुर्जों व अनावश्यक उत्पाद को निर्यात न कर पायें।
4. सैन्य परमाणु कार्यक्रमों के रहस्य अमेरिका न जान सके व सैन्य रिएक्टरों की गुप्त सूचनाएँ अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षकों को प्राप्त न हो पाएं।
5. हाइड एक्ट 40 वर्षों तक परमाणु उर्जा कार्यक्रम के बारे में भारत की वार्षिक रिपोर्ट को अमरीकी राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रावधान करता है। इस सन्दर्भ में अमेरिकी राष्ट्राध्यक्ष किसी भी अनियमितता की भनक या संदेह होने पर समझौते पर पुनर्विचार कर सकता है। इस पुनर्विचार के दौर में सभी प्रकार की ईंधन आपूर्ति व सेवाएं बन्द रहेंगी, ऐसी हालत के लिए भारत पहले से ही जागरुक होकर अपने लिए ऐसे विकल्प तैयार रखे, जिससे करार टूटने के बाद भी स्थितियाँ भारत के नियंत्रण में रहें।
6. साइरस रिएक्टर (प्रमुख सैन्य परमाणु संयंत्र) के बन्द हो जाने व अप्सरा रिएक्टर के कुछ हिस्सों को हस्तान्तरित करने से हमारी परमाणु उत्पादक क्षमता पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव एवं हानि की भरपायी हेतु नवीन विकल्पों की समय रहते प्रयास आवश्यक हैं।
7. परमाणु उर्जा की परियोजनाओं पर पुनर्विचार करते हुए ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की ओर बढ़ना चाहिए।
8. नाभिकीय उर्जा का भविष्यगत विकल्प न्यूक्लियर फ्यूजन रियेक्टर पर अनवरत शोध जारी रखना चाहिए।
9. दुनिया के ज्ञात थोरियम भंडार का एक चौथाई भारत में है। थोरियम के रिएक्टरों का उपयोग बढ़ाने की नीति एवं शोध में रत रहना चाहिए। भारत को ऊर्जा के अन्य विकल्पों के साथ थोरियम के विकल्पों को विशेष रूप से तलाशना चाहिए, निश्चित रूप से यह एक महत्वपूर्ण बिंदु है। जिससे

यदि भारत के परमाणु विस्फोट करने या अन्य कारणों से अमेरिका समझौते से पीछे हट जाता है तो भारत को कोई विशेष हानि न हो सके ।

10. अमेरिका वैश्विक राजनीति के क्षेत्र में एक विश्वसनीय राष्ट्र नहीं है अतः भारत को विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के साथ बिना अमेरिकी प्रभाव के संबंधों को विकसित करना चाहिए यथा ईरान ।
11. सूर्य से प्राप्त ताप आधारित ऊर्जा, पवन ऊर्जा और भूतापीय ऊर्जा का उपयोग विशेष रूप से बढ़ाए जाने की आवश्यकता है ।

संदर्भ सूची

1. भारत अमेरिका असैन्य परमाणु समझौता, डा० राघवेंद्र किशोर, आकाश गंगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली ISBN 81-89363-17-4, पृष्ठ 62,63,64
2. अमर उजाला, सफलता, सी 21-22, सेक्टर-59, नोएडा, जनवरी 2012, पृष्ठ 53
3. चौथा भारत परमाणु ऊर्जा शिखर सम्मेलन <http://www.aajkikhabar.com/hindi/News/National/NUCLEAR-POWER-SUMMIT-2012/139398.html>
4. American Understanding of India: A Symposium (Papers read at a conference held at the Library of Congress, 23-25 October 1986; Convened in conjunction with the Festival of India 1985-1986)/edited by Louis A. Jacob. New Delhi, Manohar, 2001, 189 p., \$22. ISBN 81-7304-408-2. Page 56,88,74
5. परमाणु गाथा, डा० सुनील जोगी, डायमंड पाकेट बुक्स (प्रा०) लि०, नई दिल्ली ISBN 978-81-288-1218-7, पृष्ठ 80, 89
6. www.visfot.com विस्फोट_कॉम 002.htm
7. INDIA'S NUCLEAR DEBATE : INDO-US CIVIL NUCLEAR CO-OPERATION AGREEMENT. NEW DELHI, ACADEMIC EXCELLENCE, 2008 INDO-U.S. CIVIL NUCLEAR DEAL, EDITED BY RAHUL BHONSLE, VED PRAKASH AND K.R. GUPTA. NEW DELHI, ATLANTIC, 2007, 2 VOLS., XXVIII Page 28,29
8. परम ऊर्जा : चरम विनाश (भाग-2) <http://hindi.indiawaterportal.org>
9. INDO-U.S. CIVIL NUCLEAR DEAL, EDITED BY RAHUL BHONSLE, VED PRAKASH AND K.R. GUPTA. NEW DELHI, ATLANTIC, 2007, 2 VOLS., XXVIII, page 92,93
10. योजना, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, नई दिल्ली ISSN 0971-8397 नवंबर, 2008, पृष्ठ 35, 36, 37
11. हिन्दुस्तान कानपुर, 17 सितंबर 2008, पृष्ठ 8,9,10 एवं 12, 13 अक्टूबर 2008, पृष्ठ 01,02
12. Abraham, Itty (1997) : "science and secrecy in making of postcolonial state", Economic and Political Weekly, August 16-23, pp.2136-46
13. <http://www.bhartiyapaksha.com/?p=2398>
14. Journal of the Institution of Engineers (India), Volume 50, Author Institution of Engineers (India), Publisher The Institution, 1969 Original from the University of Virginia Digitized 13 Aug 2010 Export Citation Page 88,89
15. टाइम्स ऑफ इंडिया दिल्ली, मुख्य पृष्ठ, 9 मई 1983



बाल श्रम एवं अधिनियम : एक विश्लेषण

डॉ० वीरेश पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक—अर्थशास्त्र विभाग

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)

दायित्वों की व्यस्तता के क्षण में या निर्वहन के भार से मन, भारी होकर कैन्टीन/होटल की ओर चलने को आतुर होता है। और मन में रहता है कि चाय पीकर मन को हल्का करें। परन्तु कैन्टीन या होटल पहुँचते ही मन और भारी हो जाता है। वह इसलिए नहीं की होटल में भीड़ या गंदगी है। बल्कि इसलिए कि जाते ही प्रारंभ में मिलता है एक 12 वर्षीय बालक जो तुरन्त टेबिल में कपड़ा मारता है ग्लास में पानी लाता है फिर कहता है। श्रीमान् क्या लाऊँ। मन करता है कि कह दूँ। कि कुछ न लाओ तुम आराम करो। परन्तु जब मालिक से आँख चार होती है। तो लगता है कि वह कहने वाला है कि फालतू न बैठे सीट खाली करें। और कहना पड़ता है चाय लाओ। तभी मालिक उस बालक (12 वर्षीय) को कहता है। कल्लू प्लेट उठाओ/पोछा लगाओ/पानी डालो आदि/चाय की ताजगी से दिमाग चलने लगता है और प्रश्न उठता है कि क्या यही है बाल श्रम जिसके लिए अधिनियम बने हैं बालश्रम तो दिखता है परन्तु अधिनियम नदारद मिलता है।

बाल श्रम क्या है —

बाल श्रम का अर्थ उस कार्य से है जिसमें कार्य करने वाला व्यक्ति कानून द्वारा निर्धारित आयु सीमा से कम होता है। इस प्रथा को कई देशों और संगठनों ने शोषित करने वाला माना है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने बाल श्रम को भिन्न-भिन्न तरीकों से परिभाषित किया है। यदि किशोर या बच्चे ऐसे कार्यों में लगे हैं जो उनके स्वास्थ्य तथा व्यक्तिगत विकास को प्रभावित नहीं करता है। अथवा उनकी स्कूली शिक्षा में हस्तक्षेप नहीं करता किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता है। वह बाल श्रम की परिधि में नहीं आता है। बल्कि इसे सकारात्मक समझा जा सकता है। एक अन्य विद्वान जन की परिभाषा के अनुसार “वह कार्य जो बच्चों को उनके बचपन उनकी क्षमता व गरिमा से वंचित करता है। वह कार्य जो बच्चे को मानसिक, शारीरिक, सामाजिक व नैतिक रूप से हानि पहुँचाता हो या शैक्षणिक कार्य में बाधा डालता हो या स्वस्थ बचपन में हस्तक्षेप करे यह बाल श्रम है।

यूनिसेफ बाल श्रम को इस तरह से परिभाषित करता है “एक बच्चा जो बालश्रम गतिविधियों में लिप्त है यदि उसकी आयु 5 वर्ष से 11 वर्ष के बीच है यदि वह एक घंटा आर्थिक क्रियाओं या एक सप्ताह में 28 घंटे घरेलू कार्य करता है। अथवा 12 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों में यदि वह कम से कम 14 घंटे आर्थिक क्रियाएँ या एक सप्ताह में कम से कम 42 घंटे आर्थिक क्रियाओं तथा घरेलू कार्य में लगा है। बालश्रम के अंतर्गत आता है यूनिसेफ ने बालश्रम को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। (क) परिवार में कार्यरत (ख) परिवार के साथ घर से बाहर कार्यरत (ग) परिवार से अलग घर से बाहर कार्यरत।

इन सब विवेचनों के बाद प्रश्न यह उठता है कि यह सब परिस्थितियाँ कब, कहाँ कैसे और क्यों पाई जाती हैं। या नहीं/उत्तर मिलता है, विकासशील देशों में तो बहुतायत के साथ परन्तु विकसित देशों

में भी पाया जाता है। रही बात भारत की तो भारत में तो यह सर्वाधिक व्याप्त है। तो दूसरा प्रश्न उठता है कि तो भारत सरकार इसके लिए क्या करती है। तो उत्तर मिलता है कि कठोर अधिनियम और कानून बनाती है तो प्रश्न उठता है कि क्या इनका पालन होता है तो दशाएँ उत्तर देती हैं कि नहीं। इससे सबसे मोटी बात आती है/बाल अधिकार की/आखिर बाल अधिकार है क्या/और क्या इन अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है या नहीं। तो सर्वविदित और सर्व व्याप्त है कि बाल अधिकारों का उल्लंघन होता है। तब हम, हमारा समाज हमारी सरकार क्या करती है।

बाल अधिकार उल्लंघन —

प्रश्न उठता है कि बाल अधिकार उल्लंघन क्या है। यदि निश्चित आयु में कोई बच्चा घर के या स्कूल के काम को छोड़कर कोई अन्य कार्य करता है। तो यह अनुचित माना जाता है किसी भी नियोक्ता को एक निश्चित आयु से नीचे उम्र के बच्चे को काम में रखने का अधिकार नहीं है। कुछ विद्वान अर्थशास्त्री मानते हैं कि बालश्रम का मूल कारण माता-पिता की गरीबी और गैर जिम्मेदारानापन है। भारत में भी अन्य विकासशील देशों की तरह बाल श्रम व्यापक रूप से विद्यमान है यद्यपि हमारे देश में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चे काम नहीं कर सकते फिर भी कानून का उल्लंघन होता है। छोटे-छोटे बच्चे 18-20 घंटे तक काम करते हैं। इसका कारण कम मूल्य में सस्ता श्रम है। अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की अक्षमता को माना जाता है। जिन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं होता है।

भारत सरकार ने 1987 के प्रारंभ में ही बाल श्रम पर राष्ट्रीय नीति की घोषणा कर दी थी सबसे पहले विकासशील देशों में भारत में ही कानून बनाया गया और आज भी वह कानून मौजूद है परन्तु फिर भी हजारों बच्चों से लगातार काम करवाया जा रहा है। सन् 1990 ई0 के दशक में एक सम्मेलन में सोमालिया और अमेरिका को छोड़कर समस्त देशों ने बाल अधिकार संबंधी कानून पर हस्ताक्षर किए।

हमारे देश में गरीब परिवारों के लिए उनके बच्चे ही आय के स्रोत हैं। जो मजदूरी करके अपने परिवार का पेट पालते हैं अतः बच्चा 6-8 वर्ष की उम्र से ही गरीबी और अशिक्षा की मार झेलने लगता है। जिससे कुपोषण के शिकार होने लगते हैं तथा कई तो काम के दौरान ही काल के गाल में समा जाते हैं। पुरानी जनगणना 2001 के आंकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 1 करोड़ तीस लाख बाल मजदूर हैं। जो इन दस वर्षों में और बढ़ ही गए होंगे। यूनिसेफ इसे और बहुत अधिक मानता है। चौंकाने वाला तथ्य यह है कि भारत के कुल कार्यबल का 11 प्रतिशत बच्चे हैं तथा प्रत्येक 10 श्रमिकों पर एक बच्चा है। वर्ष 1979 में भारत सरकार ने गुरुपादस्वामी कमेटी गठित की थी। जिसने कहा कि समाज में जब तक गरीबी है। तब तक बाल श्रम कम नहीं किया जा सकता। कमेटी ने निर्धारण किया कि खतरनाक कार्यों में बाल श्रम पर रोक लगाई जाय। सस्तुतियों के आधार पर बाल श्रम प्रतिबाधित अधिनियम 1986 पारित किया गया।

बालश्रम संबंधी कानून एवं नियम —

समय-समय पर बहुत सारे कानून/अधिनियम बनाए गए परन्तु रहा ढाक के तीन पात।

- (क) बालश्रम विनियमन अधिनियम 1986 — 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के कार्य पर खानों, कारखानों और खतरनाक कार्यों में रोक।
- (ख) किशोर न्याय एवं संरक्षण अधिनियम 2000 — इसके अंतर्गत बच्चों की समुचित देखभाल और

संरक्षण उपलब्ध कराना है।

- (ग) बाल श्रम गिरवीकरण अधिनियम 1933 – कई बार मजदूरी में माता-पिता अपने बच्चों को श्रम के लिए गिरवी रख देते हैं और लिखित करार कर लेते हैं। इस अधिनियम के बाद गिरवीकरण लगभग शून्य हो गया है।
- (घ) कारखाना अधिनियम 1948 – इसके अनुसार बच्चों को खतरनाक काम में नियुक्त न करने का प्रावधान है।
- (ङ) खान अधिनियम 1952 – इसमें बाल श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा का प्रावधान है। इसके अलावा अन्य भी अधिनियम हैं जो बच्चों के हितार्थ हैं।

बाल श्रम का स्वरूप –

बाल श्रम पूरे विश्व में विश्व के सभी देशों में कमोवेश व्याप्त है चाहे छोटे उत्पादक हों या बड़े इसका सब दुरुपयोग कर रहे हैं।

- (क) कारखानों में बाल श्रम – भारत में कारखानों का विकास औद्योगिक क्रांति के पश्चात प्रारंभ हुआ था। और उसी समय से शिक्षा संस्थानों से कारखानों की ओर बालश्रम अधिक बढ़ा है।
- (ख) अनियंत्रित उद्योग में बाल श्रम – इसमें बाल श्रम बुरी तरह प्रभावित होता है और इनमें कारखाना अधिनियम लागू नहीं होता। जैसे-चूड़ी, उद्योग, अभृक उद्योग, चमड़ा एवं कांच उद्योग, कपड़ा बुनाई उद्योग। फिरोजाबाद में चूड़ी उद्योग, बिहार में चमड़ा एवं कांच उद्योग, असम में कपड़ा बुनाई उद्योग, उ.प्र. में ताला, खिलौना आदि उद्योग बंगाल में कपड़ा बुनाई उद्योग दिया सलाई उद्योग, देश में कोटार उद्योग जहाँ बालकों की तुलना में बलिकाओं को लगाया जाता है। उपरोक्त सभी में बालश्रम का शोषण होता है।
- (ग) उद्यानों में बालश्रम – काफी मात्रा में बाल श्रमिकों से कार्य लिया जाता है।
- (घ) खनिज उद्योगों में बाल श्रम – इस क्षेत्र में भी बाल श्रमिकों की बहुतायत है।
- (ङ) गैर औद्योगिक व्यवसायों में बाल श्रम – इसमें बालकों को घोर पीड़ित किया जाता है, होटल, शराब घर आदि।

बाल श्रम के कारण –

1. निर्धनता
2. महंगाई
3. उद्योगपतियों को लाभ
4. अशिक्षा
5. कृषि पर भार
6. नियमों की शिथिलता
7. कुटीर उद्योगों का पतन आदि।

उपरोक्त कई कारण हैं जो बाल श्रमिकों की समस्या में निरन्तर वृद्धि कर रहे हैं।

बाल श्रम की समस्याएँ –

1. कम आयु में कार्य करना।
2. दोषपूर्ण दशाओं में कार्य करना।
3. अधिनियमों का पालन न होना।

4. अनैतिक एवं असामाजिक शोषण।
5. अनिश्चित कार्य के घंटे एवं कम मजदूरी।
6. शिक्षा से वंचित

समस्या निदान के उपाय –

1. निरीक्षण कर्मचारियों में कर्तव्यपारायण इंस्पेक्टरों की संख्या में वृद्धि और कठोरता से कार्यवाही।
2. परिवार के पुरुष सदस्य की मासिक आय इतनी अधिक होनी चाहिए कि वह अपने परिवार की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।
3. और अधिक कई अधिनियम और कानून बनने चाहिए और उससे कहीं अधिक कड़ाई से पालन होना चाहिए।

भावी नीति एवं सुझाव –

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारत सरकार ने बालश्रम सुरक्षा हेतु विभिन्न अधिनियम एवं कानून बनाए हैं। परन्तु यह संतोषजनक नहीं है इसके लिए निम्न सुझाव हो सकते हैं –

1. संरक्षकों की आय का ध्यान रखा जाना चाहिए। यह आय इतनी अधिक होनी चाहिए कि वह अपने परिवार का पालन पोषण ठीक से कर सकें। जब तक आय नहीं बढ़ेगी तब तक बाल श्रम नियंत्रण की बात मूर्खता होगी।
2. शिक्षा और जागरूकता इतनी अधिक होनी चाहिए कि मां-बाप स्वयं ही नियंत्रण की बात सोचें और भविष्य सुधारें।
3. जो नियम/अधिनियम/कानून बने हैं उनका अच्छी कड़ाई से पालन होना चाहिए। कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। उद्योगों के अंदर शिक्षा की पर्याप्त सुविधा होनी चाहिए।

श्रम जांच समिति ने ठीक ही कहा है कि श्रमिकों के संतान की जिम्मेदारी सरकार की होनी चाहिए।

संदर्भ सूची

1. योजना पत्रिका
2. श्रम अर्थशास्त्र—डॉ. बबिता अग्रवाल।
3. श्रम समस्या और श्रम कल्याण—डॉ. रामचन्द्र पाठक।
4. कुरुक्षेत्र।
5. कोटिल्य शोध-पत्रिका।



मेव युवा वर्ग में बढ़ता तनाव एवं परिवार की भूमिका

डॉ० मिथिलेश गुप्ता

बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

मेव युवा वर्ग में बढ़ते तनाव की बात करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि युवा वर्ग से हमारा क्या अभिप्राय है? युवा एक ऐसी शक्ति है जिस पर किसी देश का भविष्य निर्धारित होता है। युवा वर्ग से आशय प्रायः उन युवकों से लगाया जाता है। जो अपनी पूर्व किशोरावस्था व्यतीत कर उत्तरकिशोरावस्था की ओर उन्मुख हो रहे हैं। यह अवस्था अलग-अलग देशों में अलग-अलग आयु की है। जिसे प्रायः 17 से 19 वर्ष की आयु प्रमुखतः माना गया है जबकि भारतीय मनीषियों ने आश्रम व्यवस्था में ब्रह्मचर्य आश्रम प्रथम आश्रम को मानकर जिसकी आयु 25 वर्ष तक है, इस दृष्टि से किशोर युवावस्था 17 से 25 वर्ष तक मानी जा सकती है। इस अवस्था को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तनाव का काल कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं क्योंकि युवाओं में अभिवृत्तियों, रुचियों में अस्थिरता विद्यमान होती है। कच्ची मिट्टी को सही आकार देकर उसे मजबूती प्रदान करना आसान नहीं अपने में मस्त विकेन्द्रित आज बनी युवा पीढ़ी न मिट्टी के बारे में जानती है और न ही उससे कुछ बनाने के बारे में।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है और परिवर्तन होना स्वाभाविक भी है। अतः निश्चित है कि समाज में भी परिवर्तन अवश्यम्भावी है, समाज उससे अछूता कैसे रह सकता है? प्रत्येक समाज सन्तुलन व असन्तुलन के दौर से गुजर रहा है। प्राचीनता को त्यागकर नवीनता को महत्व देना परिवर्तन का पहलू रहा है। विगत छः दशकों में विशेषकर पिछले 30 वर्षों में समाज के विभिन्न आयामों में तेजी से बदलाव आया है। युवा पीढ़ी उस प्रभाव से प्रभावित हुये बिना कैसे रह सकती है? वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों ने समाज में असन्तोष एवं अलगाव को जन्म दिया है। पूर्व स्थापित सामाजिक मूल्य एवं प्रतिमान अपना प्रभाव खोते जा रहे हैं। यह बात समाज के प्रत्येक क्षेत्र में लागू हो रही है। अतः मेव समुदाय इससे वंचित कैसे रह सकता है? तक्षशिला, नालन्दा व गुरुकुल का स्थान महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय लेते जा रहे हैं, जहाँ अध्ययन विधि में बदलाव के साथ-साथ पाठ्यक्रम, विषयवस्तु भी बदली है। संरचनात्मक परिवर्तन के साथ-साथ प्रकार्यात्मक बदलाव ने शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत युवा पीढ़ी में परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया है। मैकडोनाल्डीकरण कोकाकोला संस्कृति के दौर में समाज का जो नया ताना-बाना उभरकर सामने आ रहा है, वो शायद हमें व हमारी युवा पीढ़ी को आस्थाओं, विश्वासों से दूर होने को मजबूर कर रहा है।

औद्योगीकरण, नगरीकरण, पाश्चात्य से प्रभावित वर्तमान जीवन शैली, असन्तुलित व प्रदूषित पर्यावरण, जीवनशैली से जुड़े विभिन्न मूल्य एवं प्रतिमान तथा उच्च स्तरीय महत्वाकांक्षा द्वारा उल्लंघन, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, गला कॉट प्रतिस्पर्द्धा सफलता के भौतिक सूचक, मूल्य विहीनता, विसंगति, असहज अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध सामाजिक सांस्कृतिक पर्यावरण ने इस प्रकार के अप्रकार्यात्मक तत्वों को बढ़ावा देकर निराशा, असन्तोष, चिन्ता, तनाव और कुंठा को बढ़ावा दिया है जिससे मेव युवा पीढ़ी भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। जिसके अनेक कुपरिणाम सामने आये हैं। जिनका सामना करने के अलावा व्यक्तियों के पास अन्य कोई उपाय नहीं है।

वैश्वीकरण ने जहाँ विश्व बन्धुत्व की भावना को साकार किया है, वहीं भौगोलिक दूरियों को भी

सीमित किया है। आज विश्व में होने वाली प्रत्येक घटना का पड़ोसी देश की संस्कृति, अपसंस्कृति एवं कार्यशैली का प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ा। जिससे भारतीय संस्कृति में अनेक परिवर्तन दृष्टगत हो रहे हैं पर संस्कृति ग्रहण¹, संस्कृति विसरण², पश्चिमीकरण के कारण भारतीय संयुक्त परिवार प्रणाली प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। फलतः संयुक्त परिवार के स्थान पर एकल परिवार तथा 3 या अधिक पीढ़ियों के साथ-साथ निवासिता के स्थान पर माता-पिता और उनके अविवाहित बच्चे अर्थात् दो पीढ़ियों के ही रहने के कारण मेव परिवार में बच्चों का भविष्य असुरक्षित सा प्रतीत हो रहा है। डार्विनावाद³ के सिद्धांत योग्यतम के चयन पर आधारित उच्च स्तरीय प्रतिस्पर्धा, गल कॉट प्रतिस्पर्धा से जहाँ योग्यतम एवं शक्तिशाली व्यक्ति ही स्वयं के अस्तित्व को बचाने में कामयाब होता है। इस दिशा में डार्विन की मान्यता है कि योग्यतम के चयन की दिशा में प्रकृतिवरण के सिद्धांत के आधार पर प्रकृति स्वयं खूनी पंजे अपनाती है, फलतः सर्वाधिक सक्षम व्यक्ति सीमित साधन स्रोतों पर अधिकार करने में सफल होता है। अतः कौन उन परिस्थितियों में जीवित रहने लायक है, उसका वरण प्रकृति द्वारा ही कर लिया जाता है। जिसे कार्ल मार्क्स⁴ ने पूंजीपति कहकर पुकारा है। जिनकी संख्या सीमित होती है तथा जिनका साधन स्रोतों पर अधिकार होता है। मॉल्थस⁵ ने अपने लेख में बताया कि जनसंख्या वृद्धि गुणात्मक तथा उसकी तुलना में साधन स्रोत धनात्मक दृष्टि से बढ़ते हैं, फलतः अस्तित्व के लिए संघर्ष परिवारों के समक्ष मुख्य समस्या आधुनिक औद्योगिक समाजों में उभर कर आई है। ऐसी परिस्थिति में मेव युवक भी वंचितता के दौर से गुजर रहा है और स्वयं का अभाव ग्रस्तता के कारण असहाय सा महसूस कर रहा है क्योंकि प्रथम तो मेव समुदाय में शिक्षा का प्रतिशत अत्यन्ताल्प है बावजूद उसके जो पढ़े लिखे हैं उन्हें आशानुकूल व योग्यतानुसार व्यवसाय नहीं मिल पाने के कारण तनाव होना स्वाभाविक है।

पैतृक गांव से दूर जीविकार्जन से जुड़े अभिभावक पारिवारिक संरचना में आये बदलाव के कारण बच्चों को “नौकर”, “भेड़” या “कैच” के भरोसे छोड़ देते हैं। उच्च स्तरीय प्रतिस्पर्धा में स्वयं को सफलतम साबित करने में जुटे अभिभावक ये भूल जाते हैं कि वे भावी पीढ़ी के बचपन से भावानात्मक खिलवाड़ कर रहे हैं। हांलाकि मेव समुदाय में इसकी प्रतिशतता कम है। लेकिन जब तक उनकी नींद खुलती है। काफी विलम्ब हो चुका होता है।

उद्देश्य— अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं—

1. तनाव से ग्रसित मेव युवकों की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि क्या है?
2. निवासिता का तनाव से क्या कोई सम्बन्ध है ?
3. मेव युवा पीढ़ी के तनाव तथा आयु के मध्य सम्बन्ध ज्ञात करना।
4. मेव युवा वर्ग में तनाव एवं शिक्षा के मध्य सम्बन्ध ज्ञात करना।
5. ज्ञान (शिक्षा), विज्ञान (तकनीकी) एवं संचार माध्यमों ने मेव युवा पीढ़ी को किस प्रकार प्रभावित किया है ?
6. चरित्र निर्माण में परिवार की भूमिका का विश्लेषण करना।
7. मेव युवा वर्ग में समाजीकरण का प्रभाव जानने का प्रयास करना।

अध्ययन पद्धति एवं अध्ययन क्षेत्र — प्रस्तुत अध्ययन जयपुर तथा दिल्ली दो राजधानियों के मध्य स्थित अलवर शहर जो कि वर्तमान में राष्ट्रीय राजधानी (NCR) में सम्मिलित है। मत्स्य में उद्गम के कारण मेवात कहलाता है तथा औद्योगिकरण के कारण शिक्षा तथा व्यवसायिक दृष्टि से काफी विकसित माना जाता है। जहाँ भारत के कोने-कोने से विभिन्न राज्यों से छात्र उच्च शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त

करने आते हैं। यहाँ संस्थाएँ तथा व्यवसायिक शिक्षा प्रदान करने हेतु माप दण्डों पर खरे उतरने वाले शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत 60 स्नातकोत्तर छात्रों से तथा 60 व्यवसायिक शिक्षा से जुड़े 17 से 25 वर्ष के छात्रों, उनके अभिभावकों, जीवन शैली, दिनचर्या व रुचियों के बारे में कुछ प्रश्नों के माध्यम से सूचनायें एकत्रित की तथा द्वितीयक तथ्यों पत्र पत्रिकाओं के आधार पर तथ्य संग्रह किये। अध्ययन में पाया कि यूं तो किशोरावस्था कभी भी सहज नहीं रही लेकिन कुछ दशकों से अप्रत्याशित समृद्धि के बीच भारतीय मेव किशोरों के लिए आयु का यह सन्धिकाल बेहद कठिन बन गया है। कम समय में अधिक पाने की आकांक्षा गला कॉट प्रतियोगिता, सहनशीलता की कमी, भरपूर जोश किन्तु होश का अभाव निरन्तर बढ़ते दबाव से युवा पीढ़ी निरन्तर अवसाद का शिकार बन रहे हैं। जिसकी परिणति जीवन समाप्ति बन जाती है। नेशनल क्राइम ब्यूरो के अनुसार 2006707 में 5857 छात्रों ने अपने जीवन का अन्त किया। यानि हर दिन 16 आत्महत्याएँ जबकि विश्वभर में किशोरों में आत्महत्या की दर 4.5 प्रति हजार है। विभिन्न शोधों से पता चलता है कि भारत में परीक्षा का दबाव और निराशा न झेल पाने की मानसिकता ही आत्महत्या का मुख्य कारण है। भारत में हर 90 मिनट में एक युवा आत्महत्या की कोशिश करता है। सफलता और असफलता के मध्य संघर्ष करता हुआ युवा वर्ग जीवन की बेहद नाजुक अवस्था से गुजर रहा होता है। एक बच्चा जब युवावस्था की दहलीज पर पांव रखता है तो उस पर बहुत सी बातों का प्रभाव पड़ता है। जैसे— उसका आर्थिक स्तर, पारिवारिक पृष्ठभूमि, पारिवारिक माहौल, आस-पड़ौस का प्रभाव। उसकी सोच, उसके विचार जमीन से जुड़े कतई नहीं होते। भौतिकवादी प्रवृत्तियों से सर्वाधिक प्रभावित होने के कारण पीढ़ियों का अन्तर आ जाता है।

अध्ययन के दौरान मैंने पाया कि —

1. संयुक्त परिवार की तुलना में एकल परिवार में रहने वाले मेव विद्यार्थी अपराध अधिक कर रहे हैं।
2. मेव परिवारों के छात्रों में जिनके दोनों अभिभावक मौजूद नहीं हैं, अथवा दोनों में से एक ही मौजूद है अपराधिक प्रवृत्तियों में भी अधिक सन्तुष्ट पाये गये।
3. स्थानीय अभिभावक के साथ रहने वाले छात्रों की तुलना में छात्रावास में रहने वाले मेव विद्यार्थी अपराधिक प्रवृत्तियों व नशे की लत के अधिक शिकार होते हैं।
4. ग्रामीण परिवेश में निवासित मेव युवाओं की तुलना में शहरी क्षेत्र में निवास करने वाले मेव युवा पीढ़ी भटकाव की ओर अग्रसित अधिक देखी जा रही है।
5. विवाहित की तुलना में अविवाहित तथा 17 से 25 वर्ष की आयु के मेव युवकों में भटकाव की प्रवृत्तियाँ अधिक देखने को मिल रही हैं। अध्ययन के दौरान यह भी देखा गया है कि एक दूसरे से आगे निकलने, जिन्दगी को बेहतर बनाने की चाहत, स्वयं को समय न दे पाना, तनाव को जन्म देती है। फलतः अपराध के नूतन आयाम की ओर इनके कदम बढ़ रहे हैं। जैसे—नशा, अपहरण, बलात्कार, टटलू काटना तथा गैर मेव समुदाय के घर, जमीन, दुकान आदि पर कब्जा आम बात है।

सन् 2012 ई0 जुलाई-अगस्त 2 माह में अलवर शहर में एक दर्जन लोगों ने अपनी जीवन लीला समाप्त की, जिनमें 60 प्रतिशत 20 से 25 वर्ष की आयु वर्ग के रहे हैं। उनमें 30 प्रतिशत महिलाएँ थीं। इससे यह भी निष्कर्ष निरूपित होता है कि भारतीय समाज अब ऐसी व्यवस्था को आत्मसात कर रहा है। जो अपार भीड़ के बीच शून्यता का बोध कराने वाली है। जिसका उल्लेख समाज वैज्ञानिक एरिक फ्राम ने भी किया था। तरक्की की समूची बहस ही लिव इन रिलेशनशिप पर केन्द्रित होती जा रही है।

तो असली फैमिली तो धीरे-धीरे आदिवासी स्वरूप को ही प्राप्त करने वाली है। भारतीय समाज जो अकेलेपन से हमेशा घबराता और डरता है। अब एक ऐसी व्यवस्था को आत्मसात कर रहा है जो अपार भीड़ के बीच भी उसे पूरी तरह शून्यता का बोध कराने वाली है। दूसरी ओर तनाव ने अकेलेपन को भी जन्म दिया है जो मेव विद्यार्थियों की कार्यशैली को तो प्रभावित करता ही है, स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। अध्ययन के निष्कर्ष आई.आई.टी. कानपुर से मिलते जुलते हैं। जहाँ इंजिनियरिंग के छात्रों द्वारा की गई आत्महत्या के कारणों का पता लगाने पर सामने आया। बौद्धिक तनाव ग्रेडिंग व्यवस्था का होना, आरक्षण व्यवस्था के कारण आरक्षित श्रेणी के छात्र आरक्षित स्थानों पर प्रवेश तो पा जाते हैं। लेकिन पाठ्यक्रम की कठिन और जटिलता के कारण उनमें stress level बढ़ रहा है। जो उन्हें निराशा ही प्रदान कर रही है। जिसके कारण 19/4, 31/5, 21/4 तथा 7/7 को युवा वर्ग आत्महत्या कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुके हैं। सर्वेक्षण में यह भी समानता देखी गई कि वर्तमान परिवेश में 50 प्रतिशत अवसाद, 25 प्रतिशत तनाव और असंतोष से दिशा भ्रमित होकर उदासीनता का अनुभव करते हुए असामान्य व्यवहार करते देखे जा सकते हैं। विचलन व विपथगामी व्यवहार इसी का परिणाम है जिस अवधारणा का उल्लेख दुर्खीम तथा मर्टन जैसे महान समाज वैज्ञानिकों ने की है।

युवा वर्ग में बढ़ते तनाव में परिवार की भूमिका – प्रस्तुत अध्ययन में युवा वर्ग में बढ़ते तनाव में परिवार की भूमिका को जानने का प्रयास किया गया है। बच्चों के समाजीकरण में परिवार महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। परिवार हमारे जीवन की बैक बोन मेरूदण्ड है जो पारिवारिक सदस्यों के मध्य महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन तो करता ही है साथ ही परिवार के सदस्यों को भावनात्मक जुड़ाव भी प्रदान करता है। बचपन में हमें लाड़ प्यार करने वाली दादी, नानी अब गायब हैं।

पिछले कुछ दशकों में सामाजिक व पारिवारिक संरचना में आये बदलाव से प्रभावित अपने ही दायरे और कैरियर में व्यस्त तेज गति का जीवन जीने वाले अभिभावकों के बच्चों पर इस परिवर्तित व्यवस्था का क्या प्रभाव पड़ा है। तो जो तथ्य सामने आये वे अत्यधिक चौकाने वाले थे—

1. आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण एवं पश्चिमीकरण के प्रभाव से प्रभावित भारतीय समाज में पारिवारिक संरचना में आये बदलाव ने मेव बच्चों में भी एकाकीपन व निराशा को जन्म दिया।

2. परिवार में विद्यमान अत्यधिक अनुशासन ने जहाँ मेव बच्चों को कुंठित और पलायनवादी बना दिया वहीं दूसरी ओर घरों परिवारों में गिरता अनुशासन नियन्त्रण में ढिलाई ने बच्चों को निरंकुश बना दिया। दुनियाभर के माता-पिता अपने बच्चों की उदण्डताओं को सहज स्वीकारने लगे हैं। सीमित परिवार की नकारात्मकता में कम बच्चों का होना परिवार का उनके प्रति स्नेह बढ़ा देते हैं। जिससे बाल्यावस्था में ही बच्चे अड़ियल, जिद्दी और अनुशासनहीन हो जाते हैं। माता-पिता स्वयं को दोषी मानकर अपने आपको सजा देते हैं, बच्चे अपनी जायज बेजायज मांग की पूर्ति न होने पर तनावित हो जाते हैं। यही बच्चे स्कूल या कॉलेज में उदण्डता की हदें पार करके परेशान करते हैं। पढ़ने वाले बच्चों को चिढ़ा-चिढ़ा कर तनावग्रस्त करते हैं।

3. अभिभावकों के अति महत्वाकांक्षी होने के कारण अभिभावक अपने अधूरे सपने अपनी संतान की आंखों में पूरा होता देखना चाहते हैं। इसलिये मेव बच्चों की रुचि उसकी भावनाओं की उपेक्षा कर अपने पूर्वाग्रहों से सम्बन्धित विषय अध्ययन हेतु बच्चों पर थोप देते हैं और उन पर सर्वश्रेष्ठ होने का दबाव बनाया जाता है। उपर से बच्चों को वों प्रथम स्थान पर आता देखने की चाहत में वे ये भूल जाते हैं।

4. समाजीकरण के प्रमुख उद्देश्य जैसे-व्यक्तित्व का चहुँमुखी विकास, नैतिक तथा अध्यात्मिक मूल्यों का आत्मसात, उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में प्रयत्न, बड़ों के प्रति सम्मान व आदर जबकि छोटे

के प्रति प्यार व आत्मीयता का परिवार द्वारा निर्वहन न किये जाने के कारण जहाँ एक ओर बच्चे विसमाजीकृत हो रहे हैं। वहीं दूसरी तरफ अभिभावकों को लड़के तथा लड़की में समाजीकरण के दौरान किये जाने वाले भेद से मेव बच्चों में उत्पन्न हीनता की भावना भी उन्हें तनावित कर रही है।

5. परिवर्तित जीवन शैली आराम पसन्द दिनचर्या, फास्टफूड, जंक फूड, पिज्जा, चॉकलेट, सॉफ्टड्रिंक ने बच्चों के स्वास्थ्य पर गंभीर नकारात्मक प्रभाव छोड़ा है।

6. तनावग्रस्त 85 प्रतिशत छात्र किसी न किसी तरह का नशा करते हैं जैसे जर्दा, शराब, स्मैक आदि। युवा वर्ग को तनाव मुक्ति की दिशा में प्रयास –

- परिवार में माता-पिता का दायित्व है कि बच्चों की बातों को धैर्यपूर्वक सुनें तथा अपने व्यस्त समय में से कुछ समय बच्चों को अवश्य दें।
- बच्चों की मानसिकता को समझें, उनके क्रिया कलापों पर छिद्रान्वेषी अवलोकन के स्थान पर सृजनात्मक सहयोग प्रदान करें।
- बच्चों को अपमानित ना करें, उन्हें अपेक्षित दुलार व स्नेह प्रदान करें। अपने कार्य क्षेत्र की पीड़ा और पारिवारिक दायित्वों के मध्य संतुलन बनाये रखें। भावनात्मक संबल के साथ-साथ संवाद बनाये रखें। अपनों द्वारा दिया गया विश्वास तथा प्रेम ही बच्चों को भटकने से बचाता है और इस भटकाव व अकेलेपन को रोकना अवसाद व आत्महत्या को रोकने की दिशा में कारगर उपाय भी है।
- बच्चों का उचित सकारात्मक समाजीकरण सही दिशा में हो, विशेष कर उनकी खान-पान की आदतों का अवलोकन करें।
- बच्चों द्वारा किये गये पीड़ादायक व्यवहारों को भुलाकर, भविष्य के अवसर प्रदान करें। छोटी-छोटी समस्याओं को बड़ा न बनायें, उन्हें सुलझाने का प्रयास करें।
- बच्चों की इच्छाओं को आवश्यकता की तराजू पर तौल लिया जावे ताकि वे ही इच्छाये संतुष्ट की जावें जो वास्तव में संतुष्ट होने का अधिकार रखती हैं।
- अध्ययन विषय चयन में बच्चों की रुचि व बुद्धिलब्धि के आधार पर विषय चयन को प्राथमिकता दें, अपनी महत्वकांक्षा एवं रुचि बच्चों पर थोपकर उनके भविष्य के साथ-साथ खिलवाड़ न करें।
- बच्चों की संगत, उसके मित्रों के बारे में जानकारी रखें, उनकी विलासिता पर ध्यान रखें, कोई नयी वस्तु, उपकरण, वाहन कहाँ से आया है। उसके संदर्भ में जानकारी प्राप्त करें।
- अति अनुशासन के स्थान पर मैत्रीपूर्ण व्यवहार को रखें क्योंकि कभी-कभी अति अनुशासन से भी बच्चे पलायनवादी बन जाते हैं।
- बच्चों को चुनौतियों को स्वीकार करने का साहस प्रदान करें, उन्हें स्थिरता के साथ सामना करने की शिक्षा प्रदान करें।

इंटरनेट के प्रति इक्कीसवीं सदी का हमारा शहरी युवा वर्ग मन में अच्छे विचार रखें 'तनाव से टूटती जिन्दगी की डोर' शीर्षक में बताया है कि युवा पीढ़ी नियमित व्यायाम करें, सोने व जागने का समय निश्चित हो, ज्यादा समय टी.वी. ना देखें।

इसके अतिरिक्त माता-पिता का दायित्व है कि इंटरनेट के प्रयोग सम्बन्धी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखें, क्योंकि कुछ साइट्स अनुपयोगी एवं नकारात्मक समाजीकरण करती हैं। इससे बच्चों के मन में विकार एवं असंगतता उत्पन्न होती है।



बाल अपराध एक जटिल समस्या

डॉ. अशोक कुमार यादव

असिस्टेन्ट प्रोफेसर-समाजशास्त्र विभाग

नेशनल पीजी गर्ल्स कॉलेज, अलवर (राजस्थान)

प्रत्येक समाज में सांस्कृतिक आदर्शों के अनुरूप एक जीवन शैली व कुछ मान्य व्यवहार होते हैं। यह व्यवहार समाज के सांस्कृतिक आदर्शों की प्राप्ति में सहायक होते हैं तथा आदर्शोन्मुख होते हैं और इनके द्वारा समाज का संतुलन बना रहता है किन्तु कतिपय कारणों से जब व्यक्ति मान्य आदर्शों के प्रतिकूल आचरण करता है तो उसे विचलन की संज्ञा दी जाती है। विचलन द्वारा समाज में विघटन की प्रक्रिया बढ़ती है तथा समाज का संतुलन डगमगाने लगता है। सामाजिक विघटन की समस्याएँ, आधुनिक औद्योगिक नगरीय समाजों में अनेक रूपों में दिखलाई देती हैं। इन्हीं समस्याओं में से एक गम्भीर समस्या बाल अपराध की भी है, जो कि सामाजिक और वैयक्तिक विसंगठन के रूप में प्रकट होती है। वास्तव में बाल अपराध की समस्या इतनी गम्भीर हो चुकी है कि आज यह किसी विशिष्ट देश या समाज की समस्या न रहकर विश्वव्यापी समस्या का रूप धारण कर चुकी है। वर्तमान समय में प्रायः सभी राष्ट्रों के लिए बाल अपराध में हो रही निरन्तर वृद्धि चिंता का विषय बनी हुई है। अतः इस समस्या के उत्तरदायी कारणों व नियंत्रण के तौर-तरीकों को ढूँढने का अनेक दृष्टिकोणों से प्रयत्न किया जा रहा है। निःसन्देह यह अध्ययन की एक महत्वपूर्ण समस्या है, इसी कारण बाल अपराध विचलन के एक स्वरूप के रूप में समाजशास्त्रीय अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय समझा जाता है।

सामाजिक संरचना में कुछ दबाव होते हैं जो कि अन्य विचलनकारी व्यवहारों की ही भांति बाल अपराध को भी प्रेरित करते हैं। अपराधशास्त्र के क्षेत्र में अनेक शोध होने के परिणामस्वरूप आज बाल अपराध को बच्चों के जीवन से सम्बन्धित एक सामान्य घटना के रूप में नहीं लिया जाता अपितु इस समस्या के निदान, रोकथाम व नियंत्रण के लिए सभी चिंतित हैं। यदि इस समस्या को नियंत्रित न किया गया तो बाल अपराध का प्रभाव परिवार व सामाजिक संतुलन पर पड़ सकता है, जो कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं बालक, देश व समाज के लिए घातक होगा।

वर्तमान समय में अपराधशास्त्र के क्षेत्र में अपराधी के जन्मजात होने के परम्परागत दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है जिसका प्रभाव बाल अपराध सम्बन्धी विचारधारा पर भी पड़ा है और यह समझा जाने लगा है कि कोई भी बालक जन्म से अपराधी न होकर किन्हीं परिस्थितियों के दबाव के कारण ही अपराध की ओर प्रवृत्त होता है। अतः यह विश्वास किया जाने लगा है कि बालक को अपराधी वातावरण से दूर रखकर सुधारा जा सकता है। सुधार के दण्डात्मक दृष्टिकोण में भी बदलाव आया है। पहले शारीरिक व मानसिक यातनाओं को महत्त्व दिया जाता था किन्तु धीरे-धीरे इसका स्थान सुधारात्मक संस्थाओं ने ले लिया है जिसके अन्तर्गत नैतिक, व्यवहारिक व व्यवसायिक शिक्षा को महत्त्व दिया जाने लगा है। इस प्रकार दण्ड के सुधारात्मक दृष्टिकोण का उद्देश्य व्यक्तित्व विकास के अवसर प्रदान कर बालक को समाज के एक क्रियात्मक सदस्य के रूप में तैयार करना है, जिससे कि न केवल उसकी विघटनकारी प्रवृत्तियों का संशोधन हो अपितु उसका समाज में भी सामन्जस्य हो सके। उचित व्यवस्था व कार्य प्रणाली के

परिणामस्वरूप बालक समाज विरोधी अभिवृत्तियों को छोड़कर सांस्कृतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु उचित साधनों का उपयोग करने लगेगा। उक्त लक्ष्य को सम्मुख रखकर बाल अपराध की समस्या की रोकथाम के उद्देश्य से भारत में भी, विश्व के अन्य देशों की भांति बाल अधिनियम बनाये गये, यद्यपि हमारे देश में बहुत ही कम लोगों को इस विषय में पर्याप्त जानकारी है। इन्हीं बाल अधिनियमों के अन्तर्गत बाल सुधार गृहों की स्थापना की गई, ताकि अपराधी बालकों को सुधार कर उन्हें समाज का एक योग्य नागरिक बनाया जा सके तथा बाल अपराध की वृद्धि को कुछ हद तक रोका जा सके। बाल अपराधियों के पारिवारिक परिवेश की जानकारी प्राप्त कर उनके अपराधी बनने के कारण जानना तथा बाल अपराधियों के लिए पुलिस तथा कानून की भूमिका के सम्बन्ध में एक अध्ययन है।

बाल अपराध के परिवार सम्बन्धी उत्तरदायी कारकों की खोज तथा बाल सुधार गृहों की सुधार प्रणालियों का मूल्यांकन करना है तथा यह जानने का प्रयास किया है कि कौन से पारिवारिक कारक हैं जिनसे प्रेरित होकर बालक अपराध की ओर प्रवृत्त होता है या कौन-सी वे सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामुदायिक परिस्थितियाँ हैं जो बालक को अपराधी बनाने में सहायक होती है ? बाल अपराध में कोई एक कारण अकेले ही बाल अपराधी व्यवहार के लिए उत्तरदायी नहीं है वरन् विभिन्न कारकों के सहयोग से ही बालक अपराध की ओर प्रवृत्त होता है। प्रश्न उठता है कि यदि कारकों का विशेष संयोग बाल अपराधी व्यवहार के लिए उत्तरदायी है तो किस तत्व को इस व्यवहार में कितना उत्तरदायी समझा जाए? यह समस्या इतनी गम्भीर रही है कि कुछ विद्वानों ने कारकों की खोज छोड़कर अपराधी क्षेत्रों, अपराधी उपसंस्कृति की खोज करना प्रारंभ किया लेकिन उन्हें इस दिशा में कोई विशेष सफलता नहीं मिली। इन कारकों में परिवार ही सबसे महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। क्योंकि बच्चा पैदा होने से ही उस परिवार के परिवेश से प्रभावित होता है। बाल अपराध एक जटिल सामाजिक घटना है जिसमें अनेक कारकों का समावेश ही नहीं, बल्कि एक विशेष संयोग होता है। इसमें हम समाज की वृहत् मूल्य व्यवस्था को भी ले सकते हैं और एक समुदाय की उपसंस्कृति को भी तथा इसमें हम भौतिक परिस्थितियों को भी ले सकते हैं और सामाजिक पर्यावरण को भी। सामाजिक नियंत्रण की शक्तियाँ भी अपना प्रभाव दिखलाती हैं जो कि समाज के कुछ व्यक्तियों का समाज विरोधी व्यवहार भी है। यह एक ऐसा संयोग है जिसमें यह बताना कठिन है कि कौन सा तत्व किस मात्रा में विद्यमान है। बाल अपराध के कारकों की जानकारी के साथ पुलिस द्वारा उन्हें निरुद्ध करने में क्या-क्या खामियाँ रह गई हैं एवं बालकों के लिए बने कानूनों एवं अधिनियमों का अध्ययन करके इसमें क्या कमियाँ रह गई आदि का एक साथ अध्ययन करने पर इस जटिल गुत्थी को हल करने का प्रयास किया गया है।

पुलिस द्वारा बाल अपराधी को निरुद्ध करने के तरीकों एवं बाल न्यायालय को सौंपने की क्रियाविधि एवं बाल अपराधियों पर बने कानूनों तथा बाल सुधार गृहों की सुधार प्रणालियों का मूल्यांकन किया गया है, उसमें यह देखा गया है कि ये सुधार गृह बालकों के सुधार के लक्ष्य को पूरा करने में कहाँ तक सफल रहे हैं क्योंकि आज इन सुधार गृहों के पास न तो सुधारवादी दर्शन को मूर्तरूप देने के लिए साधन ही हैं न ही उनके पास उस प्रकार के कर्मचारी हैं जो बाल अपराधियों का चारित्रिक पुनर्गठन कर सकें। इसके साथ ही जो महत्वपूर्ण तथ्य देखने को मिला है वह यह है कि इन सुधार गृहों से मुक्त होने पर अपराधी, निराश्रित बालक के लिये कोई उत्तर संरक्षण संगठन तथा प्रोबेशन हॉस्टल की व्यवस्था नहीं की गयी है। इसका परिणाम यह होता है कि सुधार गृहों से निकले बाल अपराधियों का एक बड़ा

भाग पुनः अपराध की ओर प्रवृत्त हो जाता है। इतना ही नहीं इन सुधार गृहों में रहने से बालक पर अपराधी का एक नामपट्ट लग जाता है अतः वह जब संस्था से मुक्त होता है तो समाज उसे एक अपराधी की दृष्टि से देखता है इससे बालक का समाज के साथ समायोजन नहीं हो पाता और वह पुनः अपराध की ओर उन्मुख हो जाता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि इन बाल सुधार गृहों को नया स्वरूप प्रदान किया जाये, साथ ही बालक के लिए संस्था से मुक्त होने पर पुनर्वासन की व्यवस्था करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. गुप्ता प्रो. एम.एल. एवं शर्मा डॉ. डी.डी. (2006) : “अपराध एवं समाज”, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. शर्मा मंजू (2007) : “किशोरावस्था की समस्याएँ”, शील पब्लिकेशन्स, जयपुर।
3. आहूजा राम एवं आहूजा मुकेश (1998) : “विवेचनात्मक अपराधशास्त्र”, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली।
4. राजोरा डॉ. सुरेश चन्द्र (2000) : “समकालीन भारत की सामाजिक समस्याएँ”, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
5. कपूर डॉ. बी.एस. (1987) : “अपराधशास्त्र, अपराधी व्यवहार व अपराधी सुधार”, मानवता प्रकाशन, वाराणसी, नई दिल्ली।
6. परांजपे ना. वि. (2006) : “अपराधशास्त्र एवं दण्ड प्रशासन”, सैन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण।



वैदिक वाङ्मय में योग विज्ञान की उपादेयता

डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

एसो० प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष-संस्कृत विभाग

राम स्वरूप ग्राम उद्योग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पुखरायों, कानपुर देहात

वैदिक वाङ्मय आर्य जाति के समस्त विद्याओं, ज्ञान-विज्ञान एवं सभी शास्त्रों का आधार है। ऐसी कोई विद्या नहीं जिसका वर्णन वेदों में प्राप्त न होता हो। योग भारतवर्ष की वह अमूल्य निधि है जिसकी साधना से ही पुराण, स्मृति, चिकित्सा, ज्योतिषादि शास्त्र सम्भूत हुए। दर्शन शास्त्र भी महर्षियों के योग विद्या का चमत्कार है। वेदों के विषय में भी यह कहना अनुचित नहीं होगा कि महर्षियों के योग-साधना के बल पर ही उन्हें वैदिक ऋचाओं का दर्शन प्राप्त हुआ “ऋषयः मन्त्रद्रष्टारः न तु कर्तारः”। आर्यजाति के समस्त साहित्य योग की महिमा का गुणगान करते हैं। एकाग्रता, समाधि तथा योग तीनों शब्द एक ही अर्थ के प्रतिपादक हैं। संसार का कोई भी ऐसा कार्य नहीं है चाहे वह व्यावहारिक हो अथवा पारमार्थिक, जो चित्त की एकाग्रता के बिना सम्पन्न हो सके। अतः प्रत्येक प्राणी को योग की शरण में आना होगा, अन्यथा वह अपने लौकिक तथा पारलौकिक किसी भी अभीष्ट को सिद्ध नहीं कर सकेगा। ऋग्वेद में योग के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि योग कि बिना विद्वान् का भी कोई यज्ञ कर्म नहीं सिद्ध होता, वह योग का क्या है, सो चित्तवृत्तियों का निरोध है, वह कर्तव्य कर्ममात्र में व्याप्त है —

“स्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ।

स धीनां योगमिन्वति ॥”¹

योगतत्त्वोपनिषद् में मोक्ष प्राप्ति के लिए योग तथा ज्ञान दोनों को आवश्यक बताया गया है —

“योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम् ।

योगोद्यविज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्ष कर्माणि ॥”

अर्थात् योग के बिना ज्ञान ध्रुव मोक्ष का देने वाला भला कैसे हो सकता है ? उसी प्रकार ज्ञानहीन योग भी मोक्षकर्म में असमर्थ है।

वैदिक ऋचाओं में यह कहा गया है कि योग की प्राप्ति के लिए परमात्मा की अनुकम्पा अभीष्ट है—

“स घा नो योग आभुवत् सराये स पुरं ध्याम् ।

गमद् वाजोभिरा स नः ॥”²

अर्थात् वही परमात्मा हमारी समाधि के निमित्त अभिमुख हो, वही विवेक ख्याति रूपी धन तथा अतीतानागतादि अनन्त वस्तु विषयक होने से बहुविध बुद्धि ऋतम्भरा प्रज्ञा नामक प्रजा के उत्पाद निमित्त अनुकूल हो, अर्थात् उसकी दया से समाधि, विवेकख्याति तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा का हमें लाभ हो, अपित वही परमात्मा अणिमादि सिद्धियों के सहित हमारी ओर आगमन करे ।

वैदिक ऋचाओं में अन्यत्र भी योगानुष्ठान की सफलता के लिए ईश्वरानुकम्पा महत्वपूर्ण बताया गया है —

“योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे ।

सखाय इन्द्रमूतये ॥”³

अर्थात् प्रत्येक योग में, प्रत्येक संकट, संग्राम में हम सखा (साधक) बलवान इन्द्र को बुलाते हैं ।

योग शब्द ‘युज् समाधौ’ धातु से घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होने के कारण ‘समाधि’ अर्थ ही प्रकट होता है । वैसे ‘योग’ शब्द भारतीय साहित्य में अनेकानेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । ‘योग’ शब्द संयोगार्थक ‘युजिर्’ धातु से घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न मानने पर इसका अर्थ संयोग होता है, परन्तु योग शब्द का यहाँ इस प्रकार अर्थ करना उचित नहीं होगा क्योंकि ज्ञान, कर्म, भक्ति तथा अष्टौंदि योग में नियम से चित्तैकाग्रता ही अपेक्षित है । महर्षि पतंजलि ने चित्तवृत्तियों के निरोध को योग माना है— “योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः”⁴ योग के इस अर्थ में भी चित्तैकाग्रता प्रकट हो रही है । अतएव योग का अर्थ ‘समाधि’ करना ही समीचीन है ।

उपनिषद् ग्रन्थों में भी ‘योग’ शब्द समाधि तथा चित्तैकाग्रता अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । कठोपनिषद् में कहा गया है कि जब पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन सहित आत्मा में स्थिर होकर बैठती हैं, बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती, तब उस अवस्था को परमागति कहते हैं । उसी स्थिर इन्द्रिय धारणा को योग कहते हैं—

“यदा पंचवतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।

बुद्धिश्च विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम् ।

अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥”⁵

इसके अतिरिक्त अमृतबिन्दूपनिषद्⁶ में भी यह कहा गया है कि तभी तक हृदय में मन का निरोध करना चाहिए जब तक उसका क्षय न हो जाय । इसी को ज्ञान कहते हैं और इसी को ध्यान कहते हैं । योगतत्त्वोपनिषद् में मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान तथा योग दोनों को आवश्यक बताया गया है —

“योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम् ।

योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्माणि ॥”⁷

उपनिषदों में योग शब्द का प्रयोग दर्शन विशेष के लिए तथा क्रियात्मक योग के लिए भी किया गया है । उपनिषदों में योग को ‘अध्यात्मयोग’ भी कहा जाता है । संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में योग अनेक क्रियाकलाओं के साथ मिला हुआ प्राप्त होता है तथा सिद्धियाँ ही उसकी बहुशः लक्ष्य होती हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि जब इसका प्रयोग मोक्ष प्राप्ति के लिए होने लगा तब इसको अध्यात्मयोग कहा जाने लगा । कठोपनिषद् में कथन है कि —

“तं दुदर्शं गूढं मनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौजहाति ॥”

(कठोपनिषद् 1/2/12)

वह देव अर्थात् आत्मा जो इतना तेजस्वी है कि देख नहीं सकते, जो गूढ़-गहन स्थान में प्रवेश किये हुये है, गुहा में बैठा हुआ और गह्वर में रहने वाला है । उसको अध्यात्मयोगाधिगम के द्वारा जानकर धीर पुरुष हर्ष और शोक दोनों का परित्याग देता है । वैदिक संहिताओं तथा उपनिषद् ग्रन्थों में प्राप्त उल्लेख के अनुसार ‘योग’ को 11 भागों में विभक्त किया जा सकता है—

1. मन्त्रयोग ⁸	2. हठयोग ⁹	3. लययोग ¹⁰
4. राजयोग ¹¹	5. अष्टांगयोग ¹²	6. ज्ञानयोग ¹³
7. कर्मयोग ¹⁴	8. पंचदशयोग ¹⁵	9. शर्द्धयोग ¹⁶
10. अध्यात्मयोग ¹⁷	11. तारकयोग ¹⁸	

1. मन्त्रयोग – दृश्यमान् जगत की कोई भी वस्तु नामरूप से बची हुई नहीं है। जीव नामरूप में ही कसकर बद्ध होता है, जिस भूमि पर गिरता है, उसी भूमि को पकड़ कर मनुष्य उठ सकता है, आकाश को नहीं। इस नियम के अनुसार जीव को नामरूप के अवलम्बन से ही मुक्तिपथ की ओर अग्रसर होना होगा। अतः दिव्य नामरूप के अवलम्बन से चित्तवृत्तिनिरोध की जितनी क्रियायें हैं, शास्त्र में उन्हें मन्त्रयोग नाम से कहा गया है।

2. हठयोग – स्थूल शरीर से सम्बन्ध रखने वाली शट्कर्मादि योग क्रियाओं के अभ्यास द्वारा स्थूल शरीर पर आधिपत्य स्थापित करते हुए सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव डालकर चित्तवृत्ति निरोध की जितनी क्रिया शैलियाँ हैं उनका नाम हठयोग है। हठयोग के सात अंग बताये गये हैं –

“शट्कर्मासन मुद्राः प्रत्याहारश्च प्राण संयमः ।
ध्यान समाधी सप्तैर्वीजानि स्युर्हठस्य योगस्य ॥”

(हठयोग प्रदीपिका)

अर्थात् शट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, समाधि ये हठ योग के सात अंग हैं ।

3. लययोग – यम, नियम, स्थूल क्रिया, सूक्ष्म क्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लयक्रिया और समाधि के द्वारा लययोग की साधना को निर्णीत किया गया है ।

4. राजयोग – योगशिखोपनिषद् में कहा गया है कि रज और रेत के योग से राजयोग होता है –

“रजसो रेत सो योगाद् राजयोग इति स्मृतिः ॥”¹⁹

राजयोग की साधना को सोलह अंगों द्वारा स्पष्ट किया गया है ।

5. अष्टांगयोग – पातंजल योगदर्शन में अष्टांगयोग को यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा स्पष्ट किया गया है । उपनिषद् ग्रन्थों में भी अष्टांगयोग के इन्हीं अंगों का उल्लेख प्राप्त होता है ।²⁰

6. ज्ञानयोग – श्रेयोचर्च में चित्त को सदा बद्ध रखना ज्ञानयोग है । यह ज्ञानयोग सब सिद्धियों को देने वाला और मंगलकारक है । ज्ञान योग के आठ अंगों का उल्लेख करते हुए इसे स्पष्ट किया गया है – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि । त्रिषिखिब्राह्मणोपनिषद् में ज्ञानयोग के सम्बन्ध में कहा गया है –

“यतु चित्तस्य सततमर्थ श्रेयसि बन्धनम् ।
ज्ञानयोगः स विज्ञेयः सर्वसिद्धिकरः शिवः ॥”²¹

7. कर्मयोग – विहित कर्मों में इस बुद्धि का होना कि यह कर्तव्य कर्म है, मन का ऐसा नित्य बन्धन कर्मयोग है –

“कर्म कर्तव्यामित्येव विहितेष्वेवकर्मसु ।
बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते ॥”²²

8. पंचदशयोग – इस योग के 15 अंगों का उल्लेख किया गया है – यम, नियम, त्याग, मौन, देश,

काल, आसन, मूलबन्ध, देहसाम्य, दृक्स्थिति, प्राणसंयमन, प्रत्याहार, धारणा, आत्मध्यान और समाधि । तेजोविन्दूपनिषद् में 'पंचदर्शोऽयोग' के अंगों का कथन किया गया है —

“यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः ।
आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक् स्थितिः ॥
प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा ।
आत्मध्यानं समार्धिं प्रोक्न्यै।नि वै क्रमात् ॥”²³

9. शर्द्धेऽयोग — वैदिक महर्षियों ने शर्द्धेऽयोग की साधना को छह सोपानों में निश्चित किया है — प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क और समाधि । श्वेताश्वेतरोपनिषद् तथा अमृतनादोपनिषद् में शर्द्धेऽयोग का वर्णन किया है —

“प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोच्यते धारणा ।
तर्कैव समार्धिं शर्द्धेऽयोग उच्यते ॥”²⁴

10. अध्यात्मयोग — इस योग का वर्णन कठोपनिषद् में प्राप्त होता है ।²⁵ इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है ।

11. तारकयोग — तारक योग की साधना लक्ष्यत्रय के अनुसंधान द्वारा की जाती है । इस योग का वर्णन केवल अद्वयतारकोपनिषद् में उपलब्ध होता है ।²⁶

इस प्रकार वैदिक ग्रन्थों में वर्णित योगोक्तियों की समीक्षा करने से यह स्पष्ट होता है कि योग के अंगों की संख्या छह से पन्द्रह तक योगाचार्यों द्वारा निश्चित की गयी है । इनका वैदिक ग्रन्थों में पृथक-पृथक विवेचन अत्यंत सूक्ष्म रूप में उपलब्ध होता है । वैदिक ग्रन्थों एवं अन्य योग ग्रन्थों की दृष्टि से योगोक्तियों का प्रतिपादन यहाँ किया जा रहा है —

1. यम — यम के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए त्रिषिखिब्राह्मणोपनिषद् में 10 भेदों का कथन किया गया है — 1.अहिंसा 2.सत्य 3.अस्तेय 4.ब्रह्मचर्य 5.दया 6.आजीव 7.क्षमा 8.धृति 9.मिताहार 10.शौच । वहीं पातंजल योग दर्शन में केवल 5 भेदों का ही उल्लेख प्राप्त होता है — 1.अहिंसा 2.सत्य 3.अस्तेय 4.ब्रह्मचर्य और 5.अपरिग्रह —

“अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रहा यमाः ।”²⁷

2. नियम — त्रिषिखिब्राह्मणोपनिषद् में नियम के 10 भेद बताये गये हैं — 1.तप 2.सन्तोष 3.आस्तिक्य 4.दान 5.हरि का आराधन 6.वेदान्त श्रवण 7. ह्री 8.मति 9.जप 10.व्रत । योग दर्शन में मात्र पाँच प्रकार के नियमों का उल्लेख किया गया है — 1.पवित्रता 2.सन्तोष 3.तप 4.स्वाध्याय 5.ईश्वर²⁸ —

“शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ।”

3. आसन — त्रिषिखिब्राह्मणोपनिषद् में 17 प्रकार के आसनों का कथन किया गया है — 1.स्वास्तिक 2.गोमुख 3.वीर 4.योग 5.पद्म 6.बद्धपद्म 7.कुक्कुट 8.उत्तान कूर्मक 9.धनु 10.सिंह 11.भद्र 12.मु७ 13.मयूर 14.सिद्ध 15.मत्स्य 16.पश्चिमतान 17.सुख । योग दर्शन में मात्र चार प्रकार के आसनों का उल्लेख किया गया है — 1.सिद्धासन 2.पद्मासन 3.स्वास्तिकासन तथा 4.सुखासन²⁹ ।

4. प्राणायाम — त्रिषिखिब्राह्मणोपनिषद् में केवल कुम्भक सहित तथा नाड़ी शोधन प्राणायाम तथा प्राणायाम फल के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है । प्राणायाम की चर्चा से अग्निस्थान, नाभिस्थान, नाड़ीचक्र, कुण्डलिनी, नाड़ीकन्द, नाड़ीचर, वायु आदि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है । वैदिक ग्रन्थों में

प्राणायाम को अत्यधिक महत्व दिया गया है । प्राणविद्या योगदर्शन का प्राण स्वरूप है। उपनिषदों में प्राणोपासना अनेक भावनाओं द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई है ।³⁰

वस्तुतः देखा जाय तो योग का प्राणायाम से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी उपनिषदों में मोक्ष के दो उपाय बताये गये हैं – 1. मनोजय और 2. प्राणजय। मनोजय वासनाओं के क्षीण होने से होता है, किन्तु प्राणजय हो जाने से मनोजय अनायास सिद्ध हो जाता है। यही कारण है कि योग में प्राणजय पर इतना जोर दिया जाता है। प्राणजय प्राणायाम द्वारा होता है। अतएव प्राणायाम का इतना प्राधान्य है। कठोपनिषद् में कहा गया है—

“उर्ध्व प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।

मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते ॥”³¹

अर्थात् जो प्राण को ऊपर भेजता है और अपान को नीचे फेंकता है उस मध्य में रहने वाले वामन को विश्वेदेव भजते हैं । मुण्डकोपनिषद् में इस सम्बन्ध में उल्लेख एवं विध किया गया है—

“प्राणैति सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विषुद्धे विभवत्येश आत्मा ॥”³²

अर्थात् प्रजाओं के प्राणसह सम्पूर्ण चित्त में वह आत्मा व्याप्त है और विशुद्धचित्त में ही विशेष रूप से प्रकट होता है ।

योग दर्शन में प्राणायाम की चर्चा विषद् रूप में की गयी है। यहाँ विस्तार भय से अत्यंत संक्षेप में किया जा रहा है। योग दर्शन का कथन है कि आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास और प्रश्वास की गति अवरोध हो जाने का नाम प्राणायाम है ।³³ बाहरी वायु को भीतर प्रवेश करना श्वास है और भीतर की वायु का बाहर निकलना प्रश्वास है, इन दोनों के रुकने का नाम प्राणायाम है —

“तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायमः ।

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृतिर्देशकाल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥”³⁴

5. प्रत्याहार — इस सम्बन्ध में त्रिषिखिब्राह्मणोपनिषद् में कथन है कि यदि अठारहों मर्म स्थानों में से प्रत्येक स्थान में (मन से परमात्मा को) धारण कर सके तो उसको प्रत्याहार कहते हैं —

“यद्यष्टादशभेदेशु मर्मस्थानेषु धारणम् ।

स्थानात् स्थानं समाकृष्यः प्रत्याहार स उच्यते ॥”³⁵

इसी उपनिषद् में आगे उन अठारह मर्म स्थानों के नाम गिनाये हैं—पार्श्वोष्ठ, गुल्फ, जंघामध्य, ऊरुमध्य, मूल, पायु, हृदय, शिश्न, देहमध्य, नाभि, गलकूर्पर, तालुमूल, घ्राणमूल, नेत्रमण्डल, भ्रूमध्य, ललाट, ऊर्ध्वमूल, जानुद्वय और करमूल । योग दर्शन में प्रत्याहार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि अपने-अपने विषयों के संग से रहित होने पर इन्द्रियों का चित्त के से रूप में अवस्थित हो जाना प्रत्याहार है —

“स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपाकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥”³⁶

6. धारणा — त्रिषिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार धारणा इस पाँच भौतिक देह के पाँच भूतों में, यमादि से युक्त मन का धारण करना ही धारणा है । वह संसार सागर से तरने वाली है ।³⁷ योग दर्शन के अनुसार ‘देशबन्धश्च तस्य धारणा’ अर्थात् चित्त को किसी एक देश विशेष में स्थिर करने का नाम है धारणा ।³⁸

7. ध्यान — त्रिषिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार ध्यान स्वरूप व्याप्त रूप परम परमात्मा वासुदेव का चिन्तन ही ध्यान है । वह कैवल्य सिद्धि को देने वाला है—

“चिन्तनं वासुदेवस्य परस्य परमात्मनः ।

स्वरूप व्याप्त रूपस्य ध्यानं कैवल्यसिद्धिदम् ॥”³⁹

ध्यान दो प्रकार का है – सगुण तथा निर्गुण । योग दर्शन के अनुसार ध्येय वस्तु में चित्तवृत्ति का गंगा प्रवाह की भाँति या तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से निरंतर ध्येय वस्तु में ही अनवरत लगा रहना ध्यान कहलाता है –

“तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।”⁴⁰

8. समाधि – त्रिषिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार ‘मैं ही परब्रह्म हूँ, ब्रह्म मैं हूँ, ऐसी सम्यक् स्थिति को समाधि जानो –

“अहमेन परब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः ।

समाधिः सतु विज्ञेयः सर्ववृत्ति विवर्जितः ।।”⁴¹

योग दर्शन के अनुसार वह ध्यान ही ‘समाधि’ हो जाता है जिस समय केवल ध्येय स्वरूप का ही भान होता है और अपने स्वरूप के भान का अभाव—सा रहता है । ध्यान करते—करते जब योगी का चित्त ध्येयाकार को प्राप्त हो जाता है और वह स्वयं भी ध्येय में तन्मय सा बन जाता है, ध्येय से भिन्न अपने—आप का ज्ञान उसे नहीं रह जाता है, उस स्थिति का नाम ‘समाधि’ है । ध्यान से ध्याता, ध्यान, ध्येय वह त्रिपुटी रहती है । समाधि में केवल अर्थ मात्र वस्तु यानि ध्येय वस्तु ही रहती है । अर्थात् ध्याता, ध्यान, ध्येय तीनों की एकता सी हो जाती है । योग दर्शन में समाधि के बारे में कहा गया है कि –

“तदेवार्थं मात्र निर्भासंस्वरूपशून्यमिव समाधिः ।”⁴²

इसके अतिरिक्त महर्षि पतंजलि ने योग साधना में विघ्न पहुँचाने वाले बाधक तत्वों का उल्लेख करते हुए कहा है कि योग साधना करने वाले साधक को इन विघ्नों से बचना चाहिए अन्यथा योग साधना पूर्ण न हो सकेगी । विस्तार भय से उसका यहाँ प्रतिपादन नहीं किया जा रहा है ।

इस प्रकार वैदिक ग्रन्थों में वर्णित योग चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि योग की साधना किसी अनुभवी गुरु के निर्देशन में करनी चाहिए । आज भी इसकी उपयोगिता कम नहीं है । आज उपभोक्तावाद, भौतिकतावाद, आधुनिकतावाद को महत्व देने वाला जनसमुदाय पुरातन जीवनशैली के इन बहुमूल्य योग साधनाओं को भूलता जा रहा है । जिसका भयावह परिणाम हमें समाचार पत्रों के माध्यम से ज्ञात होता रहता है । आये दिन बाल—वृद्ध और नौजवान हताशा, निराशा एवं तनाव में हत्या, आत्महत्या, लूट, ठगी, मादक पदार्थों का सेवन जैसे दुर्व्यसनों के शिकार हो रहे हैं । आज की पीढ़ी इन दुर्व्यसनों के कारण तन—मन की ऊर्जा खोती जा रही है । दुर्बलता के कारण आधुनिक पीढ़ी आत्मघाती कदम उठाने को विवश होती जा रही है । ऐसी स्थिति में आज योग की उपयोगिता देश और समाज के लिए पहले से कहीं अधिक बढ़ गयी है । आवश्यकता इस बात की है कि आज की पीढ़ी को योग विद्या के रहस्यों से अवगत कराया जाय, उनमें जागृति पैदा की जाय, जिससे वे योग के मार्ग को अपनाकर स्फूर्तिवान, ऊर्जावान तथा मेधावान् बन सकें । इसी में हमारे व हमारे देश का कल्याण है ।

संदर्भ सूची

1. ऋक् संहिता – 1/18/07
2. ऋक् संहिता – 1/5/3, साम.उ. 1/2/10/3, अथर्व. 20/69/1
3. ऋक् संहिता – 1/30/7, शु.य. 1/14, साम.उ. 1/2/11/1, 2/2/7/9, अथर्व.वे. 99/24/7 एवं 20/26/1
4. पातंजल योगदर्शन – 1/2
5. कठोपनिषद् – 2/3/10-11

6. अमृतबिन्दूपनिषद् तावदेन निरोद्धव्यं यावद हृदिगतं क्षयम् ।
एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषोऽन्यायस्य विस्तरः ॥
7. योगतत्त्वोपनिषद्
8. योगतत्त्वोपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, वराहोपनिषद्
9. तदेव
10. तदेव
11. तदेव
12. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद्, पातंजलयोगदर्शन
13. तदेव
14. तदेव
15. तजोबिन्दूपनिषद्
16. योगराजोपनिषद्
17. कठोपनिषद् — 1/2/12
18. तदेव
19. योगशिखोपनिषद्
20. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद्, पातंजल योगदर्शन
21. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद्
22. तदेव
23. तेजोबिन्दूपनिषद्
24. अमृतनादोपनिषद्, श्वेताश्वेतरोपनिषद् का द्वितीय अध्याय
25. कठोपनिषद् — 1/2/12
26. अद्वयतारकोपनिषद्
27. पातंजल योगदर्शन — 2/30
28. तदेव
29. स्थिरसुखासनयोगदर्शन 2/46
30. छान्दोग्योपनिषद् 1/11/5, 4/3/3-4, 5/1/6-15, 7/15/1,
5/19-24, कौषीतकि. 2/1/5, श्वेताश्वेतरोपनिषद् ।
31. कठोपनिषद् — 2/2/3
32. मुण्डकोपनिषद् — 3/1/9
33. योग दर्शन — 2/49
34. तदेव — 2/50
35. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्
36. योगदर्शन — 2/54
37. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् उ.
38. योगदर्शन — 3/1
39. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् उ.
40. योगदर्शन — 3/2
41. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्
42. योगदर्शन — 3/3



महात्मा बुद्ध, विपरस्सना और सम्यक् जीवन

डॉ० उत्तरा यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,

महिला पी०जी० कॉलेज, अमीनाबाद, लखनऊ एवं भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि.प्र.)

महात्मा बुद्ध के सिद्धान्त एवं उनका जीवन मानवता के लिए एक वरदान है। उनका मध्यम अष्टमार्ग अपने दैनिक जीवन में उतारकर कोई भी व्यक्ति अपना जीवन सफल एवं पूर्ण कर सकता है। उनके विचार मानव मात्र के लिए भूतकाल, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों में शाश्वत, सार्वभौमिक तथा अत्यन्त उपयोगी हैं।

चार आर्यसत्य :-

1. पहला आर्यसत्य है—“दुःख है।” जन्म लेना दुःख है, बुढ़ापा आ जाना दुःख है, बीमारी दुःख है, मृत्यु दुःख है, अप्रिय चीजों से संयोग दुःख है, प्रिय चीजों से वियोग दुःख है। मनचाहा न होना दुःख है। अनचाहा होना दुःख है। संक्षेप में पाँच स्कन्धों से उपादान (अतिशय तृष्णा का होना) होना दुःख है।
2. दूसरा आर्यसत्य है—“इस दुःख का कारण है।” राग के कारण पुनर्भव अर्थात् पुनर्जन्म होता है जिससे इस और उस जन्म के प्रति अतिशय लगाव उत्पन्न होता है। यह लगाव काम— तृष्णा के प्रति होता और विभव तृष्णा के प्रति होता है।
3. तीसरा आर्यसत्य है—“दुःख निरोध आर्यसत्य”। इस तृष्णा को जड़ से पूर्णतः उखाड़ देने से इस दुःख का जड़ से निरोध हो जाता है जीवन—मरण का।
4. चौथा आर्यसत्य है—“दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा (दुःख से मुक्ति का मार्ग)”। इस दुःख को जड़ से समाप्त किया जा सकता है और जिसके लिए तथागत ने आठ अंगों वाला आर्य आष्टांगिक मार्ग खोज निकाला है—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि है।

सभी दुःखों से वर्तमान जीवन में ही मुक्ति पाने के लिए तथा इसी जीवन में वास्तविक सुख— शान्ति को प्राप्त करने के लिए भगवान् बुद्ध ने आर्य आष्टांगिक मार्ग बताया है। इन मार्गों का स्वयं अनुभव कर जानना आवश्यक है। इसके आठ अंग इस प्रकार हैं— (1) सम्यक् दृष्टि— सम्यक् दृष्टि अर्थात् सम्यक् दर्शन, यहाँ दर्शन शब्द का सही जो बात, जो वस्तु जैसी है, उसे वैसे ही उसके गुण—धर्म—स्वभाव में देखना अर्थात् अनुभव से जानना है। (2) सम्यक् संकल्प— संकल्प अर्थात् चिंतन, मनन, हमारा संकल्प हमारी सोच सही व सकारात्मक होनी चाहिए। (3) सम्यक् वचन— हमारी वाणी सम्यक् हो अर्थात् मधुर बोलें, सत्यवादी हों, वाणी मृदु और संयमित हों। (4) सम्यक् कर्म— मन, वचन और शरीर द्वारा किये जाने वाले कार्य सम्यक् रहें अर्थात् ठीक रहें। (5) सम्यक् आजीविका— हमारी आजीविका का रास्ता सम्यक् अर्थात् सही होना चाहिए, आजीविका के साधन में किसी व्यक्ति को हानि नहीं होनी चाहिए। (6) सम्यक् व्यायाम— मन की कमजोरी दूर करने के लिए उसके विकार को दूर करने के लिए मन का व्यायाम आवश्यक है, मन का स्वयं परीक्षण करें। (7) सम्यक् स्मृति— स्मृति का अर्थ वर्तमान क्षण में शरीर में होने

वाली संवेदनाओं के प्रति सजगता व जागरुकता है। (8) सम्यक् समाधि:— कुशल चित्त और निर्मल चित्त की एकाग्रता को ही सम्यक् समाधि कहते हैं। विपस्सना साधना द्वारा सम्यक् समाधि का योग्य अभ्यास किया जा सकता है।

यह आर्य आष्टांगिक मार्ग सभी दुःखों से मुक्ति पाने व वास्तविक सुख-शान्ति से जीवन जीने का अनमोल रास्ता है, यह वर्तमान जीवन में ही निर्वाण का साक्षात्कार करा सकता है।

“भिक्षुओं, जो परिव्रजित हैं, उन्हें दो अतियों से बचना चाहिए, पहली अति है कामभोगों में लिप्त रहने वाले जीवन की, यह कमजोर बनाने वाला है, गंवारु है, तुच्छ है और किसी काम का नहीं है। दूसरी अति है आत्मपीड़ा प्रधान जीवन जो कि दुःख होता है, व्यर्थ होता है और बेकार होता है।” इन दोनों अतियों से बचे रहकर ही तथागत ने मध्यम मार्ग का आविष्कार किया है।

गौतम बुद्ध ने पहला वर्षावास भिक्षुसंघ के साथ सारनाथ में बिताया। वर्षावास के समाप्त होने पर भिक्षुसंघ को सम्बोधित करते हुए बुद्ध ने कहा—“चरथ भिक्खवे चारिकं, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय, सुखाय देवमनुस्सानं मा एकेन द्वे अगमित्थ।” अर्थात् हे भिक्षुओं, बहुजनों के हित के लिए, बहुजनों के सुख के लिए, लोक पर अनुकम्पा करके समस्त विश्व के कल्याण के लिए, लोगों के सुख के लिए, लोक पर अनुकम्पा करके समस्त विश्व के कल्याण के लिए, लोगों के सुख और लाभ के लिए, सभी दिशाओं में जाओ और लोगों को धम्म सिखाओ स्वयं भी इस पवित्र धम्म की साधना करते रहो, लोगों को धम्म मार्ग पर चलने की शिक्षा दीजिये जो आदि से अन्त तक कल्याणकारी हैं।

वयधम्मा संखारा, अप्पमादेन सम्पादेथ

भिक्षुओं! सुनो, सारे संखार व्यय-धर्मा हैं, मरण धर्मा हैं, नष्ट धर्मा हैं, जितनी भी संस्कृत यानी बनी हुई वस्तुएँ हैं, व्यक्ति हैं, घटनाएँ हैं, स्थितियाँ हैं, वे सब नश्वर हैं, भंगुर हैं, मरणशील हैं, परिवर्तनशील हैं, यही प्रकृति का कठोर सत्य है, प्रमाद से बचते हुए आलस्य से दूर रहते हुए, सतत् सचेत और जागरुक रहते हुए, प्रकृति के इस सत्य का संपादन करते रहो! इस सत्य में स्थित रहकर अपना कल्याण साधते रहो!

यह अंतिम उपदेश देकर वैशाख पूर्णिमा की रात के तीसरे पहर में 483 ई०पू० को तथागत महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

भगवान् बुद्ध का धम्म एक आविष्कार है, एक खोज है क्योंकि पृथ्वी पर जो मानवीय-जीवन है। उनके गम्भीर अध्ययन का परिणाम है और जिन स्वाभाविक-प्रवृत्तियों को लेकर आदमी ने जन्म ग्रहण किया है, उन्हें पूरी तरह समझ लेने का परिणाम है और साथ ही उन प्रवृत्तियों को भी, जिन्हें आदमी के इतिहास ने जन्म दिया है और जो अब उसके विनाश का कारण बनी हुई है।

बुद्ध का धम्म दुःखवादी है और अगर सभी निर्वाण प्राप्ति में लग जायेंगे तो भौतिक उन्नति नहीं होगी, लोग मेहनत नहीं करेंगे इत्यादि....इत्यादि। यह मिथ्यापरक बातें हैं, वास्तविकता यह है कि बुद्ध के उपदेशों का उद्देश्य मानवीय चेतना को सुधारना और परिष्कृत करना था, दुःख और क्लेश से तड़पते मानवीय जीवन को सुख और शान्ति का मार्ग दिखाना था।

भगवान् बुद्ध केवल मार्गदाता थे। अपनी मुक्ति के लिए हर किसी को स्वयं अपने आप ही प्रयास करना होता है। हमें अपने स्वयं श्रम से तरना होता है, मुक्त होना होता है। कोई तथागत बड़े प्यार से

मार्ग आख्यात करता है, मार्ग निर्देशन करता है, रास्ते पर चलते हुए मुक्त स्वयं होना पड़ता है।

भगवान् बुद्ध की सबसे महत्त्वपूर्ण देन यह है कि उन्होंने विश्व को दिखाया कि वे स्वयं भी अन्य लोगों की ही तरह एक गृहस्थ थे, वे कहीं से अवतरित नहीं हुए थे। उनका जन्म, विवाह, गृहस्थ जीवन सामान्य और प्राकृतिक था। उन्होंने सिखाया कि कैसे एक सामान्य व्यक्ति भी अपने मेहनत, त्याग और दृढ़ निश्चय से उच्च से उच्चतम अवस्था को पहुँच सकता है।

तुम्हेहि किच्चमातप्पं, अक्खातारों तथागता (धम्मपद 276, मग्गवग्ग) अर्थात् मैं तो मार्ग आख्यात करता हूँ तुम्हारी मुक्ति के लिए तपना तो तुम्हें ही पड़ेगा। मुक्ति के लिए बुद्धमशरणं गच्छामि, धम्मं शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि।

“Ecstasy is when, what you think, what you say and what you do, must be in harmony?” — Gandhi

विपस्सना अर्थात् सूक्ष्मतापूर्वक देखना

भगवान् बुद्ध ने मन को ही धम्म में प्रधान स्थान दिया और मन को वश में करने के लिए मन को जीतने के लिए विपस्सना का रास्ता बताया। ‘विपस्सना’ पालि भाषा का शब्द है जिसका संधि-विच्छेद होता है:— वि + पस्सना, ‘वि’ का अर्थ है—सूक्ष्मतापूर्वक, वास्तव में, पूर्णतया, सकारात्मक आदि और ‘पस्सना’ का मतलब है— देखना, जानना, परीक्षण—निरीक्षण करना, शोध करना, विश्लेषण करना, निष्कर्ष निकालना आदि, स्थूल हमेशा भ्रम पैदा करता है, वास्तविकता नहीं दिखलाता।

विपस्सना साधना भारतवर्ष की एक अत्यन्त पुरातन साधना पद्धति है। 2400 वर्ष पूर्व भगवान् गौतम बुद्ध ने इसकी खोज कर लोक कल्याण के लिए इसे सर्वसुलभ बनाया था।

विपस्सना साधना का मुख्य लक्ष्य चित्त की शुद्धि करना है। साधक, अपने अंदर संग्रहित राग, द्वेष, भय, मोह, लालच, आसक्ति इत्यादि विकारों, दैनिक जीवन के तनावों और मानसिक बंधनों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है, वह जीवन में आने वाली समस्याओं के प्रति अभिमुख होकर उनका सफलतापूर्वक समाधान खोजने में समर्थ होता है, परिस्थितियों में अविचलित रहकर उनका सामना करने की क्षमता उसमें आ जाती है।

विपस्सना बुद्ध धम्म की आधारशिला है विपस्सना से निर्वाण की अवस्था जीवनकाल में ही हासिल की जा सकती है, अर्हत अवस्था ही निर्वाण ही निर्वाण का द्योतक है। अर्हत पद पाने की चार अवस्थायें हैं:— 1—श्रोतागण, 2—सकृदागामी, 3—अनागामी, 4—अर्हत। यह चारों चित्त की अवस्थायें हैं और यह जीवनकाल में ही प्राप्त की जा सकती हैं।

किसी भी वस्तुस्थिति को विपस्सना की दृष्टि से देखना विज्ञान की उपज है। विपस्सना के द्वारा ही उन्होंने चार आर्य सत्य और शरीर—चित्त के पंच स्कंध (रूप स्कंध, विज्ञान स्कंध, संज्ञा स्कंध, वेदना स्कंध और संखार स्कंध) बताये हैं। उन्होंने छः भीतरी आयतन (छः भीतरी इन्द्रियाँ) बताये हैं, जैसे—चक्षु इन्द्रिय, जिह्वा इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, स्पर्श इन्द्रिय।

विविधेन पस्सति ति विपस्सना, विसेसेन पस्सति ति विपस्सना

अनेकांगेन पस्सति ति विपस्सना, विभज्जेन पस्सति ति विपस्सना

विविधता से, विशेष रूप से, अनेक अंगों से विभाजन, पृथक्करण करके देखने को ही विपस्सना कहते हैं।

बुद्ध ने जैसे मानव शरीर का विपस्सना द्वारा दर्शन किया वैसे ही मन का बड़ा सूक्ष्म विभाजन किया, शरीर और मन हमेशा परिवर्तित होते रहते हैं, बदलते रहते हैं। भगवान् बुद्ध की यह अद्भुत खोज थी, विपस्सना ध्यान बुद्ध धम्म की अनुपम देन है 'चत्तारो सतिपंडानां' अर्थात् चार सतिपठान के ध्यान हैं: 1— कायानुपस्सना, 2— वेदनानुपस्सना, 3— चित्तनुपस्सना और 4— धम्मनुपस्सना।

1. कायानुपस्सना: अपनी काया में क्षण प्रतिक्षण हो रहे बदलाव को दृष्टाभाव से देखते रहना वेदनानुपस्सना कहलाता है।

2. वेदनानुपस्सना: इसी तरह शरीर में प्रकट होने वाली दुःखद—सुखद और अदुःखद— असुखद वेदनाओं को, जो अनित्य हैं और हमेशा बदलती रहती हैं, उनको दृष्टाभाव से देखते रहना वेदनानुपस्सना कहलाता है।

3. चित्तनुपस्सना: चित्त में उठने वाले तरह—तरह के विचारों को जो हर पल बदलते रहते हैं, उनके प्रति प्रतिक्रिया किये बिना दृष्टाभाव से देखते रहना चित्तानुपस्सना कहलाता है।

4. धम्मनुपस्सना: पूरे अस्तित्व में प्रकृति के नियमों, निसर्ग की नियामता के अनुसार जो कुछ भी घट रहा है, उसका कोई कर्ता नहीं है। उस पर किसी की भी सत्ता नहीं चलती है। उसमें मैं और मेरा कहने को भी कुछ नहीं है। समस्त प्रकृति बंधे—बंधाये नियमों से अपने आप संचालित हो रही है। इस सत्य को दृष्टाभाव से यथाभूत देखना धम्मनुपस्सना कहलाता है।

पालथी मारकर, आँखें मूंदकर भगवान् बुद्ध की जो भी मुद्रायें दिखती हैं, वह ध्यानस्त मुद्रायें ही हैं और ध्यान अर्थात् किसी बाहरी ईश्वर, आत्मा—परमात्मा का ध्यान नहीं, अपितु विपस्सना द्वारा स्वयं का बोध जानना, मन के विकारों को दूर करना, मन को परिशुद्ध, निर्मल करना, यह विपस्सना द्वारा ही संभव है। विपस्सना ध्यान वास्तविकता पर और केवल सत्य पर ही आधारित होता है। विपस्सना नैतिक समर्पण, जीवनकालिक, आत्मविश्लेषी अनुशासन, आत्मज्ञान और स्वतः उत्तरदायित्व के माध्यम से उपचार करती है। अध्यात्म के इस अभ्यास में पूरे जीवन का आलिंगन है। हमें अपने प्रति उत्तरदायी बनाती है क्योंकि यह आत्म—अवलोकन द्वारा उजागर करती है कि हम अपनी प्रतिक्रियाओं तथा मान्यताओं को अपने जीवन में कितना अपनाते हैं।

विपस्सना साधक को त्रिशरण (बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि) व पंचशील की याचना करनी पड़ती है और दस दिनों तक पाँचों शीलों का पालन करना होता है :—

1. पहला शील है— जीव हिंसा से विरत रहना,
2. दूसरा शील है— चोरी से विरत रहना,
3. तीसरा शील है— ब्रह्मचर्य का पालन करना और व्यभिचार से विरत रहना,
4. चौथा शील है— असत्य भाषण से दूर रहना,
5. पाँचवा शील है— मद्यपान या नशीले पदार्थों के सेवन से दूर रहना।

शीलों का व्रत लेने के बाद मन को एकाग्र करना सिखाया जाता है जिसे आनापान कहते हैं। आनापान के लिए विपस्सनाचार्य से आनापान सिखाने की याचना करने की औपचारिकता करनी पड़ती है। 'आनापान' पालि शब्द है जो आन+अपान से बना है। 'आन' अर्थात् आने वाला श्वांस, 'अपान' अर्थात् जाने वाला श्वांस। श्वांस के आने—जाने को अपने ही अनुभव से अपने ही नासिका के दोनों द्वारों पर

देखना सिखाया जाता है।

विपस्सना विज्ञान की कसौटी पर

विपस्सना पूर्णतः वैज्ञानिक ध्यानविधि है। विपस्सना साधना के अभ्यास से अनेकों मानसिक एवं शारीरिक रोग ठीक हो जाते हैं। मन की एकाग्रता और याददाश्त बढ़ती है, कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। रचनात्मक गुणों में निखार आता है, नैतिकता और अनुशासन तथा आत्मविश्वास के सद्गुणों में वृद्धि होती है, नशीले पदार्थों के आदी लोगों को इन व्यसनों से मुक्त होने में सहायता मिलती है। मनोविकारों के दूर होने से मन निर्मल, शांत एवं प्रसन्न होता है तथा परिवार में सुख और शान्ति बढ़ती है।

वैज्ञानिक अनुसंधान करके इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि 90 प्रतिशत से ज्यादा बीमारियाँ हमारे मन से उत्पन्न होती हैं। दिल की बीमारियाँ, डायबिटीज, कमर दर्द, पीठ-दर्द, तनाव और त्वचा की अधिकतर बीमारियाँ हमारे मन में पैदा होने वाली घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, भय और लालच के कारण उत्पन्न होती हैं। दवाइयों से थोड़े समय के लिए आराम तो मिल जाता है लेकिन जड़ें वैसी ही रह जाती हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि जैसे ही क्रोध, घृणा और मानसिक तनाव पैदा करते हैं तो इसका सबसे पहला असर मस्तिष्क के बाहरी हिस्से सिरबल कार्टेक्स पर पड़ता है। करीब 13 अरब स्नायु कोशिकाएँ क्रियाशील हो जाती हैं, जिसमें 10 अरब कोशिकाएँ मस्तिष्क के भीतर होती हैं। क्रोध और घृणा का संदेश 400 किमी० प्रति घंटे की तेज रफ्तार से स्नायु तंत्र में दौड़ने लगता है। यह संदेश हाइपोथैलेमस में पहुँचता है जहाँ से इसको गुर्दों के ऊपर मौजूद एड्रिल ग्लैंड में भेज दिया जाता है और वहाँ पहुँचते ही शरीर को बीमार करने वाले चार प्रकार के हारमोन्स बनने शुरू हो जाते हैं। ये हारमोन्स जो हमें लड़ने या भागने की शक्ति देते हैं, घृणा और क्रोध के उत्पन्न होते ही बनने शुरू हो जाते हैं। इन हारमोन्स के बनते ही कलेजे (लिवर) से ग्लूकोज निकलना शुरू हो जाता है जिससे लड़ने और भागने की शक्ति आती है। इसके साथ ही हृदय तेज गति से धड़कने लगता है जिससे शरीर को अधिक खून भेजा जा सके। रक्त को तेजी से पम्प करने के लिए उसके गाढ़पन को कम करे पतला करने के लिए होठों और त्वचा से पानी रक्त में खींच लिया जाता है इसलिए गुस्सा और घृणा पैदा होने के थोड़ी देर बाद हमारा होंठ, मुँह और गला सूखने लगता है। पाचन क्रिया बंद हो जाती है या बहुत धीमी हो जाती है। ब्लड-प्रेसर बढ़ जाता है। रक्त में थक्के बढ़ने लगते हैं, शरीर का पूरा रासायनिक संतुलन बिगड़ जाता है और रोगों से लड़ने की शरीर का पूरा रासायनिक संतुलन बिगड़ जाता है और रोगों से लड़ने की शरीर की अवरोधक क्षमता कम हो जाती है। बार-बार होने वाले क्रोध, घृणा और ईर्ष्या के कारण बार-बार एड्रीनिल और कार्टिसोल हारमोन्स बनते हैं और शरीर के रासायनिक संतुलन को बिगाड़ कर रोगों से लड़ने की अवरोधक क्षमता को कम कर देते हैं। हार्टअटैक (दिल का दौरा), हाई कोलेस्ट्रॉल, कैंसर, इन्फ्लुएंजा, चिकन पॉक्स (चेचक) जैसी बीमारियाँ लग जाती हैं। हारमोन्स के स्राव से पेप्सिन नामक एन्जाइम अधिक मात्रा में बनने लगता है जिसके बनने से पेट का म्युकस सूख जाता है और पेट में अल्सर हो जाते हैं।

हमारे मस्तिष्क का आकार हमारे शरीर का केवल दो प्रतिशत होता है लेकिन जो ऑक्सीजन हम श्वास से लेते हैं उसका बीस प्रतिशत उपयोग मस्तिष्क करता है। क्रोध, घृणा और ईर्ष्या उत्पन्न होते ही मस्तिष्क की क्रियाशीलता बढ़ जाती है जिससे मस्तिष्क को और अधिक ऑक्सीजन और रक्त की जरूरत पड़ती है जिससे दिल पर और अधिक रक्त भेजने के लिए दबाव पड़ता है। बार-बार ऐसा होने से दिल

का दौरा पड़ जाता है। साथ ही बुढ़ापा जल्दी आ जाता है।

हमारा मस्तिष्क कम्प्यूटर की तरह काम करता है। मन के विकार जैसे—क्रोध, लालच, वासना, ईर्ष्या, मोह, घृणा, राग और द्वेष कम्प्यूटर वायरस की तरह हमारे मस्तिष्क पर हमला करते हैं और जैसे वायरस कम्प्यूटर की सामान्य कार्यप्रणाली को तहस—नहस कर देता है उसी प्रकार मन के विकास रूपी वायरस हमारे मस्तिष्क और शरीर दोनों को प्रभावित करते हैं। जिस तरह कम्प्यूटर को सामान्य कार्यप्रणाली में लाने के लिए हम वायरस रोधी साफ्टवेयर लगाते हैं, उसी तरह शील सदाचार का पालन करके अपने अंदर करुणा और मैत्री जगाकर हम मन के विकारों का उपचार कर सकते हैं।

विपस्सना की विधि

साढ़े तीन दिनों तक आनापान के द्वारा समाधि का अभ्यास करने के पश्चात् चौथे दिन विपस्सनाचार्य से विपस्सना सिखाने की याचना की औपचारिकता करनी होती है, जिससे विपस्सना के जरिये अपने अंदर प्रज्ञा जाग्रत होती है। उससे ही अनित्य, परिवर्तन का बोध होने लगता है। मन को श्वास के आधार से एकाग्र करते हुए श्वास को सामान्य व नैसर्गिक रूप में लेते हुए शरीर के भीतर क्षण—प्रतिक्षण उत्पन्न होने वाली तथा परिवर्तित होते रहने वाली वेदना—संवेदना को दृष्टाभाव से, तटस्थ भाव से, उपेक्षा भाव से, यथाभूत जानना—सिखाया जाता है। देखते—देखते, जानते—जानते अपने भीतर लगातार वेदना—संवेदनाओं का वास्तविक नैसर्गिक स्वभाव समझ में आने लगता है। साधक अपने प्रत्यक्ष अनुभव से जान लेता है कि कोई भी वेदना चाहे दुःखद हो या सुखद हो या अदुःखद और असुखद हो, स्थायी न होकर परिवर्तनशील होती है और हर पल बदलते ही रहती है। हम चाहें भी तो उसका बदलना रोक नहीं सकते। शरीर पर प्रकट होने वाली वेदना अपने आप प्रकट होती है और देखते ही देखते समाप्त हो जाती है, बदल जाती है। इसी तरह मन में प्रकट होने वाला हर विचार देखते ही देखते समाप्त हो जाता है, बदल जाता है। जब साधक अपने स्वयं के प्रत्यक्ष अनुभव से यह जान लेता है कि हर वेदना परिवर्तनशील है, नश्वर है, अनित्य स्वभाव वाली है, हर पल बदलते रहने वाली है तो वेदनाओं के प्रति तटस्थ भाव बनने लगता है। वेदनाओं के प्रति जो राग—द्वेष जगता रहता था, वह कम होने लगता है और धीरे—धीरे समाप्त होने लगता है। जो वेदना अज्ञान में मन को बांधे जा रही थी, वही वेदना ज्ञान के प्रकाश में मन को विमुक्त करने लगती है। शरीर का वास्तविक दर्शन, चित्त का वास्तविक दर्शन, उनका अनित्य, अनात्म और हमेशा बदलते रहने वाला स्वरूप, विपस्सना द्वारा होने लगता है।

बार—बार विपस्सना करने से अनित्य का बोध निरन्तर बना रहता है जिसके फलस्वरूप बीत—रागता, बीत—द्वेषता और बीत—मोहता की ओर अग्रसर होने लगते हैं। जैसे—जैसे राग—द्वेष और मोह के बंधन शिथिल पड़ने लगते हैं वैसे—वैसे पहले से संचित विकारों की उदीर्णा होने लगती है और उनकी निर्जरा होने लगती है। परिणामस्वरूप मन में अपूर्व शांति का संचार होने लगता है। इस तरह काया और चित्त के अनित्य स्वभावी प्रपंच का साक्षी भाव से दर्शन करते—करते तत्सम्बन्धी आसक्तियों से छुटकारा पाता हुआ साधक काया और चित्त के परे इंद्रियातीत परम सत्य का साक्षात्कार कर लेता है जो कि नित्य है, ध्रुव है, अमृत है।

“विपस्सना का पथ” जैसा कि बुद्ध ने सिखाया है, गलत व क्षणिक में की रक्षा से उत्पन्न लालच, घृणा और मोह की नकारात्मकताओं से दूर, एक अनम्य आत्म—अवधारणा से उत्पन्न सद्गुणों और गुणों में जाकर खुलता है। अनित्य का एहसास स्वयं अपने तथा अपने चारों ओर मौजूद विश्व के भीतर एक

गहरी अंतर्दृष्टि है। यह एक क्षणभंगुर विश्व में एक क्षणभंगुर जीवन से चिपके रहने की मूर्खता को उजागर करता है। यह आत्मासक्ति की मुट्ठी में जकड़ी गलत आशाओं को विश्राम देता है और अन्य सभी क्षणभंगुर जीवनो के साथ स्वतः पहचान के प्रवाह को सुसाध्य बनाता है। अनुभव से उत्पन्न एहसास कि सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, कि मैं अनित्य हूँ, से यथासम्भव गूढ़ समानुभूति उत्पन्न होती है। सभी प्राणियों के साथ कुटुम्ब की भावना जो अलग मैं के भ्रम से उत्पन्न वेदना से समान रूप से पीड़ित हैं, सभी प्राणियों के साथ भाईचारे की भावना जो अलगाव, मरण और मृत्यु की व्यथा से उद्धार के लिए तरसते हैं।

दसवें दिन मंगल-मैत्री-भावना साधना का अभ्यास कराया जाता है जिसमें साधक सम्पूर्ण विश्व के मंगल की कामना करता है।

वैज्ञानिकों ने अनुसंधान करके यह सिद्ध किया है कि क्रोध, घृणा और ईर्ष्या के कारण शरीर का बिगड़ा हुआ रासायनिक संतुलन मंगल-मैत्री की साधना करने से ठीक किया जा सकता है। मंगल-मैत्री के अभ्यास से बढ़ा हुआ कोलेस्ट्रॉल कम हो जाता है, रोगों से लड़ने की शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। यदि रोजाना थोड़ी देर के लिए विपस्सना करके चित्त को निर्मल कर मंगल-मैत्री की साधना की जाय तो बहुत-सी बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं।

रोज के अभ्यास से मंगल-मैत्री की तरंगें हमारे आसपास के वातावरण को मंगल तरंगों से भर देती हैं जिससे हमारा मन-मस्तिष्क-वाणी और कर्म सभी प्रभावित होते हैं। समस्त जीवों के प्रति हमारे अंदर दया, करुणा और मैत्री बढ़ती है जिससे जैव रासायनिक प्रतिक्रियायें और विद्युत चुम्बकीय तरंगें संतुलित रहती हैं। हमारा जीवन सुखमय बनता है और समाज तथा विश्व को हम खुशियाँ अर्थात् बांट सकते हैं। भगवान् बुद्ध ने मंगल-मैत्री के द्वारा ही डाकू अंगुलिमाल और हाथी नालागिरी को अपने वश में किया था।

विपस्सना साधना द्वारा शील सदाचार के पालन और करुणा, मैत्री, मुदिता और समता जैसे उच्च मानवीय गुणों को विकसित करके हम शांति और सुख का जीवन जी सकते हैं। भगवान् बुद्ध केवल मार्गदाता थे। अपनी मुक्ति के लिए हर किसी को स्वयं अपने आप ही प्रयास करना होता है। हमें अपने स्वयं श्रम से तरना होता है, मुक्त होना होता है।

तुम्हेहि किच्चमातप्पं, अक्खातारो तथागता (धम्मपद 276, मग्गवग्ग) अर्थात् मैं तो मार्ग आख्यात करता हूँ तुम्हारी मुक्ति के लिए तपना तो तुम्हें ही पड़ेगा।

“भलाई से भलाई पैदा होती है और बुराई से बुराई।”

अर्थात्

— गौतम बुद्ध

दूसरों के साथ वह व्यवहार करें जो अपने लिए पसंद है।

सन्दर्भ सूची

1. भगवान् बुद्ध धम्म-सार व धम्म-चर्या।
2. डॉ० भीमराव अम्बेडकर, “भगवान् बुद्ध और उनका धम्म”।
3. आचार्य सत्यनारायण गोयनका, “क्या बुद्ध दुःखवादी थे?”
4. आचार्य सत्यनारायण गोयनका, “आत्मकथन”
5. श्रीमद् भगवत्तमहापुराणम्, गीता प्रेस।



मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्यस्मृति में श्रेष्ठ प्रकरण की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

डॉ० जय सिंह

सांख्यिकी शोध अधिकारी

उच्च शिक्षा निदेशालय उ०प्र० इलाहाबाद

वर्ण व्यवस्था ही वह धुरी है, जिसके चारों ओर सामाजिक व्यवस्था घूमती है। यह व्यवस्था व्यक्ति की प्रकृति, उसके पालन पोषण की समस्याओं और समाज के कार्यात्मक विभाजन से सम्बन्धित है। यदि यह कहा जाय कि वर्ण व्यवस्था, सामाजिक संगठन हिन्दू सिद्धान्त की आधारशिला के रूप में कार्य करती है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वर्णों की उत्पत्ति का संकेत ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में उपलब्ध होता है। ब्राह्मण विराट् स्वरूप परमात्मा के मुख रूप हैं। क्षत्रिय उनकी भुजाएं हैं। वैश्य उनकी जंघाएं हैं और शूद्र उसके पांव हैं।

ब्राह्मण का रंग श्वेत, क्षत्रिय का लाल, वैश्यों का पीत और शूद्रों का काला है। उपर्युक्त कथन से एक जिज्ञासा होती है कि रंगों से वर्णों का निश्चय कैसे हुआ ? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि जिसमें, पवित्रता, यजन—याजन आदि गुण विद्यमान होते हैं, वही ब्राह्मण कहा जाता है। इसलिए ब्राह्मण के अन्दर इन उपर्युक्त गुणों का योग होने से उसका श्वेत रंग सत्त्वगुण (पवित्रता) का परिचायक था। तीखे स्वभाव वाले और जो क्रोधी थे, उनके शरीर का रंग लाल हो गया, जिस कारण वे क्षत्रिय कहलाने लगे। इस प्रकार स्वभावज गुणों के अनुसार क्षत्रियों का यही लाल रंग राक्षसी गुणों को व्यक्त करता था। गौओं तथा कृषि कर्म द्वारा जीविका चलाने के कारण वैश्यों शरीर का रंग पीला पड़ गया। यह पीत रंग रजोगुण एवं तमोगुण के मिश्रण का भी सूचक था; तथा निन्दनीय कर्म के कारण जिनका काला रंग तमोगुण एवं अपवित्रता का परिचायक था, वे शूद्र कहलाए। इसी सन्दर्भ में ब्रह्मा ने सत्त्व आदि गुणों का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि ब्राह्मणों में सत्त्वगुण की प्रधानता एवं क्षत्रिय में रजोगुण एवं शूद्रों में तमोगुण की प्रधानता पाई जाती है।

मनु एवं याज्ञवल्क्य ने समाज संचालन हेतु चार वर्णों का उल्लेख किया है, किन्तु वर्ण संकरता के परिणाम स्वरूप उनसे सत्तावन जातियाँ बन गयीं। मनु एवं याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र का उल्लेख मुख्यतः चार स्तम्भों के रूप में किया है। प्रथम सोपान पर अपने पूज्यों के प्रति भक्ति भाव रखकर उनकी सेवा शुश्रूषा में लगे रहना शूद्रों का कर्म रहा है तो कृषि कार्य, व्यापारादि से सामाजिक तन्त्र का समन्वय बनाये रखना वैश्यों का उत्तरदायित्व बना। तृतीय चरण में क्षत्रियों को अपने समाज की सुरक्षा का भार सौंपा गया और चतुर्थ पर समाज को कुशल नेतृत्व प्रदान करते हुए उसे अभीष्ट सत्य की ओर अग्रसर कराने का उत्तरदायित्व बुद्धिजीवी, चिन्तनशील ब्राह्मणों को सौंपा गया है।

जातिवाद, कार्यवाद, बुरा—भला दोनों हो सकता है। समय काल के अनुसार इस वर्ण व्यवस्था में दोष आ गये इसलिए महात्मा गांधी ने 'हरिजन आन्दोलन' शुरू किया। 'हरिजन' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हिन्दी साहित्य के स्तम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया था— "इन मुसलमानन पर कोटि हरिजनन देहिं

बार”। गोस्वामी तुलसीदास को भी यह शब्द प्रिय था। लेकिन वर्तमान में इसे आपत्तिजनक माना जाने लगा है।

मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृतियों में वर्णसंकरों का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। मनु का कथन है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अतिरिक्त पांचवाँ कोई वर्ण नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की अपनी जाति वाली स्त्रियों में सन्तान सजातीय कहलाती हैं। स्वजाति से भिन्न स्त्रियों से विवाह हीन माने जाते हैं। ये विवाह दो प्रकार के हैं— अनुलोम और प्रतिलोम। अनुलोम का अभिप्राय है अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह। प्रतिलोम का अर्थ है— अपने से उच्च वर्ण की स्त्री से विवाह। इस प्रकार अनुलोमज और प्रतिलोमज दो प्रकार की वर्णसंकर सन्तान होती हैं। अनुलोम और प्रतिलोम जातियों में सम्बन्ध योजना से उत्पन्न होने वाली निकृष्ट जातियों का विस्तृत परिचय मनु इस प्रकार देते हैं— निम्नोक्त सात जातियों के पुरुषों द्वारा अपनी जाति की स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न सन्तान पिता की जाति की कहलाती है, परन्तु इन छह जातियों के पुरुषों द्वारा अपने से उच्च जाति के गर्भ से उत्पन्न की गयी सन्तान पिता की जाति के स्थान पर माता की जाति को धारण करती है।

बुद्धिजीवी वर्ग में वे व्यक्ति आते हैं जिनका कार्य प्रमुख रूप से बुद्धि तथा भावना से संचालित होता है। इस वर्ग में अध्यापक, शोधकर्ता, अनुसन्धानकर्ता, वैज्ञानिक, चिकित्सक, वकील, दार्शनिक, धार्मिक उपदेशक, कथावाचक, समाज सुधारक, प्रशासन से सम्बन्धित व्यक्ति, लेखक, चित्रकार, संगीतकार, कलाकार आदि आते हैं। ये सभी शारीरिक शक्ति से सम्पन्न भले ही हों, उनका कार्य प्रधानतया बौद्धिक तथा कलात्मक होता है। इन व्यक्तियों की एक भिन्न मानसिकता तथा भिन्न बुद्धिवैभव होता है। इनको मनु द्वारा निर्दिष्ट ब्राह्मण माना जा सकता है जो समस्त समाज का कर्णधार होने के साथ-साथ सम्मान का पात्र हुआ करता था। समाज का पथ प्रदर्शक तथा दिशा निर्देशन का दायित्व उस पर शिक्षा गुरु, यज्ञकर्ता, मन्त्रणादाता के रूप में था तो आज बुद्धिजीवी के रूप में है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वर्णव्यवस्था सम्बन्धी शब्दों का विशेष महत्व नहीं रह गया है। क्योंकि देश, काल, वातावरण के अनुसार स्थितियाँ तेजी से बदली हैं, जो पद, प्रतिष्ठा एवं शासन पर पहुँचे निम्नवर्ग के लोगों की कार्यशैली के उचित कार्यान्वयन से सिद्ध हो रहा है कि यदि उन्हें उचित वातावरण मिले तो वह सभी वर्गों के समान कार्य कर सकते हैं और विभिन्न देशों में यह लोग शासन-सत्ता में बैठकर उचित कार्य कर भी रहे हैं।

मनु के अनुसार चारों वर्णों के लोगों के लिए सामान्य रूप से पालन करने योग्य धर्म है — 1. हिंसा न करना, 2. मिथ्याभाषण न करना, 3. चोरी न करना, 4. पवित्रता रखना तथा 5. इन्द्रिय —दमन।

चार आश्रम ही इस प्रकार क्रमशः धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि में सहायक माने जाते हैं। क्योंकि जीवन को निष्क्रिय बनाने से रोकने के लिए अर्थ और काम को मर्यादित रखने हेतु धर्म को मुख्य नियामक बनाकर मोक्ष को प्राप्त करवाना ही आश्रम व्यवस्था का मुख्य स्वरूप था। शैशवोपरान्त पच्चीस वर्षों तक शेष सांसारिकता से च्युत, निष्कलुष रहकर निर्जन वन के शान्त परिवेश में स्थापित पर्णशाला अथवा शीतल छाह के सघन विशाल वृक्ष तले गुरु चरणों की शुश्रूषा में तल्लीन शिष्य की श्रद्धा, सेवा से प्रसन्न होकर गुरु जहाँ उसे संसार की निस्सारता को दर्शाकर मनुष्य जन्म को सार्थक प्रदर्शन करता है और जहाँ शिष्य भी जीवन पथ पर आने वाले विभिन्न लुभावने भ्रमजालों के प्रति सचेष्ट होकर उनसे साक्षात्कार कर सकने वाले व्यक्तित्व का विकास करता है, वही ब्रह्मचर्य आश्रम है और यही इसका

स्वरूप है। तदुपरान्त गुरु शरण में बीते पच्चीस वर्षों की सेवा के फल को युवक जीवनोपयोगी सिद्धान्तों के गुरुमन्त्र के रूप में पाता है अर्थात् जब वह गुरुकुल से विद्याध्ययन समाप्त कर स्नातक हो जाता है तब पच्चीस से पचास वर्ष तक जिस आश्रम में वंश वृद्धि हेतु पाणिग्रहणादि संस्कारों से सम्पन्न हो, यज्ञ, दानादि श्रेष्ठ कार्यों को कर व्यवहार रूप से सामाजिक, धार्मिक कार्यों का अनुशीलन करते हुए लौकिक सुखों का उपभोग करता है, वही गृहस्थ आश्रम का रूप है। गृहस्थ आश्रम के पश्चात् ढलते जीवन में मनुष्य पुनः माया मोह से विरक्त होकर शान्ति की खोज करता है। इसलिए आश्रम व्यवस्था के तीसरे चरण में पचास से पचहत्तर वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम का विधान किया गया है।

वानप्रस्थ आश्रम में मनुष्य अपनी पत्नी के साथ एकान्त वन में ही रहकर अपनी इन्द्रियों को वश में करने का प्रयत्न करता है एवं सांसारिक माया—मोह, छल, दम्भ, पाखण्ड, झूठ आदि से अपने विमुख मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करता है। यही स्थिति मानव के लिए किंकर्तव्य विमूढता की होती है क्योंकि परिवार में रहकर भी उसे पारिवारिक मोह आदि से मन को हटाकर अपने मन में यह भाव पुष्ट करना होता है कि संसार में एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है एवं ब्रह्म से अतिरिक्त यह सम्पूर्ण जगत् मिथ्या है। इस प्रकार इस आश्रम में मानव सत्य ब्रह्म को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

धीरे—धीरे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ के उत्तदायित्वों से मुक्त होकर पचहत्तर वर्ष के बाद स्वतन्त्रता से वन में विचरण करना ही सन्यास आश्रम का लक्ष्य होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पूर्णतः आसक्ति रहित होना पड़ता है। आत्मिक बल से सुसज्जित हो आध्यात्मिक लक्ष्य सिद्धि हेतु सांसारिक माया—मोह आदि बन्धनों का त्याग जिस आश्रम में किया जाता है, उसे ही सन्यास आश्रम कहते हैं।

भारतीय संस्कृति ने कर्म फल के आधार पर ही पुनर्जन्मवाद के सिद्धान्त को स्वीकारा है। अतः मोक्ष प्राप्त करने के लिए ही मानव सन्यास आश्रम में प्रवेश करता है एवं सम्पूर्ण बन्धनों का त्याग कर अपने मन, बुद्धि तथा शरीर में स्वच्छता लाता है।



पारलौकिक पुरुषार्थ की अवधारणा

डॉ० वशिष्ठ नारायण शुक्ल एवं डॉ० वन्दना शुक्ला

6-एफ बैंक रोड (टीचर्स कालोनी), इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद।

भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन को आध्यात्मिक भौतिक एवं नैतिक रूप से संतुलित और उन्नत करने के लिए पुरुषार्थ की नियोजना की थी। 'पुरुषार्थ' का अर्थ मानवीय उद्योग का कोई प्रयोजन अथवा जीवन के चार उद्देश्यों में से एक है, जैसे धर्म अर्थात् कर्तव्य का पालन करना। अर्थ का तात्पर्य है आर्थिक शक्ति अथवा धन। काम अर्थात् कामनाओं की पूर्ति और अन्तिम पुरुषार्थ 'मोक्ष' अथवा मुक्ति है। भारतीय मनीषियों ने इन पुरुषार्थों को दो कोटियों में विभक्तकर इनके स्वरूप को स्पष्ट किया है।

1. व्यवहारिक पुरुषार्थ, यथा-अर्थ एवं काम 2. पारलौकिक पुरुषार्थ, यथा-धर्म एवं मोक्ष

व्यवहारिक जीवन में सर्वसाधारण मनुष्य 'अर्थ' एवं 'काम' को ही परम पुरुषार्थ के रूप में लक्ष्य करके सभी क्रियायें करता है। उसकी क्रियायें इन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति में सकेन्द्रित रहती हैं जिस पुरुषार्थ में आत्मिक सुख-शान्ति निहित रहती है, वे पुरुषार्थ धर्म एवं मोक्ष हैं।

मनुष्य जीवन का सबसे प्रमुख लक्ष्य उन्नति की ओर अग्रसर होना है। अनर्थों से बचकर ईष्ट-साधना कर मनुष्य अपना निरन्तर विकास ऐहिक एवं पारमार्थिक रूप में अवश्य करें, और ऐसा तभी सम्भव है जब वह धर्म का अनुशरण करे। क्योंकि धर्म ही उसे अनर्थों से बचाकर ईष्ट में योजित करता है।

धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'धारण करना' होता है। यही वह मूल तत्व है जिसे ग्रहण कर मनुष्य स्वस्थ समाज की संरचना कर अपने अस्तित्व को बनाये रखता है। धर्म का क्षेत्र अनन्त है, उसका प्रवेश एवं सम्बन्ध दोनों ही आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक क्षेत्र से है। आधिभौतिक अर्थ में धर्म अभ्युदय का साधन है तथा आध्यात्मिक, आधिदैविक अर्थ में धर्म निःश्रेयस का कारण है। महर्षि कणाद ने 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' अर्थात् जिसके द्वारा अभ्युदय एवं निःश्रेयस की सिद्ध होती है वह 'धर्म' हैं। धर्म नितान्त गूढ़ एवं व्यापक है। 'धर्म' आचरण एवं क्रियाशीलता को सदैव सद्पथ पर चलाने एवं प्रेरित करने वाली अदृश्य वैचारिक संहिता है। धर्म के इसी महत्व को श्रुति-स्मृतियों ने एकमत होकर स्वीकार किया है। गौतम धर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र एवं मनुस्मृति में धर्म को वेद का मूल कहा गया है-वेदो धर्ममूलम्।² धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च।³ वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।⁴

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में धर्म अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है क्योंकि प्रत्येक वस्तु का अपना धर्म होता है इन वस्तुओं का जो स्वरूप होता है वही उसका धर्म है। यह नितान्त सत्य है कि किसी भी वस्तु का स्वरूप निर्धारण उसके धर्म से होता है क्योंकि धर्म-निरपेक्ष वस्तु न तो जड़ है न तो चेतन। अतः प्रत्येक वस्तु के स्वरूप व अस्तित्व को धारण करने वाला धर्म ही है। अग्नि और जल को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है कि जिस प्रकार अग्नि में दाहकता धर्म तथा जल में द्रवत्व धर्म न होने से अग्नि और जल दोनों नहीं हैं उसी प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि प्रत्येक वस्तु की सत्ता ही उसका वास्तविक धर्म है। क्योंकि धर्म नष्ट हो जाने पर वस्तु की सत्ता (सार्थकता) नष्ट हो जाती है। अतः सत्तावान् होने के कारण ही प्रत्येक वस्तु सार्थक है। धर्म की इसी धारणीय शक्ति की महिमा का विशद उल्लेख महाभारत में प्राप्त होता है-

धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।

यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निष्पद्यते।⁵

धर्म की इसी अस्तित्वमयता एवं अपरिहार्यता के कारण इसे अभ्युदय तथा निःश्रेयस् का साधन माना गया है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में “धर्म” को प्रमुखता दी गयी है।^९ क्योंकि यह तीनों पुरुषार्थों में अनुस्यूत है। मोक्ष प्राप्ति के लिए अर्थ अनर्थकारी सिद्ध न हो तथा कामसेवन चारित्रिक अधःपतन का कारण न बने इसलिए इनके नियंत्रण एवं सम्यक् परिपालन के लिए धर्म की व्यवस्था की गयी है।

त्रिवर्ग^७ ही चतुर्वर्ग मोक्ष-साधन का मूल आधार है। मोक्ष शब्द ‘मुक्त’ धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है मुक्त करना व स्वतंत्र करना है। मोक्ष का अभिप्राय आत्मा की सांसारिक आवागमन से मुक्ति है। मोक्ष को पुरुषार्थों में अन्तिम और जीवन का अन्तिम तथा सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है। मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति भौतिक एवं आध्यात्मिक समुन्नति तथा पूर्णरूपेण सात्त्विक वृत्तियों को अपनाये बिना सम्भव नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता में विवेचित है कि जो मनुष्य सम्पूर्ण क्रियाओं को सदैव प्रकृति द्वारा ही की जाती हुई देखता है और अपने आपको अकर्ता अनुभव करता है वही मनुष्य यथार्थ को देखता है—

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।

यः पृथति तथात्मानमकर्तारं स पृथति॥^८

मोक्ष की अवधारणा भारतीय दर्शन की आधारशिला है। मोक्ष को जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। प्रत्येक दर्शन में ‘मोक्ष’ की अलग अलग व्याख्या होने के बावजूद मोक्ष की सामान्य अवधारणा के सम्बन्ध में सभी दर्शनों की आस्था है। सांख्य दर्शन में मोक्ष को सभी प्रकार के दुःखों का ऐकान्तिक और आत्यान्तिक विनाश कहा गया है। यह वह स्थिति होती है जिसमें पुरुष सभी प्रकार के दुःखों असम्भावनाओं और विपरीत भावनाओं से मुक्त होकर अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।^९ अतः यह मानव जीवन का परम लक्ष्य, परम श्रेय, अन्तिम पुरुषार्थ है और सांख्य में इसे अपवर्ग नाम से अभिहित किया गया है।^{१०}

शंकराचार्य ने समन्वयाधिकरणस्थ ‘तत्तुसमन्वयात्’^{११} इस सूत्र के विवेचन क्रम में ‘ब्रह्मभावा मोक्षः’^{१२} अर्थात् ब्रह्मभाव को मोक्ष कहते हुए उसे मोक्ष नित्य शुद्ध ब्रह्मस्वरूप वाला स्वीकार किया है— ‘नित्यशुद्धब्रह्मस्वरूपवान्मोक्षः’।^{१३}

रामानुजाचार्य ने मोक्ष के लिए ईश्वर की कृपा को आवश्यक बताया है।^{१४} इसी प्रकार माध्वाचार्य भी मोक्ष को भगवत्कृपा से ही सम्भव मानते हैं।^{१५} इसके विपरीत मीमांसकों के अनुसार मोक्ष प्राप्ति कर्म से ही सम्भव है— कर्मेति मीमांसकाः।^{१६} योगदर्शन के अनुसार ईश्वर प्राणिधान मोक्ष प्राप्ति में सहायक है।^{१७} जैन दर्शन भी अन्य भारतीय दर्शनों के समान ‘मोक्ष’ को जीवन का चरम लक्ष्य मानता है। इसके अनुसार जीव का पुद्गल से संयोग होना बन्धन और मुक्त होना ही मोक्ष है।^{१८}

श्रीमद्भगवद्गीता में मोक्ष को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है—

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।

भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥

योऽन्तः सुखोऽन्तरामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।

स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥^{१९}

भारतीय संस्कृति में विवेचित चारों पुरुषार्थों का एकमात्र उद्देश्य मनुष्य को कर्ममार्ग में प्रवृत्त करना। क्योंकि हमारी यह आस्थायुक्त धारणा है कि प्राचीन संस्कृति और वर्तमान जीवन में एकसूत्रता है। परन्तु वर्तमान समय में मनुष्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में इतना लिप्त हो गया है कि धनोपार्जन एवं कामोपभोग के लिए प्रयत्न ही उसका मुख्य उद्देश्य हो गया है। क्योंकि धनोपार्जन एवं कामोपभोग की

लालसा मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ भारतीय संस्कृति के मूलाधार स्तम्भ हैं। ये दोनों अत्यन्त सारगर्भित हैं तथा शक्ति और प्रगति की ओर मार्गदर्शन कराने वाले हैं। ये दोनों नैतिक मूल्यों को प्रश्रय देते हैं। यह दूसरी बात है कि यह व्यवहार की दृष्टि से पारलौकिक पुरुषार्थ क्लिष्ट हैं, जिसे हठात् ही स्वीकार कर लिया जाय। किन्तु वर्तमान समय में अत्यधिक धनोपार्जन की लालसा तथा असंयमित कामोपभोग जैसी महामारी को संयमित करने के लिए धर्म एवं मोक्ष की अवधारणा की आवश्यकता वर्तमान समय में अत्यावश्यक है—

ऋषियों—मुनियों ने सदा कही, मानव जीवन का लक्ष्य यही।
जीवन का मार्ग बताया है, सत् राह सदा दिखलाया है।
जो कहता है उनका विधान, वह सफल स्वर्ग का है निदान।
यह धर्म, अर्थ अरु काम, मोक्ष, है चरणबद्ध जीवन परोक्ष।
यह हिन्दू संस्कृति का पराग, है युक्ति—मुक्ति का प्रबल मार्ग।
इसको समझो जीवन यथार्थ, कुछ और नहीं बस पुरुषार्थ।

सन्दर्भ सूची

1. वैशेषिक सूत्र
2. गौधम धर्मसूत्र, 1/1/2
3. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/1/2
4. मनुस्मृति, 2/6
5. महाभारत, कर्णपर्व, 109/58
6. धर्मार्थवुच्यते श्रेयः कामार्थो धर्म एव च।
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः॥
मनुस्मृति, 2/224
7. त्रिवर्ग साधने यत्नः कर्तव्यो गृहमेधिना।
मार्कण्डेयपुराण, 31/10
8. श्रीमद्भगवद्गीता, 13/29
9. रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्यानमात्मना प्रकृतिः।
सैव च पुरुषार्थ प्रति विमोचयत्येकरूपेण॥
प्राप्ते शरीर भेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिक्तौ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यप्राप्नोति॥
तत्त्वकौमुदी—प्रभा, 62/68
10. तत्त्वकौमुदी—प्रभा, 69
11. शारिभाष्य, ब्रह्मसूत्र, 2/2
12. वही, 2/4
13. वही, 2/3
14. महवाचार्य, सर्वदर्शनसह
15. महवाचार्य, सर्वदर्शनसप्रह
16. मीमांसासूत्र
17. योगदर्शन, 4/34
18. सकाशयत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गला — नादत्ते स बन्धः।
तत्त्वार्थसूत्र, 8/2
19. श्रीमद्भगवद्गीता, 13/29,34



रामायण में औषध एवं चिकित्सा विज्ञान

डॉ. मुन्ना लाल चौधरी

सहायक प्राध्यापक—संस्कृत विभाग

शास. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

भारत में पादप जगत् के औषधी गुणों का ज्ञान वैदिक काल से शाश्वत् रूप से चला आ रहा है। अथर्ववेद आयुर्वेद का प्राचीन स्रोत है। हमारे ऋषि—मुनि आश्रम व गुरुकुल में रहकर जड़ी बूटियों का अनुसंधान व उपयोग कर समाज को लाभान्वित करते थे। ऋषियों की आश्रम रूपी प्रयोगशाला में वनौषधियों को पहुँचाने का कार्य ग्वाले किया करते, जहाँ इनको एकत्र कर इनसे निर्मित औषधियों से रोगियों की गहन चिकित्सा की जाती थी। इस पद्धति का चमत्कारिक प्रभाव होता था, चूँकि इनको शुद्ध एवं सम्यक् रूप से पहचान कर उपयोग किया जाता था। आयुर्वेद के मनीषी धन्वंतरी, चरक, सुश्रुत, अपने प्रयास से जीवन विज्ञान के इस शास्त्र को चिकित्सा विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित किया। महर्षि सुश्रुत शल्य कर्म एवं शल्य चिकित्सा सिद्धांतों के कतिपय उद्धरण वेदों में उल्लिखित हैं कृत्रिम अंग प्रत्यारोपण की व्यवस्था उस युग में प्रचलित थी।

आधुनिक युग का चिकित्सा शास्त्र शल्य चिकित्सा (प्लास्टिक सर्जरी) अंग हीनता के हीनत्व दोष को पृथक् कर व्यक्ति को अंगत्व प्रदान कर उसे प्रसन्नता प्रदान कर रहा है। लाखों वर्ष पहिले जब संपूर्ण जगत् इस तरह के चिकित्सा विज्ञान के चमत्कारों से अपरिचित था। तब शिव पुराण में भगवान शिव ने क्रोधित होकर पार्वती के मानस पुत्र गणेश का सिर धड़ से काट दिया, माता पार्वती के आग्रह पर एक आदर्श चिकित्सक बनकर गणेश के धड़ पर गजराज के सिर का प्रत्यारोपण का प्रयोग कर विनायक का अपर नाम गजबदन किया। वाल्मीकि रामायण में पुरातन भारतीय चिकित्सा विज्ञान के अनेक प्रमाणिक उद्धारण देखने को मिलते हैं। बालकाण्ड के 49वें सर्ग में महर्षि गौतम के शाप से अपने आंतक के कारण इन्द्र अण्डकोष रहित हो गये थे, परन्तु मरुत् गणों के द्वारा अग्नि की कृपा से भेड़े के अण्डकोष को निकाल कर इन्द्र के उचित स्थान पर सफलता पूर्वक प्रत्यारोपण किया :—

अयं मेषः सवृषणः शक्रो ह्यवृषणः कृतः।

मेषस्य वृषणौ गृह्य शक्रायाशु प्रयच्छत॥ बालकाण्ड 49 सर्ग 06

अग्नेस्तु वचनं श्रुत्वा पितृदेवाः समागताः।

उत्पाट्य मेषवृषणौ सहस्राक्षे न्यवेशयन्॥ बालकाण्ड 49 सर्ग 08

रामायण और महाभारत महाकाव्य मानव समाज के समग्र जीवन शैली व समस्त ज्ञान तथा जिज्ञासा पूर्ति के साधन भी रहे हैं। इसलिये इन्हें विश्व कोष कहा गया है। रामायण में 'शरीर विज्ञान और औषधी विज्ञान पर भारतीय पर्यावरण के अनुरूप वनौषधियों से मानव को निरोग रखने और रोगी के उपचार हेतु अनेक विध उपाय निर्धारित किये गये हैं। आयुर्वेद शास्त्री चरक ने चरक संहिता में काय (शरीर) एवं शल्य (चीर फाड़) चिकित्सा का उल्लेख किया है। भारत में अनादिकाल से ही ये दोनों चिकित्सा विधियाँ प्रचलित एवं विकसित थीं। ये दोनों चिकित्सा पद्धति पर्यावरण के अनुरूप तथा रोगी के शरीर पर किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं डालती है।

महाकवि श्रीहर्ष ने नैषधीय चरित में उत्तम चिकित्सक होने के लिए चरक सुश्रुत के अध्ययन का परामर्श अपने काव्य द्वारा समाज को दिया है :-

कन्यान्तः पुरबाधनाय यदधीकारान्न दोषा नृपः,

द्वौ मन्त्रिप्रवरश्च तुल्यमगडकारश्च तावूचतुः ।

देवाऽऽकर्णय सुश्रुतेन चरकेनोक्तेन जानेऽखिलं,

स्यादस्या नलदं विना न दलने तापस्य कोऽपि क्षमः ।। नैषधीय चरित । 4 । 116

जड़ी – बूटियों का महत्त्व : ब्रह्मा के मानस पुत्र सनत् कुमार जो देव चिकित्सक थे जो आयुर्वेदीय चिकित्सा के प्रयोग में प्रवीण थे। ऋषि भृगु के पुत्र ऋषि च्यवन ने च्यवनप्रास का अविष्कार किया जिसके सेवन से व्यक्ति में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने से वह निरोगी तो रहता ही है साथ ही वह असमय जरा (बृद्धावस्था) को प्राप्त नहीं करता। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड एवं युद्धकाण्ड में राम रावण युद्ध में मूर्च्छित लक्ष्मण एवं क्षत-विक्षत वानरों की काय और शल्य चिकित्सा वनौषधियों के द्वारा की गई थी। युद्धकाण्ड में सुषेण जो वानरराज सुग्रीव के चिकित्सक थे राम की सेना में युद्ध से आहत रोगियों के लिये चार प्रकार की औषधियों के द्वारा चिकित्सा की जिसके औषधी गुण इस प्रकार हैं “हे सौम्य, तुम शीघ्र ही महोदय पर्वत पर, जिसका पता जाम्बवान तुम्हें पूर्व में ही बता चुके हैं, पर जाओ और उसके दक्षिणी चोटी पर उत्पन्न विशल्यकरणी (शरीर में चुभे हुए बाण आदि के घाव भर कर पीड़ा दूर करने वाली) सावर्ण्यकरणी (शरीर को यथावत करने वाली) संजीवकरणी (मूर्च्छा दूर कर चेतना देने वाली) तथा संधानी (टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने वाली) नाम से प्रसिद्ध महौषधियों को लेकर आओ उन्हीं से लक्ष्मण की जीवन रक्षा होगी

सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम् ।

पूर्वं तु कथितो योऽसौ वीर जाम्बवता तब ।।

दक्षिणे शिखरे जातां महौधिमिहानय ।

विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा ।।

संजीवकरणीं वीर संधानीं च महौषधीम् ।

संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य त्वमानयः ।। युद्धकाण्ड 101 सर्ग 30,32

रामायण में काय एवं शल्य चिकित्सा में प्रयुक्त महौषधियों का सरलता पूर्वक सफलता के साथ रोगी को रोग मुक्त कराने के सफल प्रयोग किये गए हैं। सुषेण के मार्गदर्शन में हनुमान द्वारा लाए गए संपूर्ण पर्वत से संजीवकरणी औषधी को कूट पीस कर लक्ष्मण की नासिका के द्वारा शरीर में प्रवेश करते ही लक्ष्मण तत्काल स्वस्थ व निरोग हो उठ खड़े हुये।

रामायण युगीन चिकित्सकों को नाड़ी विज्ञान का संपूर्ण ज्ञान था। वे शरीर के प्रत्येक अंगों की क्रिया कलाप तथा अंगों के अनुरूप औषधी प्रयोग में परांगत होते थे। उन्हें अस्थि तंत्र का भी सम्यक् ज्ञान था। वे शरीर को स्पर्श कर पता कर लेते थे कि मूर्च्छित रोगी जीवित हैं या मृत। शरीर की सही आकृति स्थिति हृदय स्पन्दन को भी वे भली प्रकार से जानते थे, इसलिये सुषेण लक्ष्मण के मुख आभा तथा हथेलियों की स्थिति देख कर श्रीराम से कहा कि लक्ष्मण मृत नहीं अपितु मूर्च्छा में हैं।

शत्रु को नष्ट करने वाले लक्ष्मण के सारे शरीर में बाण धसें हुए थे। उस स्थिति में संजीवकरणी औषधी को सूँघते ही लक्ष्मण के शरीर से बाण निष्क्रिय होकर निकल गये और वे

निरोग होकर उठ खड़े हुये —

ततः संक्षोददायित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः ।

लक्ष्मणस्य ददौ जातः सुषेणः सुमहाद्युतिः ।।

सशल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा ।

विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् । युद्धकाण्ड 101 सर्ग 30, 32

वनौषधियों में अदभुत रोग प्रतिरोधक शक्ति होती है। औषधी के रोगी के शरीर में प्रवेश करते ही चेतना आ जाती है। आज इंजेक्शन और ऑक्सीजन गैस देकर बाह्य शक्ति रोगी के शरीर में समाहित करा दी जाती है। चिकित्सा विज्ञान वाल्मीकि युग में वर्तमान से भी अधिक विकसित व व्यवस्थित था, जिसकी आज भी प्रासंगिकता है।

ऐलोपेथी से किसी बीमारी के इलाज के लिये जो दवाईयाँ खाई जाती हैं उनसे आंशिक लाभ तो होता ही है परन्तु दुष्प्रभाव के कारण अन्य बीमारियाँ उत्पन्न कर जान जोखिम का खतरा रहता है। इन्हें क्रय करने में धन व्यय भी अधिक करना पड़ता है अतः इनके प्रयोग से तन, मन, धन नष्ट होते हैं। जबकि आयुर्वेदीय औषधियों में दुष्प्रभाव के कोई अवसर नहीं हैं। सामान्य रोग जैसे सर्दी जुकाम, खांसी, पेट के रोग, सिर दर्द, चर्म रोग आदि में हमारे आसपास उपलब्ध पेड़ पौधों रोग प्रतिरोधक जड़ी बूटियों को खोजकर न्यून धन व्यय से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं। पुरातन भारत में वनौषधियों का प्रयोग रोगी को स्वस्थ करने के लिये रामबाण के रूप में किया जाता था, परन्तु प्रयोग कर्ता प्रयोग विधि का प्रचार प्रसार कम करते थे इसलिये समाज का रुझान कम था। पहचान, संशोधन एवं प्रयोग के आधार पर सदियों तक आयुर्वेदीय पेथी की दुर्दशा रही है। जबकि यह विश्व की उच्च कोटी की पैथी है। आधुनिक युग में भारत ही नहीं बल्कि विश्व के अनेक देशों में आयुर्वेदीय औषधियों के नित नये प्रयोग होने से तथा अल्प धन व्यय कर दुष्प्रभाव रहित रोगी के स्वास्थ्य लाभ से इनका महत्त्व वर्तमान में और अधिक हो जाता है। वैदिक भावना भी कुछ इसी प्रकार की है :-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ।।



सभ्य समाज की भूमिका

डॉ० गीता यादव

प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग
टी०डी०पी०जी० कालेज, जौनपुर

हाल के वर्षों में 'नागर समाज' शब्द राजनीतिक, प्रशासनिक और बौद्धिक क्षेत्रों में काफी प्रचलित हो गया है; परन्तु इसका इतिहास प्राचीन समय से प्रचलित है। परम्परागत रूप से 'राज्य' और 'नागर समाज' दोनों शब्दों का इस्तेमाल एक दूसरे के पर्यायवाची थे और इनका प्रयोग एक दूसरे के लिए कर लिया जाता था। विगत कुछ दशकों से राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक सन्दर्भों में सभ्य समाज अथवा सिविल सोसायटी शब्द प्रचलन में है। व्यापक अर्थ में सभ्य समाज ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो एक दूसरे के कल्याण हेतु समग्र दृष्टिकोण से कार्य करते हैं। 'सरकार' और प्रशासन (बाजार) के प्रभावी संचालन हेतु व्यक्तियों के लोकतान्त्रिक समूह को सभ्य समाज कहते हैं।

सभ्य समाज की यह आधुनिक अवधारणा अठ्ठारहवीं सदी से पूर्व इससे भिन्न थी। प्राचीन तथा यूनानी दार्शनिकों ने सभ्य समाज की दिशा में पर्याप्त चिन्तन प्रस्तुत किया था जिसमें सिसरो अग्रणी माने जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि प्रसिद्ध राजनीतिक दार्शनिक जी०डब्लू० हीगल ने 'राज्य' तथा 'नागर समाज' के बीच अन्तर किया और उनका पृथक-पृथक विश्लेषण किया। उन्नीसवीं सदी में कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स और बीसवीं सदी में एन्टोनियो ग्राम्स्की ने इस विचार को आगे बढ़ाया। इन्हीं के समय विश्व में शीत युद्ध के कारण लोकतन्त्र के प्रति उत्पन्न हुई चेतना के परिप्रेक्ष्य में 'सभ्य समाज' की अवधारणा फली-फूली और पोषित हुई। उदारीकरण और निजीकरण की प्रवृत्तियों ने सभ्य समाज के चिन्तन को बढ़ावा दिया है। एक बार मैक्सबेवर ने राजनीतिक दलों को 'लोकतन्त्र के बच्चे' कहा था। आज के युग में कहा जा सकता है कि लोकतन्त्र को मजबूत बनाने के लिए 'सभ्य समाज' सर्वाधिक उपयुक्त 'बालक' है। मैकाइवर ने तो 'समाज' शब्द का प्रयोग सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन के लिए किया, जिसका कालान्तर में 'राज्य' नाम की संस्था के रूप में उदय हुआ। हम लोग समाज में रहते हैं। मुख्यतः समाज में व्यक्तियों का संगठित समूह, अपनत्व की भावना, उद्देश्यपूर्ण संगठित मनुष्यों द्वारा प्रयास तथा सांस्कृतिक मूल्यों से सम्बद्ध मानवीय समुदाय को सम्मिलित किया जाता है। अर्थात् राज्य के अतिरिक्त लोककल्याण हेतु बने विभिन्न संघ व समुदाय सभ्य समाज की श्रेणी में आते हैं। राज्य और जन व्यवस्था (बाजार) में सदैव सहसम्बन्ध तनावपूर्ण होते हैं। सभ्य समाज विभिन्न संघों के रूप में इन दोनों के बीच में अपना सामाजिक स्थान रखता है जो वैधानिकता के दायरे में स्वतंत्रता प्राप्त स्वसंगठित समूह होता है। विविधता, स्वैच्छिक प्रयास, सहनशीलता, त्याग, आदर तथा सर्वसम्मति मिलकर सभ्य समाज का निर्माण करते हैं। 'सभ्य समाज' रूपी छाते के अंतर्गत युवा संगठन, कृषक संघ, श्रमिक संघ, कार्मिक संघ, स्वयंसेवी संस्थाएँ, जातीय संगठन, सहकारी समितियाँ, राजनीतिक पार्टियाँ, धार्मिक संगठन, महिला संगठन, व्यापार संघ धर्म तथा समाज सुधार आन्दोलन, गैर सरकारी संस्थाएँ आदि सम्मिलित हैं। वास्तव में परिवार सभ्य समाज की एक सशक्त इकाई है। जिस प्रकार 'परिवार' अपने विरुद्ध गलत कार्यों

को मूकदर्शक बनकर नहीं देखते, बल्कि पारिवारिक व सामाजिक हितों को ध्यान में रखकर व्यवस्था पर नियंत्रण करते हैं। उसी प्रकार 'सभ्य समाज' शासन सत्ता पर नियंत्रण का कार्य करता है। इसे फाइनर ने 'अज्ञात साम्राज्य' की संज्ञा दी है। इसे राज्य द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता। यह राज्य एवं अर्थव्यवस्था के बाहर विकसित होता है। सिविल समाज वह सामाजिक निवास है जिसे पूँजी निर्माण एवं बाजार व्यवस्था से भिन्न माना जाता है। निजी स्वतंत्रता के साथ ही सामाजिक भागीदारी कर सार्वजनिक भलाई, आम सहमति, एकात्मकता तथा सामूहिकता है अर्थात् परिवार, राज्य और वाणिज्य की दुनिया के बीच स्थित संगठन जो बिना किसी स्वार्थ के काम करता हो।

सम्प्रति सभ्य समाज (स्वयंसेवी, स्वैच्छिक तथा अवैतनिक गैर सरकारी संगठन) कल्याण एवं विकास प्रशासन में अपेक्षित भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। भारत जैसे देश में नागरिकों की संगठित पहल अन्य रूपों में अभिव्यक्त होती है— जैसे जन आन्दोलन एवं जन संघर्ष। महात्मा गाँधी, विवेकानन्द, मदर टेरेसा जैसे लोगों ने समय-समय पर ऐसे आन्दोलनों को प्रेरणा प्रदान की है। बाबा आम्टे, सुन्दरलाल बहुगुणा, पाण्डुरंग शास्त्री, बाबा रामदेव और अन्ना हजारे के नेतृत्व में कुछ ऐसे ही जनांदोलन आधुनिक भारत में सभ्य समाज (सिविल सोसायटी) की उभरती भूमिका का नेतृत्व करते हैं। समाज में राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक तथा आर्थिक चेतना उत्पन्न करना जिससे लोग संगठित व गतिशील हों। प्रशासनिक नीतियों, कानूनों तथा योजनाओं के लिए प्रशासन तंत्र को उत्तरदायी (जवाबदेह), संवेदनशील तथा पारदर्शितापूर्ण कार्यों को बढ़ावा देना। जनहित, मानवीय कल्याण तथा विश्व शान्ति तथा भाईचारे की भावना हेतु नागरिक जीवन में राज्य व सरकार के निरंकुश व्यवहार को नियंत्रित करना। नागरिकों के सूचना प्राप्त करने के अधिकार के साथ नागरिक चार्टर (अधिकार पत्र) को मान्यता दिलाना।

भारत सहित बहुसंख्यक विकासशील देशों की सामाजिक व्यवस्था संक्रमणकाल से गुजर रही है, जहाँ एक साथ नई-पुरानी परम्पराएँ एवं प्रगतियाँ परस्पर विरोधी होने के कारण संघर्षों से घिरी हैं। कटु सत्य है कि आज भी भारतीय समाज का एक बड़ा भाग सभ्य तथा संस्कारित कहलाने के योग्य नहीं है, जो नित्य नई अनावश्यक समस्याएँ उत्पन्न करता है। आये दिन मेला, त्योहार, समारोह, विवाह, रैली या बड़ा कार्यक्रम आयोजित कर सार्वजनिक स्थलों पर कूड़ा-कचरा छोड़ना। सरकार पर दबाव डालने हेतु सार्वजनिक सम्पत्ति का दुरुपयोग, पुलिस पर पथराव कर वाह-वाही लूटना, पानी की कमी होने पर मटके फोड़कर प्रदर्शन करना। सरकारी कार्यालयों तथा गृहों से लेकर सार्वजनिक स्थलों तक पानी एवं बिजली निरर्थक रूप से बर्बाद करना। गरीब से लेकर अमीर तक तथा निरक्षर से लेकर साक्षर तक अधिकांशतः सरकारी भूमि का अतिक्रमण करते हैं। वह चाहे घर के आगे सड़क पर बागवानी से लेकर प्लॉट हथियाने या अवैध कब्जे कुछ भी हो सकते हैं। व्यस्ततम मार्ग पर रेलवे फाटक बन्द मिलने पर दोनों तरफ से वाहन आमने-सामने खड़े होकर रास्ता जाम करने तक की अनेकानेक अव्यवस्थाएँ हैं।

हनुमानजी, गणेशजी, दुर्गाजी, शिवजी या अन्य देवी-देवताओं के प्रकट होने के नाम पर 51 रुपये से 1001 रुपये तक चन्दे माँगना, पोस्ट कार्ड लिख-लिखकर संदेश पाने वाले को यह बात दुहराने की प्रेरणा दी जाती है। आजकल मोबाइल फोन पर मैसेज के द्वारा यह प्रक्रिया बेरोक-टोक निरन्तर कार्य कर रही है। इन्हीं लोगों के द्वारा अंधविश्वास, नजर उतारना और दूसरे के यहाँ चीजें फेंककर पड़ोसी

को संकट में डालने की अपेक्षा करना जैसी क्रिया से लेकर विवाह व अन्य समारोहों में अन्न (भोजन सामग्री) का दुरुपयोग करना शामिल है। भ्रष्ट, अपराधी तथा स्वार्थी की वोट डालकर चुनना और उनसे नैतिकता, प्रतिबद्धता व राष्ट्रप्रेम की अपेक्षा करने के कारण किसी भी कार्य को निर्धारित समय से अधिक देरी की जाती है, जिसे 'भारतीय समय' का नाम दिया जाता है। सचिवालयों, निदेशालयों तथा अन्य कार्यालयों के बाहर साहब (नौकरशाही) के सामने द्वारपाल सैल्यूट करता है तथा साहब (नौकरशाही) बिना प्रत्युत्तर आगे चल देते हैं। ऐसा महसूस होता है कि साहब के संस्कार द्वारपाल जितने भी नहीं हैं। संस्कारों की कमी निर्धन से लेकर उच्च सम्पन्न व्यक्तियों को संस्थाओं या मित्रों से लिये गये ऋण या उधार को चुकाने में आना-कानी करने का प्रमुख कारण है। अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षक एवं प्रेरक शिवखेड़ा कहते हैं— "कोई भी देश कभी चोर-उचक्कों से बर्बाद नहीं होता, बल्कि जब भी शरीफ आदमी कायर और निकम्मा हो जाता है तभी समाज बर्बाद होता है यदि आपके पड़ोसी के घर अत्याचार हो रहा है तथा आपको नींद आ जाती है तो अगला नम्बर आपका है बेवकूफी की हद तक की सहनशीलता मानवता नहीं बल्कि कायरता है समाज अपने नागरिकों के चरित्र पर ज्यादा निर्भर करता है बजाय उनकी बुद्धिमत्ता पर जिस नेता को हम अपने बच्चों के संरक्षक बनाने पर भरोसा नहीं कर सकते, उसे हम देश का संरक्षक क्यों बना देते हैं यदि आपके पास समस्या का समाधान नहीं है तो आप स्वयं ही समस्या हैं।" वास्तव में भारतीय समाज के समक्ष चुनौतियों का भंडार है, क्योंकि सामाजिक स्तर पर अकर्मण्यता, झूठा राष्ट्र प्रेम तथा झूठी आस्तिकता और ढोंगी स्वभाव राजनीतिक समाज के द्वारा प्राकृतिक समाज में बढ़ने के कारण सभ्य समाज की सकारात्मक भूमिका में बाधक बनता जा रहा है। किसी सामान्य उद्देश्य के लिए संगठित मनुष्यों के समुदाय को समाज कहते हैं। मैकाइवर ने इसे राज्य का नाम दिया, जो पहले समाज का अभिन्न अंग बना, किन्तु धीरे-धीरे समाज पर छा गया और राज्य सर्वोपरि संस्था बन गई। समयानुसार समाजवादी और लोककल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त ने इसके महत्व को और बढ़ा दिया तब प्रशासकीय राज्य मशीन की भाँति नौकरशाही के माध्यम से कार्य करने लगा। लोकतन्त्र के नाम पर निर्वाचित सरकारें प्रशासकीय और राजनीतिक शक्तियों पर एकाधिकार कर लीं। प्रथम विश्व युद्ध के बाद बहुलवादी विचारधारा ने राज्य पर प्रहार किया और अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र और राज्य के समकक्ष अनेक समुदाय बन गये। बहुलवादियों ने राज्य के समकक्ष अन्य समुदायों को आवश्यक एवं प्राकृतिक रूप से स्वीकार किया है। लास्की ने लिखा है कि — "ये समुदाय राज्य से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं और यदि समाज का संगठन संघीय है तो शक्ति की व्यवस्था भी संघीय होती है।" बार्कर ने समाज की इकाई व्यक्ति को न मानकर समुदाय को माना। इसलिए राज्य को समुदाय की महत्ता स्वीकार करनी चाहिए। मध्ययुगीन गिल्ड व्यवस्था से प्रेरणा प्राप्त करते हुए बहुलवाद की धारणा है कि आधुनिक काल में भी समाज व्यवस्था का आधार स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले समुदायों को बनाया जाय, क्योंकि इनका जन्म प्राकृतिक है और स्वतः स्फूर्ति से कार्य करते हैं, राज्य की कठोर पद्धति/आज्ञाओं के कारण नहीं। इस प्रकार बहुलवाद स्वस्थ प्रजातान्त्रिक मानवतावादी प्रतिक्रिया है, जो स्वतंत्रता और उदारवाद पर आधारित है, जिसने आगे चलकर 'सिविल सोसायटी आन्दोलन' को प्रेरणा दी।

आवश्यकता है 'सभ्य समाज' की अवधारणा को व्यापक बनाने की, जिससे समस्त मानवीय संगठनों के माध्यम से राज्य, बाजार, प्रशासन, लोक कल्याण सम्बन्धी समस्याओं तथा अन्य असामाजिक तत्वों पर नियंत्रण किया जा सके। सभ्य समाज का विचार ऐसे उदारवादी एवं संवेदनशील समाज की कल्पना करती है, जो परिपक्व तथा प्रतिबद्धता से पूर्ण हो। 'सभ्य समाज' तृतीय क्षेत्र है, क्योंकि प्रथम क्षेत्र 'सरकार' तथा द्वितीय क्षेत्र बाजार अर्थात् प्राकृतिक समाज के प्रभावी संचालन हेतु व्यक्तियों के ऐसे संगठित समूहों की आवश्यकता है, जो लोकतान्त्रिक ढंग से स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करते हुए इन दोनों क्षेत्रों पर नियंत्रण एवं संतुलन का कार्य कर सके। सभ्य समाज (तृतीय क्षेत्र) पारस्परिक सम्बद्धता सामान्य कार्य पद्धति और नेटवर्किंग के माध्यम से दो अथवा उससे अधिक व्यक्तियों के बीच सहयोग को बढ़ावा देते हैं। लोकतन्त्र स्वाभाविक रूप से ऐसे सहयोगात्मक आचरण को प्रोत्साहित करता है। भारतीय संविधान के अनु0 19(1) में स्पष्ट लिखा है – बोलने और विचारों को अभिव्यक्त करने और एसोसिएशन और यूनियन बनाने की स्वतन्त्रता का अधिकार अर्थात् भारतीय नागरिकों के मूल अधिकारों में से एक मूल अधिकार है, जो सभ्य सामाजिक संगठन और सामुदायिक संगठन बनाने के लिए निरन्तर प्रोत्साहित करता है।

वर्तमान आर्थिक विकास के मॉडल में स्वैच्छिक/सिविल सोसायटी को न्यायसंगत, संधारणीय और समावेशी विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में एक प्रमुख और महत्वपूर्ण खिलाड़ी माना गया है। विकास के राज्य और बाजार दोनों मॉडलों को अपर्याप्त माना जाता है। यह महसूस किया जा रहा है कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में 'सभ्य समाज' को सक्रिय रूप से भाग लेने की आवश्यकता है। उन्हें अब राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक प्रगति में बराबर का भागीदार माना जाता है। 'सभ्य समाज' राज्य और प्राकृतिक समाज दोनों के रुढ़िगत स्थान से बाहर होकर स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं, लेकिन उनमें इन दोनों संस्थाओं को नागरिकों की आवश्यकताओं और जागरूक बनाने के लिए उनसे बातचीत, उन्हें मनाने और उनके सामाजिक इच्छाओं के अनुरूप दबाव डालने की क्षमता का होना आवश्यक है। सभ्य समाज ने पिछले कुछ वर्षों में गाँवों में छोटे पुस्तकालय, क्लबों और स्कूलों से, छोटे कस्बों में स्वयंसेवी संस्थाएं और शिक्षा संस्थाओं तक, महानगरों में काम करने वाली बड़ी गैर सरकारी इकाइयों और वहाँ से आर्थिक रूप से सुदृढ़ निगम प्रतिष्ठानों तक लंबी छलांग लगाई है। 'सभ्य समाज' ने प्रारम्भिक शिक्षा, ग्रामीण प्रौद्योगिकी के विस्तार, प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्चा और शहरी विकास के मुद्दों जैसे क्षेत्रों में सरकार के प्रयासों को पूरा करने में सहयोग किया है। अर्थव्यवस्था की संवृद्धि और वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप हमारे देश में 'सभ्य समाज' तेजी से विस्तार के मार्ग पर बढ़ रहा प्रतीत होता है। वह पेय जल की आपूर्ति, भू-संरक्षण, बच्चों की देखभाल, लैंगिक समानता, कौशल प्रशिक्षण, उद्यमशीलता का विकास, भ्रष्टाचार के विरुद्ध, सिटीजन चार्टर (अधिकार पत्र), सरकारी विभागों के कार्यशैली की पारदर्शिता आदि मुद्दों पर सकारात्मक योगदान देने का प्रयास कर रहा है। इन संगठनों को अपनी अधिक संवृद्धि के लिए समाज में समर्थन और सहमति का वातावरण तैयार कर समष्टि के रूप में कार्य करना चाहिए। आधुनिक राजवैज्ञानिक आंटोनियो ग्राम्सी ने राज्य को 'बल' और 'सहमति' का मिश्रण माना है जिसमें राजनीतिक समाज 'बल' का और नागरिक समाज 'सहमति' का प्रतीक है। 'सभ्य समाज' राज्य और उसकी शक्ति

के बिना नागरिक परस्पर संगठित होकर स्वप्रेरणा और सौहार्द्र से उन विकासात्मक कार्यों को करें जिसे आमतौर से राज्य और उनका अभिकर्ता प्रशासन करता है। अर्थात् सत्ता के बजाय सहमति और आदेश के बजाय आत्मनियंत्रण से कार्य करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। अन्तर्राष्ट्रीय बालक केन्द्र, पेरिस के महानिदेशक एतीने बरथेट का कहना है – “मानव स्वभावतः ही किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति से संतुष्टि प्राप्त करता है। अतः लोगों की विचारधारा परिवर्तित करने से पूर्व उन्हें यह समझना आवश्यक है कि परिवर्तन से उन्हें क्या लाभ प्राप्त हो सकता है।” इसलिए लोकतंत्र की रीढ़ को मजबूती प्रदान करने के लिए सभ्य समाज को शासन और नागरिक के बीच बढ़ती हुई खाई को पाटने का दायित्व स्वयं सँभालना उचित और अपरिहार्य है।

संदर्भ सूची

1. डॉ० सुरेन्द्र कटारिया, डॉ० शशि इन्दुलिया, लोक प्रशासन, मालिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2004-05.
2. हॉब्स-‘लेवायथन’ (Lviathan)
3. एम० लक्ष्मीकान्त, लोक प्रशासन, टाटा मैग्रा हिल कं०, नई दिल्ली, 2006.
4. रूसो-‘सामाजिक अनुबन्ध’ (Social Contract), 1762.
5. डॉ० बी०एल० फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन, 2011.
6. लॉक-‘शासन पर दो निबन्ध’ (Two Treatises on Government).



आत्म अनुशासन : लक्ष्यों और उपलब्धियों के बीच का पुल

डा० श्वेता गर्ग

असिस्टेंट प्रोफेसर

जी०एल० बजाज इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट एण्ड रिसर्च, ग्रेटर नोएडा

“मनुष्य का मन जिसकी कल्पना कर सकता है और जिस पर विश्वास कर सकता है, उसे वह प्राप्त भी कर सकता है।” —नेपोलियन हिल

अपने लिये स्पष्ट लक्ष्य बनायें और अनुशासित होकर हर दिन उनकी दिशा में काम करें। अनुशासन की यह योग्यता आपकी सफलता जितनी सुनिश्चित करती है, उतनी कोई दूसरी चीज नहीं कर सकती। जीवन में सार्थक चीजें प्राप्त करने के लिये लक्ष्य बनाना अनिवार्य है। आप जीवन के हर क्षेत्र में सचमुच क्या चाहते हैं, यह तय करने भर के काम से ही आपकी जिंदगी पूरी तरह बदल सकती है।

जब आपके पास निश्चित मार्ग होता है, तब आप न भटकते हैं और न ही दूसरी दिशा में जाते हैं। ज्यादातर लोगों को यह गलतफहमी रहती है कि उनके पास पहले से ही लक्ष्य हैं, जबकि वास्तव में उनके पास सिर्फ आशाएँ और इच्छाएँ होती हैं।

लक्ष्य लिखना एक “साइको-न्यूरो-मोटर गतिविधि” है। लिखते समय आप सोचने और ध्यान केंद्रित करने के लिये विवश होते हैं। इससे आप यह चुनने के लिए विवश होते हैं कि आपके और आपके भविष्य के लिए क्या महत्वपूर्ण है। फलस्वरूप जब भी आप कोई लक्ष्य लिखते हैं, तो आपके अवचेतन मन पर आपकी छाप छूट जाती है। इसके बाद आपका अवचेतन मन हर दिन चौबीस घंटे लक्ष्य साकार करने में जुट जाता है।

जैसे ही आप कोई लक्ष्य तय करते हैं, आपकी असफलता का प्रोग्राम रूक जाता है और सफलता का प्रोग्राम सक्रिय हो जाता है। यानी लक्ष्य तय करके आप अपने जीवन की दिशा बदल सकते हैं।

लक्ष्य प्राप्ति के सात सरल तरीके हैं, जिन पर चढ़कर आप ज्यादा तेजी से लक्ष्य तय कर सकते हैं और उन्हें साकार भी कर सकते हैं।

1. यह तय करें कि आप वास्तव में क्या चाहते हैं। पूरी तरह स्पष्ट रहे।
2. इसे लिख लें। अलिखित लक्ष्य सिगरेट के धुएँ जैसा होता है यह उड़कर दूर चला जाता है और ओझल हो जाता है। लिखित लक्ष्य को आप देख सकते हैं, पढ़ सकते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उसमें संशोधन भी कर सकते हैं।
3. लक्ष्य प्राप्त करने की डेडलाइन तय करें। आपने देखा होगा कि किसी स्पष्ट डेडलाइन के दबाव में आप अक्सर ज्यादा काम कर लेते हैं। यही आपके अवचेतन मन के साथ भी होता है। जब आप यह तय कर लेते हैं कि आप किसी निश्चित समय सीमा में कोई लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं, तो वह भी ज्यादा तेजी और कुशलता से काम करता है।
4. लक्ष्य प्राप्त करने के लिये हर उस चीज की सूची बना लें, जिसकी जरूरत आपको पड़ सकती है।
5. क्रम और प्राथमिकता दोनों के आधार पर सूची को जमा लें।

6. अपनी योजना पर तत्काल कार्य शुरू कर दें।

7. हर दिन कोई ऐसा कार्य करें, जो आपको अपने प्रमुख लक्ष्य की दिशा में ले जाये।

कुछ ही समय में आपमें लक्ष्य तय करने और प्राप्त करने का अनुशासन आ जायेगा। जल्द ही यह कार्य आसान और स्वचलित हो जायेगा। आप हर वक्त अपने लक्ष्यों की दिशा में काम करने की आदत और अनुशासन विकसित कर लेंगे।

आपके जीवन की परिस्थितियाँ आपके विचारों का परिणाम है। जब आप अपने विचार बदल लेते हैं, तो आपका जीवन स्वतः ही बदल जाता है। आपका बाहरी संसार आपके आंतरिक संसार का दर्पण बन जाता है।

दैनिक लक्ष्य— निर्धारण का अनुशासन आपको शक्तिशाली, उद्देश्यपूर्ण और अजेय बना देगा। इससे आपमें आत्म सम्मान, आत्म विश्वास और आत्म-गौरव विकसित होगा। जब आप अपने लक्ष्यों की ओर ज्यादा तेजी से बढ़ने लगेंगे, तो अंततः एक ऐसा समय आयेगा, जब दुनिया की कोई ताकत आपको नहीं रोक पायेगी।

“सही अनुशासन बाह्य कारणों की विवशता से नहीं, बल्कि उन मानसिक आदतों से उत्पन्न होता है, जो अवांछित गतिविधियों के बजाय बांछित गतिविधियों की ओर स्वतः ही ले जाती हैं”।

संदर्भ सूची

1. “The Skinny on willpower : How to develop self discipline” by Jim Randel
2. A New Guide to Rational living by Albert Ellis.
3. Think & Grow Rich by Napolian.
4. The power of self discipline by Brian Tracy.
5. A New Earth : Awakening to your life’s purpose by Eckhart Tolle.
6. Getting It done : The Transforming power of self discipline by Andrew J. Dubrin.
7. The Power of Positive thinking by Norman Vincent peale.
8. Understanding Motivation & Emotion by Johnmarshall Reeve.
9. Flow : The psychology of optimal experience by Mihaly csiks & entrnihalyi.
10. Mind Gym : An athlete’s Guide to Inner Excellence by David Casstevenas.



डॉ० राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव

रीडर-हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

उ०प्र० विकलांग उद्धार डॉ० शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

डॉ० राममनोहर लोहिया ने समाजवादी मूल्यों और आदर्शों को केन्द्र में रखकर एक समता मूलक समाज को निर्मित करने का सपना देखा था। डॉ० राममनोहर लोहिया ने जाति-तोड़ो का नारा दिया और धर्म को व्यक्ति के निजी आचरण तक सीमित रखा। धर्म और जाति से राज्य प्रभावित न हों यह स्पष्ट धारणा डॉ० लोहिया के मन में थी। डॉ० लोहिया एक सच्चे स्वतन्त्रता सेनानी थे, इसलिए आपके विचारों में भारत की अखण्डता का प्राथमिक महत्व था। डॉ० लोहिया का स्वप्न विश्व सरकार स्थापित करने का था। मानवता की दृष्टि से डॉ० लोहिया पूर्व-पश्चिम, काले-गोरे, अमीर-गरीब, छोटे-बड़े राष्ट्र तथा नर-नारी के बीच की दूरी मिटाना चाहते थे। डॉ० राममनोहर लोहिया जी स्पष्ट कहा करते थे कि जनतंत्र और समाजवाद एक सिक्के के दो पहलू हैं। आपने अन्याय के खिलाफ एक साथ क्रांति का आह्वान किया। चाहे वह लैंगिक विभेद हो, रंगभेद हो, आर्थिक असमानता हो, निजी जीवन में अन्यायी हस्तक्षेप हो या जातिप्रथा। डॉ० राममनोहर लोहिया चाहते थे कि मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन और स्वभाव की अभिव्यक्ति हो। विश्वबन्धुत्व के सपने का एक और रूप भी डॉ० राममनोहर लोहिया के मन में था और वह था, मनुष्य जाति के शारीरिक सामीप्य का। डॉ० लोहिया की दृष्टि में वह दिन दूर नहीं जब नर-नारी संबंधों में जाति, धर्म, नस्ल और रंगभेद खत्म हो जायेंगे और सारे ही मनुष्य मिश्रित रक्तवाले होंगे। तभी किसी भी समाज में वास्तविक समाजवाद एवं सामाजिक समरसता आ सकता है।

डॉ० मधु लिमये के शब्दों में कहें तो “लोहिया में एक ‘भीतरी आंख’ थी जो सपने देखती थी। उन्होंने समस्त मिथ्यावाद, पाखण्ड, धूल-धक्कड़ और गरीबी के भीतर बहने वाली ‘प्रगति की अन्तर्धारा’ को खोज लिया था और उसी से ‘चेतना के जगत’ का विस्तार मानते थे। वे उस अन्तर्धारा को हाथ में लेना, संभालना चाहते थे। लोहिया इस चीज से परिचित थे कि देश में यथास्थितिवादी ताकतें मजबूत हैं जिनपर शीघ्रता से काबू नहीं पाया जा सकता था। युगों के जड़त्व से आच्छादित विघटन, राज्य समेत सभी संस्थाओं पर अपना प्रभाव डाल चुका था। विघटन की यही स्थिति विधान सभाओं, अदालतों, राजनीतिक दलों, प्रेस तथा अकादमिक समुदायों में भी थी। स्वयं का संवर्द्धन, जीवन का नियन्त्रण सिद्धान्त बन चुका था। बावजूद इसके उन्होंने कभी हिम्मत नहीं हारी, हार नहीं मानी। लोहिया अलग-थलग रहकर, कुर्सी पर बैठकर राजनीति करने वाले नेता नहीं थे। वह एक स्वप्नदृष्टा तथा उसे साकार करने वाले, दोनों ही थे। उनका लक्ष्य था हमारे समाज में मौलिक परिवर्तन व उसके पुनर्संयोजन, जो भारत को एक विश्व-समुदाय में बराबर का सदस्य बना देगा।”

इसमें कोई दो राय नहीं कि डॉ० लोहिया एक मिशन के साथ आते हैं और अपना कार्य पूरा करके विदा हो जाते हैं आपके कर्म, जीवन, विचार, सिद्धान्त और मूल्य अनुकरणीय बन जाते हैं। डॉ० लोहिया भावी पीढ़ी को दिशा-निर्देश एवं मार्ग दर्शन करते हैं। जिन्होंने अमीरी-गरीबी, दबे-कुचले, शोषित, पीड़ित, खेतहार, मजदूर, किसान और दलितों के लिए डटकर संघर्ष किया और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त

किया। डॉ० लोहिया के इस मिशन में समाजवादी विचारधारा के पैरोकार अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, जे०पी०, आचार्य नरेन्द्र देव, लाड़ली मोहन निगम इत्यादि थे। किन्तु इन सभी में सर्वाधिक मुखर और प्रखर वक्ता, सिद्धान्त की तार्किक प्रस्तुति करने वाले डॉ० राममनोहर लोहिया ही एक मात्र प्रौढ़ चिन्तक थे। डॉ० लोहिया ने स्पष्ट रूप से कहा भी था कि “मुझे आशा है कि मैं कभी कोई राज सत्ता पद ग्रहण नहीं करूंगा। मैं चाहता हूँ कि सारी दुनिया में कुछ ऐसे राजनयिक तैयार हों, जो शासन-सत्ता में पद ग्रहण किये बिना अपने कर्तव्य पालन की विशेषता प्राप्त करें। मानव समाज के सामने एक बड़ी समस्या यह है कि शासन शक्ति कैसे नियंत्रित हो। कदाचित् इस उद्देश्य को प्राप्त करने का एक तरीका स्वेच्छा से सत्ता की ताकत का त्याग करना है। कम से कम हमें इस दिशा में प्रयास करना चाहिये।”

परिवर्तन तथा पुनर्निर्माण को सम्भव बनाने के लिए डॉ० लोहिया जी को क्या कुछ नहीं सहना पड़ा—यातना और पीड़ा, अपमान और भयंकर अकेलापन, पराजय के बाद पराजय, एक के बाद एक छोड़कर जाते हुए साथी। कदम-कदम पर लगता रहा जैसे भाग्य ही डॉ० लोहिया के विरुद्ध है। लेकिन डॉ० लोहिया में असाधारण बौद्धिक प्रतिभा और अजेय कर्मठता के साथ अटूट संकल्प-शक्ति थी। उन्हें मूर्ख, पागल, शेखचिल्ली, मानसिक रोगी न जाने क्या-क्या कहा गया। लेकिन सब कुछ सहते हुए भी न टूटकर लोहिया ने देश की तरक्की के लिए अनेक कार्य किए। डॉ० लोहिया सप्तक्रांति के जनक हैं, जिस समय डॉ० लोहिया ने यह विचार दिए थे उस समय की परिस्थितियों पर अगर ध्यान दें तो डॉ० लोहिया ने अत्यंत सोच विचार के बाद ही दुनिया भर की परिस्थितियों को और स्थितियों को देखने के पश्चात् अपनी सप्तक्रांति को सामने रखा था। उस समय उनका यह मानना था कि 20वीं सदी, बड़ी निर्दयता वाली सदी है क्योंकि 20वीं सदी में उनके अनुसार जो बड़ी बात थी कि सबसे अधिक निर्दयता का व्यवहार मानवता के स्तर पर हुआ और न्याय की मांग भी सबसे अधिक बीसवीं सदी में ही उठाई गयी थी।

डॉ० लोहिया समग्रतावादी दृष्टिकोण को तवज्जो देते थे। इसलिए डॉ० लोहिया ने कभी किसी एक पक्ष को सामने रखकर अपने विचार देने की कोशिश नहीं की और जब वे विश्वबन्धुत्व या वसुधैव कुटुम्बकम् की बात करते हैं तो उसमें कहीं न कहीं यह बात आती है आपने पूरी दुनिया के स्तर पर समाज को समझने की कोशिश की और उसके बाद अपने विचार सामने रखे कि किस तरह से समाज को सही दिशा दी जा सकती है। समाज या सामाजिक समरसता की जो बात थी। वहाँ डॉ० लोहिया सभी प्रकार की समानताओं को देखते थे, साथ ही कितनी तरह की गैर बराबरी या विषमताएँ समाज में हैं और उनको कैसे और किस तरह से समतावादी समाज में तब्दील किया जा सकता है इसको समझने की आवश्यकता पर बल दिया। सप्तक्रांति में उन्होंने सात तरह की जो बातें की थीं इससे समाज में समानता स्थापित हो सकती है। इसमें डॉ० लोहिया आर्थिक समानता की बात करते थे, सांस्कृतिक समानता और सामाजिक समानता की बात उन्होंने की, लोहिया जी ने नया नारा दिया था विश्व नागरिकता का। विश्व नागरिकता के बारे में डॉ० लोहिया का यह मानना था कि जब तक यह दूरियाँ हमारे बीच में आती रहेंगी, तब तक शायद हमारे बीच में समानता स्थापित नहीं हो सकती, कहीं न कहीं टकराव कहीं न कहीं संघर्ष की स्थिति बनी रहेगी। डॉ० लोहिया ने सप्तक्रांति के अंतर्गत विश्व नागरिकता, रंगभेद की समाप्ति, लिंगभेद की समाप्ति, हथियारों की समाप्ति की बात की। हथियारों की समाप्ति भी समानता स्थापित करने में सहायक हो सकती है।

डॉ० लोहिया समाजवादी ही नहीं थे, बल्कि एक अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ, विचारक एवं महान लेखक थे। जीवन का शायद ही कोई ऐसा पहलू बचा हो जिस पर डॉ० लोहिया ने अपनी प्रतिभा से स्पर्श न किया हो। ऐसे अन्याय के विरुद्ध, अहिंसक और व्यापक मानव मूल्यों में विश्वास करने वाले व्यक्ति का दर्शन था, जो गाँव, क्षेत्र प्रदेश और राष्ट्र से लेकर विश्व के स्तर पर एक साथ कई अन्यायों के विरुद्ध लड़ने के लिए सदैव तत्पर रहना जीवन का लक्ष्य मानता था। डॉ० लोहिया का यह सपना था कि हम एक ऐसे आजाद हिन्दुस्तान का निर्माण करें, जो न केवल देश के ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में शान्ति स्थापित करने के प्रति समर्पित रहे।

इतिहास को डॉ० लोहिया ने सभ्यता के उत्थान-पतन, शक्ति के स्थानान्तरण और समाज की सापेक्षता, जड़ता या गतिशीलता के सन्दर्भ में देखा। उनकी दृष्टि स्वयं अपने ही देश के इतिहास पर रूकी। भारतीय समाज दुनिया के और किसी भी हिस्से से ज्यादा लम्बे समय तक जड़ और जकड़ा हुआ क्यों रहा है? ऐसा क्यों है कि दुनिया का कोई और देश परदेशियों द्वारा इतनी अधिक बार जीता नहीं गया, इतना ज्यादा कुचला नहीं गया, जितना हिन्दुस्तान? ऐसा क्यों हुआ कि हिन्दुस्तान जब उठा तो सारी दुनिया को शायद दिया ही दिया, उससे लिया कुछ नहीं और जब गिरा तो सारी दुनिया की जूठन बटोरता रहा, उसके पास किसी को देने के लिए कुछ नहीं रहा। जर्मनी में पढ़ते हुए लोहिया ने, ये सवाल मार्क्सवादियों से, हीगलवादियों से पूछे, पर किसी से भी उनको इसका संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। तब डॉ० लोहिया ने इतिहास, दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र सबमें ऐसे विचार-सूत्रों की तलाश की जिससे एक ऐसी विचार-व्यवस्था बनती हो, जिसमें आंतरिक संगति हो और जो इन सब सवालों का जवाब दे सके।

डॉ० लोहिया अनेक सिद्धान्तों, कार्यक्रमों और क्रांतियों के जनक हैं। और सभी अन्यायों के विरुद्ध एक साथ जेहाद बोलने के पक्षपाती थे। सामाजिक समरसता के लिए डॉ० लोहिया ने एक साथ सात क्रांतियों का आह्वान किया। वे सात क्रान्तियाँ थीं। नर-नारी की समानता के लिए। चमड़ी के रंग पर रची राजकीय, आर्थिक और दिमागी असमानता के खिलाफ। संस्कारगत, जन्मजात जातिप्रथा के खिलाफ और पिछड़ों को विशेष अवसर के लिए। परदेसी गुलामी के खिलाफ और स्वतन्त्रता तथा विश्व लोक-राज के लिए। निजी पूँजी की विषमताओं के खिलाफ और आर्थिक समानता के लिए तथा योजना द्वारा पैदावार बढ़ाने के लिए। निजी जीवन में अन्यायी हस्तक्षेप के खिलाफ और लोकतंत्री पद्धति के लिए। अस्त्र-शस्त्र के खिलाफ और सत्याग्रह के लिये। इन सात क्रांतियों के सम्बन्ध में लोहिया ने कहा-मोटे तौर से ये हैं सात क्रान्तियाँ। सातों क्रांतियाँ संसार में एक साथ चल रही हैं। अपने देश में भी उनको एक साथ चलाने की कोशिश करना चाहिए। जितने लोगों को भी क्रांति पकड़ में आयी हो उसके पीछे पड़ जाना चाहिए और बढ़ाना चाहिए। बढ़ाते-बढ़ाते शायद ऐसा संयोग हो जाये कि आज का इन्सान सब नाइन्साफियों के खिलाफ लड़ता-जूझता ऐसे समाज और ऐसी दुनिया को बना पाये कि जिसमें आन्तरिक शांति और बाहरी या भौतिक भरा-पूरा समाज बन पाये।

वैश्विक परिदृश्य में आज की राजनैतिक उथल-पुथल में डॉ० लोहिया जी की प्रासंगिकता बढ़ गयी है क्योंकि उनका स्वदेशी मन जिस कर्तव्यबोध से बंधा था उसमें सत्ता मोह की अपेक्षा जन शक्ति और जन इच्छा को संगठित करने के प्रति विशेष आग्रह है। आज की राजनीति केवल सत्ताभिमुख रहेगी और जन इच्छा तथा जन शक्ति पर आधारित नहीं रहेगी तो हमारे मौलिक अधिकारों की रक्षा नहीं हो सकेगी।

डॉ० लोहिया की प्रासंगिकता इसलिए भी है कि उनकी समाजवादी विचारधारा समस्याओं का केवल विश्लेषण ही नहीं करती, उनका निदान भी प्रस्तुत करती है। उनमें आग्रह है दुराग्रह नहीं। आज के विखराव वाले वातावरण में डॉ० लोहिया के विचार देश और समाज को एक सूत्रता में ला सकते हैं क्योंकि उनके चिन्तन में गहराई के साथ कर्म की उर्जा पैदा करने की प्रवृत्ति है। वास्तव में आज भी डॉ० राम मनोहर लोहिया के बारे में जानने वालों की संख्या बहुत कम है।

भारत की वर्ग-व्यवस्था का सूक्ष्म अध्ययन कर डॉ० लोहिया ने उसे अत्यंत मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है। डॉ० लोहिया ने कहा कि वर्गगत समाज में मुख्य वस्तु है—शोषण। जो शोषण कर सकते हैं, वे अधिक पूंजी संलग्न कर सकते हैं, जो शोषण नहीं कर सकते, उनका शोषण होता है। शोषणकर्ताओं का अस्त्र विशेषाधिकार होता है। इनमें से कुछ विशेषाधिकार जन्म से ही प्राप्त हो जाते हैं और कुछ प्राप्त किए जा सकते हैं। विशेषाधिकार एक सीमित वर्ग को ही प्राप्त होता है। डॉ० लोहिया के मतानुसार भारत में बुनियादी तौर पर तीन विशेषाधिकार हैं—प्रथम के तहत डॉ० लोहिया का भाषा सम्बंधी विशेषाधिकार से तात्पर्य अंग्रेजी भाषा के ज्ञान से है। आज धन और प्रतिष्ठा अंग्रेजी से जुड़ी हुई है। करोड़ों लोगों का विचार है कि वे तो अंग्रेजी ज्ञान से अनभिज्ञ हैं तो शासन और प्रशासन का कार्यभार कैसे वहन करेंगे? भाषा के आधार पर वर्तमान में ही नहीं वरन् पन्द्रह सौ वर्षों से शोषण और शोषित वर्ग निरंतर अस्तित्व में रहे हैं।

द्वितीय के तहत डॉ० लोहिया ने वर्ग-उद्भव का दूसरा कारण जाति-सम्बंधी विशेषाधिकार को माना है। डॉ० लोहिया का मानना है कि विश्व में सक्षम और असक्षम के मध्य युद्ध होते रहे। सबलों ने निर्बलों को पराजित कर उन्हें अपने अधीन कर लिया, परन्तु भारत में, विजेता वर्ग ने पराजित वर्ग को नष्ट न करके केवल अधिकारों को सीमित किया और जीवन का एक अंग उन्हें बना लिया। विजेता वर्ग द्विज और पराजित वर्ग शूद्र कहलाया। जैसे-जैसे समय-चक्र चलता गया द्विज-अद्विज को अधिकाधिक व्यक्तिवहीन बनाता गया। इसके साथ ही वर्ग-उत्पत्ति का तीसरा मुख्य कारण डॉ० लोहिया आर्थिक विषमता को मानते हैं। आर्थिक विषमता पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'सारे संसार में छोटे और बड़े आदमी के मध्य अंतर है, लेकिन भारत में यह अंतर मारक है। गोरे देशों में चाहे वे पूंजीवादी हो या साम्यवादी लोगों का आपस में चाहे पाँच-सात गुने का अन्तर होता है। यह अंतर भारत में 50-100-300 गुने का साधारण तौर पर होता है। परिणाम यह है कि एक तरफ भोजन और कपड़ा नहीं है और दूसरी तरफ आधुनिकता और शौकीनी का सदा बढ़ता परिहास है।'

डॉ० लोहिया के उपरोक्त तीन विशेषाधिकारों से चार वर्गों का निर्माण होता है— शासक वर्ग :— जाति, सम्पत्ति और भाषा तीनों का अधिकार प्राप्त होता है। उच्च मध्यम वर्ग :— उच्च वर्ग और अंग्रेजी भाषा इन दोनों अधिकारों से वह तीसरा अधिकार, सम्पत्ति को प्राप्त कर शासक वर्ग में शामिल हो जाता है। निम्न मध्यम वर्ग :— केवल एक ही गुण होता है। जाति, भाषा या सम्पत्ति। इस वर्ग के आगे बढ़ने के सभी प्रयास निष्फल हो जाते हैं। सर्वहारा वर्ग :—तीनों गुणों में से एक भी नहीं। न सम्पत्ति, न भाषा और न जाति। इस वर्ग का व्यक्ति ऊपर उठने की आशा नहीं रख पाता। वर्ग-उन्मूलन हेतु डॉ० लोहिया ने भाषा सम्बंधी विशेषाधिकार को समाप्त करने का काफी प्रयास किया। इसके लिए 'अंग्रेजी हटाओ अभियान' पर सर्वाधिक बल दिया। अंग्रेजी के प्रयोग की समाप्ति के लिए न्यायालयों में हुई डॉ० लोहिया की बहस सर्वविदित है।

‘अंग्रेजी हटाओ’ आन्दोलन के पीछे डॉ० लोहिया का मानना था कि अंग्रेजी प्रशासन एवं जनता के मध्य अलगाव पैदा करने वाली एक विदेशी भाषा है। वे कहते थे कि संसार में किसी देश का विकास विदेशी भाषा द्वारा नहीं वरन् उसकी जनभाषा के माध्यम से ही हुआ है। डॉ० लोहिया रूस, चीन, फ्रांस आदि देशों का उदाहरण देकर बताते रहे कि इन तमाम देशों ने अपनी प्रगति बिना अंग्रेजी ज्ञान के अपनी भाषाओं के जरिये की है। आज जापान, कोरिया और चीन जैसे उदाहरण हमारे सामने हैं, जिन्होंने अपनी प्रगति अपनी भाषाओं में की है। डॉ० लोहिया का कहना था कि अंग्रेजी ज्ञान के चक्कर में विद्यार्थी विषय ज्ञान में पारंगत नहीं हो पाते, मौलिक चिंतन अपनी भाषा में ही संभव है, किसी विदेशी भाषा में नहीं, इसलिए वे भाषा ज्ञान की तुलना में विषय ज्ञान को महत्व देते हैं। वह हिन्दी को सारी संकीर्णताओं से निकालकर एक उदार भाषा बनाने के पक्षधर थे। दुर्भाग्य की बात है कि आज भाषा ज्ञान के कुतर्क के खिलाफ विषय ज्ञान की महत्ता के लिए संघर्ष करने वाला कोई राम मनोहर लोहिया हमारे बीच नेतृत्व करने के लिए नहीं है।

डॉ० लोहिया मातृभाषा प्रेमी थे। लोहिया ने वर्लिन के विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और विश्वविख्यात अर्थशास्त्री प्रोफेसर बर्नर जेम्बर्ट को अपना निदेशक व परीक्षक चुना। राममनोहर लोहिया जब निदेशक के सामने साक्षात्कार देने गये तो उन्होंने सभी प्रश्नों का उत्तर निर्भीकता से दिया। जेम्बर्ट मातृभाषा प्रेमी थे। जेम्बर्ट से प्रेरित होकर उनको हिन्दी के प्रति अटूट श्रद्धा व विश्वास जागृत हो गया। उन्होंने कहा मातृभाषा को छोड़कर ज्ञान व अभिव्यक्ति का दूसरा सशक्त माध्यम कोई हो नहीं सकता। वैसे वे अंग्रेजी के भी विरोधी नहीं थे और अंग्रेजी को एक सक्षम भाषा मानते हुए भारतीय विश्वविद्यालयों में वे उसे ऐच्छिक विषय के रूप रखना चाहते थे, उन्होंने लिखा है—“अंग्रेजी अपने क्षेत्र में एक लावण्यमयी भाषा है..... पर ज्यादा परिनिष्ठत, परिग्राही एवं उदार है। तब हम ‘अंग्रेजी हटाओ’ कहते हैं तो हम यह बिल्कुल नहीं चाहते कि इसे इंग्लैण्ड या अमेरिका से हटाया जाये और न हिन्दुस्तानी कॉलेजों से, बशर्त वह एक ऐच्छिक विषय हो। पुस्तकालयों से तो इसे हटाने का प्रश्न ही नहीं उठता।” डॉ० लोहिया अंग्रेजी भाषा को सामन्ती भाषा मानते हुए उनका कहना था कि भारतीयों को अपनी मातृभाषा पढ़नी चाहिए। डॉ० लोहिया को इस बात का दुःख था कि लोकसभा की समस्त कार्यवाही अंग्रेजी भाषा में होती थीं वे कहते थे “जनतंत्र न होकर परतंत्र है।” उनका यह भी कहना था कि जिन लोगों को हिन्दी नहीं आती वे अंग्रेजी में ही क्यों बोलते हैं। वे तेलगू, बंगाली, गुजराती, मराठी, आदि प्रान्तीय भाषाओं में क्यों नहीं बोलते? यदि देशी भाषाओं के माध्यम से शासन का कार्य नहीं चलता है तो वह समाप्त हो जायेगा और एकता की बजाय बिखराव आ जायेगा।” डॉ० लोहिया हिन्दी के हिमायती थे। वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखना चाहते थे। उनका निश्चित मत था कि जन भाषा ही समाज की अभिव्यक्ति और उन्नयन का साधन है। उनका कथन था — किसी सामन्ती राज को खत्म करने के लिए जरूरी है कि सामन्ती भाषा और भूषा से जनता नफरत करना सीखे”। डॉ० लोहिया भारतीय व विदेशी भाषाओं के अच्छे जानकार थे, उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, पंजाबी, बंगला, फ्रेंच, जर्मन आदि का ज्ञान था वहीं उन्होंने विदेशी भाषाओं का भी अध्ययन किया था व वहाँ का साहित्य भी पढ़ा था। डॉ० लोहिया जी नये-नये शब्दों और सामाजिक भाषा विज्ञान के अनेक पहलुओं की भी खोजबीन करते थे। लोहिया जी में भारतीय भाषा और लोकभाषा के प्रति संवेदनशील होने की झलक दिखाई देती है।

डॉ० लोहिया के आर्थिक चिन्तन दृष्टि के तीन पड़ाव हैं प्रथम मार्क्स का जिसे वह अर्द्धसत्य वाला

चिन्तक मानते थे। मार्क्स के वर्ग संघर्ष को डॉ० लोहिया भारतीय जाति व्यवस्था के संबंध में उचित नहीं मानते थे। द्वितीय चिन्तन दृष्टि गांधी, जिसे वह पूर्णतया मानवीय चिन्तन स्वीकार करते थे और उनके जीवन दर्शन और उनकी आर्थिक नीति को भारतीय परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण मानते थे लेकिन उसमें वह व्यावहारिक मानवीय सन्दर्भ को व्यापक यथार्थ से जोड़ते हैं तृतीय चिन्तन दृष्टि है समाजवाद को वह मार्क्स की परिभाषाओं की सीमा में आबद्ध नहीं करते बल्कि समाजवाद को वह प्रत्येक देश के इतिहास, भूगोल, समाज की अनिवार्यताओं के साथ जोड़कर प्रासंगिक बनाते हैं। शास्त्रीय और सैद्धान्तिक रूप में डॉ० लोहिया जिस अर्थ व्यवस्था की व्याख्या करते हैं उसके आधारभूत तत्त्व इस प्रकार हैं, जाति और वर्ग उन्मूलन, विकेन्द्रीकरण, राष्ट्रीकरण, भूमि वितरण, अन्न सेना का गठन, भू सेना का निर्माण, खर्च पर सीमा, आय नीति, मूल्य नीति आदि। डॉ० लोहिया ने इस आधारों को अपनी दृष्टि में रखते हुये, व्यक्ति, गाँव और छोटी मशीनों को केन्द्र में रखकर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। डा० राम मनोहर लोहिया के सम्पूर्ण चिन्तन का मूल उद्देश्य था कि व्यक्ति और गाँव को कैसे प्रतिभा सम्पन्न और अर्थ सम्पन्न बनाया जा सकता है।

डॉ० लोहिया के अनुसार निजी स्वामित्व की सीमा वहीं तक रह सकती है, जहाँ तक कि वह अपनी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके तथा अन्य व्यक्तियों को शोषित श्रमिक की स्थिति न दे सके। सामाजीकृत तथा निजी सम्पत्ति के सह सम्बन्ध का विवेचन करते हुये लोहिया ने लिखा है कि “सामूहिक सम्पत्ति का अपरिमित विकास और निजी सम्पत्ति पर अपेक्षित अंकुश इन दोनों का मेल ही संतोष की स्थिति ला सकता है, जब अपूर्ण इच्छाओं की पीड़ा दुःख नहीं देगी।” डॉ० लोहिया ने सामाजीकृत व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिये चार कदम उठाने के सुझाव दिये हैं : प्रथम, लोकसभा के सभी सदस्यों की सम्पत्ति के एक भाग का चाहे वह जमीन हो, कारखाना हो, मकान हो राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। इस पर शक्ति से अमल हेतु उल्लंघनकर्ता के लिये जेल का प्रावधान रखा जाये। डॉ० लोहिया ने माना कि, जब तक जेल की सजा का बहुतायत से प्रयोग नहीं किया जाता, तब तक हिन्दुस्तान का आर्थिक जीवन सुधर नहीं सकता। द्वितीय, लोहिया के अनुसार चार्टर्ड—एकाउन्टेन्टों का राष्ट्रीयकरण किया जाये, क्योंकि पूँजीपतियों के अधीनस्थ स्थिति होने के कारण ये घपलों तथा गलतियों को कानूनी औचित्य का दर्जा प्रदान कर देते हैं। तृतीय, सभी विदेशी कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। डॉ० लोहिया के अनुसार इन कम्पनियों की लाभ दर बहुत अधिक 35 प्रतिशत तक है। ऐसी स्थिति राष्ट्र के लिये बहुत खतरनाक होगी। साथ ही राष्ट्रीय राजनीति में भी काफी हस्तक्षेप होता है, क्योंकि इन कम्पनियों में जिन लोगों को नौकरियाँ मिलती हैं, उनमें नौकरशाह, मंत्री, और बड़े लोगों के परिजनों की संख्या का प्रतिशत बहुत अधिक होता है।

डा० राम मनोहर लोहिया जी का आर्थिक चिंतन सशक्त है। यद्यपि मार्क्स ने औद्योगीकरण को पूँजीवाद का संवाद माना परन्तु डॉ० लोहिया का लक्ष्य समाजवादी समाज की स्थापना करना है किन्तु इसके लिए पूँजीवाद का सह अस्तित्व अनिवार्य है। दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। एक—दूसरे के अभाव में कोई टिका नहीं रह सकता। नेहरू ने मार्क्सवादी लेनिनवादी समाजवाद की तुलना में मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले समाजवाद को ज्यादा महत्व दिया किन्तु उत्पादन के संसाधनों का केन्द्रीकरण और बढ़ती मंहगाई के कारण मजदूरों की संख्या में वृद्धि के साथ ही साथ जातिवाद, लघु उद्योग बनाम बड़े उद्योग, भ्रष्टाचार तथा चुनावी जोड़-तोड़ के लिए जातीय समीकरणों के जाल से नहीं बच पाए। डा०

लोहिया के समाजवाद में मुख्य मुद्दा अर्थ एवं आर्थिक शक्तियों के वितरण तथा जातिवाद और उसके विभेदकारी कुप्रथाओं को समाप्त करना था। जहाँ पर मार्क्स ने सामाजिक और आर्थिक साम्य के लिए क्रांति द्वारा परिवर्तन की बात की, वहीं पर डा० लोहिया भी क्रांतिकारी हैं किन्तु शांतिपूर्ण ढंग से समाज में परिवर्तन लाने के पक्षधर रहे हैं।

डा० लोहिया ने औद्योगीकरण हेतु मध्यम मार्ग को अपनाया। डा० लोहिया ने न तो गांधी जी के चरखा जैसे उपकरण को अपनाया और न नेहरू जी के समान आधुनिक भारी उद्योगों को। उन्होंने लघु मशीन के सिद्धांत को अपनाया। डा० लोहिया ने छोटी मशीनों के औचित्य को सिद्ध करते हुए कहा था कि ये मशीनें भारतीय स्थिति की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। छोटी मशीनों की व्यवस्था से अल्पपूंजी वाले कुटीर और लघु उद्योग धन्धे चला सकते हैं और आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। डा० लोहिया का मानना था कि भारतवर्ष में आर्थिक विकेन्द्रीकरण लघु और कुटीर उद्योगों के बिना सम्भव नहीं है, क्योंकि साधनहीन जनता को एक ओर शोषक विशाल उद्योगों से छुटकारा चाहिए तो दूसरी ओर स्वयं का विकास करने के लिए लघु उद्योग और नियंत्रित उपकरण चाहिए। समाज—कल्याण सम्पत्ति के समाजीकरण पर आधारित है। सम्पत्ति के प्रयोग में ही नहीं वरन् समस्त जीवन मूल्यों में वैयक्तिक हित की समाप्ति ही समाजवाद का लक्ष्य है। डा० लोहिया व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व देते थे, इसीलिए उन्होंने सम्पत्ति के समाजीकरण पर काफी बल दिया। वे जानते थे कि इसके बिना वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती। डा० लोहिया इस प्रकार की व्यवस्था के पक्षपाती थे कि जिसमें एक तरफ सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण हो। डा० लोहिया ने राष्ट्रीयकृत उद्योगों की सुव्यवस्था, कठिन नियंत्रण, आय पर उचित नियंत्रण तथा वितरण एवं प्रबंधों के सरल जीवन पर बल देकर राष्ट्रीयकरण की सार्थकता प्रमाणित की है। इसके अलावा उन्होंने राष्ट्रीयकरण के सबसे बड़े दोष केन्द्रीयकरण को समाप्त कर इसकी एक बड़ी बुराई दूर कर दी है। वास्तविकता भी है कि उपर्युक्त तत्वों के बिना समाजीकरण का कोई महत्व नहीं रह जाता।

डा० लोहिया की चिन्तन धारा कभी देशकाल की सीमा की बंदी नहीं रही। विश्व की रचना और विकास के बारे में उनकी अनोखी व अद्वितीय दृष्टि थी। इसलिये डा० लोहिया ने सदा ही विश्व नागरिकता का सपना देखा था। डा० लोहिया मानवमात्र को किसी देश नहीं बल्कि विश्व का नागरिक मानते थे। डा० लोहिया की चाह थी कि एक से दूसरे देश में आने—जाने के लिये किसी तरह की भी कानूनी रुकावट न हो और सम्पूर्ण पृथ्वी के किसी भी अंश को अपना मानकर कोई भी कहीं आ—जा सकने के लिये पूरी तरह आजाद हो। डा० लोहिया एक नयी सभ्यता और संस्कृति के दृष्टा और निर्माता थे। लेकिन आधुनिक युग जहाँ उनके दर्शन की उपेक्षा नहीं कर सका, वहीं उन्हें पूरी तरह आत्मसात भी नहीं कर सका। अपनी प्रखरता, ओजस्विता, मौलिकता, विस्तार और व्यापक गुणों के कारण डा० लोहिया अधिकांशतः लोगों की पकड़ से बाहर रहे। इसका एक कारण है—जो लोग डा० लोहिया के विचारों को ऊपरी सतही ढंग से ग्रहण करना चाहते हैं उनके लिये डा० लोहिया बहुत भारी पड़ते हैं। गहरी दृष्टि से ही डा० लोहिया के विचारों, कथनों और कर्मों के भीतर के उस सूत्र को पकड़ा जा सकता है जो सूत्र डा० लोहिया—विचार की विशेषताएं हैं, वही सूत्र ही तो उनकी विचार पद्धति हैं।

एक समाजवादी बुद्धिजीवी के रूप में डा० लोहिया जी ने सूक्ष्म चिन्तन व मनन किया। आप भारत ही नहीं विश्व की जनता के लिए समर्पित यथार्थवादी व समाजवादी आन्दोलन के कीर्ति स्तम्भ थे। कृषकों

व ग्रामों की स्थिति में सुधार लाने के लिए विकेंद्रित समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे। धर्म व राजनीति का समन्वित उपयोग चाहते थे। आपके अनुसार—राजनीति के बिना धर्म निष्प्राण हो जाता है तथा धर्म के बिना राजनीति में संकट आ जाता है। धर्म को 'दीर्घकालीन राजनीति' तथा राजनीति को 'अल्पकालीन धर्म' कहते थे। सत्य का महत्व समाज की व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण था। छल—कपट, आलस्य, कर्तव्यनिष्ठा का अभाव, निकम्मेपन को सामाजिक प्रगति व सामाजिक न्याय में बाधा मानते थे। लोहिया पर गांधीवाद की अमिट छाप थी। और समाजवादी विचारधारा के गरम प्रवक्ता थे। गांधीजी के सत्याग्रह अहिंसा के अखण्ड समर्थक थे, लेकिन गांधीवाद को अधूरा दर्शन मानते थे, वे समाजवादी थे, लेकिन मार्क्स को एकांगी मानते थे, वे राष्ट्रवादी थे लेकिन विश्व सरकार का सपना देखते थे। वे आधुनिकतम आधुनिक थे लेकिन आधुनिक सभ्यता को बदलने का प्रयत्न करते रहते थे। वे विद्रोही एवं क्रान्तिकारी थे। लेकिन शान्ति व अहिंसा के अनूठे उपासक थे।

आज डॉ० लोहिया जी के एक—एक शब्द न केवल भारतीय राजनैतिक मानचित्र पर सही उतर रहे हैं बल्कि विश्व के रंगमंच पर जो कुछ घट रहा है उसमें डॉ० लोहिया जी की दृष्टि समाहित है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम और भारत के समाजवादी आन्दोलन में डॉ० राम मनोहर लोहिया का एक विशिष्ट स्थान रहा है। भारत की राजनीति में परिवर्तन की पहल डॉ० लोहिया ने ही की थी। आदर्श को कोरेपन से मुक्त करके उसे व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए सारा देश उनका ऋणी रहेगा। लोहिया के विचारों में भारतीयता के साथ—साथ वर्तमान परिस्थितियों के बुनियादी कर्तव्यों की सर्वथा मौलिक शक्ति दिखाई देती है। डॉ० नीलम संजीव रेड्डी (पूर्व राष्ट्रपति) के शब्दों में कहे तो 'इस देश में अनेक नेता हुये, लोहिया केवल एक हुआ'।

भारत से बाहर विदेश जाने के समय तक डॉ० लोहिया जी का बौद्धिक दृष्टिकोण भी निश्चित हो गया था, जिसके तीन मुख्य पक्ष थे—मानवीयता, तर्कबुद्धि और संकल्प। ये तीनों मिलकर ही मनुष्य की आंतरिक शक्ति का निर्माण करते हैं, डा० लोहिया जी का बौद्धिक व्यक्तित्व इन तीनों के मिश्रण से ही निखर पाया। जर्मनी में खोज कार्य करते हुए डा० राम मनोहर लोहिया ने अपनी आँखों के सामने नाजीवाद का उदय देखा। उसके हाथों साम्यवाद और समाजवाद को पराजित होते देखा और वे इस नतीजे पर पहुँचे कि नाजीवाद और साम्यवाद बुरे सिद्धांत हैं, लेकिन उनमें संकल्प—शक्ति है। समाजवाद अच्छा सिद्धांत है, पर उसमें संकल्प—शक्ति नहीं है। संकल्प शक्ति वाला समाजवाद, ही डॉ० लोहिया का वैचारिक लक्ष्य बना।

21 अक्टूबर सन् 1961 ई० को एथेंस में विश्व समाज का एक सम्मेलन आयोजित था। डा० लोहिया को उसमें आमंत्रित किया गया था। उस सम्मेलन में डा० लोहिया के विचारों का बड़ा स्वागत किया गया। डा० लोहिया का दिमाग साफ था। प्रेस वालों ने कहा—आप तो सिकन्दर के देश में जा रहे हैं लोहिया ने छूटते ही कहा—नहीं मैं सुकरात के देश में जा रहा हूँ। सम्मेलन में डा० लोहिया के विचारों को लोगों ने बड़े ध्यान से सुना। उन्होंने वहाँ सप्तक्रान्ति की व्याख्या की और कहा कि जब तक यह सातों क्रान्तियाँ पूर्ण नहीं होतीं तब तक न तो विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है और न ही समाज में समता। विश्व को युद्ध के आतंक और हथियारों के अभिशाप से मुक्त कराने के लिए सप्तक्रान्ति की विशेष आवश्यकता है। अमेरिका और यूरोप के मशीनीकरण और चमक—दमक वाली संस्कृति की आलोचना करते हुए लोहिया ने कहा— यह ख्याल रहे कि अमरीका और यूरोप की चमक दमक मशीनी पुर्जों की अनोखी

निपुणता पर टिकी हुई है। हमें डर इस बात से लगता है कि वे लोग जो गोरी चमड़ी वाले नहीं हैं अपने अपने मुल्कों में गोरी चमड़ी वालों की तड़क-भड़क की नकल तो कर रहे हैं लेकिन मशीन पुर्जों के ज्ञान और उनकी निपुणता को पकड़ पाने में नितान्त असमर्थ हैं। वस्तुतः देश की मिटटी और संस्कृति से जुड़कर ही मशीन के संस्कार बनते हैं। जो मशीनीकरण विदेशी उधार खाते पर होता है उस पर आश्रित होकर जीने और गुलामी की जकड़न की अनिवार्यता होती है डा० लोहिया गुलामी के इस नये रूप के खिलाफ थे।

राजनीतिक चिन्तन की दृष्टि में डा० लोहिया के मौलिक अधिकार सम्बन्धी विचारों का आज विशेष महत्व है। मानव जीवन के सभ्य तथा सुसंस्कृत, विकास के लिए वे मौलिक अधिकारों के अस्तित्व को एक जनतान्त्रिक समाज के अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार करते हैं। इस दृष्टि से वे राज्य को उनका निर्माता नहीं संरक्षक के रूप में ही चित्रित करते हैं। डा० लोहिया की इस दृष्टि से मान्यता है कि मौलिक अधिकार मनुष्य-मनुष्य होने के नाते स्वाभाविक रूप से प्राप्त होते हैं। इन मौलिक अधिकारों में वे प्रत्येक मनुष्य की बौद्धिक स्वतंत्रता अर्थात् उसकी चिन्तन और अभिव्यक्ति की निरपेक्ष स्वतंत्रता का समर्थन करते हैं तथा यह मानते हैं कि यदि राज्य द्वारा उस पर किसी प्रकार का अंकुश लगाया जाता है तो व्यक्ति को उसका प्रतिरोध करने के कारण वे इस प्रतिरोधक चरित्र को अनिवार्य रूप से अहिंसक मानते हैं तथा इस हेतु सविनय अवज्ञा या सिविल नाफरानी का समर्थन करते हैं।

धर्म और राजनीति के बिगड़ते हुए रूप को देखकर डॉ० लोहिया ने गहन चिन्तन किया क्योंकि नेताओं का धर्म और राजनीति को लेकर कलह बढ़ गया था। वस्तुतः डॉ० लोहिया का विचार था, धर्म केवल एक है वह है मानव धर्म। डॉ० लोहिया न ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते थे और न मूर्ति के रूप में उसकी पूजा का। मन्दिर को वे एक ढकोसला मानते थे। वे मनुष्य को ईश्वर का नहीं वरन् ईश्वर को मनुष्यकृत मानते थे। वे ईश्वर, पूजा-पाठ, तीर्थाटन, स्वर्ग-नरक तथा मोक्ष-मुक्ति आदि में कतई विश्वास नहीं रखते थे, और न ही उन्हें धर्म का सच्चा विषय मानते थे। इसके विपरीत गाँधी जी के समान दरिद्र में ही भगवान के दर्शन करते थे। गिरों एवं असहायों को उठाना, प्यासों को पानी देना, भूखे को रोटी और बेघर को घर देना ही उनके अनुसार धर्म के सच्चे विषय थे। धर्म को वे बाह्य आडम्बर और कर्मकाण्ड का विषय नहीं वरन् नैतिक गुणों का पर्यायवाची मानते थे, एवं इसी रूप में धर्म की व्याख्या करते थे। डॉ० लोहिया ने अपने रामायण लेख में इस पर चिन्ता व्यक्त की है— वे धर्म को दीर्घ कालीन राजनीति मानते थे तथा राजनीति को अल्पकालीन धर्म। धर्म उनके लिए जीवन में उतारने की चीज थी। परस्पर संघर्ष की नहीं। उनका विचार था—धर्म जब बुरा बनता है तो वह झगड़ालू बनता जाता है और जब राजनीति बुरी बनती है। तो वह मुर्दा बनकर शमशान बन जाती है। वे धर्म और राजनीति को अलग-अलग रखना चाहते थे। डॉ० लोहिया दोनों के घालमेल के खिलाफ थे। यदि दोनों का घालमेल होगा तो भ्रष्टता होना स्वाभाविक है जैसा कि डॉ० लोहिया ने कहा है—“धर्म और राजनीति के अविवेकी मिलन से दोनों भ्रष्ट होते हैं। किसी एक धर्म को किसी एक राजनीति से कभी नहीं मिलना चाहिए। इसी से साम्प्रदायिक कट्टरता जन्मती है। धर्म और राजनीति को अलग रखने का सबसे बड़ा मतलब यही है कि साम्प्रदायिक मिलन और कट्टरता से बचें। एक और मतलब है कि राजनीति के दण्ड और धर्म की व्यवस्थाओं को अलग रखना चाहिए। नहीं तो दकियानूसी बढ़ सकती है और अत्याचार भी। इतना ध्यान

में रखते हुए भी जरूरी है कि धर्म और राजनीति एक दूसरे से सम्पर्क न तोड़ें, मर्यादा निभाते हुए।”

डॉ० लोहिया दो चीजों को संसार में बड़ा मोहक मानते थे और कहते थे—“ईश्वर की कभी मुझे जरूरत महसूस नहीं हुई और स्त्री की कृपा मुझे मिली नहीं”। स्वाभाविक रूप से डॉ० लोहिया प्रचलित धर्म के संकीर्ण और संस्थागत रूप के विरोधी थे एवं इसे निहित स्वार्थों की पूर्ति का एक साधन मानते थे। अतः राज्य और राजनीतिक दृष्टि से वे धार्मिक राज्य के स्थान पर एक धर्म-निरपेक्ष राज्य का समर्थन करते थे जो धर्मविरोधी नहीं वरन् सर्वधर्म समभाव पर आधारित था। इसीलिये वे धर्म को सद्भावना और सद्कर्म का स्रोत मानते थे और राजनीति को वह सद्भावना और सद्कर्म में बाधक तत्वों को समाप्त करने का साधन मानते थे। इस प्रकार डॉ० लोहिया धर्म को रचनात्मक दृष्टि से मनुष्य के नैतिक उत्थान का साधन मानते थे। डॉ० लोहिया धर्म के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण को अपनाने वाले व्यक्ति थे। उन्हें धर्मान्धता, कट्टरता और रूढ़िवादिता पसन्द नहीं थी। सत्य और अहिंसा के प्रति उनकी श्रद्धा थी। उनका विश्वास था कि ये ही बिन्दु ऐसे हैं जिन पर किसी को एतराज नहीं होना चाहिए।

आज की सियासत की सबसे बड़ी समस्या पार्टियों में आंतरिक लोकतंत्र का घोर अभाव और राजनीतिक संगठनों में आई अंदरूनी गिरावट है। अभी के दौर में कोई भी नेता संसदीय भागीदारी की कसौटियों पर खरा उतरने में सक्षम नहीं है। संघर्ष से संगठन बनाने की क्षमता तो अब बीते दिनों की बात हो गई है। लेकिन डॉ० राममनोहर लोहिया संसदीय राजनीतिक और संघर्ष व रचनात्मक कार्यों की मार्फत सांगठनिक क्षमता के सशक्त प्रमाण थे। संसदीय भागीदारी शुरू करने से पहले ही उन्होंने सियासत में अपनी जगह हासिल कर ली थी। तभी तो 13 अगस्त सन् 1963 ई० को जब उत्तर प्रदेश की फर्रुखाबाद लोकसभा सीट से चुनाव जीतकर डॉ० लोहिया लोकसभा पहुंचे तो उनके स्वागत में पूरा सदन उठ खड़ा हुआ। आज जब पूरा विपक्ष भी सरकार के आगे कमतर साबित होता है, उस जमाने में अकेले डॉ० लोहिया जी का नाम ही सत्ता विरोधी संगठन बन गया था। भारतीय समाज में व्याप्त असमानता की गहरी खाई को पाटने के लिए समता और सपन्नता के मकसद के साथ डॉ० लोहिया ने समाजवाद का झंडा उस वक्त उठाया था जब कांग्रेस में धुर दक्षिणपंथी खेमा हावी था। जो किसी भी नये सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिए बिलकुल तैयार नहीं था लेकिन जन्मजात विद्रोही डॉ० लोहिया जी ने कांग्रेस के यथास्थितिवादी नेतृत्व को कड़ी चुनौती दी।

डॉ० लोहिया का मशहूर जुमला है कि, जिंदा कौमें पांच साल इंतजार नहीं करती ? लेकिन हम पिछले पैंसठ सालों से इंतजार कर रहे हैं। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और कच्छ से लेकर कामरूप तक फैले इतने बड़े मुल्क में अलग-अलग विचारधाराओं को मानने वाले लोग बसते हैं लेकिन एक अरब से ज्यादा की आबादी को वैकल्पिक रास्ता दिखाने वाले किसी भारतीय विचार की कल्पना डॉ० लोहिया के बगैर संभव नहीं है। आजादी मिलने के तुरंत बाद सदियों से सताए लोगों के मन में सत्ता से उम्मीदें जगी थीं। एक नवस्वतंत्र राष्ट्र के लिए ऐसा स्वाभाविक भी था। लेकिन गुजरते वक्त के साथ वे तमाम उम्मीदें पीछे छूट गई जिन्हें पूरा करने के लिए आजादी की जंग लड़ी गई थी। नतीजा—देश समस्याओं का अंबार बन गया। और आजादी के इतने साल बाद भी भारत की जनता के हिस्से कुछ न आया। अब तो हालात ऐसे हैं कि बेहाल भूखी जनता के मुंह से भ्रष्टाचारी सुख के निवाल निकालने में लगे हैं। ऐसे वक्त में युवाओं को एक बड़ा तबका जब निराशा करता है तो उसे बस डॉ० राममनोहर लोहिया ही नजर आते हैं।

सन्दर्भ सूची

- डा० राम मनोहर लोहिया : वर्तमान संदर्भ में, राम मनोहर लोहिया रचनावली समग्र, मस्तराम कपूर, डा० राम मनोहर लोहिया—लक्ष्मीकान्त वर्मा, समाजवाद और डा० लोहिया, डा० अमर ज्योति सिंह, लोहिया एक व्यक्तित्व एवं कृतित्व : डा० राम मोहन भटनागर, आधुनिक भारतीय राजनीति एवं समाजवादी, अजीत सिंह, राम मनोहर लोहिया : समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास हैदराबाद, सन् 1969 ई०, कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एन्जेल्स : संकलित रचनाएँ, नेशलिज्म एण्ड सोशलिज्म (हिन्दी), नरेन्द्र देव, डा० लोहिया का समाजवाद एवं अर्थदर्शन, डा० यतीन्द्र नाथ शर्मा, भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, राम विलास शर्मा, लोहिया : एक जीवनी : ओमप्रकाश दीपक, अरविंद मोहन, संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, मेरा समाजवाद, गांधी, मार्क्स, गाँधी और सप्तक्रांति, डा० राममनोहर लोहिया, सामंती—भाषा बनाम लोक भाषा, लोहिया के विचार, डा० राममनोहर लोहिया, भारत के शासक, समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, डा० राम मनोहर लोहिया, समता न्यास, समाजवादी चिंतन, डा० राम मनोहर लोहिया, समाजवादी अर्थनीति, डा० राममनोहर लोहिया, राम मनोहर लोहिया : सिविल नाफरमानी की व्यापकता, संसदीय आचरण, डा० राम मनोहर लोहिया, सम्पूर्ण और संभव बराबरी और दूसरे भाषण, डा० राम मनोहर लोहिया, हिन्दू बनाम हिन्दू, डा० राम मनोहर लोहिया, अंग्रेजी हटाओ, डा० राम मनोहर लोहिया, लोहिया जातिवाद, नवहिन्द हैदराबाद 1964, लोहिया—समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, राममनोहर लोहिया, लोहिया के विचार, राममनोहर लोहिया—इतिहास चक्र, राम मनोहर लोहिया, भारत विभाजन के गुनहगार, जाति प्रथा, डा० राममनोहर लोहिया, देश, विदेश नीति कुछ पहलू, डा० राम मनोहर लोहिया, धर्म पर एक दृष्टि, डा० राम मनोहर लोहिया, भारतीय फिल्म, डा० राम मनोहर लोहिया, भारत विभाजन के गुनाहगार, डा० राम मनोहर लोहिया, मार्क्सवाद और समाजवाद, डा० राम मनोहर लोहिया, राग जिम्मेदारी की भावना अनुपात की समझ, डा० राम मनोहर लोहिया, समलक्ष्य, समबोध, डा० राम मनोहर लोहिया, समदृष्टि, डा० राम मनोहर लोहिया, सच, कर्म, प्रतिकार और चरित्र निर्माण आह्वान, डा० राम मनोहर लोहिया, राष्ट्रीयता और समाजवाद आचार्य नरेन्द्र देव, तुलसीदल, डा० योगेन्द्र सिंह, जय प्रकाश नारायण, समाजवाद के सर्वोदय की ओर सर्व सेवा संघ, समाजवादी दर्शन और डा० लोहिया, श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, समाजवादी चिंतन का इतिहास, बृजेन्द्र प्रताप, लोहिया के विचार (संपादन), ओंकार, शरद, लोहिया स्मरण—सं० ओंकार शरद, लोहिया (जीवनी): ओंकार शरद, केलकर, इंदुमति, लोहिया, कर्म और सिद्धान्त, राममनोहर लोहिया, आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक विचार, कृष्णनंद ठाकुर, डा० लोहिया मार्क्स एण्ड सोशलिज्म, राम मनोहर लोहिया : आचरण की भाषा : राम कमल राय, लोहिया का समाजवादी दर्शन, डा० तारा चन्द दीक्षित, समाजवाद—डा० युगेश्वर, डा० लोहिया का इतिहास चिन्तन, डा० मनोज चतुर्वेदी, समग्र लोहिया—डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर, लोहिया : एक अध्ययन, आत्माराम मेहरोत्रा।
- विशेष आभार इंटरनेट से डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू.गूगल एवं विकीपीडिया का जिन्होंने डा० राम मनोहर लोहिया पर अद्यतन सामग्री उपलब्धि कराई। इसके अलावा पत्र—पत्रिकाओं, प्रतिवेदनों, शोध—पत्रों, साक्षात्कारों से, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहायता ली गई है। हम विशेष रूप से अपने पूर्व इस विषय पर लिखे गये सभी विद्वत, मनीषी लेखकों, सहयोगियों, सहायक ग्रंथों तथा पत्र—पत्रिकाओं के सम्पादकों, ग्रंथों के व्यवस्थापकों और शोध छात्र—छात्राओं को हृदय से आभार एवं धन्यवाद ज्ञापित करते हैं जिनसे हमें डा० राम मनोहर लोहिया को समझने का हर स्तर पर सम्बल मिला।



शिक्षा जगत के अलौकिक प्रकाशपुंज—डॉ० राधाकृष्णन

डॉ० ज्योति सिन्हा

प्रवक्ता—संगीत विभाग

भारती महिला पी०जी० कालेज भारती नगर, जौनपुर (उ०प्र०) एवं
रिसर्च एसोसिएट, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला

भारत भूमि ऋषि—मुनियों की कर्मभूमि मानी जाती है तथा विद्वानों, शिक्षाविदों, गुरुओं, महान विभूतियों तथा प्रबुद्ध वर्गों से सदैव समृद्ध रही है। प्रत्येक युग में समय—समय पर अनेक महान विभूतियों का अवतरण हुआ है, जिन्होंने भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म और दर्शन की दिव्य ज्योति को अपने गूढ़ ज्ञान के माध्यम से आलोकित एवं विस्तारित किया है। अपनी अनूठी योग्यता एवं बेमिसाल कार्य पद्धति एवं गहन चिन्तन से सदैव समाज को एक नई दिशा प्रदान कर एक गरिमामय पद प्राप्त किया है। ऐसी ही एक महान विभूति का अवतरण 5 सितम्बर सन् 1888 ई० को हुआ। उस महान विभूति का नाम है— राधाकृष्णन।

इनका जन्म मद्रास के तिरुतणी गांव में 5 सितम्बर 1888 ई० को ब्राह्मण परिवार में हुआ था। माता—पिता के धार्मिक विचारों का पूरा प्रभाव इन पर पड़ा। प्रारम्भ से शिक्षा के प्रति इनकी अभिरुचि रही। प्रारम्भ में इनकी शिक्षा गांव में ही हुई। आगे चलकर इन्होंने दर्शनशास्त्र विषय में एम०ए० एवं डिफिल किया। अपनी योग्यता के बल पर 20 वर्ष की आयु में ही मद्रास के प्रेसीडेन्सी कालेज में शिक्षक के पद पर आरुद्ध हुए। अपने विषय में इन्हें गहन जानकारी थी। अपने विद्यार्थियों में अनुशासन, अपने मधुर स्वभाव एवं जोशपूर्ण व्याख्यानों से प्रेरणा स्रोत बने रहे। भारतीय संस्कृति के वाहक राधाकृष्णन अपनी योग्यता के लिए देश—विदेश में जाने गये। सन् 1937 ई० में राधाकृष्णन जी आंध्र विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुए तथा मालवीय जी के विशेष आग्रह पर सन् 1939 ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का कार्यभार संभाला। सन् 1950 ई० में राधाकृष्णन जी को भारत का राजदूत बनाकर मास्को भेजा गया जिसके फलस्वरूप भारत एवं मास्को के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना हुई। सन् 1952 ई० में वे निर्विरोध रूप से उपराष्ट्रपति चुने गये। अपने इस कार्यकाल के दौरान अनेक देशों के साथ भारत का मधुर सम्बन्ध स्थापित हुआ। सन् 1962 ई० में राधाकृष्णन जी ने भारत के सर्वोच्च राष्ट्रपति पद को सुशोभित किया। देश—विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों ने उन्हें मानद उपाधिओं से अलंकृत कर उनकी गरिमा को बढ़ाया। अन्ततः सन् 1954 ई० में उनके अद्भुत गुणों एवं प्रशंसनीय कार्यों को देखते हुए भारत के सर्वोच्च सम्मान 'भारत—रत्न' से सुशोभित किया गया।

अनेक ग्रंथों की रचना के माध्यम से उन्होंने समाज को अपनी सोच एवं सद्विचारों से अवगत कराया तथा समाज की दिशा एवं दशा निर्धारित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। 'भगवद्गीता', 'द फिलॉसफी ऑफ द उपनिषद्', 'इण्डियन रिलीजन एण्ड वेस्टर्न थॉट', 'हिन्दू व्यू ऑफ लाईफ', इत्यादि अनेक पुस्तकें हैं जिन्होंने समाज को सही मार्ग दिखाया। डॉ० राधाकृष्णन महान शिक्षक, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ एवं चिन्तक थे। अपनी योग्यता एवं विद्वता से उन्होंने समस्त समाज को लाभान्वित किया। उनका सिद्धान्त था कि — असाधारण परिस्थितियों में भी मनुष्य को अपना संतुलन नहीं खोना चाहिए।

वे पूँजीवाद के प्रबल विरोधी तथा सच्चे धर्म के पक्षधर थे। डा० राधाकृष्णन ने अपनी जीवन की शुरुआत एक शिक्षक के रूप में की थी, अतः शिक्षक और छात्र के मधुर सम्बन्धों से भली-भांति परिचित थे। वे अपने विद्यार्थियों से अपार स्नेह रखते थे। अपने ओजस्वी व्याख्यानों, विनम्रता तथा सहृदयता के कारण विद्यार्थियों के विशेष प्रिय शिक्षक थे। अपने महान व्यक्तित्व से उन्होंने विद्यार्थियों के साथ-साथ प्राध्यापकों को भी प्रभावित किया। उनका यह मानना था कि देश के युवकों को भावी जीवन के लिए तैयार करना, यही शिक्षा का ध्येय होना चाहिए। उनकी दृष्टि में राष्ट्र निर्माण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण योगदान विश्वविद्यालयी शिक्षा का है। युवाओं की शक्ति को रचनात्मक बनाना तथा भारत के नवनिर्माण में उनकी भूमिका को महत्वपूर्ण बनाना इसका उद्देश्य होना चाहिए। क्योंकि उनमें अदम्य उत्साह, ऊर्जा एवं शक्ति का प्रवाह होता है, जिसका प्रयोग कल्याणकारी उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त समाज व देश की सेवा में होना चाहिए। किसी भी देश के सामाजिक, सांस्कृतिक व सार्वभौमिक विकास में शिक्षा एवं शिक्षार्थियों की महती भूमिका होती है। उच्च शिक्षा प्राप्त कर ये छात्र ही आगे चलकर देश के उच्च पदों पर कार्य करेंगे।

यद्यपि राधाकृष्णन जी को प्रायः लोग 'शिक्षक' के रूप में ही अधिक जानते हैं, परन्तु शिक्षा के साथ ही उन्होंने लेखन, व्यवस्था, राजनीति और शासन सभी क्षेत्रों में अपनी योग्यता व पटुता का परिचय दिया। चालीस वर्षों तक शिक्षा के क्षेत्र में किये कार्यों को भुलाया नहीं जा सकता परन्तु साथ ही एक कुलपति, उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति राजदूत के पद पर रहते हुए देश के हित में जो योगदान दिया है उसे भी विस्मृत नहीं किया जा सकता है। अपनी योग्यता से वे एक शिक्षक से राष्ट्रपति के पद तक पहुँचे। प्रत्येक शिक्षक के लिए वह प्रेरणा स्रोत हैं। उनका स्पष्ट मत यह था कि— समाज में शिक्षक वर्ग ही ऐसा है जो भावी पीढ़ी का उत्थान कर सकता है। एक शिक्षक निःस्वार्थ, कर्तव्य दृढ़ होकर प्रत्येक मानव में व्याप्त अज्ञान रूपी अंधकार को हटाने में सक्षम हो सकता है। अपने ज्ञान से उसे समृद्ध करता है तथा उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करता है। वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों में भी गुरु की महिमा का वर्णन मिलता है। कबीर दास जी ने यहाँ तक कहा कि— 'गुरु गोविन्द दोउ खड़े.....।' शिक्षक का समाज में राष्ट्र निर्माता के रूप में समादर प्राप्त होता रहा है। परन्तु आज जो स्थिति है उसमें अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। आज हम शिक्षक अथवा गुरु की गरिमा को नकारने लगे हैं। जिसके फलस्वरूप आये दिन शिक्षकों व छात्रों के बीच असंतोष संघर्ष एवं आन्दोलन की चर्चाएँ सुनाई पड़ती हैं। शैक्षणिक वातावरण बाधित होता है एवं पठन-पाठन का क्रम भी अव्यवस्थित होता है। युवा शक्ति किस ओर जा रही है ? एक शिक्षक अपने पद व भूमिका के साथ कितना न्याय कर पा रहा है ? आज शिक्षा, शिक्षक व शिक्षार्थियों की जो दिशा एवं दशा है उससे कैसे समाज निर्माण की कल्पना हम कर सकते हैं ? आज समस्त अवधारणायें बदल गई हैं। शिक्षा का मूल उद्देश्य ज्ञानार्जन से अधिक अर्थोपार्जन हो गया है। जिस तरह की अवधारणायें पनप रही हैं उससे समाज का पूरा ताना-बाना प्रभावित हो रहा है। हम अपने उद्देश्य से भटक रहे हैं। दिशाहीन हो रहे हैं। देश के समक्ष यद्यपि अनेक चुनौतियाँ हैं परन्तु शिक्षा जगत की चुनौतियों का सम्बन्ध राष्ट्र के भविष्य से है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षक छात्र के सम्बन्धों में आये समसामयिक परिवर्तनों के कारण इनके बीच परस्पर प्रेम, श्रद्धा, आदर, स्नेह का अभाव परोक्ष-अपरोक्ष रूप से स्थापित होता जा रहा है जिसके लिए शिक्षक, छात्र, शिक्षा-व्यवस्था, आधुनिक परिवेश, मानसिकता, सभी अवयव उत्तरदायी हैं।

5 सितम्बर को जो शिक्षक दिवस के रूप में सभी के द्वारा मनाया जाता है, हम डा० राधाकृष्णन जी को तो याद करते हैं परन्तु उनमें निहित सद्गुणों यथा मानवीयता सरलता, सुहृदयता तथा विनम्रता को अनदेखा कर आगे बढ़ जाते हैं। शिक्षक दिवस मनाने का यह उद्देश्य होना चाहिए कि प्रत्येक शिक्षक अपने उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य को समझते हुए भारत के नवनिर्माण एवं विश्व कल्याण में सक्रिय योगदान प्रदान करें। आज आवश्यकता है कि इस पवित्र व महान दिवस पर हम स्वतंत्र रूप से चर्चा करें, चिंतन एवं आत्म मंथन करें।

उस महान विभूति को जिसका समस्त विश्व आदर करता है, प्रत्येक मनुष्य को जिस पर गर्व है, शत्-शत् नमन हैं। उन्हें याद कर उनके द्वारा दिखाये गये सन्मार्ग पर चले, मानवीय गुणों को आत्मसात करें तथा हर पल राष्ट्र निर्माण के लिए अपनी सक्रियता बनाये रखें, सही अर्थों में उस महान रत्न के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। विद्यार्थियों में गुरु अथवा शिक्षक के प्रति श्रद्धा व सम्मान की भावना, शिक्षक व विद्यार्थियों के बीच परस्पर स्नेह एवं प्रेम का अटूट बन्धन बना रहे और इसके माध्यम से हमारी सम्यता एवं संस्कृति अपनी पहचान बनाये रखे, यही हमारी सोच और उद्देश्य होना चाहिए और तभी हमारे लिए शिक्षक दिवस का औचित्य है।

डा० राधाकृष्णन एक अलौकिक प्रकाश-पुंज के रूप में सदैव शिक्षा जगत् को आलोकित करते रहेंगे। एक शिक्षक, लेखक, दार्शनिक, प्रशासक, व राजनीतिक के रूप में अपने सत्कार्यों, सद्गुणों के कारण भारतीयों द्वारा ही नहीं बल्कि सकल विश्व के द्वारा सदैव स्मरण किये जायेंगे।

17 अप्रैल, 1975 ई० को उनका स्वर्गवास हो गया। आज आवश्यकता है हमें उनके इस दृष्टिकोण को जीवन्त रखने का जिसमें उनकी शिक्षक के प्रति गहरी सोच परिलक्षित होती है— “एक चिकित्सक की गलती से एक प्राण, एक राजनीतिक की गलती से एक राष्ट्र तथा एक शिक्षक की गलती से सम्पूर्ण पीढ़ी ही समाप्त हो जाती है।”



प्राचीन बुन्देलखण्ड की कला एवं संस्कृति के बदलते सरोकार

डॉ० कुमार यशवन्त

स्कालरशिप विभाग

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी, उ.प्र.

रश्मि सिंह

प्रवक्ता-शिक्षा संस्थान

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी, उ.प्र.

बुन्देली साहित्य संस्कृति को नष्ट करने के लिए आतताइयों ने अनेक बार बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किये, किन्तु वीर क्षत्रिय योद्धाओं ने अपने प्राणों की बलि देकर अपने धर्म, संस्कृति और रीति-रिवाजों की रक्षा की। भारत माता का हृदय स्थल विन्ध्याचल की शैल मालाओं से सुशोभित चम्बल, सिंध, घसान, बेतवा की पावन धाराओं से सिंचित महुआ, आम, जामुन, तेंदू, वसूर, कटीक आही के वनों से आच्छादित यह भू-भाग इतिहास के पन्नों में चन्देल, बुन्देला और खंगार राजाओं से शासित अपनी गरिमा का बखान करता हुआ पुलिन्द देश कुन्ति खत पद, दशार्ण, जैजाउ युधि जुझौति विन्ध्याखण्ड आदि नामों से जाना जाता है।

आज इस भूवृत्त की कोई राजनीतिक सीमा तो नहीं है परन्तु प्राचीन काल से लेकर आज तक यह भू-भाग अपनी एक इकाई के रूप में दिखता है। समय-समय पर अनेकानेक शक्तियों ने इस भू-भाग पर राज्य स्थापित कर अपनी छाप छोड़ी है, कभी गुप्त साम्राज्य तो कभी वाकाटक, नागवंशी, प्रतिहारी, चन्देल, खंगार, बुन्देला आदि। इस प्रकार ऐतिहासिक घटनाओं के उत्थान पतन से ओत-प्रेत बुन्देलखण्ड अपनी आलौकिक छटा लिये कायम है। यहाँ पर चन्देलों की अठारह पीढ़ियों ने नौवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक और खंगारों की पांच पीढ़ियों ने बारहवीं से चौदहवीं-पौने दो सौ वर्ष शासन करके इसको समृद्धि, सम्पत्ति और गरिमा प्रदान की है।

बुन्देली साहित्य संस्कृति को नष्ट करने के लिए आतताइयों ने अनेक बार बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किये, किन्तु वीर क्षत्रिय योद्धाओं ने अपने प्राणों की बलि देकर अपने धर्म, संस्कृति और रीति-रिवाजों की रक्षा की। खेद का विषय है कि इस भूखण्ड पर सम्पन्नता ने जहाँ कला को बढ़ावा दिया है वहीं पर जन मानस की मानसिकता को थोड़ा विलास की ओर मोड़ दिया और इसका सबसे अधिक दुष्परिणाम चारों वर्गों को झेलना पड़ा।

जन मानस की नैतिकता इस अवस्था तक ले गयी कि नारी को निर्वस्त्र अवस्था में, मैथुन भाव भंगियों में, पाषाण प्रतिमाओं में तराशा जाकर प्रासादों, महलों और मन्दिरों में मूर्तियों के रूप में रख दिया गया। चन्देल काल में नारी की न तो कोई मर्यादा थी और न ही इसका कोई आदर्श था। यदि हम इस समय के इतिहास को देखते हैं तो बड़े-बड़े राजघरानों की बेटियों के अपहरण के प्रसंग देखने को मिलते हैं। अनेक युद्ध तो केवल राजकुमारी की प्राप्ति के लिए हुये।

“चन्देलकाल में नारी की कोई मर्यादा नहीं थी और न ही कोई आदर्श, अनेक युद्ध तो केवल राजकुमारी की प्राप्ति के लिये हुये।” चन्देलों के उपरान्त यह भूखण्ड खंगारों के शासन में गया। इस राजवंश ने क्षेत्र में व्याप्त तमाम कुरीतियों पर दृष्टिपात किया सबसे प्रथम राजवंश ने राष्ट्रधर्म को जन्म दिया जिससे कि उसे वीर चरित्रवान स्वतंत्रता प्रिय सैनिक प्राप्त होते रहे जो देश- धर्म पर स्वेच्छापूर्वक बलिदान हो जाते थे और समर्पित हो जाने की भावना रखते थे।

महाराज खेतसिंह खंगार ने अपने राज्य की नारियों को खुद ऐसे संस्कार दिये जिनके द्वारा नारियों वीरसती और आदर्शमयी और वीर बालायें बनें। ये संस्कार आज भी बुन्देलखण्ड की लोक परम्पराओं और संस्कृति में विद्यमान हैं।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता, जहाँ पर नारी की पूजा होती है वहाँ पर देवता निवास करते हैं। इस सिद्धान्त को व्यवहार में उतारने के लिए महाराजा खेत सिंह ने अपने राज्य में कन्याओं को सर्वपूज्य घोषित किया और उन्हें देवी रूप दिया। कन्या भोजन, पैर पूजन और कन्याओं के कार्यों में आर्थिक सहायता देने की रीति प्रचलित करायी ताकि जन मानस में कन्याओं के प्रति आस्था रहे और वे उन्हें दूषित नजरों से न देखें।

- खंगोरिया – यह गले में पहनने का गोलाकार आभूषण होता है। यह सोने अथवा चाँदी का बनाया जाता है इसका जो हिस्सा सीने पर रहता है उस पर सामने दो तलवारों की आकृति बनाई जाती है। यह तलवारें खंगार शासन की राष्ट्र चिह्न थी। खंगोरिया संस्कार ने राज्य की नारी वर्ग को जागरूक वीर और उज्ज्वल चरित्र, देश व धर्म के प्रति वफादार बनाया।
- बीजासेन देवी की स्थापना – बीजा सेना, बीजा सैनिक, सेना का सैनिक प्रदान करने वाली देवी। जन साधारण में मृत्यु भय को हटाने के लिए और उनमें कर्तव्य निष्ठा भरने के लिए खंगार राजवंश ने गाँव-गाँव, घर-घर में कालका देवी की स्थापना करायी।

प्रत्येक गांव में इसकी स्थापना कराई गयी इसके अलावा कन्याओं के विवाह में पाणिग्रहण के अवसर पर कन्याओं को बीजासेन देवी की पुतरिया (ताबीज) धारण करवाया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि कन्या के जो पुत्र होगा वह सेना के लिए सैनिक होगा और देश की रक्षा करेगा।

- कालका देवी की स्थापना – खंगार काल से पहले जनसाधारण मृत्यु भय से युद्ध में जाने से डरते थे राजा के पराजित हो जाने पर दूसरे राजा पराधीनता स्वीकार कर लेते थे। जन साधारण में मृत्यु भय को हटाने के लिए और उनमें कर्तव्य निष्ठा भरने के लिए खंगार राजवंश ने गाँव-गाँव, घर-घर में कालका देवी की स्थापना करायी। कालका काल/का, काल/मृत्यु का/क्या है, अर्थात् मृत्यु कोई बीज नहीं है यह भयभीत होने की घटना नहीं है यह तो शरीर की अनिवार्य घटने वाली घटना है। अतः मृत्युमय से रहित होकर वीरतापूर्वक अपने कर्तव्यों का सम्पादन करते रहना चाहिए।
- स्वपीडित पद्धति – इस लोक परम्परा में अपने जिह्वा में सांग (त्रिशूल) छिदवाकर, जंजीरों से पीटकर और आग हाथों में लेकर अपने आप में पीड़ा सहने की क्षमता प्राप्त करना है और शरीर को मजबूत बनाना है ताकि युद्ध में पीडित होते या घायल होने पर भयभीत न होना पड़े।
- रक्षक संस्कार – हिन्दुओं का सैनिक भर्ती क्षेत्र बहुत ही संकुचित था। युद्धों में केवल क्षत्रिय ही लड़ते थे। खंगार राजवंश की नीति थी कि पराजय की स्थिति से पूर्व ही गाँव को वीरान करके महिलायें जौहर यानी अपने को आग में जलाकर भस्म कर लें।

अन्य जातियों के लोग युद्ध में नहीं जाते थे इसका नतीजा यह हुआ कि क्षत्रिय जाति निरन्तर क्षीण होती गयी। इसी कमी की पूर्ति हेतु महाराजा खेतसिंह ने अपने राज्य जज्ञौति ने, “रक्षक संस्कार की परम्परा प्रचलित की और इसके अन्तर्गत राज्य की हर बच्चा सैनिक परम्परा में बांध दिया गया और इस संस्कार के संचालन को उत्तरदायित्व पूर्णतया नारी समाज को सौंपा गया। आज भी बुन्देलखण्ड के

ग्रामीण अंचलों में मातायें अपने बालकों को गांव की सीमा पर ले जाकर रक्कस बाबा के चबूतरे या पत्थर के चीरे पर बालक के हाथ लगवाती हैं और हर बच्चे की कमर में एक काला धागा जिसे छूटा कहते हैं पहना देती हैं जिसका अर्थ है आज से यह बालक गांव की रक्षा हेतु कमर कसकर तैयार हो गया है।

- गजानन माता, महालक्ष्मी की स्थापना – जिस समय जुझौति भूमि पर गढ़कुंडार में खंगार राज्य की स्थापना हुयी उसी समय दिल्ली में मुसलमानों की सत्ता स्थापित हो चुकी थी। मुसलमान अपना साम्राज्य बढ़ाने और स्वर्ण, सुन्दरियों की लूट हेतु अन्य राज्यों पर आक्रमण करने लगे। खंगार राजवंश ने यह नीति अपना रखी थी कि आक्रमणकारियों को स्वर्ण एवं सुन्दरियां प्राप्त न हो सकें। पराजय की स्थिति से पूर्व ही गांव को वीरान करके महिलायें जौहर यानी अपने को आग में जलाकर भस्म कर लें।

नारियों के इस बलिदानी कार्य को स्मरण करने के लिये हर साल के क्वार मास की कृष्ण अष्टमी को महालक्ष्मी व्रत पूजन करके अपने जौहर करने की प्रतिज्ञा लेती थीं। टेसू-टेसू शब्द टीसू शब्द का अपभ्रंश है। गढ़कुंडार पतन के बाद मुसलमानों द्वारा जुझौति भूमि में भयंकर लूटमार, आगजनी और कत्लेआम के कारण जन साधारण की आत्मा को एक स्थाई आघात लगा। यही आघात एक स्थाई टीस के रूप में प्रकट हुआ और गढ़कुंडार के युद्ध में से बचे 152 खंगार सरदारी के नेतृत्व में सामर्थ्यवान युवकों को प्रेरणा दी कि वे अपनी भूमि से विदेशी शासकों का उन्मूलन करें। इस दल का कार्य जुझौति प्रदेश में मुसलमानों की सेनाओं के मार्ग अवरुद्ध करना, उनको मारना और उनकी रसद नष्ट करना था छापामार युद्ध करना उनकी रणनीति थी। नदी, घाट, जंगल, पहाड़ आदि के अनुरूप अपनी टुकड़ियों का संचालन ये टीसू करते थे। हर घर पर सख्त पहरेदार की नियुक्ति होती थी जो सेनाओं के आवागमन पर नजर रखता था और आगे (टीस) को इसकी सूचना देता था इसे छटोरियां के नाम से जाना जाता था। टीसू होना गर्व की बात होती थी, प्रायः सभी युवा इसके सदस्य होते थे। इन टेसुओं के कारण गांव और नगर अपनी रक्षा करने में बहुत हद तक सफल हुये।

सन् 1346-47 ई० से बाबर के आक्रमण 1528 ई० तक इन टेसुओं ने जुझौति को बचाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1528 ई० में चन्देरी राजा मेदिनीराय (खंगार) के नेतृत्व में बाबर से, इन्ही टेसुओं के 6000 वीरों ने मुकाबला किया, परन्तु देश का दुर्भाग्य कि देशद्रोहियों के सहयोग से बाबर ने महाराज संग्राम सिंह को जहर देकर मरवा दिया और वे चन्देरी युद्ध के पूर्व ही सिधार गये, अकेले लड़ने के कारण मेदिनी राय ससैन्य वीरगति को प्राप्त हुये।

आज की टेसुओं की टोलियां घर-घर चंदा एकत्रित करती हैं यह उसी परिपाटी का बदला हुआ स्वरूप है।

- झिंझिया – रंगोली पर्व नौरता (सुअटा) के उपरान्त बालिकाएं झिझिया गीत गाती हुई नगर परिक्रमा करती हैं। झिझिया संध्या और रात्रि बेला में गाया जाता है।

इस गीत की पृष्ठभूमि है कि गढ़कुंडार पर मुहम्मद तुगलक ने आक्रमण किया था। गढ़कुंडार की लगभग एक लाख सेना, एक नगर के वीर नागरिक उस भीषण युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुये। उस समय गढ़कुंडार में खंगार सरदार ही शेष बचे, जो जुझौति भूमि को त्यागकर अपने पूर्वजों के देश सौराष्ट्र (जूनागढ़) जाने की तैयारी में कुन्तवार वर्तमान भिण्ड में अपने भान्जों, भदोरियों के राज्य में पड़ाव डाले हुये थे। यह गढ़कुंडार फतह के बाद तुगलक सेना ने स्वर्ण सुन्दरियों की लूट प्रारम्भ कर दी। जिसके

कारण हिन्दू नारियों को वनों में शरण लेनी पड़ी। नारी समाज का धर्म एवं स्वामित्व संकट में था। इनकी मदद करने वाला कोई हिन्दू राजवंश नहीं था।

जुझौति की नारियाँ खंगार सरदारों के पास जाती हैं और उनसे प्रार्थना करती हैं कि वे सौराष्ट्र न जाकर जुझौति भूमि चलेँ और आतताईयों की सेना के अत्याचारों से नारी वर्ग की रक्षा करें। इसमें बालिकाएँ एक छिद्र युक्त घड़ा सिर पर रखकर उसमें तेल का दिया जलाती हैं। इस घड़े को झिझिया कहते हैं। छिद्र युक्त घड़ा नारी समाज की जर्जर अवस्था का प्रतीक है और जलता हुआ दिया सतीत्व धर्म एवं बदले की भावना का प्रतीक है।

महिलाओं की पुकार पर खंगार सरदार जुझौति के जंगलों में भेष बदलकर फैल गये टेसुओं के दल बनाकर देश, धर्म और बहनों की रक्षा की।

➤ सुअटा – यह बुन्देलखण्ड का एक प्राचीन पर्व है यह पर्व नौ दिन तक बालिकाओं द्वारा बड़े ही उत्साह से मनाया जाता है। “सुअटा” एक अभूतपूर्व जौहर जो अनिवार्य संस्कृति की भांति जुझौती में सम्पन्न हुआ, जुझौति की हर नारी ने चाहे वह किसी भी जाति की हो इस जौहर में सम्मिलित होकर राष्ट्र एवं धर्म की रक्षार्थ आत्म उत्सर्ग किया – सुअटा, सु/अटा/ सुन्दर राजमहल।

1346-47 में दिल्ली सुल्तान तुगलक ने जुझौति भूमि पर आक्रमण किया – उस समय गढ़कुंडार नगर जुझौति प्रदेश की राजधानी था और राजा मानसिंह खंगार (जूनागढ़ के राजा खंगार राव नवधन का वंशज) स्वतंत्र शासक था।

गढ़कुंडार की सम्पन्नता, स्वतंत्रता एवं स्वर्ण सुन्दररियों से प्रेरित होकर तुगलक ने यह कदम उठाया उसने राजकुमारी केसर देई का डोला देने एवं दिल्ली की अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव मानसिंह को भेजा। खंगार राजा ने इस प्रस्ताव को देश की मर्यादा एवं धर्माचरण के विरुद्ध मानते हुये युद्ध करना ही स्वीकार किया। एक विशाल सेना लेकर उसने गढ़कुंडार में कत्ले आम कर दिया, अनिवार्यतः महिलाओं ने जौहर (सतीत्व) कर अपने प्राण विसर्जित करके सतीत्व की रक्षा की।

सुअटा के गायन में दिवंगत आत्माओं का वर्णन पूज्य किया जाता है। चैत्र वदी 12 अन्नत सम्वत् 1313 (विक्रम संवत् 1404) सन् 1347 ईस्वी की रात्रि को विभिन्न चरणों में बच्चों, बालिकाओं और विवाहित स्त्रियों ने जौहर किया। गढ़कुंडार के आंगन में आज भी राजकुमारी केसर देई का शिला स्तम्भ रखा है।

गढ़कुंडार विजय के बाद तुगलक ने अपनी विजय यात्रा में लिखा कि उसने वीर भूमि फतह की है। इतने बड़े नर संहार के बाद तुगलक को क्या मिला नगर और दुर्ग के खण्डहर, स्त्रियों, बच्चों के अध जले शरीरों के राख के ढेर। गढ़कुंडार नगर में अनेक स्थानों पर जौहर स्तम्भ हैं। प्राचीन गढ़कुंडार के खण्डहर आज भी खंगार राजवंश के गौरवपूर्ण इतिहास के साक्षी हैं।



ILÑr IkfgR; e Ikelft d pruk

MkO f'kokuh 'kDyk

एम.ए., बी.एड., पीएच.डी.

कानुपर

संस्कृत साहित्य सम्पूर्ण विश्व साहित्य में अनुपम एवं बेजोड़ है, आज जहां मानव, मानव के रक्त का प्यासा बन गया है, सामाजिकता का पतन अपने चरम पर है, अकारण ही सब ओर शत्रुता बढ़ रही है, सभी अपनी स्वार्थ पूर्ति में रत हैं अपने स्वार्थ हित में दूसरे की कितनी भी हानि हो जाए व्यक्ति एक पल भी नहीं सोचता है। सामाजिक, नैतिक मूल्य अपना अस्तित्व खोते नजर आ रहे हैं। परोपकारिता, दयालुता, संवेदनशीलता, सज्जनता, सदाचारिता, सच्चरित्रता आदि सद्गुण केवल पुस्तकों तक सीमित दिखलाई दे रहे हैं। मेरा मानना है कि ऐसी विषम समयावधि में साहित्य सर्जना ही व्यक्ति में सामाजिक चेतना का संचार कर सकती है। वैदिक काल से आधुनिक काल तक संस्कृत साहित्य व्यक्ति का, समाज को, राष्ट्र को, विश्व को चेतन और सत्पथ पर चलने हेतु प्रेरित करता आ रहा है। आज के संस्कृत साहित्यकार साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना, सामाजिक कल्याण, सामाजिक उत्कर्ष हेतु सजग प्रहरी की भांति कर्तव्य पथ पर चलते हुए दिखलाई दे रहे हैं।

विकास की अन्धी दौड़ में व्यक्ति संस्कारहीन हो गया है उसे स्वार्थ पूर्ति में किसी भी स्तर पर जाने में संकोच नहीं होता है, चरित्र क्या है? उसका ज्ञान ही नहीं है इसी के दुष्परिणाम स्वरूप छोटी-छोटी बालिकाओं के साथ तक बलात्कार जैसी शर्मनाक घटनाएं आज आम होती जा रही हैं। जो भारत-संस्कृति और सभ्यता के बल पर जगत् गुरु जैसी सर्वोच्च पदवी पर बैठा था, उसी भारत में विदेशी बालाओं को भी हवस का शिकार बनना पड़ रहा है, और जो नारियां देवी का प्रतिरूप थीं, उनमें सतीत्व की अजेय शक्ति थी, किन्तु आज वही नारी अर्थ हेतु यौन व्यापार करती हुई नजर आ रही है जबकि चरित्र की महत्ता को प्रदर्शित करता हुआ संस्कृत वाङ्मय शिक्षा देता है—

“वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमायाति याति च।

अक्षीणः वित्ततः क्षीणः वृत्तस्तु हतोहतः।”

संस्कृत साहित्य के उपन्यासकार पं० अम्बिकादत्त व्यास ने अपने उपन्यास में पग-पग पर सामाजिक मूल्यों की ओर इंगित किया है एक झलक दृष्टव्य है—

दौवारिकः — हंहो! कपटसंन्यासिन्!! कथं विश्वासघातं स्वामी वंचनं च शिक्षयसि ? ते केचनान्ये भवन्ति जार-जाताः, ये उत्कोच-लोभेन स्वामिनं वंचनयित्वा आत्मनमन्धतमसे पातयन्ति, न वयं शिवगणास्तादृशाः। (संन्यासिनो हस्तं धृत्वा) इतस्तु सत्यं कथयम कस्त्वम् ? कुत आयातः केन वा प्रेषितः।²

दौवारिक— अरे! कपटी संन्यासी, तू मुझे विश्वासघात और मालिक के साथ दगाबाजी करने की शिक्षा देता है? ऐसे हरामजादे कोई और होंगे जो रिश्वत के लोभ में स्वामी को धोखा देकर अपने को घोर अंधेरे में डालते हैं। हम छत्रपति शिवाजी के सेवक वैसे नहीं हैं। (संन्यासी का हाथ पकड़कर) अच्छा, सच-सच बता तू कौन है? कहाँ से आया है? किसने तुझे भेजा है?

संस्कृत साहित्य के आधुनिक मूर्धन्य कविवर डॉ० रेवा प्रसाद द्विवेदी ने अपने महाकाव्य सीताचरितम्

में रामानुज लक्ष्मण के दृढ़चरित्र का चित्रण करते हुए सामाजिक चेतना जागृत करने का अथक प्रयास किया है, लक्ष्मण के चरित्र का अनुकरण करते हुए समाज प्रगतिशील और संस्कारवान् बन सकता है। डॉ० द्विवेदी ने दृढ़व्रतधारी और असाधारण चरित्र वाले लक्ष्मण की देवताओं के द्वारा प्रशंसा करते हुए लिखा है—

“जनैः सुमित्रातनयेऽग्रजं प्रति
प्रजावर्ती चैव दृढ़व्रते ततः ।
उदीरितालोक पदेर्नभः स्पृशः
स्वरादसामान्यकृतावभूयत् ।”

अर्थात् अयोध्या के देवता ज्येष्ठ भ्राता राम तथा अग्रज—भार्या सीता के प्रति, दृढ़व्रत और असाधारण चरित्र वाले लक्ष्मण की उच्च स्वर से जयजयकार करने लगी थी।

आधुनिक संस्कृत साहित्यकार संस्कृत में समान अधिकार रखने वाले आधुनिक कालिदास “अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र ने अपने वाग्वधूटी काव्य में” “सर्वजन हिताय सर्वजनसुखाय”, विश्वकल्याण भावना पाप विनाशक कार्यों का वर्णन करते हुए हमारे समाज को, राष्ट्र को उन्नतशील पथ पर ले जाने का उपक्रम किया है—

गायन्ति यस्य देवाश्शुभगीतकानि नित्यम्
सर्वे भवन्तु सुखिनः यस्यै तदेव कृत्यम्
अभयप्रदोपदेशाः शमयन्ति पापलेशम्
वन्दे सदा स्वदेशम् एतादृशं स्वदेशम् ।”

अर्थात् “जिस भारत वर्ष के गौरव गरिमा का गान देवता भी सदा करते आये हैं, सबके सुख की कामना, विश्व कल्याण की सद्भावना जिस देश का एक मात्र परम कर्तव्य है तथा जिनके चिन्तनशील ऋषियों और मनीषियों ने अपने उपदेश से भय से मुक्ति प्रदान की है, तथा पाप के अंशमात्र को नष्ट करने वाले श्रेष्ठ उपाय बताए हैं। ऐसे अपने देश की मैं सदैव वन्दना करता हूँ।”

पण्डित रामजी उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ “भारतीय संस्कृति सौरभम्” में सम्पूर्ण पृथ्वी ही अपना कुटुम्ब है और सभी मानव निरोगी और सुखी रहें तथा राजा प्रजा का पालन पुत्रवत् करे इत्यादि अनेक जीवन मूल्यों की शिक्षा दी हैं। समाज में व्याप्त लालच स्वार्थपरता आदि को इनके साहित्याध्ययन से दूर किया जा सकता है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः वसुधैव कुटुम्बकमिति चादर्शवाक्यानि भारते केवलं भावनात्मकानि नाभवन् । सर्वेषां गृहिणां दैनन्दिनकृत्येषु तत्र पच्चमहायज्ञानां विधानमावश्यकमासीत्, येन न केवलं देवर्षयो, मानवा वाऽपितु सर्वे चराचराः पुण्यभावेन पालिताः ।

कस्यचिद् राष्ट्रस्य राजा तत्रत्य—प्रजानां पिता भवति । यथा कश्चित् पिता स्वकुटुम्बे सर्वेषां सदस्यानां सुख—समृद्धि—शान्ति—कल्याणेभ्यो महता प्रयासेन यतते तथैव राज्ये राजा सर्वासां प्रजानां सर्वविध कुशलाय यततेति तस्यादर्श आसीत् । वस्तुतो राजा लोकपालनामंश एव तत्समः प्रजापालकः स्यात् ।¹⁵

संस्कृत भाषा में आज भी अनेकानेक विषयों पर काव्य महाकाव्य, नाटक, कथासंग्रह आदि प्रकाशित हो रहे हैं। संस्कृत भाषा की जीवन्तता का यह प्रचुर प्रमाण है कि—किसी भी भारतीय भाषा की अपेक्षा इस विषय में भी आधुनिक विषयों—सामाजिक तथा सम सामयिक समस्याओं पर पर्याप्त लिखा जा रहा है, प्राचीन संस्कृत साहित्य में अत्यल्प ही हास्य रस दिखलाई देता है अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में भी

अंगुलीपरगणना करने वाले लेखकों ने ही हास्य रस को अपनाया है। वर्तमान एवं तात्कालिक सामाजिक समस्याओं, व्यक्ति सन्दर्भों एवं पारस्परिक संवादकीय मनोरंजन परिस्थितियों को ध्यान में रख कर समकालीन हास्य व्यंग्यकार ख्यातिलब्ध डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री ने अपने काव्यों कथाओं आदि में हास्य व्यंग्य के माध्यम से समाज की विभिन्न समस्याओं पर प्रहार करके समाजशास्त्रियों एवं बुद्धिजीवियों को सोचने पर बाध्य कर दिया है। इन्होंने सरल संस्कृत भाषा में प्रायः अनुष्टुप छन्दों में हास्य रस को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है व्यंग्य तो इनकी काव्य की सम्पूर्ण रूपेण आत्मा ही है। डॉ० शास्त्री जी ने समाज की अनेकानेक समस्याओं पर प्रहार करके सामाजिक चेतना की अलख जगायी है। इसी क्रम में इनका भारत की गरीबी पर करारा व्यंग्य दर्शनीय है—

श्वानो गच्छति कारयानके मार्जारः पर्यंके शेते,
किन्तु निर्धनों मानवबालः बुभुक्षितो रोदनं विधत्ते।
अचेतनाः पाषाणमूर्तयः वस्त्रसज्जिताः संराजन्ते,
किन्तु दरिद्रो वृद्धोऽशक्तः शीते वस्त्रं विना कम्पते।^६

अर्थात् इक्कीसवीं सदी के भारत में श्वान (कुत्ता) कार पर बैठकर यात्रा करता है और बिल्ली बिस्तर पर शयन करती है, परन्तु भारत में गरीबों की सन्तानें भूखे पेट रहते हुए बिलाप करती हुई दिखलाई देती है। आज की बहुत बड़ी विडम्बना है कि— पत्थर की बनी हुई निर्जीव मूर्तियां शोभायमान वस्त्र धारण किए हुए हैं बल्कि गरीब असहाय मानवों की सन्तानें ठंडी रातों में बिना वस्त्र के काँपती हुई दिखलाई दे रही हैं। मनुष्यों में भेदभाव की जड़े पनप रही हैं, मनुष्य एक दूसरे के रक्त का प्यासा है, मनुष्यता तिरोहित हो चुकी है, आचार्य शास्त्री के विचार देखिये—

विलोक्य लोके बहुधा विभिन्नताम्, दरिद्रतां हिस्त्रस्वभावतां पराम्।
विचार्यते किं भुवि साम्प्रतं सखे! पवित्रता मानवता दिवंगता ?।^७

अर्थात् आज सभी मनुष्य भेद भाव के भरे हुए दिखलाई दे रहें हैं। मानवता जैसे विलुप्त हो गई है। यह हमारे संस्कारों में कहाँ भूल हो गयी है यह विचारणीय है।

आधुनिक समय में रक्षक ही भक्षक बन बैठे हैं चिकित्सकों को धरती के भगवान की संज्ञा दी जाती है तथा चिकित्सालय को देवालय की संज्ञा दी जाती है, उसी भगवान के देवालय में जीवन मृत्यु से जूझ रही नवयुवती कविता की चिकित्सकों के संरक्षण में बलात्कार करके हत्या कर दी जाती है। “दैनिक जागरण समाचार पत्र देखिए—

“आई०सी०यू० में हुआ छात्रा से दुष्कर्म”

चौदनी अस्पताल के आई०सी०यू० में वार्ड ब्याय ने किया था दुष्कर्म।

पोस्टमार्टम हाउस के बाहर शव रखकर जाम लगाया, हंगामा।

अफसरों की कार्यवाही के आश्वासन पर शांत हुये परिजन।^८

आज के नेता सर्प से भी ज्यादा विषैले हैं डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री का नेताओं पर एक व्यंग्य देखिये—

वर्तते जनसम्मर्दः कथमेष महान् इह?,
प्रश्नमेनं समाकर्ण्य प्रष्टारं कोप्युवाच यत्।
नेतारं दृष्ट्वान् अद्य कश्चित् विषधरस्ततः,
तमेव द्रष्टुकामास्ते जना एकत्रिता इति।
तदुत्तरं समाकर्ण्य प्रष्टा तं पुनरब्रवीत्,
वर्तते का दशा नेतुः? स्वस्थः स वर्तते न वा ?।

एतत्प्रश्नस्य सन्दर्भे पुरुषः कश्चिदाह यत्,
नेता तु वर्तते स्वस्थः सर्प एव दिवंगतः ।¹⁵

अर्थात् एक स्थान पर भीषण कोलाहल को देखकर एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति से पूछा भाई यहाँ पर यह जन समूह क्यों एकत्रित है, तब दूसरे व्यक्ति ने जवाब दिया आज किसी नेता को किसी विषैले सर्प ने डंस लिया है। जिसे देखने के लिए यह जनसमूह एकत्रित हुआ है। इस बात को सुनकर उस व्यक्ति ने नेता जी का अकुशलक्षेम पूँछा तब दूसरे व्यक्ति ने कहा नेता जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि विषैला कौन है? सांप तो मर गया है परन्तु नेता जी पूर्णतः स्वस्थ है।

वास्तव में समकालीन संस्कृत साहित्यकारों ने समाज के विभिन्न अंगों पर अपनी लेखनी रूपी तूलिका से सजीव चित्र चित्रित किये हैं। वे समाज में व्याप्त जातीयता, पथभ्रमितराजनीति, देहजप्रथा, चरित्रहीनता, विलुप्त हो रही राजभक्ति आदि—आदि विषयों को लेकर समाज को नई दिशा प्रदान करने का कार्य कर रहे हैं। आज जो समाज में संस्कार दिखाई दे रहे हैं उसको अक्षुण्ण रखने में हमारे समकालीन साहित्यकारों का बड़ा योगदान है। वास्तव में गिरते हुए नैतिक मूल्यों के संरक्षण हेतु सामाजिक चेतना लाने हेतु संस्कृत साहित्य की अति आवश्यकता है।

I UnHk

1. मनुस्मृति।
2. शिवराजविजय द्वितीय निःश्वास।
3. सीताचरितम् प्रथम सर्ग, श्लोक सं० 6।
4. वाग्वधूटी काव्य (नवगीत संग्रह) अभिराज प्रो० राजेन्द्र मिश्र कृत।
5. भारतीय संस्कृति—सौरभम् डॉ० रामजी उपाध्याय, पृष्ठ सं० 25—26।
6. व्यंग्यार्थकौमुदी डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री, पृष्ठ सं० 62।
7. व्यंग्यार्थकौमुदी डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री, पृष्ठ सं० 18।
8. दैनिक जागरण समाचार पत्र 5 सितम्बर, 2010, पृष्ठ सं० 1।
9. कोमलकण्टकावलि: डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री, पृष्ठ सं० 7।



भारतीय लोकगीत : सामाजिकता और स्त्री विमर्श के अहम पहलू

डॉ० रचना भारतीय

प्रवक्ता हिन्दी विभाग

यशोदा कन्या महाविद्यालय मिश्रिख, सीतापुर

परम्परा और संस्कृति पर्यायवाची शब्द नहीं हैं, हालाँकि सामान्य व्यवहार में दोनों का प्रयोग एक ही अर्थ को ध्वनित करने के लिए लिया जाता है। संस्कृति अधिक व्यापक अवधारणा है, परम्पराएँ उसकी अपेक्षाकृत दीर्घजीवी धाराएँ और उपधाराएँ होती हैं। परम्पराएँ किसी भी संस्कृति की बुनावट के लिए आवश्यक है, किन्तु किन्तु केवल उनसे ही पूरी संस्कृति को नहीं समझा जा सकता। परम्पराएँ जातीय स्मृति का अंग होती हैं, किन्तु उनका चुनाव समाज स्वयं जीवन के बदलते सन्दर्भों और तत्कालीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर करता है।¹

भारतीय लोकगीत में सामाजिकता का अध्ययन करते समय हमें भारतीय परम्परा और संस्कृति को ध्यान में रखना होगा। 'लोक' एक व्यापक शब्द है। महर्षि व्यास 'लोक' शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं— प्रत्यक्ष दर्शोलोकानां सर्वदर्शो भवेन्नरः।

अर्थात् जो व्यक्ति लोक को स्वतः अपने चक्षुओं से देखता है, उसे सम्यक रूप से जान सकता है। 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुयी यह जानना महत्वपूर्ण है। 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शन' धातु के 'घञ' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ होता है 'देखना' जिसका लटलकार में अन्य पुरुष एवं वचन का रूप 'लोकते' हैं। अतः 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ 'देखने वाला'। इस प्रकार वह जन समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाएगा।²

'लोक' शब्द का उल्लेख पुराणों एवं उपनिषदों से भी प्राप्त होता है। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध सूक्त में 'लोक' शब्द का व्यवहार जीव एवं स्थान दोनों अर्थों में किया गया है—

नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।

पदभ्यां भूमिद्विशः क्षोत्रातथा लोकांअ अकल्पयन्।³

उपनिषदों में भी 'लोक' शब्द का कई स्थानों पर प्रयोग हुआ है। लोकगीतों के माध्यम से जब हम उसका सामाजिक अध्ययन और स्त्री से जुड़े तमाम पहलुओं को उठाने की बात करते हैं तो लोकगीतों का स्वरूप और भी अधिक व्यापक हो जाता है। डॉ० सूर्य प्रसाद शुक्ल के शब्दों में कहा जाए तो "यह वह मानव समाज है जो अपनी परम्परा जन्य आदिम विश्वासों के प्रति आस्थावान है और संस्कृति की अजस्त्र धारा को युगों-युगों से संरक्षण प्रदान कर रहा है। लोक जीवन के सहज और अकृत्रिम भाषा तत्व में बोली की निजता से निकला स्वर समाहित होता है।"

लोकगीतों का एक विराट साम्राज्य है इस मायने में क्योंकि हमें भारतीय संस्कारों, भाईचारा, प्रेम सौहार्द के दृश्य लोकगीतों में ही दिखायी देते हैं। भारतीय जनजीवन की लोकगीतों में जो वर्णन हमें दिखायी देता है उसे हम दो खण्डों में बांट सकते हैं—

(क) सामाजिक जीवन चित्रण

(ख) आर्थिक पक्ष का चित्रण

सामाजिक जीवन के साथ ही धार्मिक जीवन का भी सफल चित्रण दिखायी देता है। राम जी के जन्म बने हिरन के मास का बनना और हिरनी द्वारा उसकी खाल मांगने पर न देकर ढपली बनवाकर राम को देने का चित्रण बड़े हृदय विदारक और मार्मिक ढंग से अंकन किया गया है।

जब जब बाजै खंजड़िया सबद सुनि अनकड़।

हरिनी ढाड़ि ढँकुलिया के नीचे हिरन के बिसूरड़।

इन गीतों में नैतिक चारित्रिक यहाँ तक वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को पुष्ट करने का प्रयास भी दिखायी देता है। आपसी पारिवारिक सम्बन्धों माता-पुत्र, भाई-बहन, सास-पतोहू, ननद-भावज यहाँ तक सौतिया, डाह तक के गीत उपलब्ध दिखायी देते हैं। ऐसा लगता है कि भावनाओं का प्रवाह प्रवाहित होता चला जा रहा है। बहन को खबर लगती है कि भाई आ रहा है। बहन के प्रतीक्षा करने का दृश्य बड़ा ही भावपूर्ण है—

“खिरकी से बहिनी जे चितवे,

बीरन बेइलि नीचे ढाड़

देहु न सासु मोरी अपनी चंदरिया,

वीरन मिलन हम जाइबि।।”

लोकगीतों में सभी रसों की व्यञ्जना दिखायी देती है। ऐसा ही एक करुण दृश्य है जब पार्वती जी अपने दुःख को अपनी माँ से कहती है—

“भँगिआ पीसत ए आमा, हयवा खिअइले

घतूर मलत ए आमा, जियरा अकुलइले।।”

ऐसे ही एक लोकगीत में पतोहू अपनी सास द्वारा दुःख दिये जाने की गाथा है। पति परदेश गया है और सास इसी उलाहना से उसे कष्ट दे रही है।

“सासु मोर बोलेली बिरहिया,

तू केकर कमइया खडबू ए राम।।”

मानसिक प्रताड़ना के साथ-साथ उसके शारीरिक कष्ट का वर्णन किसी भी संवेदनशील के हृदय को झकझोर देगा—

“कई मन कूटो भइया, कई मन पीसीला हो ना।

भइया कइ रे मन रीन्हीला रसोइया हो ना।

सासू खौंची भर बासना मँजाबेले हो ना।

सासँ पनिआ पताल से भरावेले हो ना।।

लोकगीतों में गहरी अनुभूतियाँ सुख-दुःख, आशा-निराशा, प्रेम-उल्लास तथा ढेर सारी भावाभिव्यक्ति की सुन्दर झाँकी इन गीतों के माध्यम से मिलती हैं। वहीं लोक जीवन से जुड़े तमाम संस्कारों ऋतुओं के गीत, कथा-कहानी, चुभती लोकोक्तियाँ, मुहावरों और सूक्तियों को गाकर जहाँ एक ओर भावाभिव्यक्ति की सुन्दर झाँकी दिखायी देती है वहीं जीवन के गहरे अनुभवों को भी बताने का प्रयास दिखायी देता है। जैक मुड़ी कहते हैं कि “जहाँ तक बात परम्परा की है, वहाँ समाज में लोकगीतों के गहरे सरोकार होने का प्रमुख कारण, जन समाज के लौकिक होने की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है।”

मनुस्मृति में लिखी इस पंक्ति ने स्त्री को दोगुम दर्जे का बना दिया—

“पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।

रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वतान्त्र्यमहति।।

वास्तव में स्त्री का जीवन पक्षपात पूर्ण एवं शोषण उनकी नियति का हिस्सा रहे हैं। इसीलिए वह दहेज, भ्रूण हत्या, शील हरण, जैसे दुःख को अपने जीवन में ग्रहण करती हुयी अपनी पहचान के लिए संघर्ष करती दिखायी देती है। ‘स्त्री का जीवन धान रोपनी की तरह, पेड़ में बसेरा करती चिड़िया की तरह होता है, तभी तो वह अपने पिता से नीम का वृक्ष काटने को मना करती है—

“बाबा निमिया के पेड़ जिनि काटेउ।

निमिया चिरइया बसेर।

बाबा बिटियइ जिनि कोऊ दुःख देइ।

बिटिया चिरइया की नाई।”⁴

उत्तर आधुनिक परिदृश्य, संवेदना का ह्रास, और इतिहास का अंत यह तथ्य ऐसे हैं जो व्यक्ति को इस बात को सोचने के लिए मजबूर कर देते हैं कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लोकगीतों में व्यक्ति को सामाजिकता से जोड़ने तथा रागहीन होते समाज को कितना साथ जोड़ने में सफल हो पाते हैं। ऐसे में आज जहाँ मानव समुदाय हताश हो, मानसिक तनाव के कारण तरह-तरह की व्याधियाँ से ग्रसित हो रहा है और अपनी जड़ों से कट रहा है वहाँ यह गीत न केवल मनोरंजन करेंगे वरन् मानव की अनुभूतियों से गहरे से जुड़ने का प्रयास भी करेंगे। लोकगीतों में नारी व्यथा के चित्रों की बात करते समय यकायक याद आती हैं सिमोन बाउवार, उनका कहना है कि “स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि उसे स्त्री बना दिया जाता है।” सामन्ती विचारधारा वाले पुरुष का हमेशा से नारियों को दोगुम दर्जे का बनाकर रखना उसके स्वाभिमान की संतुष्टि भी है। कितना विचित्र लगता है कि वे ही नारियाँ जो पुरुषों से प्रताड़ित होती हैं वही पति, पुत्र, भाई और परिवार के लिए व्रत उपवास और मंगलगीत गाती हैं बुन्देली का एक लोकगीत है—

सास—ससुर की सेवाकरियों,

पति की पूजा करियों मोरे लाल।

देवर जेठानी से हिलमिल रहियो,

ननदी से न कछु कहियो मोरे लाल।⁵

दिल्ली से जुड़े गाँवों में आम भारतीयों की तरह पुत्र के जन्म पर खुशी और पुत्री के जन्म पर दुःख व्यक्त करने वाले रिवाज हैं, वहीं बुन्देलखण्ड में पुत्री के जन्म को बाजी हारने की बात कही जाती है और उसे वज्र की रात कही जाती है। वहीं पुत्र के प्रति प्रेमभाव को यह लोकगीत दर्शाता है—

‘ता दिन पूत तुम जनमें

भई है सोने की राति।

दौरानी—जिठानी मेरी हौंसी फूली डोलें

ससुर लुटावत लाल।

वहीं पुत्री के जन्म पर स्त्री, समाज के व्यवहार से दुःखी हो कहती है—

“ता दिन धीय तुम जन्मी

भई है बजुर की राति।

सास जिठानी मुखहूँ न बोलै

सैया संवरिया पर घर सोय ।

ससुर बसे खरियान ।”⁶

नारी संवेदना के स्वर और लोकगीत के सामाजिक सरोकार की बात से देखा जाए तो, आदिकालीन साहित्य में नरपति नाल्ह के ‘बीसल देव रासों’ में भी यह अभिव्यक्ति दिखायी देती है। अरुण कुमार वर्मा अपने लेख ‘अवधी’ लोकगीतों में नारी संवेदना’ में कहते हैं कि ‘मनुष्य के उद्भव के साथ ही लोकगीतों की उत्पत्ति की संकल्पना सच प्रतीत होती है। वैदिक काल में जिन लोकगाथाओं का उल्लेख मिलता है वे ही लोकगीतों की पूर्व प्रतिनिधि कही जा सकती हैं। महाकवि कालिदास के रघुवंश में स्त्रियों के गीतों का उल्लेख किया है। लोकगीत सीधे जनता के संगीत हैं यह लोच, ताज़गी और लोकप्रियता में शास्त्रीय संगीत से भिन्न हैं जो आज भी जीवन नियमों की जकड़ में नहीं बंधे हैं।”

लोकगीत का एक व्यापक क्षेत्र है। प्रत्येक प्रदेश की अलग तरह की परम्पराएँ और रीति रिवाज हैं। भागम-भाग जिन्दगी में लोकगीत आज के समय में अपनी पहचान खोते जा रहे हैं यह चिन्तन का विषय है। लेकिन वर्तमान समय में भोजपुरी गीतों और फिल्मों का होता विस्तार इस बात का भी परिचायक है कि लोकगीत का सम्बन्ध आम आदमी से है और इसीलिए आम लोगों का रुझान भी इसी में है। लोकगीतों की बात करते समय थोड़ा सा गहराई से विचार करें तो पायेंगे कि लोकगीतों को सुनते समय जो अत्मिक अनुभूति प्राप्त होती है। वैसी अन्य गीतों में नहीं; मूलतः यह माना जाता रहा है कि लोकगीत गांवों के गीत हैं लेकिन यह तो तय है कि आज भी लोकगीत अपने हास-परिहास के साथ-साथ वातावरण की बोझिलता को कम करने का प्रयास करते हैं— यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। हमारे यहाँ जितने भी संस्कार हैं उनके गीत, विवाहगीत, ऋतुगीत, जाति गीत, श्रम गीत और देवी-देवताओं के गीत के रूप में दिखायी देते हैं। स्त्री और समाज एक दूसरे पर आधारित हैं। यह वह धुरी है जिसके चारों ओर दुनिया घूमती है। इस तथ्य को कोई स्वीकारना चाहे या नहीं इस पर तर्क की आवश्यकता नहीं लेकिन यह तो तय है कि संस्कार और परम्पराएँ स्त्रियों ही हस्तांतरित करती हैं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को। एक संयुक्त परिवार में रहने वाली स्त्री किस तरह से अपने संस्कारों के कारण अपने पति से अलग रहती है। जायसी की ‘पद्यावत’ इन्हीं संस्कारों की व्याख्या है। अपने भाव को किस तरह व्यक्त करती है एक भारतीय स्त्री—

ई रेलिया बैरन पिया क लेहे जाई रे,

जवने टिकरवा पे पिया मोर जइहै

बरसई पनिया टिकट गलि जा ई रे।

जवने शहरवा के पिया मोर जइहै

लागई अगिया शहर जरि जाइ रे।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन पंक्तियों के माध्यम से कहा है—

आगि लाग घर जरा बड़ा सुख कीन्हि

पिय के हाथ धइलवा भरि-भरि दीन्हि ।।

भारतीय लोकगीतों में जब हम सामाजिकता संस्कार और स्त्री की स्थिति की बात करते समय हमारे

सामने कुछ प्रश्न उभर कर आते हैं कि एक ओर पूरा विश्व एक गाँव में तब्दील हो रहा है। परम्परागत सीमाएँ टूट रही हैं वहीं हमारी संस्कृति, हमारी कला पर इसका प्रभाव स्पष्ट दिखायी दे रहा है। अखिलेश का एक उपन्यास है “वह जो यथार्थ था” उसमें वे भी यही चिन्तन करते नजर आते हैं कि अस्मिता पर संकट है। आज यह क्या समस्या नहीं लोकगीत का स्थान डीजे, परम्परागत नृत्य का स्थान फूहड़ नृत्य भंगिमाओं ने और कला अपने अस्तित्व पर संकट महसूस कर रही है। कम्प्यूटर क्रांति ने रंगों के मेल, ब्रश और कैनवास के आनन्द को फीका कर दिया है। यह तो निश्चित रूप से मानना होगा कि कला के उद्भव में सबसे पहला चरण, लोक भावना और सामुदायिकता का होता है।

गायन, चित्रांकन, पहेली, कहानी, कथा सभी को श्यामाचरण दुबे ने लोककला एवं संस्कृति से जोड़ा है। यहाँ तक की मूर्ति निर्माण को भी इसी अभिव्यक्ति का माध्यम मानते हैं। तमाम बहसों को नजर अन्दाज करते हुए हमें यह देखना होगा कि इस परम्परा को हम पुनः समाज में कैसे प्रतिष्ठा दिला सकें। सबसे प्रमुख बात यह है कि हम अपने भारतीय समाज को पुनः पुराने परिवेश यानि कि वही सामुदायिकता की भावना से जोड़ सकें क्योंकि समाज से कटे हुए व्यक्ति, मानसिक तनाव और आर्थिक समीकरण तथा विकेंद्रित समाज को यदि हम एक साथ ला सकने में सफल हो सकें तो निश्चय ही लोक कला, साहित्य पर कोई संकट नहीं रहेगा। फूहड़ व अश्लील द्विअर्थी गीतों के जगह पुराने 60 के दशक के कर्णप्रिय एवं भावाभिव्यक्ति को व्यक्त करने वाले गीतों का चलन फिर हो तो कोई संशय नहीं कि हमारी पुरानी कला और संस्कृति अपना स्थान प्राप्त कर लेगी, लोकगीत न केवल हमें, संस्कार, परम्पराओं और तत्कालीन सामाजिक परिवेश से परिचित कराते हैं बल्कि एक तरह से देखा जाए तो हमारे देश की पहचान भी बताते हैं जिस तरह से ईसाई धर्म में विवाह के लिए चर्च एवं पादरी, मुस्लिम में काजी और निकाह की परम्परा है वैसे ही हिन्दू धर्म में पण्डित और सप्तपदी के फेरे ही उनकी पहचान हैं। लोककलाओं को और ऊपर उठाने तथा समाज में पुनः प्रतिष्ठा दिलाने में संस्कार भारती जैसी संस्थाएँ भी प्रयासरत हैं। लोक कला और संस्कृति से जुड़े लोगों को थोड़ा सा बदलाव भी स्वीकारना होगा तभी हमारी लोककला विलुप्त होने से बच पायेगी ओर फिर गूँजेगे स्वर—

सैंया लाइदेह करधनिया, मंगाइदे करधनियाँ, मैं तोसे बिरजी
जुआ में धर दर्द नथुरी मोरी, अब लौ नहीं उठाई,
चुड़िया कंगना चूरा के बिन, सूनी परी कलाई
बिक गयी नाक की नथुनियाँ, हो हँसे सारी दुनिया मैं तोसे बिरजी।

संदर्भ सूची

1. परम्परा : इतिहास बोध और संस्कृति—श्यामाचरण दुबे—राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.—24—25
2. लोक साहित्य की भूमिका—कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य—भवन (प्रा0) लिमिटेड, इलाहाबाद, पृ.—10
3. ऋग्वेद 3/53/12
4. लोकगीतों में नारी—प्रतिशीर्षक, डॉ0 वी0एन0 सिंह, पृ.—65
5. लोकगीतों में नारी—प्रतिशीर्षक, डॉ0 वी0एन0 सिंह, पृ.—52
6. लोकगीतों में नारी—प्रतिशीर्षक, डॉ0 वी0एन0 सिंह, पृ.—51
7. आजकल—मार्च—2012, पृ.—38



राजस्थान एवं गढ़वाल की स्त्रियों की सामाजिक अभिव्यक्ति का प्रमुख स्रोत : लोकगीत

डॉ० हेमा देवरानी

डी. लिट्.

बी-1/3, अपनाघर शालीमार, अलवर (राज०)

राजस्थान और गढ़वाल दोनों ही प्रदेशों की भौगोलिक पहचान विचित्र है। हमारे देश भारत के पश्चिम क्षेत्र में पतंगाकार प्रदेश राजस्थान वीरों की भूमि, सन्तों की भूमि रही है तथा धार्मिक एवं लोक विश्वासी है, वह सब उसे भारत विशिष्ट के नाम से प्रसिद्ध स्थान दिलाता है। प्राचीन समय में मत्स्य देश, कुरु प्रदेश, शूरसेन देश, शिवि जनपद वार्गट (बागड़), वल्लदेश, मरु देश एवं जोगत देश के नाम से प्रसिद्ध वर्तमान समय में क्रमशः जयपुर, अलवर, भरतपुर व धौलपुर, मेवाड़, डूंगरपुर, जैसलमेर, जोधपुर एवं बीकानेर के नाम से प्रसिद्ध हैं। राजस्थान चौबीस देशी राज्यों तथा अजमेर के विलय के उपरांत आज 23.3 से 30.12 उत्तर अक्षांश तथा 69.30 से 78.17 पूर्व देशान्तर के मध्य 3,42,440 वर्ग क्षेत्र में फैला हुआ है। राजस्थान के उत्तर पश्चिम में पाकिस्तान, उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में पंजाब व हरियाणा, पूर्व में उत्तर प्रदेश, दक्षिण-पूर्व में मध्य प्रदेश तथा दक्षिण में गुजरात स्थित है।

पश्चिमोत्तर हिस्से में सैकड़ों-हजारों मील तक रेगिस्तान तथा दक्षिणी-पूर्वी भाग में मैदानी पठारी तथा अरावली की पर्वत शृंखलाएँ फैली हुई हैं। रेगिस्तान की लू की लपटों तथा अरावली की हरीतिमा के मध्य ही राजस्थानी समाज और संस्कृति का विकास हुआ है। गुलाबी नगर जयपुर, सूर्यनगर जोधपुर, झीलों की नगरी उदयपुर, रेतीली मुस्कराहट भरा बीकानेर, साम्प्रदायिक एकता का तीर्थ अजमेर, नवीन राष्ट्र तीर्थ कोटा आदि राजस्थान की गरिमा हैं।

राजस्थान के प्राकृतिक परिवेश ने यहाँ के निवासियों को दृढ़ता और अचलता का संदेश दिया है। यहाँ के पीले-टीले ही सम्भवतया राजस्थानी वीरों की केंसरिया पगड़ी के प्रेरणास्रोत रहे हैं। यहाँ के वीरों ने अपनी मरुभूमि के चमकते सिकता कणों को चन्दन बनाकर माथे पर लगाया और उसकी पूजा की। राजस्थान के सन्दर्भ में कन्हैयालाल सेठिया की काव्य पंक्तियों के नाम लिये बगैर राजस्थान की चर्चा पूरी नहीं होगी। राजस्थान की समस्त प्रादेशिक व आंचलिक विशेषताओं को प्रस्तुत करने वाली रचना “धरती धोरों री” लोक में जन-जन के कंठ का हार बनी है। यह एक इतना सुन्दर गीत है जिसमें राजस्थानी भाषा की मिठास में प्रकृति, ओज, माधुर्य राष्ट्रीय जातीय गौरव, परम्परा, इतिहास के तत्त्व भरे पड़े हैं, गीत की चन्द पंक्तियाँ –

लुळ-लुळ बाजरियो लैरावे

मक्की झालो देर बुलावे

कुदरत दोन्यू हाथ लुटावे

धरती धोरों री।

राजस्थान का 60 प्रतिशत भू-भाग रेगिस्तान है, जिसमें 40 प्रतिशत जनता निवास करती है।

रेगिस्तान में दूर-दूर तक टीले ही टीले हैं। यह ऐतिहासिक स्थापित सत्य है कि रेगिस्तान (मारवाड़) में चाहे पानी की कमी भले ही हो, किन्तु 'पानीदार' (इज्जतदार) समाज की कमी नहीं है। साथ ही जीवित अग्नि स्नान करने वाली सतियों की भी यह भूमि है। कर्नल टॉड ने ठीक ही लिखा है "कि राजस्थान में कोई भी ऐसा छोटा राज्य नहीं है जिसकी अपनी थर्मोपली न हो और सम्भवतः कोई ही ऐसा नगर हो जहाँ मातृभूमि पर मर मिटने वाले ग्रीक-वीर लियोनिडास जैसा वीर न हुआ हो।"²

राजस्थान धर्म-प्रधान प्रदेश है। यहाँ पौराणिक एवं लोक देवी एवं देवताओं की उपासना का भी विधान है। लोक देवियों में— करणी माता, जीण माता, हिंगळाज, शीतला माता, सकराय माता तथा लोक देवताओं में रामदेवजी, पाबूजी, गोगाजी, तेजाजी, जांभोजी, बालाजी, काला-गौरा भैरू, खेतरपाल भोमियां आदि देवताओं के प्रति जनमानस में आस्था एवं विश्वास है। इन देवताओं के वर्षगांठ पर मेला भी लगता है जिसमें विभिन्न प्रदेशों से जातरू (तीर्थ यात्री) दर्शनार्थ आते हैं और रात-भर जागरण करते हुए लोकगीत गाते हैं। राजस्थान सन्तों की भूमि भी रही है। सिद्धों, नाथों व गोरखपंथियों के गढ़ राजस्थान के अनेक भागों में मिलेंगे।

हिमालय के पाँच खण्डों में एक खण्ड केदारखण्ड भी है। इसी केदारखण्ड को गढ़वाल माना गया है। प्राचीन समय में इस क्षेत्र को इलावृत्त, ब्रह्मपुर, उत्तराखंड, रुद्र-हिमालय, चुल्ल हिमवंत आदि नामों से जाना जाता रहा है। पुराणों की जनपद सूची में भारद्वाज नामक एक जनपद का उल्लेख आया है। पार्सीटर ने उसे गढ़वाल प्रदेश माना है।³ महाभारत काल में हिमालय के तीन खंड माने गए हैं — अंतर्गिरि, बर्हिगिरि और उपगिरि, किन्तु हिमालय के दो खंड शास्त्रों में विशेष रूप से पावन माने गए हैं। एक बदरी केदार खंड और दूसरा कैलास मानसरोवर खंड। इनमें बदरी केदार खंड बर्हिगिरि और उपगिरि दोनों के अन्तर्गत आता था।⁴ गढ़वाल क्षेत्र में लाखों सैलानी प्रतिवर्ष आते हैं। यहाँ बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री एवं प्राकृतिक रूप से सम्पन्न यमनोत्री चार-धाम की यात्रा करने अनेक तीर्थार्थी पहुँचते हैं। यहाँ की धरती प्रदूषण रहित और अपने भौगोलिक विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध है। अनेक ऋषि मुनियों की यह तप भूमि रही है। भारद्वाज, वशिष्ठ, अगस्त्य, कण्व, जमदाग्नि आदि ऋषियों ने इसी भूमि पर आकर तप किया। वेदव्यास ने 18 पुराण यहीं पर आकर पूर्ण किये। आदि गुरु शंकराचार्य ने बद्रीनाथ के निकट बद्रीवन में 16 भाष्य वेदों पर लिखे थे। गौतम बुद्ध ने वैराग्य प्राप्त करने के लिये इन्हीं जंगलों का सहारा लिया।

हेमकुंड, निषध, हरिवर्ष और हिरण्यशुंष पर्वत गढ़वाल के उत्तरी सीमा पर विद्यमान हैं। मंदराचल भी गढ़वाल में स्थित है। मैनाक पर्वत बद्रीनाथ के निकट का क्षेत्र माना जाता है। पर्वतों में सबसे अधिक ख्यात मेरु पर्वत गढ़वाल हिमालय का ही अंग था।⁵

गढ़वाल में गंगा, यमुना, धौली, नयार, अलकनन्दा मन्दाकिनी, पिण्डर, भिलंगना, तमसी इत्यादि अनेक नदियाँ हैं। गंगा एवं यमुना प्रमुख नदियाँ हैं। गंगा का उद्गम स्थान गंगोत्री एवं यमुना का यमुनोत्री है। भिलंगना व भगीरथी टिहरी गढ़वाल की नदियाँ हैं। प्रसिद्ध पर्वतारोही डॉक्टर टी. बी. लॉगस्टाफ ने तिलमैन की 'नन्दादेवी का सफल आरोहण' नामक पुस्तक में लिखा है — "हिम प्रदेशों की यात्राएँ करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि एशिया के समस्त पर्वतीय प्रदेशों में गढ़वाल सबसे सुन्दर है। न तो कराकोरम की बीहड़ प्राकृतिक छटा न एवरेस्ट पर्वत की एकाकी विशालता, न हिन्दुकुश की नाजुक काकेशियन सुषमा और न ही कोई हिमालय का दूसरा भू-भाग गढ़वाल की समता कर सकता है। यहाँ

के पर्वत—शृंग, सुन्दर घाटियां, वन तथा बुग्याल (घास के मैदान) पक्षी एवं वन—जन्तु, तितलियां एवं पुष्प इन सबकी सम्मिलित छटा एक ऐसे आनन्द की अभिसृष्टि करती है, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

गढ़वाल वास्तव में वन, पर्वतों और नदियों का प्रदेश है। नंदादेवी, चौखम्भा, त्रिशूल, कामेत, नीलकण्ठ, गंगोत्री, यमनोत्री, स्वर्गारोहण, हरकी दून आदि प्रसिद्ध श्रेणियाँ भी गढ़वाल क्षेत्र में ही पड़ती हैं। यहाँ के वनों में चीड़, बाँज, देवदारु, बुर्राँज, भोज, शाल आदि वृक्ष भरे पड़े हैं।

ऐतिहासिक परम्परा के लिए भी गढ़वाल का विशिष्ट स्थान रहा है। प्रागैतिहासिक समय में यक्ष, किन्नर, किरात और नाग से यह क्षेत्र सम्बंधित रहा है। जौनसार क्षेत्र में यक्ष—पूजा के अवशेष वर्तमान में भी हैं। संस्कृत के महाकवि कालिदास का यक्ष गढ़वाल का ही अधिवासी था। इसी क्रम में नाग भी गढ़वाल में विशेष महत्त्वपूर्ण रहे हैं। नगेतो, नागराज, नागीजा, नाग—देवता की आज भी गढ़वाल में पूजा होती है।

गढ़वाल के लोक देवता तथा लोक देवियाँ भी हैं जिन्हें स्थानीय लोग बराबर समय—समय पर पूजते रहते हैं। लोकदेवता में — भदाण, मणिकनाथ, जाख, गड़वाड़, कर्ण, सत्यनाथ, सिद्धनाथ, नागर्जा, घण्डियाल, कंवलनाग, कपिलदेव मुनि, कालियनाग, जमदग्नि, सिद्धबली, अगस्त्य घंटाकर्ण, कालानाथ, क्षेत्रफल, भैरव, गुरीत मणिभद्र अघोरनाथ। स्थानीय पूजित देवियों में चन्द्रवंदनी सुरकंठा मैठाणा, धारी, ज्वाल्या, नन्दा तथा राजराजेश्वरी आदि।

मनुष्य के जीवन में हर्ष एवं उल्लास का अपना महत्त्व है। गीत मनुष्य के भावों के ही प्रतीत होते हैं। ये हमारे जीवन विकास के इतिहास भी हैं। मनुष्य के हृदय की अभिव्यक्ति भी हैं। लोकहृदय की स्वाभाविक गीतमय अभिव्यक्ति है। मानव समाज अपनी प्रत्येक प्रकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति लोकगीतों के माध्यम से ही करता है। यही गीत लोकवाद्य और लोकनृत्यों के साथ मिलकर अनोखे लोकसंगीत को जन्म देते हैं। जो हमें समय—समय पर सुनाई देते हैं। लोकमानस की अनुभूतियों को स्वतः स्फूर्त, छन्दवद्ध, गेय और सहज अभिव्यक्त करते हैं। लोकगीत से जुड़ना अर्थात् जीवन से जुड़ना है। ये लोकगीत माधुर्य, उल्लास और संवेदना के अक्षय भंडार हैं। लोकगीतों में अंचल विशेष के जन—मानस के हृदय पक्ष को परखा जा सकता है राजस्थानी एवं गढ़वाली लोकगीतों में काफी एकरूपता दिखाई देती है। इन दोनों ही प्रदेशों के गीतों में स्वाभाविक जीवन की अनेकानेक झलकियाँ, जीवन की मूल प्रवृत्ति देखने को मिलती है। “लोकगीत” मुख्यतः स्त्रियों की ही देन है और मानव जीवन की अनुभूतियों का प्रकाशन स्त्रियों ने लोकगीतों में किया है। समाज में स्त्रियों के प्रति गाये जाने वाले गीतों को, निम्नानुसार दर्शाया जाता है —

पारिवारिक गीत :

परिवार समाज की सबसे छोटी एवं महत्त्वपूर्ण इकाई है। भारतीय समाज में परिवार जैसी संस्था के माध्यम से भाई—बहन, सास—बहू, पति—पत्नी, देवर—जेठ आदि सम्बन्धों की अभिव्यक्ति स्त्रियाँ पारिवारिक दायरे में रहकर समाज के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। लोकगीतों की परम्परा जीवन की सच्चाई खोजने की परम्परा है, जो न जाने कितने युगों से आ रही है और न जाने कितने हजार युगों तक जायेगी। जब तक जीवन धारा प्रवाहित होती रहेगी, लोकगीत भी प्रभावित होते रहेंगे और ये लोक जीवन को भी प्रभावित करेंगे। यह धारणा राजस्थानी और गढ़वाली लोकगीतों पर भी पूर्णतयः लागू होती है क्योंकि वह भी लोक—परम्परा का ही एक अंग है। हमारा सामाजिक परिवेश, पारिवारिक तथा व्यक्तिगत

परिस्थितियाँ संस्कार और मूल्य सब मिलाकर नारी मानसिकता का निर्माण करते हैं। हमारी सभ्यता और समाजीकरण की प्रक्रिया ही पुरुष और स्त्री की मानसिकता में भेद उत्पन्न करती है। स्त्री में धरती की सी सहनशीलता, सागर की गंभीरता, अग्नि की तेज और आकाश की सी विराटता है। बदलती परिस्थितियों में सामाजिक व्यवस्थाओं और परम्पराओं में परिवर्तन आ रहे हैं परन्तु उनके प्रभाव चिह्न समसामयिक लोक-गीतों में आज भी बने हुए हैं। सास के कटु व्यवहार परिवारों में जग जाहिर हैं। सास सदैव कामाग्निक एवं आक्रामक रहती है। सास के अत्याचारों से पीड़ित बहू का जीवन कष्टमय हो जाता है। सास-बहू का आपसी वैमनस्य इन गीतों में जितने तीखे ढंग से उभरा है शायद अन्यत्र दुर्लभ है। सास के अत्याचारों से पीड़ित बहू अपने उद्गार इस गीत में बताते हुए कहती है –

सासू गाल मत काढ़ परि कर दे,
परि करदे म्हानै, न्यारी कर दे,
मैं तो मैड़ी नहीं माँगू झरोखा नहीं माँगू,
म्हानै ऊपर को चौबारो खाली कर दे
मैं तो देवर नहीं माँगू, जेठ नहीं माँगू
बाईसा रा वीरा नै म्हारै सागे कर दे।

सास बहू के शोषण में कहीं भी कमी नहीं है। एक गढ़वाली गीत में एक कन्या अपने सास के अत्याचार का वर्णन करते हुए कहती है हे माँ। मेरी सास पिता और भाई की गाली देती है, बासी खाना देती है, गीत के बोल इस प्रकार हैं—

गाली देन्दी सासु ब्वे, मै बाबु की मारी।
बासी खाणू देन्दी ब्वे, बोली मारी-मारी।।

इतना ही नहीं एक बहू सास के अत्याचार का वर्णन करते हुए कहती है कि देखो रे लोगों, सास के हाल देखो, यह मेरा कैसा बुरा हाल कर रही है। बहू अपने कष्टकारी एवं सास के आरामदायक जीवन की तुलना निम्न गढ़वाली गीत में करते हुए कहती है –

देखा रे लोगू सासू का हाल, करणी छ कनी मेरा क्वाल।
अफू त खांदी दुध भाती, मैं कू ते कोदा को बाड़ी दिन-राती।
खाणू बणौणक मुंडारो बोदी, देणक अफू झट तैयार होंदी।
कंपी कंपीक देन्दी छ नाज, चिची कथुगा खाणी छै आज।
अफू दिन भर बैठी रंदी खाटी, ऐना कांगलीन संजौदी पाटी।
मिल नहेणत देंदी गाली खोटी, बैठी बैठीक तू हवैगे मोटी।
काम नी का त्वैकू हे ब्वारी, त्वै देखीक ऐगे मैं कनी ख्वारी।
अलसी रांड से पैदा तू छ, हट जा नौना का काबिल न तू छ
तुई बतौ अब हे मेरी मांजी, इना सैसर कनकैक में राजी।

गढ़वाली लोकगीतों में सास के अत्याचारों का वर्णन है। ये गीत प्रायः माँ एवं पिता को सम्बोधित किये गये हैं। इस प्रकार राजस्थान और गढ़वाल दोनों ही प्रदेशों की बहू सास के कटु व्यवहार से तंग आकर अपने आन्तरिक भावों को गीत के माध्यम से अभिव्यक्त करती है : दोनों ही प्रदेशों की महिलाओं के

आन्तरिक भावों में एकरूपता दृष्टिगत हो रही है।

दाम्पत्य प्रेम :

‘दम्पति’ शब्द की व्याख्या करते हुए अमरकोष में पति और पत्नी को ‘दम्पति’ कहा गया है तथा दम्पति के पर्यायवाची शब्दों के रूप में ‘जंपती’ जायापती और ‘भार्यापति’ शब्द दिए गए हैं।⁶ प्रत्येक समाज में विवाह अनिवार्य रूप से पाया जाता है। विधि द्वारा विवाह के बाद ही स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी का दर्जा दिया जाता है और पति-पत्नी को ही ‘दम्पति’ माना गया है। दाम्पत्य जीवन समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई है क्योंकि समाज मुख्यतया विवाह और दाम्पत्य जीवन पर आधारित है। विवाहित स्त्री और पुरुष मिलकर दम्पति कहलाते हैं। आदर्श दाम्पत्य जीवन की झाँकी भी हमें राजस्थान और गढ़वाल दोनों ही प्रदेशों में देखने को मिलती है –

म्हारा ससुरो जी गढ़ रा राजवी,
सासू जी म्हारा रतन भंडारा
म्हारा जेठजी बाजूबंद बाँकड़ा
जेठाणी जी म्हारी बाजूबंद री लूम।

गढ़वाल के दाम्पत्य सम्बंधी गीतों में विरह गीतों की भरमार है। गढ़वाल में संयोग की तुलना में वियोग का पक्ष अधिक प्रबल दिखाई देता है। रोजी-रोटी के लिए गढ़वाली नवयुवकों को सेना में या अन्य स्थानों में धनार्जन करने के लिए जाना पड़ता है। ‘ठम ठम चले केसरू पलटन मा’ एक प्रसिद्ध लोकगीत है।

विरह की पीड़ा अनुभव करने वाली गढ़वाली स्त्री आरोपित परिस्थितियों में अपने अस्तित्व को अपने प्रिय पतिप्रेम को समर्पित कर देती है। वह पति की प्रतीक्षा में अपना जीवन व्यतीत कर लेती है। गढ़वाली स्त्री अपने प्रियतम (पति) को सम्बोधित करते हुए गाती है –

लाल बुरांस को फूल फुल्यूं छ, सूरज ऐगे धार मा।
म्यरा दगड़्या भेंटि जा मी तैं ई स्वाणी रितु बहार मा।

इतना ही नहीं पत्नी प्रेम के वशीभूत स्वयं युद्धभूमि में जाना चाहती है। पति-पत्नी संवादात्मक रूप से निम्न गीत गा रहे हैं –

झंगोरा को बोट गणेशी झंगोरा को बोट
मैं जांदू लड़े गणेशी, छोड़ मेरो कोट।

पति-पत्नी के मध्य सम्बन्ध बिगड़ने के अनेक कारण होते हैं, जिनकी अभिव्यक्ति स्त्रियों के द्वारा अनेक राजस्थानी एवं गढ़वाली लोकगीतों में हुई है जिसमें परिवार में सौत का आगमन और सौतियां डाह ‘सौत तो गारा की रोटी’ के रूप में हुआ है वहीं गढ़वाली लोकगीतों में सौत को सावन की अंधेरी रात जैसा माना गया है –

सौण की अंधेरी जनी रात, सूणा लोगू सौत की बात।
दुनिया मा ना होयान सौत, तां चुली झाई जायान मौत।

दाम्पत्य सम्बंधी लोकगीतों में संयोग की अपेक्षा वियोग की प्रचुरता दिखाई देती है। दोनों ही प्रदेशों की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ ऐसी हैं जो संयोग के लिए अवसर ही प्रदान नहीं करती हैं।

भाई-बहिन सम्बन्धी लोकगीत :

परिवार में भाई-बहिन का सम्बन्ध पवित्र और भावुकपूर्ण होता है। भारत में भाई-बहिन के प्रतीक त्योहार के रूप में 'रक्षाबंधन' का त्योहार होता है। इस त्योहार पर गाये जाने वाले लोकगीतों में भाई-बहिन सम्बंधी भावों की अभिव्यक्ति हुई है।

ए वीरा हो थारी करूँ रे मनवार ऐ जामण जाया मेलो, तो, दे।

समाज में सामाजिक सम्बन्धों के अभाव में जीवन सरलता से नहीं चल सकता है।

देवी-देवताओं सम्बन्धी गीत :

राजस्थान एवं गढ़वाल दोनों ही प्रदेश वीर-भूमि के रूप में प्रसिद्ध हैं। यहाँ की स्त्री समाज में प्रतिष्ठित देवी-देवताओं में मुख्यतः वैदिक, पौराणिक और लौकिक तीन वर्गों का समावेश होता है। वैदिक देवी-देवताओं में सूर्य, वरुण, अग्नि, वायु और इन्द्र आदि सम्बंधी गीतात्मक अभिव्यक्ति उपलब्ध होती है। दोनों ही प्रदेशों में पौराणिक देवी-देवताओं में राम, कृष्ण, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, हनुमान, दुर्गा और भैरव आदि प्रमुख हैं।

राजस्थान में ऐसे अनेक परोपकारी महापुरुष हुए जिन्हें लोकदेवता के रूप में स्थापित किया गया है। एक दोहा प्रचलित भी है —

पाबू हरबू रामदे, मांगलिया मेहा।

पाँचू वीर पधारजो, गोगाजी जेहा।।

उक्त लोक देवताओं के साथ ही अनन्य लोक देवी-देवताओं के प्रति गीतों के रूप में श्रद्धा सुमन समर्पित किये गये हैं, जिनमें भौमियांजी, सगसजी, आँवरी माताजी, करणी जी, जुझारणी और सतीमाता आदि हैं। इसी प्रकार पितरों के प्रति भी सम्बंधित महिला समाज की गीतात्मक अभिव्यक्ति विस्तृत रूप में हुई है। परिवार में विवाहादि अवसरों पर 'रातिजगा' (रात्रि जागरण) के रूप में मुख्यतः परिवार के पितरों का आह्वान गीतों के रूप में किया जाता है। सबके नाम लिये जाते हैं।⁷

गढ़वाल में वीरों की संख्या 52 मानी गयी है। इनमें नरसिंह, कालिया, वीर, भैरू, खितरपाल (क्षेत्रपाल) आदि का उल्लेख लोकगीतों में मिलता है। ये सभी वीर व्यक्तियों के सिर पर आते हैं और औजी वादक गीत गाते और वाद्य बजाते हुए नाचते हैं। गढ़वाल में नरसिंह का आह्वान इन शब्दों में किया जाता है —

जाग जाग नरसिंह वीर बाबा,

X

X

X

गुरु गोरखनाथ को चेला जाग, पिता भस्मासुर

माता काली जाग।

ऋतु और त्योहार सम्बंधी गीत :

मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध सदैव से रहा है। प्रकृति के इस संसार में लोक जीवन का सम्पर्क जुड़ा हुआ है। प्रकृति का हिस्सा हमारी महिलायें भी तो हैं तभी तो बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर इन षट्ऋतुओं का सौन्दर्य लोकगीतों में व्यक्त होता है। हमारा सामाजिक जीवन इन ऋतुओं पर आधारित है। भारतीय वर्ष और त्योहारों आदि का निर्धारण भी पूर्ण वैज्ञानिक पद्धति से ऋतु परिवर्तन पर

ही आधारित है। राजस्थान एवं गढ़वाल में ऋतुओं में विशेष त्योहार मनाने की परम्परा है तथा वैसे ही गीतों को भी गाया जाता है।

राजस्थानी त्योहार एवं लोकगीत :

माह	त्योहार	तिथि	गीत
(1) चैत	होली	फाल्गुन पूर्णिमा से एक पक्ष का	फाग, रसिया, शल, दारुड़
रात्रि में चंग और ढोल की मधुर आवाज से दिशाये गूंज उठती हैं। होली के अवसर पर गाया जाने वाला राजस्थानी गीत इस प्रकार से है —			

रंगीलो चंग बाजषां
 म्हारे वीरैजी मँढायो चंग बाजणू
 म्हारो रेगर मढ़ के लायो ऐ
 रंगीलो चंग बाजणू ।

चैत्र : सीलसप्तमी
 : दसामाता
 : गणगौर (चैत्र शुक्ला तीज)

कुछ त्योहार राजस्थान के अपने विशेष हैं। गणगौर राजस्थान के मरुक्षेत्र में ज्यादा उल्लास से मनाया जाता है। गणगौर शंकर-पार्वती की आराधना का त्योहार है। गणगौर 'गौरी' का ही पर्याय है। इस कारण स्त्रियों के प्रमुख त्योहार के रूप में इसे मनाया जाता है। गणगौर की अर्चना के साथ गीत गाने की लोक में परम्परा है। गणगौर के अवसर पर निम्न लोकगीत गाया जाता है —

खेलण दो गिणगौर भंवर म्हाने पूजण दो गिणगौर
 ओ जी म्हारी सैयां जोवै बाट बिलाला म्हानै खेलण दो

(2) वैसाख	वैसाख स्नान	सम्पूर्ण मास	भजन
	आखा तीज	—	विवाह, दान
(3) जेठ (ज्येष्ठ)	वट-सावित्री	व्रत	सौभाग्य व्रत
	गंगा-दशमी	व्रत	धार्मिक कामना
	निर्जला-ग्यारस	व्रत	मोक्ष कामना
(4) आसाढ़	हर्या गोंधा	बालिकाओं का त्योहार	अनुष्ठान
	उज्जैणी	वर्षा के लिए इन्द्र का आह्वान	अनुष्ठान
(5) सावण	तीज	—	झूले के गीत
	हरियाली अमावस्या	—	झूले के गीत
	नागपंचमी		नागदेव के गीत
	राखी		रक्षाबंधन

राजस्थान का तीज का त्योहार देश भर में प्रसिद्ध है। मायके में यह त्योहार अधिक स्वच्छन्दता से मनाया जाता है। इस त्योहार पर कन्याएँ एवं स्त्रियाँ झूला झूलती हैं, गाती हैं एवं आनन्दित हो नृत्य करती हैं। इस त्योहार के अनेक गीत हैं जिनमें वर्षा ऋतु के आनन्द के साथ भाई-बहिन के प्रेम का भी

वर्णन मिलता है। जो कन्याएँ अपने ससुराल में होती हैं वे मायके का स्मरण कर करुण गीत गाते हैं। तीज में ऋतु गीत भी गाया जाता है –

मोटी-मोटी छांटा ओसर्यो,
ऐ बदली ओसर्यो ऐ बदली।
कोही जोड़ा डेलम डेल
सुरंगी रूतं आयी म्हांरे देस,
ओ कुण बीजै बाजरो, ऐ बदली
बाजरो, ऐ बदली।

इसी प्रकार एक अन्य गीत में एक स्त्री ससुराल में तीज के अवसर पर मायके को स्मरण कर गाती है –

आयी आयी मां सावणियेरी तीज, लो
सामने रे सांवण धीया सासरे रे लाल
X X X X
और सहेलियां मायं झुलणिये जाय लो
बाई ने दीवा सासु पीसणो रे लाल

(6) भादवो जन्माष्टमी भाद्र कृष्ण पक्ष भजन, कीर्तन, गीत
श्रीकृष्ण जन्म

श्रीकृष्ण के जन्म के अवसर पर व्रत एवं कृष्ण के भजन आदि गाये जाते हैं।

(7) कुँवार नोरता देवी-देवताओं के गीत देवी पूजन
राजस्थान में इस अवसर पर देवी का पूजन व्रत, आदि रखा जाता है तथा देवी के गीत गाये जाते हैं—
देवी रूमझुम करता पधारिया देवी आया लखावता री पोल।
रिमझिम बाजे घुघरा, उबा ठाकर सा विनती करे।
देवी रौवे अजुणी ए रात, गेरुओ बाजे धुंधडा।
ठाकरसा ने दीज्यो देवी, डीकरो ठाकर सारी पुरो मन री आस।

(8) कार्तिक करवा चौथ कथावार्ता सौभाग्य व्रत
धनतेरस कन्याओं द्वारा घुड़लया सांस्कृतिक
दीवाली लक्ष्मीपूजन त्योहार
गोवर्धन पूजा गीत कृषि सभ्यता की परम्परा
आंवला नौमी व्रतकथा आंवला पूजन
तुलसी का ब्याह कार्तिक स्नान
सम्पूर्ण मास भोजन एवं गीत मोक्ष कामना
“राधा-दामोदार बलि जइयों
राधा बूझे बात किसन
हरि कैसे कातिक न्हैयो”

तूने अजब बनायो भगवान, खिलोणो माँटी को,
 आँख दी रै बाबा दरशन करबा,
 कान दिया सुण ग्यान,
 खिलोणो माँटी को।।

(9) अगहन

—

(10) पौस

—

(11) माघ

मकर संक्रान्त

माघ स्नान

(12) फागुण

शिवरात्रि

व्रत — शिव अर्चना

होली

गढ़वाली त्योहार, ऋतु गीत :

गढ़वाली लोकगीतों में प्रकृति अनेक प्रकार से मुखरित हुई है। प्रकृति का मानवीयकरण हमें साहित्य में देखने को मिलता है। छायावाद में प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोपण हुआ है उसी प्रकार गढ़वाल में भी प्रकृति और मनुष्य की एकसूत्रता व्यक्त करने वाला यह सस्वर-भाव गढ़वाल में विशेष रूप से विकसित हुआ है। यहाँ प्रकृति अनुभूति की वस्तु भी है। कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में शकुन्तला और प्रकृति के निकट सम्बन्धों को अपनी पारखी दृष्टि से पहचाना था उनकी नायिका शकुन्तला 'कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः' कहकर प्रकट किया। यह उल्लास ही ऋतुगीतों को जन्म देता है। ऋतु गीतों की परम्परा बहुत प्राचीन है। संस्कृत में महाकाव्यों में ऋतु वर्णन का विधान था। इसके अतिरिक्त ऋतुकाव्य की एक स्वतंत्र परम्परा भी थी जिसका मूल उत्स लोकगीतों में ही प्रतीत होता है।¹⁸ गढ़वाल में ऋतु के अनुसार मनाये जाने वाले त्योहार एवं लोकगीत इस प्रकार से हैं —

ऽ चैत होली

फाल्गुन पूर्णिमा से

फाग, छरड़ी, छलड़ी,

एक पक्ष का

धुलेड़ी

◆ ढोल, दमामा व शंख को बजाते हुए गाँव की टोलियाँ घर-घर घूमती हैं और दूसरे गाँवों में भी आ जाती हैं। होली के अवसर पर गाये जाने वाला एक प्रसिद्ध होली गीत के बोल हैं —

दरशथ को लछीमन बाल जाती, चौहद बरस तपोवन रहियो ताप नि लाग्यो एक रती
 चौदा बरस हिमाचल रहियो, जाड़ों नि लाग्यो एक रती चौदा बरस सीता संग रहियो,
 पाप न लाग्यो एक रती।।

गढ़वाल में होलिकोत्सव का अपना विशेष सामाजिक पक्ष भी है। इस अवसर पर स्वांग भी भरे जाते हैं, जो गाँवों के वर्ष भर के मनुमुटावों को हास्य-विनोद के माध्यम से पारस्परिक सौहार्द को पुनः स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। गढ़वाल में ब्रज के गीतों को ब्रजभाषा में ही गाने की प्रथा है।

◆ फूलदेई — चैत्र मास के प्रथम दिन इस त्योहार को मनाया जाता है। इसलिए फूलदेई को नववर्ष का त्योहार भी माना जाता है। गढ़वाल के जौनसार-बावर में 'गोगा' कहा जाता है। अपनी कालगणना पद्धति के अनुसार नव वर्षारम्भ को प्रायः उत्सव के रूप में मनाने की परम्परा सभी सभ्य समाजों में है, फूलदेई का यह त्योहार पूरे महीने चलता है बालिकायें सबके दरवाजों में फूल डालती हैं मार्ग में चलते हुए निम्न गीत गाती हैं —

ओ फुलारी घौर, झै (जय) माता का भौर,
क्यौलिदिदी फुलकण्डी गौर डंडि बिरालि छौ निकोर
चल्ला छौरो फुल्लु को खांतड़ि मुतड़ि चुल्लु को
हम छौरों की द्वार पटेली, तुम धोरों की जिब कटेली ।।

इस त्योहार में स्त्रियाँ अपने मुखिया के लिए मंगल कामना भी करती हैं, गीत गाती हैं –
फूलदेई फूलदेई फूल सँगरांद ।

सुफल करो नौऊ बरस तुमकू भगवान ।
रंगीला चंगीला फूल ऐग्या, डाला बोटला हर्याँ हवैग्या
पौन पंछी ऐन, फूल हैंसी रैन;
आयो तेरो नौऊ बरस, आज फूलों सँगरांद ।
तुमारा भकारा भर्यान, अन्न धन्न फूल्यान;
औंदी रया रितु मास, फूलदा रया फूल,
बच्चों रौला हम तुम, फेर आली फूल सँगरांद ।

गढ़वाल के ग्रामीण समाज में इस त्योहार को विवाहित कन्याओं द्वारा बड़ी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा की जाती है। यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार मायके से चैत का कलेवा ससुराल में आता है, जो उसके मान सम्मान को बढ़ाने वाला हुआ करता है।

2. वैसाख वैसाख स्नान बिखौती उत्सव गंगाघाटी
◆ जेठ
◆ आसाढ़ धोग्या किशोरोत्सव

यह गढ़वाल का एक विशेष किशोरोत्सव है, जो बरसाती फसल के लगने के अवसर पर अषाढ़ में अनावृष्टि की आशंका होने पर किशोर एवं किशोरियों द्वारा वर्षा का आह्वान करने के लिए सामूहिक किशोर समुदाय द्वारा आयोजित किया जाता है। पूजा के लिए युवा समुदाय घरों से आटा, चावल, घी, गुड़, नमक, मिर्च, मसाले आदि से धोग्या का भोग तैयार करते हैं। पूजा के उपरांत प्रसाद वितरित करते हैं। धोग्या का एक प्रसिद्ध गीत है –

धोग्या देवता नाचतो, ढोल दमों बाजतो
देवता देलो जो जल, बरखा होली चौतरफ आदि ।

सावण – राखी घिया संगरांद

बगवाल – गढ़वाल के सांस्कृतिक उत्सवों में दीपोत्सव के अन्तर्गत मनाये जाने वाले त्योहारों में बगवाल महत्वपूर्ण त्योहार है। प्रायः शहरों में जिसे छोटी दिवाली कहकर संबोधित किया जाता है। गढ़वाल का ग्रामीण समाज बगवाल कहकर पुकारता है यह एक ऋतु उत्सव है।

दीपोत्सव (दीपावली) – यहाँ गन्ने के टुकड़ों से लक्ष्मी के मूर्तीकरण की प्रथा के रूप में गढ़वाल के चमोली जिले में यह उत्सव तीन दिन तक मनाया जाता है। गढ़वाल के (टिहड़ी) में चीड़ के फाड़ों

से बनी मशालों को जलाकर उन्हें घुमाते हुए 'भैल' खेला जाता है।

इस प्रकार राजस्थान और गढ़वाल दोनों ही प्रदेशों के लोकगीतों द्वारा सांस्कृतिक एकता देखने को मिलती है।

सन्दर्भ सूची

- ◆ हिन्दी का प्रादेशिक लोक साहित्य शास्त्र—डॉ. नन्दलाल कल्ला, पृ. 105
- ◆ राजस्थान भाग I भूमिका—कर्नल टॉड कृत
- ◆ मार्कण्डेय पुराण का अंग्रेजी अनुवाद, पृ. 320
- ◆ डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा लिखित विश्वंभर सहाय प्रेमी की पुस्तक 'हिमालय में भारतीय संस्कृति की भूमिका, पृ. 6
- ◆ ज्योग्रफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐन्शियंट एण्ड मॉडर्न इण्डिया—एम.सी.डे, पृ. 117
- ◆ अमरकोष काण्ड 2, श्लोक 38, पृ. 214
- ◆ राजस्थानी लोकगीत—डॉ. पुरुषोत्तम लाल मेनरिया, चिन्तन प्रकाशन, जयपुर — प्रकृति और काव्य (संस्कृत) — डॉ. रघुवंश, पृ. 113



नई सदी में भारत की शिक्षा व्यवस्था : समस्याएँ, चुनौती एवं सुझाव

डॉ० रवीन्द्र नाथ यादव

प्राचार्य, स्व० दिलीप कुमार स्मारक महाविद्यालय, कोड़ा जहानाबाद, फतेहपुर

नई सदी में भारत की शिक्षा व्यवस्था एक नये क्षितिज पर पहुँच चुकी है। शिक्षा व्यक्तित्व में निखार के साथ-साथ जीविका के क्षेत्र में आगे बढ़ने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। नई सदी में शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्तन है, शिक्षा का निजीकरण। भारत में नई सदी में प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च एवं तकनीकी आदि शिक्षा का प्रतिदिन निजीकरण हो रहा है। यद्यपि शिक्षा के निजीकरण के परिणामस्वरूप स्पर्धा के कारण गुणवत्ता में सुधार हो रहा है। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में निजीकरण से अधिक सुधार हुआ है। उच्च एवं तकनीकी शिक्षा में निजीकरण के प्रभाव से अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है। इसके प्रभाव के कारण कहीं न कहीं उच्च एवं तकनीकी शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट आयी है।

सरकार द्वारा राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का गठन किया गया। आयोग ने उच्च शिक्षा के लिये भावी रूप रेखा सरकार को सौंप दिया। अपनी रिपोर्ट में अन्य चीजों के अतिरिक्त सरकार, राजनेताओं और नौकरशाही के हस्तक्षेप से उच्च शिक्षा को मुक्त करने की बात कही थी। जिससे विश्वविद्यालयों को राजनीति और लालफीताशाही से दूर रहकर अकादमिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सके। सरकारी हस्तक्षेप को समाप्त करने के उद्देश्य से एक स्वतन्त्र उच्च शिक्षा नियामक प्राधिकरण की स्थापना की सिफारिश की गयी थी। संसार के समस्त विकसित देशों में उच्च शिक्षा संस्थान सरकारी नियन्त्रण से मुक्त हैं। सरकार ने ग्यारहवीं योजना में तीस केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तीन इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंटिफिक एण्ड एजुकेशन रिसर्च, दो स्कूल ऑफ प्लानिंग एण्ड आर्किटेक्चर, दस नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी और बीस इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी खोलने का प्रस्ताव किया है। छात्रों की बढ़ती संख्या एवं भारत को उच्च शिक्षा का विश्वस्तरीय केन्द्र बनाने के लिए ये संस्थाएँ पर्याप्त नहीं हैं। सरकार उच्च शिक्षा के लिये एक अध्यादेश लायी लेकिन राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने इसकी सख्त आलोचना की। उसके अनुसार सरकार पुरानी गलतियों को दोहरा रही है, जिससे राजनीतिज्ञों एवं नौकरशाहों से उच्च शिक्षा संस्थाओं को मुक्त होने की संभावना नहीं है। सरकार ने इसकी अनेक सिफारिशों की तरफ ध्यान नहीं दिया, जिससे उच्च शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्ता खतरे में है। शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना के लिये धन की आवश्यकता पड़ती है, लेकिन सरकार इसके लिये सक्रिय नहीं दिखाई दे रही है। इसलिये बड़ी संख्या में निजी क्षेत्र के लोग शिक्षा के क्षेत्र में पूँजी निवेश कर रहे हैं।

नई सदी में शिक्षा में निजी क्षेत्र का योगदान स्ववित्त पोषित संस्थाओं के नाम पर बहुत पहले से रहा है, लेकिन वर्तमान समय में इसकी संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हो रही है। इसकी वृद्धि से समाज में अनेक प्रकार अनेक समस्याएँ भी उत्पन्न हो रही हैं। उच्च शिक्षा के मापदण्ड किसी राष्ट्र के विकास का मानक है। इस सम्बन्ध में भारत का अतीत 'गौरवशाली' रहा है। वैज्ञानिक, धार्मिक और संस्कृति के विकास में भारत की उच्च शिक्षा प्रणालियाँ दूर-दूर तक प्रसिद्ध रहीं हैं। इस सम्बन्ध में भारत को विश्व

गुरु कहा गया है। गुरुकुल में त्यागी गुरु शिक्षा देते थे। अतीत इसका साक्षी है कि उच्च शिक्षा आम व्यक्ति के लिये नहीं थी। प्रभावशाली व्यक्ति ही इस सुविधा का लाभ प्राप्त कर पाते थे। उच्च शिक्षा के निजीकरण की समस्याएँ इक्कीसवीं सदी में विशेष चर्चा का विषय है। प्राचीन परम्परा के अनुसार अपने देश की शिक्षा नैतिकता प्रदान करती है, इसके अभाव में समाज में नैतिक मूल्यों में गिरावट आती है। उच्च शिक्षा पर वैश्वीकरण का प्रभाव आज अनेक चुनौतियाँ खड़ी कर रहा है। हमारे देश के अनेक छात्र उच्च शिक्षा ग्रहण करने विदेश जाते हैं। साधन सम्पन्न व्यक्ति ही अपने पाल्यों को शिक्षा ग्रहण करने विदेश भेज सकते हैं। वर्तमान समय में उच्च शिक्षा के लिये राज्य सरकारें धन की कमी का तर्क देकर पीछे हट जाती हैं। भारत सरकार भी अनेक शिक्षा आयोगों की संस्तुति के बाद भी शिक्षा बजट नहीं बढ़ा पा रही है, शिक्षा पर कुल केन्द्रीय बजट में 3.8 प्रतिशत से अधिक आवंटित नहीं हो पा रहा है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में दिल्ली के अलावा कुछ विशिष्ट विश्वविद्यालयों का ही विशेष ध्यान दिया जाता है।

उच्च शिक्षा में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने के लिये मानव संसाधन मंत्रालय को प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने विधेयक लाने का सुझाव दिया था। आज अगर वैश्विक दृष्टि से देखें तो अभी भी हमारे विश्वविद्यालय बहुत पीछे हैं। मानक गुणवत्ता और मूल्यों के अभाव पर नॉलेज कमीशन ने नान प्राफिट प्लेयर्स की बात अपनी अनुशंसा में की है। उच्च शिक्षा में अनुसंधान— प्रोजेक्ट, रिसर्च, अध्ययन केन्द्र और प्रयोगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

मानव में मूल्यों की स्थापना के लिये शिक्षा की महती आवश्यकता होती है। इसलिए राज्य, समाज एवं व्यक्ति का यह नैतिक दायित्व है कि सभी व्यक्तियों के लिए उचित ढंग से शिक्षा की व्यवस्था करें। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 41 में सभी नागरिकों को शिक्षा उपलब्ध कराने का संकल्प उल्लिखित है। बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए सरकार ने स्ववित्तपोषित संस्थाओं की स्थापना की खुली छूट दे दी है। 24 अप्रैल 2000 को अंबानी बिड़ला रिपोर्ट से इस व्यवस्था को विशेष शक्ति मिली। इस रिपोर्ट में भविष्य में विभिन्न स्तरों पर शिक्षा सम्बन्धी अनुमानित व्यय का चित्रण किया गया है और समस्या समाधान में स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के स्थापना की संस्तुति की गयी। इसके पश्चात ही स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की अधिकता हो गयी।

स्ववित्तपोषित महाविद्यालय के प्रबन्धतंत्र द्वारा छात्र/छात्राओं से अच्छी फीस ली जाती है, लेकिन कितनी बड़ी विडम्बना है कि उन संस्थानों में कार्य करने वाले शिक्षक एवं शिक्षणोत्तर कर्मचारियों को अपनी जीविका के लिये भीषण संघर्ष करना पड़ रहा है। इन लोगों की आर्थिक दशा एक वेतन भोगी मजदूर के समान होती है। ये संस्थाएं बहुत अधिक धन अर्जित कर रही हैं। सरकार भी स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की स्थापना कर आग में घी डालने का काम कर रही है। फलस्वरूप प्रशिक्षित बेरोजगार छात्रों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। एक तरफ एन.सी.टी.ई. नैक शिक्षा गुणवत्ता के मानक स्थापित करने में प्रयत्नशील है, दूसरी तरफ ये स्ववित्तपोषित संस्थाएं गुणवत्ता के मानक को नष्ट करने में पीछे नहीं हट रही हैं। इन महाविद्यालयों में अभिलेखों को पूर्ण करने के लिये प्रवक्ताओं का चयन और अनुमोदन तो पी-एच.डी. उपाधि एवं नेट उत्तीर्ण लोगों का होता है लेकिन अध्यापन का कार्य कम योग्यता धारक लोगों से कराया जाता है। कभी-कभी तो यह भी ज्ञात होता है कि कुछ पी-एच.डी. और नेट उत्तीर्ण लोग अनेक राज्यों के अनेक महाविद्यालयों में अपना अनुमोदन कराये हुये हैं।

निजी क्षेत्र के शैक्षिक संस्थानों के संचालकों को अपने शिक्षकों एवं शिक्षणोत्तर कर्मचारियों के प्रति

सहानुभूति एवं सकारात्मक सोच रखनी चाहिये। संस्था द्वारा अर्जित आय का यदि 50 प्रतिशत भी शिक्षकों एवं शिक्षणोत्तर कर्मचारियों के वेतन मद में वितरित किया जाय तो निष्ठापूर्वक कार्य करने वाला शिक्षक एवं कर्मचारी अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुये अपनी पत्नी व बच्चों का पालन पोषण कर सकता है। इन महाविद्यालयों में कार्य करने वालों का काफी शोषण हो रहा है लेकिन दुर्भाग्य इस बात का है कि इस बात की तरफ न तो केन्द्र सरकार का ध्यान जा रहा है और न तो राज्य सरकारों का। स्वायत्त संस्था होने के बाद भी विश्वविद्यालय भी स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के शिक्षकों की दयनीय दशा के बारे में नहीं सोच रहे हैं। यह स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति भूखा है तो उसकी कार्य क्षमता पर प्रभाव पड़ सकता है। इस सम्बन्ध में केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवं विश्वविद्यालयों को शिक्षकों की उच्च शिक्षा एवं बढ़ती हुयी मंहगाई को ध्यान में रखते हुए सम्मानजनक वेतन एवं स्थायी नियुक्ति प्रदान करवाने की सार्थक पहल करनी चाहिये। स्ववित्त पोषित महाविद्यालयों की स्थापना में सरकार को मानक का सख्ती से पालन करना चाहिए, जिससे उनकी गुणवत्ता प्रभावित न हो सके। शिक्षक एवं शिक्षणोत्तर कर्मचारियों की दयनीय दशा को सुधारने के लिए सरकार एवं विश्वविद्यालय को यह व्यवस्था करनी चाहिए कि संस्थाओं से कुल आय का 70 से 80 प्रतिशत अपने पास जमा कराकर स्वयं शिक्षक एवं शिक्षणोत्तर कर्मचारियों के बैंक खातों के द्वारा प्रदान करना चाहिए। अगर सरकार एवं विश्वविद्यालय शिक्षकों के हित में यह निर्णय लेकर इसे लागू करता है तो उनकी जीविका आसानी से चल सकती है। संस्थाओं के शोषित कर्मचारियों के आश्रित सरकार के इस कार्य से आजीवन सरकार के ऋणी रहेंगे। शिक्षकों की आर्थिक एवं सामाजिक दशा में जब परिवर्तन होगा तो परिणाम स्वरूप स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की गिरती गुणवत्ता में सुधार निश्चित रूप से होगा।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि नई सदी में शिक्षा व्यवस्था निजीकरण की दिशा में अग्रसर है। हमारे देश की तकनीकी संस्थान अपने क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं। प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च एवं तकनीकी शिक्षा सभी में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ी है : इसके परिणाम स्वरूप कुछ क्षेत्रों की शिक्षा में सुधार हुआ है। लेकिन स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में संचालित पाठ्यक्रमों में दिन-प्रतिदिन गिरावट आ रही है। इस सम्बन्ध में भारत सरकार, राज्य सरकारें एवं राज्य विश्वविद्यालयों को विचार कर आवश्यक कार्यवाही करनी चाहिये।

संदर्भ सूची

1. एस.पी. गुप्ता—भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ
2. प्रो० रामसकल पाण्डेय—मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य
3. गुप्ता, एस.पी.—उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान
4. डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव—कृतिका
5. समाचार पत्रों एवं पत्र,पत्रिकाओं के लेख
6. स्वयं का अनुभव एवं सर्वेक्षण



ओशो और स्त्री शिक्षा : एक मूल्यांकन

डॉ. रामयश द्विवेदी

रीडर, सर्वधर्म शिक्षा महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व में पहले से अधिक शिक्षा है। विद्यालय हैं। अध्ययन के तमाम साधन हैं। लेकिन पीड़ा अशान्ति, घृणा तथा ईर्ष्या बढ़ी है। समाज के मूलतः दो ही अंग होते हैं नर तथा नारी—दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। एक का अस्तित्व दूसरे के बिना अधूरा है। समाज में परिवर्तन विकास या समृद्धता दोनों के सम्मिलित प्रयास पर निर्भर है। नारी को सृष्टि की जननी कहा गया है जवाहरलाल नेहरू ने भी स्त्री शिक्षा पर जोर देकर कहा है कि लड़के की शिक्षा एक व्यक्ति शिक्षा है परन्तु स्त्री की शिक्षा पूरे परिवार की शिक्षा है।

हजारों वर्षों से नारी, पुरुष से नीचे छोटी और हीन समझी जाती रही है। कुछ तो देश ऐसे थे जैसे चीन में हजारों वर्षों तक यह माना जाता रहा है कि स्त्रियों के भीतर कोई आत्मा नहीं होती। आज से 400 वर्ष पहले अपनी पत्नी की हत्या करने पर किसी पति को दण्ड नहीं दिया जाता था क्योंकि पत्नी उसकी संपदा थी उसे जीवित रखे या मार डाले। कानून और राज्य का कोई मतलब नहीं।

भारत में भी स्त्री शिक्षा को पुरुषों के सम्मान में, पुरुषों की समानता में कोई अवसर और जीत का मौका नहीं मिला। सारे शास्त्र और सारी सभ्यता, सारी शिक्षा पुरुषों ने निर्मित की है। इसलिये पुरुषों ने अपने आपको बिना किसी से पूछे श्रेष्ठमान लिया है। स्त्री को श्रेष्ठता देने का कोई कारण नहीं है। इसका सबसे बड़ा घातक परिणाम तो यह हुआ कि स्त्रियों के जो गुण हैं वह सभ्यता के विकास के सहयोगी नहीं हुये।

ओशो ने कहा कि स्त्रियाँ न तो पुरुषों से हीन हैं न समान है। स्त्रियाँ पुरुषों से भिन्न हैं। नीत्से ने आज से कुछ ही साल पहले यह घोषणा की थी कि बुद्ध और क्राइस्ट स्ट्रेण रहे होंगे क्योंकि उन्होंने प्रेम और करुणा की इतनी बातें कही हैं। वे बातें पुरुषों के गुण नहीं हैं। नीत्से ने क्राइस्ट को और बुद्ध को स्त्रियों जैसे कहा है। एक अर्थ में यह बातें शायद उसने ठीक ही कही है। वह इसलिये जीवन में जो भी कोमल गुण है जीवन के जो भी माधुर्य से भरे सौन्दर्य की जो भी भावना है। वह स्त्री का अनिवार्य स्वभाव है। मनुष्य की सभ्यता प्रेम और सौन्दर्य से नहीं भर सकती अतः कठोर और क्रूर हो गयी है। अंतिम परिणामों में केवल युद्ध लाती है। इसके पीछे दो बातों का ही हाथ है। एक तो स्त्री के गुणों को कोई सम्मान नहीं दिया गया और दूसरा स्त्री ने कभी अपने गुणों को विकसित करने की कोई सक्रिय उपाय नहीं किये।

ओशो कहते हैं। जो शिक्षा पुरुष की गणित, विज्ञान सीखने की शिक्षा उचित है लेकिन स्त्रियाँ कुछ और सीखें जो पुरुष नहीं सीख रहा। उसे जीवन में कुछ और करना है। उसके ऊपर जीवन ने कुछ और दायित्व सौंपा है। कोई दूसरी जिम्मेदारी है उसके ऊपर प्रेम के सृजन का कोई दूसरा भार है। स्त्री को पुरुष जैसी शिक्षा और समानता के भाव ने स्त्रियों से जो भी उनका महत्वपूर्ण मातृत्व भाव था वह सब नष्ट किया जा रहा है।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन :

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन प्रत्येक वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रक्रिया अनुसंधान कर्ता के लिये

विषय के मूल तक पहुंचने के लिये मूल रूप से संबंधित साहित्य का अध्ययन करना होता है। साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उस समस्या के किस कण की ओर बढ़ना है। अध्ययन का स्वरूप क्या होना चाहिये।

अध्ययन के उद्देश्य :

व्यक्ति जब भी कोई महत्वपूर्ण कार्य करना चाहता है तो वह उस कार्य को करने के उद्देश्य को अवश्य समझ लेता है।

जॉन ड्यूबी का कथन अक्षरशः सत्य है "उद्देश्य सहित कार्यकरण ही कुशलता या बुद्धिमानी पूर्वक कार्य करता है।" कार्य करने का अगर उद्देश्य निश्चित कर लिया जाय तो कार्य अत्यन्त आसान हो जाता है। और लगभग आधी सफलता हासिल हो जाती है।

हमारी शिक्षा का मूल उद्देश्य परम्पराओं से मुक्त होना, रूढ़िवादिता को समाप्त करना है। हमें ऐसी स्त्री शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये जहाँ स्त्री के भीतर आनंद के झरने प्रवाहित होने लगें, ध्यान से, योग से हम उनमें जीवन के सही लक्ष्य को पाने में सहयोग करें।

जब तक लक्ष्य न पूरा होगा, जब तक पग की गति न रुकेगी। आज कहे चाहे जो दुनिया, कल को बिना झुके न रुकेगी।

अतः हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि किसी कार्य को सफल बनाने के लिये उद्देश्य का निर्धारण और उद्देश्यों की गुणवत्ता भी आवश्यक होती है।

अध्ययन की परिकल्पना :

1. स्त्री को पुरानी रूढ़िवादिता से मुक्त कराना।
2. स्त्री को दार्शनिक शिक्षा प्रदान करना।
3. स्त्री को चरित्रवान व व्यवहार कुशल बनाना।
4. स्त्री को सफल व स्वस्थ नागरिक बनाना।

समस्या का सीमांकन :

शोधकर्ता ने अपने शोध कार्य की समस्या, उसके समाधान के लिये उसके स्वरूप को किसी हद तक सीमाबद्ध करके शोधकार्य को पूरा करने के लिये प्रयास प्रारंभ किया है।

आचार्य श्री रजनीश एक अद्भुत विद्वान हैं। धर्म, समाज और राजनीति पर उनकी पैनी नजर सदैव ही रही है। अतः उन्होंने स्त्रियों पर विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने समाज के कल्याण के लिये समस्त प्रकार के पहलुओं पर चर्चा की है।

उनके द्वारा कहे गये प्रवचनों की पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकायें पं. दीनदयाल उपाध्याय स्वामी विवेकानंद आदि विचारकों की पुस्तकों तथा समाचार पत्रों की सहायता से उनके स्त्री शिक्षा तथा ओशों के विचारों की महती आवश्यकता सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

शोध विधि :

शोधकर्ता ने इस शोध कार्य में ऐतिहासिक शोध विधि व सर्वेक्षण शोध विधि का प्रयोग किया है।

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण :

ओशो ने कहा कि नारी का अब तक कोई व्यक्तित्व नहीं रहा है और पुरुष ने उसके व्यक्तित्व को मिटाने की भरसक कोशिश की है। हजारों वर्षों तक नारी को शिक्षा नहीं दी। सिर्फ इसलिये की शिक्षित होते ही वह अपने पैरों पर खड़ी होने का प्रयास करेगी। पैर के नीचे से जमीन खींचनी हो तो शिक्षा मत

दो। अगर शिक्षा दी जाये तो व्यक्ति पंगु हो जाता है और उस समाज में जहां शिक्षित की गति होगी, नारी कोई गति न कर पायेगी इसलिये नारी को शिक्षित होने से वर्जित रखा।

लेकिन अशिक्षित नारी का मतलब अशिक्षित माँ, अशिक्षित बेटा, अशिक्षित बहन, अशिक्षित पत्नी, अशिक्षित प्रेमिका नारी को अशिक्षित रखने का अर्थ क्या होगा कि जीवन के सब रास्तों पर अशिक्षित नारी खड़ी हो जायेगी और शिक्षित पुरुष और अशिक्षित नारी के बीच इतना बड़ा फासला हो जायेगा कि उसके बीच ताल-मेल बैठाना मुश्किल है। इसलिये नारी की स्थिति एक दासी की तरह हो गयी और पुरुष मालिक बन गया, पति का मतलब मालिक होता है। स्वामी का मतलब भी मालिक होता है और हजारों साल से स्त्री पति को स्वामी कह रही है अपने पत्रों में आपकी दासी लिखकर दस्तखत कर रही है।

ओशो ने कहा है कि यह जानकर आपको हैरानी होगी कि अगर कोई स्त्री पुरुषों के गुणों से आगे हो जाये तो उसे जॉन आफ आर्क या रानी लक्ष्मीबाई बहुत बहादुर, बहुत सम्मान योग्य स्त्री है। लेकिन क्या कभी आपने यह सुना है कि कोई पुरुष स्त्रियों के गुणों में विकसित हो जाये तो कभी उसका सम्मान हुआ था? अगर कोई पुरुष स्त्रियों जैसा प्रतीत हो तो उसका अपमान होगा और कोई स्त्री-पुरुष हो जाय तो सम्मान होगा और चौराहे में उसकी मूर्तियाँ खड़ी की जायेंगी। पुरुषों ने अपने गुणों को अनिवार्य रूप से स्वीकार कर लिया है। और स्त्रियों ने भी उस पर स्वीकृति दे दी यह बहुत आश्चर्य की बात है कि स्त्रियों ने कभी सोचा भी नहीं कि उनके व्यक्तित्व की भी कोई गरिमा अपना कोई स्थान, अपनी कोई प्रतिष्ठा है। इन तीन चार हजार वर्षों की गुलामी के बाद एक विद्रोह एक प्रतिक्रिया पैदा होना शुरू हुआ और स्त्रियों ने यह घोषणा करना शुरू कर दी की हम पुरुषों के समान हैं और बराबर का अधिकार मांगती हैं। लेकिन फिर दुबारा भूल हुई जा रही है जिसका आपको शायद पता नहीं उस भूल के संबंध में भी समझ लेना जरूरी है।

ओशो ने स्पष्ट अक्षरों में कहा है कि अतीत के लोग ना समझ नहीं थे, पुरुषों के लिये उन्होंने व्यायाम खोजा और स्त्रियों के लिये नृत्य खोजा, कोई अर्थ था, कोई कारण था। नृत्य में एक रिदम है, नृत्य में एक लययुक्तता है जो स्त्रियों के शरीर को हार्मोन्स को उसके रासायनिक तत्वों को एक और तरह की गतिमयता और संगीत से भरते हैं। कवायद बात दूसरी है कवायद के अर्थ और प्रयोजन दूसरे हैं। कवायद मनुष्य के ऊपर जो क्रोध है उसे सजग करती है शरीर के अंदर जो लड़ने की प्रवृत्ति है उसे तीव्र करती है।

कवायद अगर स्त्रियों को सिखाई गयी तो घर नष्ट हो जाने वाले हैं। हम उनको पूरे शरीर को नुकसान पहुँचा रहे हैं जिस मुत्कों में स्त्रियों को पुरुषों जैसी सौन्दर्य शिक्षा दी जाती है वहाँ जवान लड़कियों के होठों पर मूँछ आनी शुरू हो जाती है यह बहुत आसान है कठिन नहीं। अगर ठीक पुरुषों जैसी कवायद करवाई जाय लड़कियों को तो उनके होठों पर मुँहों के बाल आने शुरू हो जायेंगे। शायद हमें इस बात का विचार नहीं है कि जीवन की छोटी-छोटी बातें सारे जीवन को प्रभावित करती हैं।

पूरब के लोग ढीले कपड़े पहनते हैं। पश्चिम के लोग चुस्त कपड़े पहनते हैं चुस्त कपड़े आदमी को लड़ने को तत्पर करते हैं ढीले कपड़े आदमी को शांत करते हैं। मौन करते हैं आज दुनिया में किन्हीं साधुओं ने परम्परागत चुस्त कपड़े नहीं पहने। यह ऐसे ही व्यर्थ नहीं था। ढीले कपड़े व्यक्ति को एक शिथिलता और शुस्ती देते हैं। इसलिये हम सैनिकों और नौकरों को चुस्त कपड़े नहीं पहनते हैं। अगर आप चुस्त कपड़े पहने हुये सीढ़ियाँ चढ़ते हो तो आप दो सीढ़ियाँ एक साथ छलांग लगा जायेंगे आपको पता भी नहीं चलेगा कि कपड़े आपको दो सीढ़ियाँ एक साथ चढ़वा रहे हैं। अगर आप ढीले कपड़े पहने

हुये हैं तो आप एक गरिमा से एक डिगिनिटी से सीढ़ियों को पार करेंगे और चढ़ेंगे।

ओशो का मानना है कि अगर कपड़े प्रभावित करते हैं तो शिक्षा तो प्रभावित करेगी ही मन की ट्रेनिंग जो हम सीखते हैं। वह हमारे सारे व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। हम जो विचार करते हैं वैसे ही हो जाते हैं। हमें क्या सिखाया जा रहा है। और क्या विचार करने को हमें सामग्री दी जा रही है। स्त्रियों को कौन सी बातें सिखाई जा रही हैं। वह सारी बातें गणित में जो आदमी दीक्षित हो रहा है। उसकी जीवन के प्रति पकड़ दूसरी होती है। संगीत के प्रति पकड़ दूसरी होती है। और छोटी सी पकड़ में सब कुछ भिन्न हो जाता है।

स्त्रियों की शिक्षा एकदम भिन्न होनी चाहिये ताकि उनकी दृष्टि भिन्न हो वह जीवन को किन्ही और ढंगों में सोचने को समर्थ हो सकें लेकिन यह नहीं हो रहा है। हम उन्हें उन्हीं दृष्टियों में, उन्हीं दर्शनों, उन्हीं विचारों में दीक्षित कर रहे हैं। जिनमें पुरुष दीक्षित है और पुरुष ने जो दुनिया बनाई है। वह गलत सिद्ध हो चुकी है। इस बात को कहने की जरूरत नहीं है।

सुझाव :

1. स्त्री शिक्षा से शिक्षित पुरुष और अशिक्षित स्त्री का फासला कम हो जायेगा, जिससे देश का विकास व तरक्की होगी।
2. स्त्रियों को संस्कृति की शिक्षा देना चाहिये जो उस देश की संस्कृति व भारतीकरण हो।
3. राष्ट्रीय समृद्धि के लिये स्त्रियों को शिक्षा में अपनी भारतीय राष्ट्रीय राजनीति का समावेश होना चाहिये।
4. स्त्रियों को नैतिक शिक्षा, सामाजिक शिक्षा व सांस्कृतिक शिक्षा देना चाहिये जिससे परिवार व समाज का कल्याण हो सकें।
5. स्त्रियों को संगीत शिक्षा, पाककला, शारीरिक शिक्षा व साइन्स शिक्षा देना चाहिये जिससे वह अपना व अपने परिवार का विकास कर सकें।

शोधकर्ता ने उपरोक्त अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि हजारों साल से स्त्री व पुरुष के बीच संघर्ष है। जो दिन रात चल रहा है। स्त्री और पुरुष के बीच जो हमने अब तक व्यवस्था की है। वह गलत है अगर स्त्री पुरुष के बीच शांतिपूर्ण, प्रेमपूर्ण, मैत्रीपूर्ण व्यवस्था लानी है तो पहली जरूरत है। वह स्त्री को हमें पूरी तरह शिक्षित करना पड़ेगा। तभी नारी शिक्षा का असली मतलब निकलेगा। वह उनके विचार थे जिनको शोधकर्ता ने सबल पक्ष में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

संदर्भ सूची

1. ओशो आचार्य रजनीश	:	शिक्षा में क्रांति। शिक्षा और जागरण। शिक्षा और विद्रोह। नारी और क्रांति। नई क्रांति की रूपरेखा।
2. संपादक नरेन्द्र बोधिसत्य	:	नारी और क्रांति।
3. पत्रिकायें	:	ओशो टाइम्स-नये मनुष्य का जन्म
4. तोमर लज्जाराम	:	भारतीय शिक्षा के मूल तंत्र।



लोकतांत्रिक शिक्षा व्यवस्था में बालकों में मूल्य संवर्द्धन शिक्षकों की भूमिका

अजय कुमार श्रीवास्तव
प्रवक्ता, बंशीधर महाविद्यालय, उरई

इस सृष्टि में मनुष्य एक भविष्य दृष्टा प्राणी है जो आदिकाल से ही वर्तमान के साथ-साथ भविष्य के प्रति भी चिंतन करता रहता है तथा वर्तमान के साथ ही भविष्य को भी संवारने के लिये प्रयत्नशील रहता है।

विज्ञान ने मानवों के सुखपूर्वक जीवनयापन हेतु अनेकों सुविधायें प्रदान की हैं। विज्ञान से शिक्षा का क्षेत्र भी अछूता नहीं है। यह विज्ञान की ही देन है कि आज मुक्त अधिगम प्रणाली शिक्षा के एक शैक्षिक अभिकरण के रूप में औपचारिक शिक्षा के समान्तर सशक्त रूप में चल रही है। कम्प्यूटर, इन्टरनेट, ई कामर्स, ई-यूनीवर्सिटी, संचार प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप ज्ञान का असीमित विस्फोट हो रहा है। वर्तमान समय में विकासशील देश परिवर्तन की इस श्रृंखला को आत्मसात करने हेतु साथ ही साथ भविष्य को सुखमय बनाने हेतु सतत प्रयत्नशील है।

प्रत्येक देश के शैक्षिक नीति-निर्माता जब शिक्षा की व्यवस्था को मूर्तरूप प्रदान करते हैं तो वे वर्तमान के साथ-साथ भविष्यगत पहलुओं का भी ध्यान रखते हैं तथा उसी के आधार पर शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्य शिक्षण विधियों का निश्चय करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के खण्ड 12 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि –

“भारत में शिक्षा का भावी स्वरूप इतना पेचीदा है कि उसके बारे में स्पष्ट रूपरेखा बना सकना कठिन है फिर भी हमारी उन परम्पराओं को देखते हुये जिन्होंने हमेशा बौद्धिक, चारित्रिक, मूल्यपरक, आध्यात्मिक उपलब्धियों को महत्व दिया है इसमें किसी तरह का शक नहीं है कि हम अपने उद्देश्यों को हासिल करने में कामयाब होंगे।”

वर्तमान समय में व्यक्ति भौतिकता, धन की लालसा, व्यवसायीकरण तथा नगरीय परिवेश में इतना घुलमिल गया है कि उसे सहयोग, प्रेम, सदभाव, विनम्रता, दया, परोपकार, परमार्थ सेवा, दान आदि मानवीय मूल्यों का तनिक भी एहसास नहीं रहा है। आज मानव मानव के प्रति, पिता-पुत्र के प्रति, गुरु-शिष्य के प्रति तनिक भी आत्मीय नहीं है जिसके फलस्वरूप चारों ओर अराजकता उपद्रव, बैर, ईर्ष्या, दुख दिखाई पड़ रहा है। शिक्षा केवल व्यवसायिक, डाक्टर, इंजीनियर आदि तैयार कर रही है। आज शिक्षा के द्वारा एक नैतिकता, सदचरित्रता, धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से पूर्ण व्यक्ति का निर्माण नहीं हो पा रहा है। समाजोत्थान का मार्ग कुंठित होता जा रहा है। शिक्षा को मूल्यपरक बनाने की मांग दिन प्रतिदिन उठती जा रही है।

हमारा देश भारत लोकतंत्रीय मूल्यों का पोषक है। स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, न्याय, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता उसके प्राण हैं किन्तु संस्कृतिहीनता, अलगाववाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद एवं अन्य विघटनकारी शक्तियों से हमारा लोकतंत्र खतरे में दिखाई पड़ रहा है इसलिये इस स्थिति के निराकरण

के लिये मूल्य शिक्षा सम्बल प्रदान करती है।

मूल्य की अवधारणा :-

- (क) 'मूल्य' धर्म एवं दर्शन के उद्देश्य को प्रतिबिंबित करते हैं— जिनका लक्ष्य है लोगों को बेहतर जीवन जीने के लिये मार्गदर्शन देना। मूल्य जीवन की सुन्दरता एवं वरदान है। ये सभ्यता के आवश्यक तत्व तथा हमारे चरित्र के द्योतक हैं। हमारी श्रेष्ठ नैतिकता का निर्धारण मूल्यों के द्वारा ही होता है।
- (ख) 'मूल्य' जीवन की अमूल्य निधि हैं जो हमें सम्पन्न बनाते हैं। इनसे आत्मा-परमात्मा के निकट आने के योग्य बन जाती है और जीवन वास्तविक तथा सार्थक बन जाता है। मूल्य हमें निर्बंधन तथा स्वावलम्बी बनाते हैं एवं बाहरी समस्याओं से हमारी रक्षा करते हैं।
- (ग) 'मूल्य' मनुष्य के सिद्धांत अथवा व्यवहार के स्तर हैं। जीवन में क्या महत्वपूर्ण है इस बारे में मनुष्य का निर्णय 'मूल्य' कहलाता है। मूल्य जीवन में स्वतः लागू किये गये नियम अथवा वे आचार संहितायें हैं जो जीवन यात्रा को स्वच्छ विवेक के साथ सम्पन्न करने के लिये लागू किये जाते हैं। सभी श्रेष्ठ मूल्य (सत्यता, प्रेम, सहयोग, शान्ति, दया, विनम्रता इत्यादि) हमारे मन, विचारों एवं आध्यात्मिक स्वरूप में निहित होते हैं, न कि हमारे भौतिक स्वरूप में।

मूल्य शिक्षा को दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है वे इस प्रकार हैं।

(अ) मूल्यों की शिक्षा (Education of Values)

(ब) मूल्यपरक शिक्षा (Value Oriented Education)

प्रथम के अन्तर्गत हम नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा इतिहास, भूगोल, जीवशास्त्र, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र आदि की शिक्षा की भांति एक स्वतंत्र विषय के रूप में देना चाहते हैं।

मूल्यपरक या मूल्य समाहित शिक्षा में मनोवैज्ञानिक ढंग से मूल्य समाहित करके उक्त मूल्य के विकास पर बल देते हैं। आज के भारतीय संदर्भ में मूल्य शिक्षा को दूसरे अर्थ के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये।²

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता :-

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता के संदर्भ में निम्नलिखित कुछ महानुभावों के प्रमुख विचार हैं :-

- (क) डॉ० के० चिदानंद गौड़ "आज के इस कौतुक भरे कम्प्यूटर संसार में रहते हुये भी जीवन को उद्देश्यपूर्ण एवं सार्थक बनाने के लिये हमें आध्यात्मिक मूल्यों को फिर से धारण करना अति आवश्यक है।
- (ख) मोहम्मद बशीर "सम्पूर्ण संसार मूल्यों के हास के भयंकर दौर से गुजर रहा है। घातक हथियारों, नशीले पदार्थों एवं देह व्यापार जैसे तीन प्रकार के व्यापारों ने समाज की गति को रोक लिया है। यह एक अत्यंत ही हानिकारक स्थिति है। मूल्य हास को इस स्थिति से निकालने के लिये वर्तमान पीढ़ी को आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देना अत्यंत आवश्यक है।
- (ग) ब्रह्मकुमार जगदीशचन्द्र हसीजा "मूल्य शिक्षा की अवहेलना करना भयंकर आपदा को निमंत्रण देने

जैसा है। अगर मूल्य शिक्षा के लिये अभी उचित कदम नहीं उठाये गये तो जल्दी ही सभ्य समाज जंगल के कानून द्वारा संचालित किये जायेंगे।

“यूनेस्को द्वारा गठित जैक्यूस डेलेर्स की रिपोर्ट ने शिक्षा के चार स्तम्भों की जानकारी दी।

1. जानने के लिये शिक्षा।
2. करने के लिये शिक्षा।
3. बनने के लिये शिक्षा।
4. एक साथ जीने के लिये शिक्षा।

प्रथम के लिये शैक्षणिक योग्यता आवश्यक है। द्वितीय के लिये कार्यकुशलता आवश्यक है। जबकि तृतीय एवं चतुर्थ के लिये मूल्यों की अवधारणा आवश्यक है।³ निम्नोक्त कुछ कारण हैं जिनके लिये मूल्य शिक्षा की महती आवश्यकता है—

- ◆ भ्रष्टाचार एवं अनैतिक कार्य
- ◆ मूल्यविहीन विज्ञान एवं तकनीक
- ◆ हिंसा का बढ़ता प्रयोग
- ◆ मादक द्रव्यों का बढ़ता हुआ प्रयोग
- ◆ प्रत्येक शैक्षिक स्तर पर मूल्य शिक्षा का अभाव।
- ◆ लोक कथाओं द्वारा अपमूल्यन।

शिक्षा में मूल्य :

मूल्यों के बिना कोई भी शैक्षणिक संस्थान अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता है। हर उम्र के विद्यार्थियों के शिक्षण में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का प्रयोग करके मूल्य शिक्षा का विकास सरलता से किया जा सकता है।

फरवरी 1999 में भारतीय संसद में जी0एस0बी0 चव्हाण समिति की रिपोर्ट में सत्य सदाचरण शान्ति, प्रेम और अहिंसा को सार्वभौमिक मूल्यों के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके अलावा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद ने भी 83 मूल्यों की एक विस्तृत सूची प्रकाशित की है।⁴

मूल्य संवर्द्धन और शिक्षक :

अब प्रश्न यह उठता है कि मूल्य तो व्यक्ति अपने समाज की विभिन्न क्रियाओं में भाग लेने से स्वयं ग्रहण करता है इन्हें औपचारिक रूप से सिखाने अथवा विकसित करने की क्या आवश्यकता है? वस्तुतः देखा जाये तो मूल्यों की शिक्षा बच्चे के घर से शुरू होती है। परिवार वह संस्था है जहाँ बालक का समाजीकरण शुरू होता है और वही वह जीवन की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करता है। परिवार का अपनापन उसे शिष्टाचार तथा सदाचार की शिक्षा देता है। परन्तु आज हमारे समाज की व्यवस्था ऐसी होती जा रही है कि संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं और उनका स्थान एकाकी परिवारों ने ले लिया है जहाँ अभिभावक व बच्चे ही होते हैं। कामकाजी अभिभावकों के पास बच्चों को देने के लिये पैसा तो होता है पर समय नहीं होता। वे समय के अभाव की पूर्ति पैसे द्वारा करके अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं फलतः मूल्य संवर्द्धन हेतु अध्यापकों की भूमिका अधिक प्रभावी हो जाती है क्योंकि माता पिता के बाद

बच्चा अपने शिक्षकों के ही सबसे करीब होता है।

मूल्यों का विकास करना एक कठिन कार्य है। यदि अध्यापक छात्रों में मूल्यों का विकास करना चाहते हैं तो इसके लिये सबसे पहली आवश्यकता है कि छात्र-अध्यापकों का कहना मानें और उनकी बताई बातों पर अमल करने की कोशिश करें। फलतः अध्यापकों को छात्रों के साथ अच्छा तारतम्य स्थापित करना होगा। तत्पश्चात एक शिक्षक होने के नाते अपने छात्रों में मूल्यों का विकास करने के लिये शिक्षकों को स्वयं उन मूल्यों पर चलना होगा, जिन मूल्यों को अपनाने की वे अपने छात्रों से अपेक्षा रखते हैं क्योंकि अपने जीवन में मूल्यों का अन्तर्वेशन करने के पश्चात ही उनका प्रगटीकरण सरलतापूर्वक किया जा सकता है और तभी वे मूल्य छात्रों में परावर्तित हो सकेंगे। मूल्यों के प्रति स्वयं आस्थावान रहकर ही विविध पक्षों में छात्रों के लिये मूल्य निर्माण का कार्य किया जा सकता है।

विद्यालयों में मूल्य शिक्षा का विधान अलग विषय अथवा क्रियाओं के रूप में न करके विद्यालयी विषयों एवं पाठ्य सहगामी क्रियाओं के साथ किया जाना चाहिये। बच्चों में उचित मूल्य का विकास हो इसके लिये शिक्षक को अपनी भूमिका का निर्वाहन सचेष्ट रहकर करना चाहिये।

“अध्यापकों के बारे में यह कहा जाता है कि किसी भी बड़े परिवर्तन के लिये इससे अधिक उपयुक्त उपलब्ध वर्ग कोई नहीं हो सकता। शैक्षिक क्षमताओं के साथ-साथ अध्यापकों के उत्तरदायित्वों में अपने व्यवसाय तथा गुणवत्ता के प्रति प्रतिबद्धता लगातार बढ़नी चाहिये। इसी के साथ मानव मूल्यों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता सदा ही समाज की निगाह में रहती है। शिक्षा में नैतिक मूल्यों का स्थान कमजोर हुआ है, यह सर्वविदित है। मूल्यों के सृजन एवं विकास की जिम्मेदारी अध्यापकों की है। अतः प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में मूल्यों की शिक्षा को उचित स्थान देने को प्राथमिकता मिलनी चाहिये।”⁵

मूल्य संवर्द्धन हेतु उपाय :-

अध्यापक द्वारा शिक्षण कार्य में निम्नवत पाठ्य सहगामी क्रियाओं की सहायता से बालकों में मूल्यों का विकास एवं संवर्द्धन सरलता से किया जा सकता है।

1. प्रार्थना सभा का आयोजन करके शिक्षक छात्रों में ऊँच नीच की भावना को समाप्त कर सकता है तथा उनमें सर्वधर्म समभाव, अनुशासन एकाग्रता तथा उत्तम सोच को विकसित कर सकता है।
2. महापुरुषों की जयन्ती मनाने में उनमें छुआछूत की भावना का समापन तथा प्रेम, दया, श्रम की महत्ता सहनशीलता को विकसित किया जा सकता है।
3. कार्यानुभाव तथा खेलकूद द्वारा सहयोग, प्रेम, सहअस्तित्व, सत्याचरण, न्यायप्रियता आदि को विकसित किया जा सकता है।
4. एन0सी0सी0, एन0एस0एस0 रेडक्रास के द्वारा शिक्षक बालकों में निःस्वार्थ सेवा, साहस, स्वच्छता, चरित्र निर्माण एवं अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों को आसानी से विकसित कर सकता है।
5. राष्ट्रीय पर्वों, जनसंचार माध्यमों, सेमिनार, वर्कशाला भ्रमण, कम्प्यूटर, इन्टरनेट की सहायता से संवैधानिक एवं राष्ट्रीय सामाजिक सेवा, प्रकृति संरक्षण, मूल्यद्वन्द्व से मुक्ति आदि को विकसित किया जा सकता है।
6. शैक्षिक तकनीकी के गैर औपचारिक अभिकरणों, सिम्पोजियम, पैनल डिस्कसन, केस स्टडी,

अनुसूचित खेल आदि द्वारा भी चिंतन, निर्णय लेने की क्षमता तथा अन्तर्दृष्टि को आसानी से विकसित किया जा सकता है।

7. शिक्षाप्रद चलचित्रों, नाटकों आदि के माध्यम से भी बालकों में सच्चाई, न्याय, सांस्कृतिक गौरव, त्याग, महानता, देशभक्ति आदि का विकास किया जा सकता है।
8. अपने आसपास की मलिन बस्तियों, पाकों, गाँवों आदि में सफाई करके अनपढ़ बच्चों को पढ़ाकर लोगों में जागरूकता लाई जा सकती है जिससे विद्यार्थियों में जिम्मेदारी की भावना एवं स्वस्थ विचारों को विकसित किया जा सकता है।

उपसंहार :

वर्तमान शिक्षा भौतिक विकास एवं धनोपार्जन पर मुख्य रूप से केन्द्रित है एवं इसके कारण ही समाज में इन दिनों मानवीय मूल्यों एवं नैतिक मूल्यों का सर्वत्र पतन दिखाई दे रहा है। शिक्षा को मूल्य परक समय सापेक्ष विकसित नवाचारों की रूपरेखा को सुनिश्चित करना व्यक्ति केवल अपने देश का ही उपयोग नागरिक नहीं है, अपितु वह विश्व समुदाय का एक सहायक अंग है। इसलिये शिक्षा के द्वारा बच्चों को विश्व का एक उपयोगी नागरिक के रूप में तैयार करने के लिये शिक्षकों की भूमिका अग्रणी है।

गुरुदेव रविन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में— “हमारे शिक्षक जब यह समझने लगेंगे कि हम गुरु के आसन पर बैठे हैं और हमें अपने जीवन द्वारा अपने छात्रों में प्राण फूँकने हैं, अपने ज्ञान द्वारा उनके हृदय में ज्ञान एवं विद्या की ज्योति जगानी है, अपने प्रेम द्वारा बालकों का उद्धार करना है। उनके अमूल्य जीवन का सुधार करना है। उस समय वे सत्य रूप में स्वाभिमान के अधिकारी बन सकेंगे। तब वे ऐसी वस्तु प्रदान करने के लिये तत्पर हो सकेंगे जो बेंची जाने वाली नहीं है, जो मूल्य देकर प्राप्त नहीं हो सकती। उसी समय वे छात्रों के समीप सरकार द्वारा नहीं वरन् धर्म के विधान तथा प्राकृतिक नियम के अनुसार सम्मानित एवं पूज्यनीय बन सकेंगे।⁶

यदि अध्यापक सकारात्मक दृष्टिकोण बनाये रखे व अपनी जिम्मेदारी को समझे तो ऐसे अवसरों की कमी नहीं है जिनका उपयोग करते हुये छात्रों में मूल्यों का विकास बेहतरीन तरीके से किया जा सकता है।

एक चिंगारी कहीं से ढूँढ लाओ दोस्तो।

इस दिये में तेल से भीगी बाती तो है।।

संदर्भ सूची

1. डा0 राजीव मालवीय 2009, शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबंधन, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।
2. पाठक एवं त्यागी ‘शिक्षा के सामान्य सिद्धांत’, पृ0 56
3. मेहेर सुरेश्वर 2011, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्य एवं अध्यात्म की आवश्यकता, भारतीय आधुनिक शिक्षा, जनवरी (NCERT)
4. प्रो0 रमनबिहारी लाल व सुनीता पलोड़ 2011, शैक्षिक चिंतन एवं प्रयोग, आर0 लाल बुक डिपो।
5. राजपूत जगमोहन सिंह ‘जिम्मेदारी से पीछे नहीं हट सकते अध्यापक’, अमर उजाला, 5 सितम्बर 2007
6. पाठक एवं त्यागी ‘शिक्षा के सामान्य सिद्धांत’, पृ0 575
7. दुष्यंत कुमार, ‘साथ में धूप’



प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० राजेश बाबू
प्राचार्य

एस0डी0एस0 महाविद्यालय, ग्वालियर, म.प्र.

बृजवाला शर्मा
प्राचार्य, शिक्षा-विभाग

सर्वधर्म शिक्षा महाविद्यालय, ग्वालियर, म.प्र.

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में मूल्य आज अपशिष्ट पदार्थ बन कर रह गये हैं। मूल्यों में लोगों की आस्था समाप्त होती जा रही है। आज व्यक्ति जितना आधुनिक होता जा रहा है, उतना ही स्वार्थी होता जा रहा है। वर्तमान समय में बढ़ती उपभोक्तावादी विचारधारा, स्वार्थपरता, औद्योगीकरण के कारण मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध टूटता जा रहा है। व्यक्ति अपने स्वार्थ को सिद्ध करने में लगा रहता है। समाज विघटित होता जा रहा है।

आज आध्यात्मिक मूल्य निरर्थक होते जा रहे हैं। देश के सभी व्यवसायों में संलग्न लोग आजकल ये महसूस करने लगे हैं कि सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत जीवन में मूल्य मापदण्ड शिथिल हो गये हैं। घर, बाजार, कार्यालय, मंत्रिमण्डली, सम्मेलन, शिक्षा संस्थान, संसद, विधान परिषद, विधान सभा, राज्य सभा, नगर पालिका, पंचायत व चर्च आदि में मूल्यों के उल्लंघन व नैतिक गिरावट की कोई न कोई बात अवश्य दिखाई देती है। हम अपनी आँखों के सामने गलत कार्यों को देखते रहते हैं।

मूल्यों के विकास के अभाव में मनुष्य व्यक्तिगत रूप से चाहे जितनी सुख-सुविधा के साधन जुटा ले, समृद्धि एवं वैभव अर्जित कर ले। समाज में सुख एवं शान्ति कायम नहीं हो सकती। यही कारण है कि भौतिक दृष्टि से प्रगति के बावजूद देश को अराजकता के दौर से गुजरना पड़ रहा है। शुद्ध स्वार्थों की पूर्ति के लिए क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद जैसे विवादों को बढ़ावा देकर राष्ट्रीयता के भाव को कुण्ठित किया जा रहा है। फलतः अब राष्ट्र की अस्मिता पर प्रश्न चिह्न लगने लगा है। देश के ही नागरिकों द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जा रही हैं जो कहीं से राष्ट्रहित में नहीं हैं। खालिस्तान की माँग, कश्मीर की समस्या, पूर्वोत्तर प्रान्तों की समस्याएँ इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। जनसमस्याओं को लेकर सामाजिक संगठनों पर राजनैतिक दलों द्वारा आन्दोलनों एवं बन्द के आयोजनों के दौरान हिंसा तथा सरकारी एवं सार्वजनिक सम्पत्ति को क्षति पहुँचाने की मानसिकता मूल्यहीनता की स्थिति के परिणाम हैं।

शिक्षाशास्त्रियों का मानना है कि शिक्षा द्वारा लोगों में वांछित मूल्यों का विकास शिक्षा की पुनर्संरचना किये बिना संभव नहीं है। मूल्य शिक्षा हेतु प्राथमिक स्तर अत्यन्त उपयोगी है। परन्तु इस स्तर पर मूल्य शिक्षा को पाठ्यक्रम में स्थान देकर एक नियत कालांश में शिक्षण करके एक अध्यापक को ही उत्तरदायी बनाकर उद्देश्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती। अतः शिक्षा द्वारा लोगों में वर्तमान परिस्थिति के अनुरूप वांछित मूल्यों का विकास, शिक्षा की पुनर्संरचना के बिना संभव नहीं है।

मूल्यों की शिक्षा का प्रावधान शिक्षा के सभी स्तरों पर होना चाहिए, परन्तु प्राथमिक स्तर अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मूल्यों के विकास में सफलता हेतु शिक्षक में मूल्यों का उपस्थित होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक मूल्य विहीन शिक्षक अपने छात्रों को मूल्यों की शिक्षा नहीं दे सकता, क्योंकि मूल्य शिक्षक के व्यवहारों

से परिलक्षित होते हैं। शिक्षक समाज का अभिन्न अंग है। समाज में मूल्यों के ह्रास का प्रभाव शिक्षकों पर भी पड़ा है। अन्य किसी भी व्यवसाय में लगे व्यक्तियों में मूल्यों का ह्रास उतना असन्तोषजनक नहीं सिद्ध होता है जितना अध्यापकों का, क्योंकि अध्यापकों का जीवन केवल वर्तमान को ही नहीं बल्कि भविष्य को भी प्रभावित करता है, उसे राष्ट्र का निर्माता कहा जाता है क्योंकि आज के छात्र ही भावी भविष्य के निर्धारक होते हैं। अतः अध्यापकों में मूल्यों का होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि अध्यापकों में मूल्यों का पतन होगा तो वह देश में अच्छे नागरिकों का निर्माण नहीं कर पायेगा। अतः अध्यापकों में मूल्यों की वर्तमान स्थिति क्या है? यह जानने की आवश्यकता महसूस की गई।

अध्ययन के उद्देश्य – शोधकर्ता ने मुख्य लक्ष्य की प्राप्ति हेतु निम्नलिखित उद्देश्यों को निर्धारित किया है –

1. परिषदीय एवं मान्यता प्राप्त निजी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यों का अध्ययन करना।
 2. लिंगभेद के आधार पर प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यों का अध्ययन करना।
 3. निवास स्थान के आधार पर प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों के मूल्यों का अध्ययन करना।
- अध्ययन की परिकल्पनाएँ – उपरोक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने निम्न शून्य परिकल्पनाएँ विकसित की हैं—

1. परिषदीय एवं मान्यता प्राप्त निजी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यों में कोई अन्तर नहीं है।
2. शिक्षकों के मूल्य लिंगभेद से प्रभावित नहीं हैं।
3. निवास स्थान के आधार पर अध्यापकों के मूल्यों में कोई अन्तर नहीं है।

अध्ययन का क्षेत्र – प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जनपद के अन्तर्गत आने वाले परिषदीय तथा निजी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों तक ही सीमित है।

अध्ययन की विधि एवं प्रक्रिया – प्रस्तुत शोध कार्य सर्वेक्षण विधि तथा ऑकड़ों पर आधारित अध्ययन है। इस अध्ययन में 200 अध्यापकों का समूह ही सम्पूर्ण न्यादर्श है जिसमें से 100 अध्यापक सरकारी, प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत हैं तथा 100 अध्यापक निजी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत हैं।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण – मुरादाबाद जनपद के निजी तथा सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यों का अध्ययन करने के लिए शोधकर्ता ने डॉ० एच० एल० सिंह तथा डॉ० एस० पी० अहलूवालिया द्वारा निर्मित अध्यापक मूल्य मापनी (Teacher Value Inventory) का प्रयोग किया है। प्रस्तुत प्रपत्र शोधकर्ता द्वारा स्वयं अध्यापकों से व्यक्तिगत सम्पर्क कर भरवाया गया है एवं इसका मूल्यांकन मैनुअल में दिये गये निर्देशों के आधार पर किया गया है। प्रस्तुत मूल्य मापनी में 25 प्रश्न हैं जो छः मूल्यों का मापन करते हैं। इस परीक्षण का प्रशासन शिक्षकों के विभिन्न मूल्यों के मापन के सन्दर्भ में किया गया है। इस परीक्षण में निम्न मुख्य मूल्य सम्मिलित हैं – 1. सैद्धान्तिक मूल्य, 2. आर्थिक मूल्य, 3. सौन्दर्यात्मक मूल्य, 4. सामाजिक मूल्य, 5. राजनैतिक मूल्य, एवं 6. धार्मिक मूल्य।

प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियाँ – प्रस्तुत अध्ययन के प्रदत्तों के विश्लेषण एवं विवेचन के लिए निम्न सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है— मध्यमान, मानक विचलन, टी-परीक्षण।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

तालिका संख्या 1 : प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यांकन का अध्ययन

क्र० सं०	मूल्य	शिक्षकों की संख्या (N)	
		मध्यमान	मानक विचलन
1.	सैद्धान्तिक मूल्य,	93.75	11.956
2.	आर्थिक मूल्य,	84.05	11.126
3.	सौन्दर्यात्मक मूल्य,	76.1	13.65
4.	सामाजिक मूल्य,	104.75	14.12
5.	राजनैतिक मूल्य,	76.35	12.57
6.	धार्मिक मूल्य।	91.3	15.38

तालिका संख्या 2 : परिषदीय विद्यालय एवं मान्यता प्राप्त निजी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यांकन का अध्ययन

मूल्य	परिषदीय विद्यालय		मान्यता प्राप्त निजी विद्यालय		टी-मान
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	
सैद्धान्तिक मूल्य	94.6	11.27	91.7	11.23	1.82
आर्थिक मूल्य	84.3	12.20	84.6	11.09	0.18
सौन्दर्यात्मक मूल्य	65.8	14.11	78.4	12.95	6.58*
सामाजिक मूल्य	107.0	14.24	102.7	13.44	2.19*
राजनैतिक मूल्य	75.0	12.6	78.0	12.68	1.68
धार्मिक मूल्य	90.4	16.56	92.5	13.49	0.98

संकेत* = टी मान 0.05 स्तर पर सार्थक

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सौन्दर्यात्मक मूल्य का टी मान 6.58 तथा सामाजिक मूल्य का टी मान 2.2 पाया गया है यह टी मान 198 डी0 एफ0 पर 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः इससे निष्कर्ष निकलता है कि मान्यता प्राप्त निजी प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक परिषदीय अध्यापकों की तुलना में श्रेष्ठ हैं अतः इन मूल्यांकन के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की गयी। शेष मूल्यांकन का टी मान 0.05 सार्थक नहीं है अतः इन मूल्यांकन के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकृत नहीं की गयी, इससे निष्कर्ष निकलता है कि दोनों समूहों के शिक्षकों में समानता है।

तालिका संख्या 3 : लिंगभेद के आधार पर प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यांकन का अध्ययन

मूल्य	पुरुष		महिला		टी-मान
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	
सैद्धान्तिक मूल्य	94.6	13.45	91.7	9.28	1.77
आर्थिक मूल्य	85.3	11.15	83.3	12.05	1.22
सौन्दर्यात्मक मूल्य	76.9	14.33	75.7	12.94	0.62
सामाजिक मूल्य	102.8	16.06	106.7	11.54	1.97
राजनैतिक मूल्य	79.6	12.92	73.3	11.43	3.65*
धार्मिक मूल्य	87.7	12.24	95.2	14.64	3.93*

संकेत* = टी मान 0.01 स्तर पर सार्थक

लिंगभेद के आधार पर शिक्षकों में सैद्धान्तिक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक तथा सामाजिक मूल्य का टी मान 198 डी0 एफ0 पर 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। राजनैतिक तथा धार्मिक मूल्यों का टी मान क्रमशः 3.65 तथा 3.93 है जो 0.01 स्तर पर सार्थक है। अतः राजनैतिक तथा धार्मिक मूल्यों के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकृत कर दी गयी इससे यह निष्कर्ष निकला कि महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा राजनैतिक मूल्यों में कम रुचि रखती हैं जबकि धार्मिक मूल्यों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक रुचि रखती हैं।

तालिका संख्या 4

निवास स्थान के आधार पर प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यों का अध्ययन

मूल्य	शहरी		ग्रामीण		टी-मान
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	
सैद्धान्तिक मूल्य	92.3	10.916	93.4	11.65	0.69
आर्थिक मूल्य	82.6	11.81	86	11.35	2.08*
सौन्दर्यात्मक मूल्य	76.6	14.71	76.2	12.49	0.21
सामाजिक मूल्य	105	14.79	105.7	13.21	0.35
राजनैतिक मूल्य	77.1	12.3	76.0	13.06	0.61
धार्मिक मूल्य	92.5	17.44	90.1	12.19	1.13

संकेत* = टी मान 0.01 स्तर पर सार्थक

उपरोक्त तालिका को देखने से ज्ञात होता है कि ग्रामीण तथा शहरी शिक्षकों में आर्थिक मूल्य का टी मान 2.08 पाया गया। यह टी मान 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। शेष मूल्यों का टी मान 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है अतः अन्य मूल्यों के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकार नहीं की गयी। अतः स्पष्ट है कि ग्रामीण शिक्षकों का आर्थिक मूल्य शहरी शिक्षकों से अधिक है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण अध्यापक शहरी अध्यापकों से आर्थिक रूप से सुदृढ़ हैं।

निष्कर्ष :

उपरोक्त एकत्रित आंकड़ों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए —

1. परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों में सैद्धान्तिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक मूल्य औसत स्तर पर विद्यमान थे। सौन्दर्यात्मक मूल्य निम्न स्तर पर तथा सामाजिक मूल्य उच्च स्तर पर पाये गये।
2. मान्यता प्राप्त निजी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों का अध्ययन करने से ज्ञात हुआ कि इन विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों में सामाजिक मूल्य उच्च स्तर के पाये गये तथा सैद्धान्तिक, आर्थिक एवं धार्मिक मूल्य औसत स्तर पर पाये गये जबकि सौन्दर्यात्मक एवं राजनैतिक मूल्य निम्न स्तर के पाये गये।
3. परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों में सौन्दर्यात्मक मूल्य निम्न स्तर पर पाये गये जबकि मान्यता प्राप्त निजी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों में राजनैतिक मूल्य निम्न स्तर के पाये गये।
4. परिषदीय एवं मान्यता प्राप्त निजी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों में सौन्दर्यात्मक तथा सामाजिक मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया गया जबकि अन्य मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं था। अतः सौन्दर्यात्मक तथा सामाजिक मूल्यों के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकृत कर दी गई जबकि

- अन्य मूल्यों के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकृत नहीं की गई।
5. लिंगभेद के आधार पर अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि पुरुष शिक्षकों में सैद्धान्तिक, आर्थिक तथा धार्मिक मूल्य औसत स्तर के पाये गये जबकि सौन्दर्यात्मक मूल्य तथा राजनैतिक मूल्य निम्न स्तर के पाये गये तथा सामाजिक मूल्य उच्च स्तर पर पाये गये।
 6. महिला शिक्षकों में सैद्धान्तिक, आर्थिक तथा धार्मिक मूल्य औसत स्तर के पाये गये तथा राजनैतिक एवं सौन्दर्यात्मक मूल्य निम्न स्तर के पाये गये।
 7. लिंगभेद के आधार पर शिक्षकों में सैद्धान्तिक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक तथा सामाजिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं था। जबकि राजनैतिक मूल्यों तथा धार्मिक मूल्यों में अन्तर पाया गया। अतः राजनैतिक मूल्य तथा धार्मिक मूल्यों के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना स्वीकृत कर दी गई जबकि अन्य मूल्यों के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकृत कर दी गई।
 8. निवास स्थान के आधार पर शिक्षकों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि शहरी शिक्षकों में सैद्धान्तिक, आर्थिक एवं धार्मिक मूल्य औसत स्तर के पाए गए जबकि सामाजिक मूल्य उच्च स्तर पर विद्यमान थे और सौन्दर्यात्मक एवं राजनैतिक मूल्य निम्न स्तर के पाये गये।
 9. ग्रामीण शिक्षकों में सैद्धान्तिक, आर्थिक तथा धार्मिक मूल्य औसत स्तर के पाए गए जबकि सामाजिक मूल्य उच्च स्तर में विद्यमान पाए गए तथा सौन्दर्यात्मक एवं राजनैतिक मूल्य निम्न स्तर पर पाए गए।
 10. ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों में आर्थिक मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया गया जबकि अन्य मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं था। अतः निवास स्थान के आधार पर आर्थिक मूल्यों के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकृत कर दी गई जबकि अन्य मूल्यों के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकृत कर दी गई।

शैक्षिक निहितार्थ :

प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों के मूल्यों का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के द्वारा यह तथ्य सर्वसम्मति से स्वीकृत है कि शिक्षा एक मूल्याभिमुखी कार्य है। यदि शिक्षक मूल्यवान होंगे तब ही वह अपने छात्रों में मूल्यों का विकास कर सकेंगे इसीलिए शिक्षकों में मूल्यों का विकास होना चाहिए।

इस अध्ययन द्वारा ज्ञात होता है कि सामाजिक मूल्यों के अतिरिक्त अन्य मूल्य शिक्षकों में औसत या निम्न स्तर पर ही विद्यमान हैं अतः शिक्षकों में मूल्यों के विकास की अत्यन्त आवश्यकता है।

एतन्निमित्त अन्य किसी भी व्यवसाय में कार्य कर रहे लोगों की अपेक्षा शिक्षण कार्य में लगे व्यक्तियों में उच्च मूल्यों का होना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षक को राष्ट्र का निर्माता कहा गया है अतः राष्ट्र निर्माण का दायित्व इन पर है, ये अपने दायित्वों का निर्वहन सुचारु रूप से कर सकें।

आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ प्रशिक्षण प्रदान करते समय प्रशिक्षणार्थियों में मूल्यों के विकास का भी प्रयास करें तभी प्राथमिक स्तर जो विद्यार्थियों में मूल्य विकास हेतु सबसे प्रथम सीढ़ी माना जाता है के माध्यम से विद्यार्थियों में मूल्यों के विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

सन्दर्भ सूची

- ◆ बेस्ट जॉन डब्ल्यू-रिसर्च इन एजुकेशन, नई दिल्ली: प्रेंटिस हॉल 1963
- ◆ भार्गव महेश-आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, आगरा : एच0पी0 भार्गव बुक हाउस 2011.
- ◆ भारद्वाज संजीव कुमार-माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाने वाले प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापकों की अभिवृत्ति, मूल्य एवं शिक्षण दक्षता का तुलनात्मक अध्ययन, पी0एच0डी0, डॉ0 भीमराव अम्बेदकर विश्वविद्यालय, आगरा।
- ◆ चौधरी के0 के0-माध्यमिक स्तर पर शिक्षा की पुनर्संरचना : मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में, जौनपुर पूर्वांचल जनरल ऑफ एजुकेशन स्टडीज 1997.
- ◆ कपिल एच0 के0-अनुसंधान विधियों आगरा : हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशन 1995.
- ◆ राय पी0 एन0-अनुसंधान परिचय, आगरा : लक्ष्मी नारायण अग्रवाल 2002.



बी.एड पाठ्यक्रम में अध्ययनत् सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के आकांक्षा स्तर एवं तनाव का तुलनात्मक अध्ययन

प्रो० सीमा द्विवेदी

शिक्षा विभाग, राजीव गांधी कॉलेज, भोपाल (म.प्र.)

शिक्षा और जीवन का सम्बन्ध शाश्वत है जब से सृष्टि है तभी से शिक्षा का अस्तित्व है, और शिक्षा तथा जीवन की अजस्र धारा आदिकाल से बहती चली आ रही है। शिक्षा के कारण ही मनुष्य सृष्टि का ताज कहलाता है। हमारी भारतीय शिक्षा की बात करें तो हमारी भारतीय शिक्षा व्यवस्था का अतीत अत्यन्त गौरवशाली रहा है, यहाँ प्राचीन काल में शिक्षा के महान ऋषियों, देव ऋषियों आचार्यों, ब्राह्मणों और महान गुरुओं का आशीर्वाद रहा इन्होंने महान तपस्या, योग साधना, गहरे चिन्तन और मनन द्वारा जिस शिक्षा व्यवस्था का निरूपण किया है, उसी के कारण भारत दुनियाँ का आध्यात्मिक गुरु माना जाता था।

प्राचीन काल में शिक्षा पर ब्राह्मणों का अधिकार था जो समाज ब्राह्मणों के नजदीक रहा वह शिक्षित हो गया क्षत्रियों ने ब्राह्मणों की सुरक्षा की तथा वैश्य समाज ने उनके रहने खाने का प्रबन्ध किया। अतः दोनों ही समाजों को गुरुओं का ज्ञान आशीर्वाद मिला। शूद्रों का कार्य ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्य समाज की गंदगी साफ करना था, ये उपर्युक्त तीनों समाजों की इच्छाओं और भावनाओं के दास थे। इन पर क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा वैश्य समाज के अधिकारों की कोई सीमा नहीं थी और दासों को शिक्षा लेने का कोई अधिकार नहीं था और यह अशिक्षित रह गये, अतीत में जो घटित होता है उसका प्रभाव वर्तमान पर स्पष्ट दिखाई देता है।

आकांक्षा तथा तनाव एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। संसार का प्रत्येक व्यक्ति सफलता के शिखर पर बैठना चाहता है किन्तु जब वह अपनी वास्तविक कार्यक्षमता, योग्यता परीक्षण किये बगैर ही लक्ष्य का निर्धारण करता है, तो उसकी आकांक्षा और लक्ष्य के मध्य अन्तर अधिक होता है, इसे ही अवास्तविक आकांक्षा स्तर कहा जाता है जो व्यक्ति क्षमता से बहुत ऊपर होता है अर्थात् वह व्यक्ति की योग्यता व क्षमता पर कम बलिक कल्पना पर अधिक आधारित होता है। जब वह व्यक्ति लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाता है तो उसमें समायोजन की क्षमता कमजोर पड़ जाती है और मानसिक स्तर टूटने लगता है जिसके परिणामस्वरूप उसमें तनाव पैदा हो जाता है।

आज के आधुनिक युग में समाज की यह गम्भीर समस्या है तनाव का कारण चाहे जो भी हो यह व्यक्ति के सांवेगिक एवं दैहिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक शोधों के परिणामों के अध्ययन से पता चलता है कि करीब 75 प्रतिशत रोगों का कारण केवल तनाव है यहाँ तक हृदय रोग एवं कैंसर जैसे जानलेवा रोगों में भी तनाव की भूमिका स्थापित हो चुकी है।

मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि बी.एड. स्तर के छात्र/छात्राओं में तनाव अधिक पाया गया क्योंकि स्नातक स्तर से ऊपर आते-आते छात्रों के कंधों पर जिम्मेदारी का बोझ बढ़ने लगता है और वह अपनी सफलता और असफलता के लिये स्वयं को जिम्मेदार ठहराता है। तनाव व

अकांक्षा को पैदा करने में परिवार की सामाजिक, आर्थिक निम्न स्थिति की भूमिका भी महत्वपूर्ण कारक है।

अध्ययन की आवश्यकता :- बी.एड पाठ्यक्रम के प्रशिक्षणार्थी भावी शिक्षक होते हैं, जो विद्यार्थियों का भविष्य संवारते हैं और उनकी क्षमताओं का आंकलन कर उन्हें समुचित आकार देते हैं। ऐसे में यह आवश्यक है कि हमारे भावी शिक्षक तनाव से मुक्त हों, अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप व्यावसायिक उत्तरदायित्व कुशलतापूर्वक निभा सकें भारत के संविधान में सभी नागरिकों की समानता के अधिकार का प्रावधान किया गया है, वर्ग, रंग अथवा जाति के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव पूर्णतः निषेध है। ऐसी स्थिति में शोधार्थी के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि स्वतन्त्रता के 66 वर्षों के बाद क्या सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के आकांक्षा स्तर व तनाव में अन्तर है ? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये शोधार्थी ने प्रस्तुत समस्या को अपने अध्ययन हेतु चयन किया।

समस्या कथन :- बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत् सामान्य जाति तथा अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के आकांक्षा स्तर एवं तनाव का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन के उद्देश्य –

1. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के आकांक्षा स्तर का अध्ययन करना।
2. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के तनाव का अध्ययन करना।
3. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत् सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत् सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के तनाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत् सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के आकांक्षा स्तर पर तनाव का लिंग के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करना।
6. परिकल्पनाएँ –
 1. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
 2. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापकों के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
 3. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापिकाओं के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
 4. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के तनाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
 5. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापकों के तनाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
 6. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापिकाओं के तनाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

7. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राध्यापक एवं छात्राध्यापिकाओं के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
8. बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राध्यापक एवं छात्राध्यापिकाओं के तनाव स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

न्यादर्श चयन —

अध्ययन में न्यादर्श हेतु भोपाल जिले के विभिन्न बी.एड. प्रशिक्षण महाविद्यालय में अध्ययनरत 200 प्रशिक्षणार्थियों (100 छात्राध्यापक तथा 100 छात्राध्यापिकाओं) को यादृच्छिक विधि द्वारा चुना गया।

शोध उपकरण —

प्रस्तुत शोधकार्य हेतु शोधकर्ता द्वारा डॉ. बी.पी. शर्मा एवं कुमारी अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित शैक्षिक आकांक्षा स्तर मापनी (EAS) का प्रयोग किया गया जिसमें कुल 45 पद दिये गये हैं जिसमें किसी एक पद पर सही का निशान अंकित करना होता है। प्रत्येक सही प्रतिक्रिया के लिये एक अंक तथा अन्य के लिये शून्य अंक प्रदान किया जाता है।

परीक्षण की विश्वसनीयता गुणांक परीक्षण पुनः परीक्षण विधि द्वारा ज्ञात किया गया जो कि 0.098 है। तथा परीक्षण की वैधता गुणांक 0.0598 है।

शोधकर्ता द्वारा तनाव का मापन करने हेतु डॉ. अरुण कुमार, आशीष कुमार तथा अर्पणा सिंह द्वारा निर्मित सिंह की पर्सनल स्ट्रेस सोर्स इन्वेन्ट्री (SPSSI) का प्रयोग किया गया।

इसमें कुल 35 प्रश्न हैं प्रत्येक प्रश्न के तीन उत्तर—यदाकदा कभी—कभी तथा बार—बार में से सबसे ज्यादा उपयुक्त उत्तर पर सही का निशान अंकित करना होता है।

प्रश्नावली में यदाकदा के लिये 1 कभी—कभी के लिये 2 तथा बार—बार के लिये 3 अंक प्रदान करना होता है तथा यदि कोई भी प्रतिक्रिया नहीं की गई हो तो शून्य अंक प्रदान किया जाता है।

सांख्यिकीय प्रविधियाँ :—

प्रदत्तों के संकलन के पश्चात् संकलित प्रदत्तों का विश्लेषण करने के लिये तथा t परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं विवेचन —

परिकल्पना क्रमांक 1

बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका क्रमांक 1

क्रमांक	समूह	N	M	SD	t
1.	सामान्य जाति के प्रशिक्षणार्थियों का आकांक्षा स्तर	100	23.67	6.17	5.61
2.	अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों का आकांक्षा स्तर	100	21.09	4.126	

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि t का मान 5.61 है जो कि df 198 के लिये सार्थकता स्तर .05 स्तर पर न्यूनतम मान 1.96 से अधिक है अतः हमारी शून्य परिकल्पना असत्य सिद्ध हुई अर्थात् सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के आकांक्षा स्तर में सार्थक अन्तर है।

परिकल्पना क्रमांक 2

बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापकों के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका क्रमांक 2

क्रमांक	समूह	N	M	SD	T
1.	सामान्य जाति के छात्राध्यापकों का आकांक्षा स्तर	50	25.28	5.45	2.45
2.	अनुसूचित जाति के छात्राध्यापकों का आकांक्षा स्तर	50	23.68	5.12	

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि t का मान 2.45 प्राप्त हुआ है जो कि df 98 के लिये 0.05 स्तर पर t के मान 1.96 से अधिक है अतः अन्तर सार्थक है अतः हमारी शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है अर्थात् बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापकों के आकांक्षा स्तर में सार्थक अन्तर है।

परिकल्पना क्रमांक 3

सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापिकाओं के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका क्रमांक 3

क्रमांक	समूह	N	M	SD	T
1.	सामान्य जाति के छात्राध्यापिकाओं का आकांक्षा स्तर	50	25.82	4.54	3.2
2.	अनुसूचित जाति के छात्राध्यापिकाओं का आकांक्षा स्तर	50	22.81	4.98	

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि t का मान 3.2 प्राप्त हुआ है जो कि df 98 के लिये सार्थकता स्तर 0.05 के लिये t का न्यूनतम मान 1.96 से अधिक है अतः हमारी शून्य परिकल्पना असत्य सिद्ध हुई अर्थात् सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापिकाओं के आकांक्षा स्तर में सार्थक अन्तर है।

परिकल्पना क्रमांक 4

बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के तनाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका क्रमांक 4

क्रमांक	समूह	N	M	SD	T
1.	सामान्य जाति के प्रशिक्षणार्थियों का तनाव	100	61	11.92	3.875
2.	अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों का तनाव	100	67.2	10.73	

उपरोक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि t का मान 3.875 df 198 के लिये सार्थकता स्तर 0.05 पर 1.97 से अधिक है अतः अन्तर सार्थक है हमारी परिकल्पना असत्य सिद्ध हुई अर्थात् सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के तनाव में सार्थक अन्तर है।

परिकल्पना क्रमांक 5

बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापकों के तनाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका क्रमांक 5

क्रमांक	समूह	N	M	SD	T
1.	सामान्य जाति के छात्राध्यापकों का तनाव	50	60.3	9.95	2.03
2.	अनुसूचित जाति के छात्राध्यापकों का तनाव	50	64.3	9.97	

उपरोक्त तालिक से स्पष्ट होता है कि t का मान 2.03 जो कि df 98 के लिये सार्थकता स्तर 0.05 पर t के मान 1.96 से अधिक है अतः हमारी शून्य परिकल्पना असत्य सिद्ध हुई अर्थात् सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापकों के तनाव में सार्थक अन्तर है।

परिकल्पना क्रमांक 6

बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापिकाओं के तनाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका क्रमांक 6

क्रमांक	समूह	N	M	SD	T
1.	सामान्य जाति के छात्राध्यापि- काओं का तनाव	50	59.9	10	2.04
2.	अनुसूचित जाति के छात्राध्यापि- काओं का तनाव	50	63.9	9.7	

उपरोक्त तालिक से स्पष्ट होता है कि t का मान 2.04 जो कि df 98 के लिये सार्थकता स्तर 0.05 पर t के मान 1.96 से अधिक है अतः हमारी शून्य परिकल्पना असत्य सिद्ध हुई अर्थात् बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापिकाओं के तनाव में सार्थक अन्तर है।

परिकल्पना क्रमांक 7

बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राध्यापक एवं छात्राध्यापिकाओं के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका क्रमांक 7

क्रमांक	समूह	N	M	SD	T
1.	छात्राध्यापक	100	22.7	6.7	2.16
2.	छात्राध्यापिकाएँ	100	21.1	5.39	

उपरोक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि t का मान 2.16 है जो कि df 198 के लिये सार्थकता स्तर 0.05 पर t के मान 1.97 से अधिक है अतः अन्तर सार्थक है, हमारी परिकल्पना असत्य सिद्ध होती है अर्थात् बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापक एवं छात्राध्यापिकाओं के आकांक्षा स्तर में सार्थक अन्तर है।

परिकल्पना क्रमांक 8

बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के छात्राध्यापक एवं छात्राध्यापिकाओं के तनाव स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका क्रमांक 8

क्रमांक	समूह	N	M	SD	T
1.	छात्राध्यापक	100	63.2	11.70	1.96
2.	छात्राध्यापिकाएँ	100	60.9	11.92	

उपरोक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि t का मान 1.96 है जो कि df 198 के लिये सार्थकता

स्तर 0.05 पर t के मान 1.96 से कम है अतः हमारी परिकल्पना सत्य सिद्ध हुई अर्थात् बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राध्यापक एवं छात्राध्यापिकाओं के तनाव में सार्थक नहीं अन्तर है।

निष्कर्ष :-

उपरोक्त विवेचना के आधार पर निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि -

- बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के आकांक्षा स्तर में अन्तर है इसका प्रमुख कारण है अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के माता-पिता का कम पढ़ा लिखा होना घर में उचित अनुकूल शैक्षिक वातावरण का आभाव, निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन का आभाव।
- छात्राध्यापिकाओं के सन्दर्भ में आकांक्षा स्तर कम होने का कारण माता-पिता का बेटियों के विषय में संकीर्ण एवं नकारात्मक विचार हैं वे पुत्रियों को पराया धन समझकर उनकी शिक्षा पर ध्यान नहीं देते हैं। सामाजिक-आर्थिक स्थिति निम्न होने के साथ यह परम्परा तथा रूढ़िवादी विचारों का शिकार है इनके घरों का वातावरण शैक्षिक नहीं है।
- बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत सामान्य जाति व अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के तनाव में सार्थक अन्तर है यह तनाव अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों में अधिक पाया गया इसका कारण अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों के माता-पिता का निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर है तनाव जैसी समस्याएँ इन्हें अपने पूर्वजों से विरासत में मिलती हैं।
- छात्राध्यापिकाओं के सन्दर्भ में अनुसूचित जाति की छात्राध्यापिकाओं के माता-पिता पुत्रियों की शिक्षा के विषय में रूढ़िवादी विचार रखते हैं, अशिक्षा, सामाजिक आर्थिक स्थिति भी लड़कियों के प्रति नकारात्मक सोच का कारण है जो कि छात्राध्यापिका के तनाव का कारण बनती है।
- बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत छात्राध्यापकों एवं छात्राध्यापिकाओं के आकांक्षा स्तर सार्थक अन्तर है तथा तनाव में अन्तर सार्थक नहीं है। अध्ययन में आकांक्षा स्तर तथा तनाव छात्राध्यापकों का ज्यादा पाया गया जिसका कारण उन पर रोजगार प्राप्त करने तथा घर का कमाने वाला सदस्य बनने का तनाव अधिक रहता है।

सुझाव -

1. प्रशिक्षण विश्वविद्यालय, महाविद्यालय के शिक्षकों को छात्राध्यापक एवं छात्राध्यापिकाओं से नियमित रूप से बैठक कर उनके लिये अनुकूल वातावरण बनाने तथा समय-समय पर प्रोत्साहित करना चाहिए।
2. प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राचार्यों एवं शिक्षकों की अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिए रहने खाने की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। यदि कोई विद्यार्थी आर्थिक तंगी से ग्रस्त है। विभिन्न योजनाओं के द्वारा उसकी आर्थिक मदद करनी चाहिए जैसे शुल्क प्रतिपूर्ति सरकारी योजना है।
3. निर्देशन एवं परामर्श की विशेष सुविधा होनी चाहिए, विद्यार्थियों के बीमार होने पर मेडिकल सुविधा होनी चाहिए तथा मानसिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये मनोचिकित्सकों की नियुक्ति होनी चाहिए।
4. अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिये चलाए जा रहे कार्यक्रमों की सम्पूर्ण जानकारी उन्हें उपलब्ध कराई जानी चाहिए और प्रशिक्षण महाविद्यालय में इस संदर्भ में सजगता से संबंधित कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए। विद्यार्थियों के संपूर्ण विकास हेतु सेमिनार, कार्यशाला,

गोष्ठियों का आयोजन करना चाहिए।

सन्दर्भ सूची

- ◆ ओम प्रकाश-1997-प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास - विश्व प्रकाशन (न्यू एज इंटरनेशनल प्रा0 लिमिटेड) नई दिल्ली।
- ◆ अदाबाल सुबोध एवं अग्रवाल कन्हैयालाल-1978-शिक्षा सिद्धान्त, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, मद्रास विश्व में सहयोग कम्पनियाँ।
- ◆ अम्बेडकर, बी.आर. - 1975 - अछूत कौन और कैसे, लखनऊ बहुजन कल्याण प्रकाशन
- ◆ अम्बेडकर, बी.आर.-1975 - कांग्रेस एवं गांधी ने अछूतों लिये क्या किया - लखनऊ बहुजन कल्याण प्रकाशन
- ◆ एम.के. गांधी - 2009 - सत्य के साथ मेरा प्रयोग - नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट।
- ◆ कौल लोकेश - 2009 - शैक्षिक अनुसन्धान की कार्य प्रणाली विकास - पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0 नई दिल्ली।
- ◆ किरण चौद - 2006 - शिक्षा का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य हिन्दी माध्यम कार्यान्वय - निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- ◆ कोली लक्ष्मीनारायण, शर्मा वी.के. - 2004 - ज्ञान जगत संरचना एवं विकास तथा रिसर्च मैथडोलॉजी, वाई. के. पब्लिशर्स, संजय, आगरा।
- ◆ गुप्ता, एस.पी. - 2011 - अनुसन्धान संदर्शिका सम्प्रत्यय, कार्य विधि एवं प्रविधि - शारदा पुस्तक भवन यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद।
- ◆ मिश्र, डॉ0 अर्जुन - 1994 - दर्शन की मूल धारा - मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ, भोपाल।
- ◆ शुक्ला आराधना - 2008 - व्यक्तित्व सम्प्रत्यय निर्धारक एवं सिद्धान्त, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- ◆ सिंह अरुण कुमार - 2003 - उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई



प्राथमिक शिक्षा के उन्नयन में सरस्वती शिशु मंदिरों का योगदान

श्रीमती बृजवाला शर्मा

व्याख्याता-शिक्षा विभाग, सर्वधर्म महाविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश

वर्तमान शिक्षा पद्धति अंग्रेजों की देन है। स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात भी शिक्षा के क्षेत्र में वांछित परिवर्तन नहीं हो पाया। सर्वाधिक महत्व के विषय शिक्षा की ओर जो सामाजिक उदासीनता बनी उससे आज जीवन रचना पर भी प्रश्नचिह्न लग गया है। इसलिये आज सभी वर्तमान शिक्षा पद्धति में परिवर्तन लाने की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है।

संसार में ज्ञान की सर्वप्रथम ज्योति भारत में प्रज्ज्वलित हुई और भारत को जगत गुरु की पदवी से विभूषित किया गया। मुसलमान शासकों ने तो यहाँ के शिक्षा केन्द्रों को नष्ट करने का प्रयास किया, अंग्रेजों ने भारतीय युवकों के मन में अपने धर्म, संस्कृति और जीवन मूल्यों के प्रति तिरस्कार की भावना को भड़काकर अपने मानस पुत्र तैयार करने का काम किया जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय जनमानस विनाश के कगार पर खड़ा हुआ है। यदि हम विनाश को रोकना चाहते हैं तो हमें राष्ट्रीय चरित्र और देश के प्रति भक्ति की भावना से ओतप्रोत पाठ्यक्रम को शिक्षा में पिरोना पड़ेगा। यह संतोष का विषय है कि गैर सरकारी क्षेत्र में इस दिशा में कुछ प्रयास भी आरंभ हुये हैं। प्रचलित शिक्षा पद्धति के रूप में भारतीय शिक्षा पद्धति के विकास हेतु चिंतन चल पड़ा है। और प्रयोग प्रारंभ हो गये हैं सरस्वती शिशु मंदिर विद्यालय योजना को आज भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग की प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी है। इन विद्यालयों ने बालक के सुप्त रूप में विद्यमान देवत्व को उदधापित करने और उनके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का बीड़ा उठाया है।

उद्देश्य :-

सरस्वती शिशु मंदिरों में शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य जीवन के उद्देश्यों से भिन्न नहीं है। शिक्षा एक प्रणाली है। जिससे जीवन के उद्देश्यों व मानव की उन अन्तर्निहित शक्तियों एवं गुणों का विकास किया जाता है। जिससे वह जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल होता है। हमें ऐसे विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है जो जीवन निर्माण, मनुष्य निर्माण तथा चरित्र निर्माण में सहायक हो।

अध्ययन की परिकल्पना :-

1. ग्वालियर संभाग क्षेत्र के शैक्षणिक विकास में सरस्वती शिशु मंदिरों की सकारात्मक भूमिका।
2. ग्वालियर संभाग क्षेत्र के सांस्कृतिक विकास में सरस्वती शिशु मंदिरों का योगदान।
3. ग्वालियर संभाग क्षेत्र के सामाजिक चेतना के विकास में सरस्वती शिशु मंदिरों का सहयोग।
4. ग्वालियर संभाग क्षेत्र के छात्रों के चरित्र निर्माण में सरस्वती शिशु मंदिरों का दिशादर्शन।

शोध विधि :-

शोध समस्या की प्रकृति के अनुसार ही शोधकर्ता द्वारा शोध विधि का प्रयोग किया जाना चाहिये विद्वानों ने अनेकों शोध विधियों की खोज की है जिनमें तीन विधियाँ प्रमुख हैं।

1. प्रयोगात्मक शोध विधि।

2. ऐतिहासिक शोध विधि।

3. विवरणात्मक या सर्वेक्षण शोध विधि।

शोधकर्ता अपने शोध में ऐतिहासिक तथा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करेगी।

शोध समस्या का सीमांकन :-

शोध को सीमांकित करते हुये मध्य प्रदेश प्रांत के ग्वालियर संभाग क्षेत्र की शिक्षा की समस्या को लिया है जो स्वतंत्रता के बाद अर्थात् 15 अगस्त 1947 के बाद का है। कक्षा 1 से लेकर कक्षा 5 तक शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा माना गया है। गांधी जी ने इसे "बुनियादी शिक्षा" का नाम दिया है।

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण :-

इस शोध में पाश्चात्य विद्वानों व भारतीय विद्वानों के साहित्य का सर्वेक्षण किया गया है। पाश्चात्य विद्वान जॉन ड्यूवी प्रसिद्ध "प्रयोजनवाद व अनुभववाद के प्रतिनिधि" थे उनके अनुसार, प्रत्येक विश्वास, विचार एवं सिद्धांत की सत्यता का मूल्यांकन उसके परिणाम के अनुसार करना चाहिये। जो व्यावहारिक जीवन में काम दे सकें वे ही सत्य हैं।

ड्यूवी ने शिक्षा एवं दर्शन में कोई अंतर नहीं माना। उन्होंने कहा कि "अपनी सामान्य अवस्था में शिक्षा सिद्धांत ही दर्शन है।"

पाश्चात्य विद्वान जीन जैक्स रूसों एक प्रकृतिवादी विचाराधारा के विद्वान थे। रूसों ने अपनी पुस्तक "एमिल" में लिखा है कि "प्रकृति की प्रत्येक वस्तु सुन्दर होती है और समाज उसे विकृत कर देता है।" रूसों में इस प्रकार की भावनाओं का मूल कारण उनके वैयक्तिक विचार एवं परिस्थितियाँ थीं। समाज के प्रतिकूल व्यवहार के कारण उनकी धारणा व्यक्तिवादी शिक्षा की ओर हो गई।

भारतीय विद्वान स्वामी विवेकानन्द व्यावहारिक वेदान्त के समर्थक थे। हिन्दू धर्म में उनकी गहरी आस्था थी, अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्ट द्वैतवाद, द्वैतावाद, साकार, ईश्वर, निराकार परमात्मा में विश्वास था। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य उस ज्ञानार्जन से है जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक हो। स्वामी जी गरीबों की शिक्षा, नारी शिक्षा, चरित्र निर्माण, राष्ट्र प्रेम, का निर्माण करना चाहते थे।

स्वामी जी ने देश में जनजागरण का मंत्र फूँका। विश्वबन्धुत्व का संदेश दिया। पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने केवल भारतीयों के हृदय पर ही नहीं वरन् विदेशियों के हृदय में भी छाप छोड़ दी जो समयगति के साथ कहीं धूमिल नहीं पड़ सकेगी।

भारतीय विद्वान महर्षि अरविन्द घोष गहन आदर्शवादी व दर्शनशास्त्री तो थे ही वो एक प्रख्यात शिक्षा शास्त्री भी थे। उन्होंने मानव विकास की चेतना की चार अवस्थाएँ (1) चेतना (2) मन (3) प्रथिका और (4) ज्ञान बताई। श्री अरविन्द घोष ने मानव जाति को सर्वोच्च अध्यात्मिक विकास का मार्ग दिखाया। इन्होंने अपने विचार अपने साप्ताहिक पत्र "कार्ययोगिन" में दिये।

श्री अरविन्द घोष शिक्षा से बालक में भौतिक विकास और विशुद्धता, इंद्रिया अनुभूति का विकास, मानसिक विकास, नैतिकता का विकास, चेतना का विकास व अध्यात्मिक विकास करना चाहते थे। जिससे बालक एक अच्छा नागरिक बन सके।

ग्वालियर संभाग में सरस्वती शिशु मंदिर शिक्षा योजना का वर्तमान स्वरूप :- सरस्वती शिशु मंदिर के शैक्षणिक उद्देश्य के तीन साधन हैं (1) विद्यालय (2) परिवार (3) समाज। विद्यालय बालक का बौद्धिक, मानसिक, ज्ञान, तर्क राष्ट्रीय एकता का विकास करना है। इन कार्यों को सम्पन्न कराने के लिये अध्यापन, विभागीय व्यवस्था कार्यक्रमों की रचना व समाज सेवा के प्रकल्प के लिये क्रियाकलाप कराये

जाते हैं। परिवार— बच्चे के विकास में स्नेह, आत्मीयता, सक्रियता व संरक्षण के आधार पर योगदान देते हैं समाज व्यक्तियों का वह समूह है जिसमें पारस्परिक सहयोग योगदान व सांमजस्य जैसी अनेक विशेषतायें विकसित होती रहती हैं। भाषा, साहित्य, कला, सभ्यता संस्कार, वेशभूषा, रहन—सहन, जीवन दृष्टि, संस्कार यह समाज की देन है।

सरस्वती शिशु मंदिर योजना को सफल बनाने में आचार्य, प्रधानाचार्य और प्रबंध समिति मुख्य आधार स्तम्भ हैं। आचार्य अपनी प्रतिभा, क्षमता शैक्षणिक कुशलता तथा पाण्डित्य के साथ विद्यालय में भैया, बहिनों को शिक्षा देकर उनका विकास करते हैं। आचार्य से अधिक महत्वपूर्ण आधार प्रधानाचार्य जी का है। जिनकी सरस्वती शिशु मंदिर के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रबंधकारिणी समिति का कार्य शिक्षण व्यवस्था का प्रबंध करना, आंतरिक प्रशासन संभालना, आचार्यों का विकास करना व अच्छे सहयोगियों को जुटाना है। प्रबंधकारिणी समिति दो अन्य समितियों में विभाजित है (1) प्रांतीय व (2) अखिल भारतीय समिति।

वर्तमान समय में समिति का नाम — सरस्वती विद्या समिति, ग्वालियर जिसका पंजीयन क्रमांक 3415 है। ग्वालियर शिक्षा मण्डल का कोड नम्बर 142052 है। वर्तमान समय में ग्वालियर संभाग में सरस्वती शिशु मंदिर के अंतर्गत 59 स्कूल व ग्वालियर संभाग के ग्रामीण अंचल में 113 स्कूल हैं।

सुझाव :- शोधार्थिनी ने निम्न सुझाव दिये।

1. सरस्वती शिशु मंदिर विद्यालयों और कॉन्वेन्ट विद्यालयों का तुलनात्मक अध्ययन।
2. राष्ट्रीय शिक्षा के विकास में सरस्वती शिशु मंदिर विद्यालयों का वर्तमान समय में योगदान।
3. सरस्वती विद्या मंदिर उ.मा.वि. के छात्र—छात्राओं का शैक्षणिक मापन का तुलनात्मक अध्ययन।

निष्कर्ष :-

इस शोध से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सरस्वती शिशु मंदिर विद्यालय बालकों में सांस्कृतिक सामाजिक, मानसिक, देशभक्ति, चेतना, राष्ट्रीय एकता नैतिक शिक्षा, अच्छे चरित्र निर्माण करने में अपनी अहम भूमिका निभाते हैं। अपने देश की संस्कृति व आध्यात्मिक विकास में स.शि.मन्दिर अपने बालक को अपनी कर्तव्यनिष्ठता से विकास में लगे है। लेकिन आज के समय में इनकी संख्या कम हो रही है जो कि यह हमारा दुर्भाग्य है। उस समय मैकाले ने कहा था कि भारत में बालक दिखने में भारतीय होगा लेकिन उसकी शिक्षा रहन—सहन व चरित्र की शिक्षा हमारी होगी। आज के इस कठिन समय में सरस्वती शिशु मंदिर विद्यालय अपनी लगन व मेहनत से अपने देश की संस्कृति चरित्र शिक्षा, नैतिक शिक्षा, रीति—रिवाज, व अध्यात्म को बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. शिक्षा के साहित्य सिद्धांत—रामबाबू गुप्ता
2. विश्व के महान शिक्षा शास्त्री—डॉ. वैधनाथ प्रसाद वर्मा
3. शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार—भाई योगेन्द्रजीत
4. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक—डॉ. डी.एस. शुक्ला, डॉ. आर.एन. सफाया व डॉ. बी.डी. शैदा।



बाल केन्द्रित शिक्षा : गिजु भाई बधेका के संदर्भ में

डॉ० शुभा पी० काण्डपाल

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी० एड० विभाग

राजकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर — चमोली, उत्तराखण्ड

गांधी जी भारत के हर बच्चे के लिए 'कुछ शिक्षा' जरूरी मानते थे ताकि देश का हर बालक संस्कारवान बन सके। इसी के लिये उन्होंने अपना बुनियादी शिक्षा दर्शन प्रतिपादित किया। गांधी जी के शिक्षा दर्शन को जिन लोगों ने समझा तथा भारत में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में जिन शिक्षाविदों ने मौलिक कार्य किया उनमें गिरिजा शंकर भगवान जी बधेका का नाम अग्रणी है। इनके बारे में स्वयं गांधी जी ने लिखा था, 'गिजुभाई के बारे में कुछ लिखने वाला मैं कौन हूँ। उनके कार्यों ने तो मुझे सदैव मुग्ध किया है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि उनका कार्य आगे बढ़ चलेगा'।

महात्मा गांधी के समकालीन गुजराती शिक्षाविद व गांधीवादी विचारक गिरिजा शंकर भगवान जी बधेका ने (1885–1939) तत्कालीन शिक्षा प्रणाली का विरोध करते हुए प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति पर आधारित शिक्षण विधियों का समर्थन किया। उन्होंने बालकों के अतिरिक्त शिक्षकों एवं अभिभावकों के लिए करीब 200 से अधिक पुस्तकों की रचना की जिनका विषय था कि बालकों को कैसे बेहतर शिक्षा प्रदान की जाये। पेशे से वकील होने के बाद भी 1920 में गिजु भाई ने 'बाल मन्दिर' की स्थापना की तथा वकालत छोड़कर पूरी तरह बालशिक्षा के लिए समर्पित हो गये और इस क्षेत्र में उन्होंने नये-नये प्रयोग किये। बाल शिक्षा के प्रति उनके इस लगाव का कारण मनोवैज्ञानिक था— उन्होंने अपने बचपन में जिस प्रकार शिक्षा प्राप्त की थी उसका अनुभव बहुत यातनापूर्ण था। उन्हें अपने बचपन में शिक्षा प्राप्ति के दौरान डाँट-डपट तथा मारपीट सहन करनी पड़ी थी। इन्हीं कटु अनुभवों ने उन्हें बालशिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा दी।

गिजुभाई ने माण्टेसरी शिक्षा पद्धति का गहन अध्ययन किया था तथा इसके सिद्धान्तों का भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल रूपान्तरण किया। गिजु भाई की मान्यता थी कि बच्चों को कठोर अनुशासन में रखकर अच्छी तरह शिक्षित नहीं किया जा सकता। यदि पूरी स्वतंत्रता देकर तथा उनके साथ दुलार भरा व्यवहार कर उनको शिक्षा दी जाये तो उनके व्यक्तित्व का सही दिशा में विकास हो सकता है। वे बच्चों के साथ स्वयं को सदैव जीवंत महसूस करते थे। शिक्षा के क्षेत्र में अनवरत व्यस्तता गिजुभाई की चरम उपलब्धि थी। वे विविध विषयों के शिक्षण के साथ बच्चों में सत्य, अहिंसा, करुणा, स्नेह, दया, त्याग, परोपकार, ईमानदारी, सद्भाव, मैत्री भाईचारा, परिश्रम, सहयोग, सहकार जैसे मानवीय गुणों के विकास पर बल देते थे। उनके अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक को अच्छा व्यक्ति बनाना है।

भावनगर के दक्षिणामूर्ति बाल मन्दिर को अपनी शैक्षणिक प्रयोगशाला बनाते हुये उन्होंने अनेक शैक्षिक प्रयोग किये। सन् 1916 से 1939 ई० के बीच उन्होंने अपना अधिकांश समय बच्चों के सानिध्य में उन्हें शिक्षा देते हुए बिताया। उन्होंने पाठशाला को बच्चों के लिये एक ऐसे स्थल में बदल दिया जहाँ वे सारे कष्ट भुलाकर प्रेम और उल्लास के साथ मुक्त वातावरण में शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। गिजु भाई का 'दक्षिणामूर्ति बाल मन्दिर' बच्चों के सम्यक् इन्द्रिय विकास, शान्ति की क्रीड़ा, शैक्षिक भ्रमण, शारीरिक कार्य, कथा कहानी श्रवण जैसी प्रवृत्तियों का केन्द्र था जिसमें बच्चे हंसते खेलते मनवांछित गतिविधियों

में भाग लेते हुए शिक्षा प्राप्त करते थे। 1938 में उन्होंने राजकोट में अध्यापन मन्दिर स्थापित किया, 'वरना परिषद' का गठन किया, 'शिक्षण पत्रिका' का सम्पादन किया तथा बालक, शिक्षक तथा माता-पिता के लिए उत्तम कोटि के साहित्य का सृजन किया। गिजुभाई ने शिक्षा के क्षेत्र में जो भी प्रयोग किये उन्हें वे लिपिबद्ध करते थे। इस तरह उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी विपुल साहित्य की रचना की। 23 जून सन् 1939 ई० को गिजुभाई का बम्बई में देहावसान हुआ। शिक्षक प्रशिक्षण को गिजु भाई अनिवार्य मानते थे।

उनके अनुसार 'जिस प्रकार वकील, डॉक्टर या कारीगर अपने व्यवसाय का ज्ञान अर्जित किये बिना वकालत, डॉक्टरी या कारीगरी में काम नहीं कर सकते उसी प्रकार अध्यापक के धन्धे को जाने बिना कोई व्यक्ति यह व्यवसाय नहीं कर सकता। व्यवसाय विशेष में ज्ञान अर्जित किए बिना उसे अंगीकार करने वाला व्यक्ति जिस प्रकार उसमें असफल सिद्ध होता है, उसी प्रकार शिक्षण व्यवसाय का ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति भी उसमें असफल सिद्ध होता है'। गिजु भाई बधेका 'चलते फिरते शिक्षा' (2006)

गिजु भाई के अनुसार शिक्षक इस प्रकार के व्यक्तियों को ही बनना चाहिये जिनमें अग्रलिखित कतिपय गुण हों—

- ☞ शिक्षण कार्य आत्मोन्नति की साधना है (2004) क्योंकि शिक्षण कार्य अति पवित्र है क्योंकि शिक्षक का व्यवसाय अर्थात् समाज के भविष्य को निर्मित करने वाला व्यवसाय।
- ☞ बाल शिक्षक को अपने व्यवसाय की अधिकाधिक तैयारी करनी चाहिए।
- ☞ अगली आवश्यकता उस कार्य की उपासना है अर्थात् शिक्षण के पीछे जो पागल नहीं है वह शिक्षक ही नहीं कहा जा सकता है।
- ☞ शिक्षक की अगली आवश्यकता को उन्होंने प्रेम का नाम दिया है। शिक्षक को प्रेम के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति प्रेम तथा अपना महान धर्म अपना महान कर्तव्य व्यक्त करना है।

अध्यापक बन्धुओं को सुझाव

गिजु भाई बधेका 'शिक्षकों से' (2003)

- ☞ बालकों के प्रति प्रेम व सहानुभूति एक ऐसी अदभुत कुंजी है। जिससे बाल हृदय के कपाट खोले जा सकते हैं।
- ☞ बाल विकास का कार्य अत्यन्त कठिन है। अब बजाय 'कितनी बार कहा' कहने के ऐसे नये उपचार करने चाहिए कि एक बार भी कहने की आवश्यकता न पड़े।
- ☞ एक कटु सत्य यह भी है कि शिक्षक सर्वज्ञ नहीं होता, तब वह बच्चों के समक्ष अपनी श्रेष्ठता प्रामाणित करना जरूरी क्यों समझता है। जन्मजात अध्यापक वह होता है जिसके भीतर का बालक बच्चों की आवाज का तुरन्त उत्तर देता है।
- ☞ बातचीत के द्वारा शिक्षक बालक के हृदय की गहराई में जा सकता है। यह बालक के अवलोकन का एक प्रमुख साधन है। इसी के द्वारा शिक्षक को बालक की मनःस्थिति तथा पसंद-नापसंद का पता चलता है।
- ☞ सजा के दबाव तले बालक की शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। उलटे अपराध करने की प्रवृत्ति उभरने लगती है। इसलिए पहले ही प्रेमपूर्वक बालक से त्रुटि को सुधरवा लेना चाहिए यानि प्रेम शब्द से सजा देना सर्वोत्तम उपाय है।
- ☞ पुरस्कार का लालच भी सजा के समान ही बुरी चीज है यह बच्चों को नैतिक रूप से गिराने वाली चीज है।

- ☞ शिक्षकों को 'अंकज्ञान व अक्षरज्ञान दो' की आवाजें हर्गिज नहीं सुननी चाहिये। बल्कि बालक की स्वाभाविक वृत्ति व शक्ति को जानकर की अंकज्ञान व अक्षर ज्ञान कारना चाहिए।
- ☞ पाठशाला समय का अधिकांश समय बालकों के मनोविनोद के लिये रखा जाना चाहिए क्योंकि सच्चा शिक्षण शरीर, मन व मस्तिष्क के विकास में है। उनके अनुसार पाठशाला बालक के लिए है न कि बालक पाठशाला के लिए।
- ☞ माता-पिता तथा शिक्षकों की नियमित बैठकों की आवश्यकता पर भी गिजु भाई ने अत्यधिक बल दिया है क्योंकि माता-पिता एवं शिक्षक के सक्रिय जुड़ाव के बिना बालक का उचित विकास सम्भव ही नहीं है।

गिजु भाई तत्कालीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था की शोचनीय दशा तथा शिक्षकों के रवैये से दुःखी थे उनकी पीड़ा व क्षोभ उनके द्वारा रचित पुस्तकों में स्पष्ट झलकता है—

इसके बावजूद हमारे यहाँ तो अभी तक अध्यापक व्यवसाय के ज्ञान से रहित शिक्षकों ने ही शिक्षण कार्य किया है, इसलिये हमारे देश में शिक्षा में सुधार नहीं हो पाया है। मात्र अनुभव के आधार पर कोई शिक्षक बन सकता है यह एक भ्रान्ति है, भ्रान्ति ही नहीं यह एक विशैला विचार है, जन्मजात शिक्षक तो इस संसार में बहुत कम होते हैं बल्कि कहें कि सौभाग्य से ही होते हैं।”

गिजु भाई बधेका 'शिक्षकों से' (2003)

शिक्षक रोज अपने आप से पूछें कि “क्या मुझे पढ़ाना आता है? क्या मुझको पाठ्यवस्तु का ज्ञान है? क्या मेरा शिक्षण रोचक एवं सफल है? क्या मुझको भय अथवा मिथ्या लालच देकर लड़कों को वश में रखना पड़ता है? क्या मुझको एक ओर माता-पिताओं की तथा दूसरी ओर अधिकारी वर्ग की खुशामत करनी पड़ती है? क्या मेरा विभाग मुझको अच्छी तरह शिक्षण देने की स्वतंत्रता और अनुकूलता प्रदान करता है? क्या मैं अपने विद्यार्थियों को सच्चा मनुष्य बनाने की शिक्षा देता हूँ?”

गिजु भाई बधेका 'शिक्षकों से' (2003)

शैक्षिक निहितार्थ :

बालक अंततः श्रेष्ठ व्यक्ति बनना चाहता है। माता-पिता तथा शिक्षक दोनों का प्रयत्न भी उसे उसी दिशा में आगे बढ़ने देना है। गलत दिशा में जाने वाले बालक को रोकने और वहाँ से लौटाने में कभी कमी नहीं की जानी चाहिए। बालक की स्वतंत्रता सत्य और सुख की तलाश के निर्मित है। लेकिन जिस तलाश में दुःख प्राप्त हो वह शोध का मार्ग अनुचित है। उसे उस मार्ग की तरफ जाने की छूट देना स्वतंत्रता नहीं स्वच्छन्दता है। ऐसे स्वच्छन्द आचरण वाले बच्चे विनाश के मार्ग पर चल देते हैं। ऐसे समय में उसे सहानुभूति तथा प्रेम के साधनों से उचित मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए और यही एक सच्चे शिक्षक व माता-पिता का वास्तविक धर्म है।

परन्तु वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की कमजोर बुनियाद यह है कि शिक्षक व अभिभावक दोनों ही बच्चों का मनोविज्ञान न तो जानते हैं और न ही जानना चाहते हैं। वे सदैव बच्चों को निर्देशित करते रहते हैं तथा उन्हें स्वतन्त्रता नहीं देते। परन्तु जरा से प्रयास से ही बच्चों को अच्छा व सफल विद्यार्थी भी बनाया जा सकता है तथा उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास भी किया जा सकता है। वर्तमान शैक्षिक परिपेक्ष्य में गिजु भाई के विचार क्रान्तिकारी कहे जा सकते हैं। बाल जगत आज भी उपेक्षित हैं, माता-पिता एवं शिक्षक द्वारा निर्देशित हैं। बालकों की इस मनोदशा एवं शोचनीय अवस्था को गिजु भाई ने एक शताब्दी

से भी अधिक समय पूर्व कितनी बखूबी समझा तथा अपने वकालत के व्यवसाय को छोड़कर सारा जीवन बालकों के लिए समर्पित कर दिया। वह बालक को ईश्वर की सर्वोत्तम कृति मानते थे। 'बाल मन्दिर' के सभी बालक-बालिकाएं उन्हें 'मूछों वाली माँ' कहकर सम्बोधित करते थे। वर्तमान भारतीय सन्दर्भ में भी उनके द्वारा बताए गये सूत्र व साहित्य बाल शिक्षा जगत में आमूल चूल परिवर्तन ला सकते हैं। C.B.S.E, तथा N.C.E.R.T ने भी अब छात्र केन्द्रित शिक्षा पर बल देते हुए पाठ्यक्रम में संशोधन किये हैं। गिजु भाई ने बालकों-अभिभावकों एवं शिक्षकों के लिए जिस साहित्य की रचना की वह निम्नलिखित बिन्दुओं की ओर इंगित करता है –

- ☞ प्रेम से सजा देना सर्वोत्तम है-गिजु भाई ने बालकों हेतु शारीरिक दण्ड को अक्षम्य माना है उनके अनुसार दण्ड देने से बदले की भावना बलवती होती न कि बालक सुधरता है।
- ☞ कहानी कथन विधि-स्वरचित पुस्तक 'कथा कहानी का शास्त्र' (2003) में इस शिक्षण विधि को गिजु भाई ने सबसे अधिक प्रभावी माना है। वर्तमान समय में छोटे बालकों के पाठ्यक्रम में सभी जगह इस विधि का प्रभाव सर्वोत्तम रूप से दिखता है।
- ☞ शिक्षक की भूमिका गाइड के रूप में – बालक अपने आप में पूर्ण व्यक्तित्व है। माण्टेसरी पद्धति से प्रभावित गिजु भाई का मानना था कि छात्र को नई बातें सीखने में सहायता करना, उत्प्रेरक का कार्य करना ही शिक्षक का मुख्य धर्म है।
प्रकृतिवादी दृष्टिकोण – बालक को उसके सर्वांगीण विकास हेतु प्राकृतिक वातावरण में स्वच्छन्द में छोड़ना चाहिए। रुसों की स्पष्ट झलक उनके इस विचार में झलकती है।
- ☞ छात्र केन्द्रित शिक्षा- शिक्षक का कार्य बालकों के प्रत्येक स्तर व मनोदशा को ध्यान में रखकर शिक्षण करना है कि न कि पाठ्यक्रम पूर्ण करना शिक्षक का उद्देश्य होना चाहिए।
- ☞ सकारात्मक अनुशासन- इससे तात्पर्य है कि शिक्षक कहानी या छोटे वृत्तान्तों के द्वारा अथवा स्वयं अपने चरित्र को अनुशासित बनाकर बालकों को सकारात्मक अनुशासन की ओर प्रेरित कर सकता है।
- ☞ शान्ति का शिक्षण- मैडम मारिया माण्टेसरी की भांति गिजु भाई भी बालकों के उत्तम मानसिक स्वास्थ्य हेतु शान्ति शिक्षण के खेल को बालकों के लिए आवश्यक मानते थे।
- ☞ खेल की उपयोगिता-फ्रोबेल की भांति उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य हेतु शिक्षा में खेल-कूद की आवश्यकता पर गिजु भाई ने अत्यधिक बल दिया।
- ☞ शिक्षक-अभिभावक वार्ता- गिजु भाई ने 'माता-पिता के प्रश्न', 'माता-पिता बनना कठिन है' तथा 'माता-पिता से' नामक पुस्तकों में वर्तमान समय के सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु शिक्षक-अभिभावक वार्ता को तत्कालीन समय में आवश्यक माना था। उनका कहना था कि बालक के सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षक व अभिभावक में वार्ता तथा तारम्यता आवश्यक है।
- ☞ प्रयोगात्मक शिक्षा- प्रभावी तरीके से समझाने हेतु गिजु भाई ने अनेक शिक्षण विधियों जैसे- प्रश्नोत्तर, आगमन-निगमन, कालक्रमानुसारी, व्युत्क्रम, त्रिपद, दृश्य-श्रव्य, उन्मेष, पुस्तकालय के उपयोग समेत अनेक साधनों का वर्णन स्वरचित पुस्तक 'प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा पद्धतियां' में किया है।
- ☞ शिक्षक प्रशिक्षण- 'शिक्षकों से' तथा 'ऐसे हो शिक्षक' नामक स्वरचित पुस्तकों में गिजु भाई ने शिक्षण को पवित्र कार्य बताते हुए योग्य व समर्पित युवाओं को संबोधित किया तथा शिक्षक-प्रशिक्षण को शिक्षण की गुणवत्ता बनाये रखने हेतु अति आवश्यक बताया है। यहां गिजु भाई पेस्टालॉजी की भांति शिक्षक प्रशिक्षण का समर्थन करते हैं।

गाँधीवादी शिक्षाविद् गिजुभाई बधेका का शिक्षा के क्षेत्र में वही स्थान है जो समाज सेवा तथा राजनीति के क्षेत्र में गाँधी जी का। गाँधी जी ने भारत के हर बच्चे के लिये अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का सपना देखा था तथा उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान 'बुनियादी शिक्षा का दर्शन स्थापित कर इस दिशा में कार्य आरंभ कर दिया था। ऐसा नहीं है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शिक्षा के प्रचार प्रसार के प्रयत्न नहीं हुए, किन्तु अभी भी भारत की जनसंख्या का अधिकांश भाग निरक्षर है। निजी क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षण संस्थाओं ने शिक्षा का पूरी तरह व्यवसायीकरण कर दिया है तथा अंग्रेजी के प्रभाव के कारण शिक्षा देशज जड़ों से मिटती जा रही है। इन शिक्षा विरोधी परिस्थितियों में जब शिक्षक समुदाय भी कुंठित होता जा रहा है, नये शैक्षिक प्रयत्नों की सख्त आवश्यकता है। बदलती परिस्थितियों के अनुरूप पाठ्यक्रमों को नया आकार दिया जाना है, शिक्षण पद्धतियों का नवोन्मेष किया जाना है एवं शिक्षकों को शिक्षा में हो रहे नये प्रयोगों से अवगत कराना है क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान समय में भारत की आवश्यकताएँ असीमित हैं। शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत लोगों के लिए गिजु भाई के साहित्य का स्थान अमूल्य है। उनके विचारों के आलोक में हम अपनी देशी शिक्षा को नई दिशा दे सकते हैं तथा भारतीय छात्र, शिक्षक, माता-पिता तथा शिक्षाविद् नये भारत का सपना देख सकते हैं।

BIBLIOGRAPHY-

- ❖ Badheka Girija Shankar Bhagwan Ji, Diwa Swapna (2004)Gitanjali Prakashan Jaipur.
- ❖ Badheka Girija Shankar Bhawan Ji, Mata Pita Se, (2004) Gitanjali Prakashan Jaipur.
- ❖ Badheka Girija Shankar Bhagwan Ji, Mata Pita Ki Matha Pacchhi, (2006) Ankit Publication.
- ❖ Badheka Girija Shankar Bhawan Ji, Montessori Shiksha Paddhti, (2001) Ankit Publication.
- ❖ Badheka Girija Shankar Bhagwan Ji, Shikshao Se, (2003) Gitanjali Prakashan Jaipur.
- ❖ Badheka Girija Shankar Bhagwan Ji, Aise Ho Shikshak , (2004) Gitanjali Prakashan Jaipur.
- ❖ Badheka Girija Shankar Bhagwan Ji, Chalthe Phirte Shiksha (2006) Ankit Publication.
- ❖ Child Development and Education Today, (1998) Literature, Art, Media and Materials, Deep and Deep Publisher, New Delhi.
- ❖ Jagannath Mohanty, Foundation of Education (1996).
- ❖ Shukla, C.S. Teacher in Emerging Indian Society, Dhanpat Rai Publishing Co. (P) Ltd., New Delhi (2005)
- ❖ <http://books.google.co.in>
- ❖ <http://www.vandemataram.com/biographies/patriots/gijubhai.html>.
- ❖ <http://www.answer.com>
- ❖ <http://k6educators.about.com>
- ❖ <http://www.learningnet-india.org/publications/revive/vol6/v6-2-8.php>
- ❖ Caswell, L. Hollis and Foshay, A Wellesley, Education in the Elementry School II Edition, American book co., USA (1950)
- ❖ Russel Bertrand, On Education especially in early childhood Routledge (Taylor & Francis Group) London & New York. (1976) reprinted (2003)



आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में लालित्य

डॉ० राधा भारद्वाज

प्रवक्ता—हिन्दी विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फतेहाबाद, आगरा।

मन को 'आर्द्र' करने की क्षमता जिसमें होती है, वही सौन्दर्य है। 'लालित्य' और 'सौन्दर्य' शब्द पर्यायवाची ही प्रतीत होते हैं किन्तु कलाओं के विभाजन के सन्दर्भ में ललित शब्द का प्रयोग किया गया। सौन्दर्य को नैसर्गिक माना गया। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो स्पष्टतः ही मनुष्य निर्मित सौन्दर्य को लालित्य की संज्ञा प्रदान की। उन्होंने दोनों का अन्तर प्रस्तुत करते हुए कहा कि, "एक प्राकृतिक सौन्दर्य, दूसरा मानवीय इच्छा शक्ति का विलास है। दूसरा सौन्दर्य प्रथम द्वारा चलित होता है, पर है मनुष्य के अन्तरतम की अपार इच्छा को रूप देने का प्रयास। एक केवल अनुभूति देकर विरत हो जाता है, दूसरा अनुभूति द्वारा अभिव्यक्त होकर अनुभूति—परम्परा का निर्माण करता है। भाषा में, धर्माचरण में, काव्य में, मूर्ति में, चित्र में अभिव्यक्त मानवीय शक्ति का अनुपम विलास ही वह सौन्दर्य है जिसकी हम मीमांसा करने का संकल्प लेकर चले हैं। अन्य किसी उचित शब्द के अभाव में हम उसे लालित्य कहेंगे। लालित्य अर्थात् प्राकृतिक सौन्दर्य से भिन्न, किन्तु उसके समानान्तर चलने वाला मानवरचित सौन्दर्य।"

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'लालित्य—सिद्धान्त' अंग्रेजी के 'एस्थेटिक्स' का समानार्थक अथवा पर्यायवाची कहा जा सकता है। कालिदास द्वारा प्रस्तुत लालित्य—चेतना को नवीन सन्दर्भ में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रस्तुत किया। सभी कलाओं को एक शास्त्र के रूप में उन्होंने सौन्दर्य—शास्त्र के स्थान पर लालित्य—सिद्धान्त को प्रस्तुत किया।

लालित्य मानवरचित सौन्दर्य है। लालित्य के बिना किसी भी ललित कला की रचना नहीं की जा सकती है। भिन्न कलाओं का तुलनात्मक आंकलन तो लालित्य के माध्यम से किया जा सकता है, किसी एक कला, एक कलाकार अथवा साहित्यकार का मूल्यांकन भी लालित्य—सिद्धान्त के आधार पर सम्भव है।

ललित निबन्ध में रचनाकार कथ्य के अन्तर्निहित सौन्दर्य को उभारता है। निबन्ध में लालित्य लाने के लिए लेखक कई तरीके अपनाता है। वह विषय को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि वह सभी के हृदय को छू जाता है। ललित निबन्धकार अपने निबन्ध को इस प्रकार संजोता है कि उसमें व्यापक मानवीय भाव समाहित हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त श्रेष्ठ निबन्धकार अपने विचारों को मौलिक और प्रभावशाली रूप में रखता है। वह अपने निबन्धों में आत्मीयता का समावेश करता है और पाठक से सदा संवाद स्थापित करने की स्थिति में रहता है।

ललित निबन्धकार शुष्क से शुष्क विषय को भी सरस ढंग से प्रस्तुत करता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध इस दृष्टि से प्रशंसा योग्य हैं। वे सिर्फ कथन के मन्तव्य को ही उजागर करना पर्याप्त नहीं समझते, बल्कि अपनी बात को इस ढंग से कहना चाहते हैं कि उसका सौन्दर्य भी सबको प्रभावित करे।

ललित निबन्धकार निबन्ध में जिन भावों और विचारों को व्यक्त करता है, उसकी प्रस्तुति में उसका व्यक्तित्व भी शामिल होता है। निबन्ध में रचनाकार अपने भावों और विचारों को सीधे पाठक के सामने

रखता है। अतः उसमें लेखकीय व्यक्तित्व अधिक स्पष्ट रूप से उभर कर आता है। विषय चयन से लेकर शैली और भाषा अभिव्यक्ति तक में लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव दिखाई देता है। आचार्य द्विवेदी निबन्ध को वैचारिक गूढ़ता से बोझिल नहीं होने देते और न ही पाठकों को भावनाओं में इस कदर बहाते जाते हैं कि वे अपनी सुधि-बुध ही खो बैठें।

चित्त की निर्बन्ध उड़ानों वाली प्राचीन-साहित्य, भाषा-विज्ञान, ज्योतिष, पुरातत्व इतिहास पुराण, धर्म, दर्शन, तन्त्र, कला और विविध प्राचीन शास्त्रों अथवा जिए जाते सामाजिक जीवन के अंतरंग अन्तरिक्ष में झपट्टा-मार उड़ानों वाली यह विधा (ललित निबन्ध) ऐसा नहीं कि निश्चित उद्देश्यों या लक्ष्यों से रिक्त होती है। उसकी मनोरंजक लगने वाली उड़ानों के भीतर गंभीर अन्वेषण की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से चलती रहती है। यह अन्वेषण मूलतः अपना ही अन्वेषण होता है, आत्मान्वेषण। अपने निस्संग 'स्व' की खोज। इसीलिए अनुरंजन से अन्वेषण की ओर गतिशील इस विधा में सहजता से गम्भीरता की ओर, विकृति से संस्कृति की ओर, और सूचनात्मकता से सम्प्रेषण की ओर पाठकीय चित्त को ले चलने की प्रक्रिया होती है। यह रचनात्मक अन्वेषण मूलतः आन्तरिक होता है। हल्के-फुल्के किस्से अथवा सामान्य घटनाओं की सूचना से आरम्भ ललित निबन्ध में प्रवेश कर और खिंचे-खिंचे क्रमशः आगे बढ़ते कब विचार-चिन्तन की गम्भीर ऊँचाईयों पर पहुँच जाते हैं, पता नहीं चलता है और जब पता चलता है तो मुग्ध, चकित और तृप्त हो जाते हैं। इस तृप्ति में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि होती है, जिसे अपने 'स्व' की उपलब्धि या आत्मोलब्धि कह सकते हैं। 'कुटज' अथवा 'देवदारु' में लेखक हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'मैं' जब अपने 'स्व' का दर्शन करने लगता है तो यह प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं हो जाती है, बल्कि पाठक का 'स्व' भी उसी उद्दाम जिजीविषा से अनुप्रेरित होने लगता है, तब 'कुटज' और 'देवदारु' में पाठक अपना भी स्वरूप अन्वेषित करने लगता है।

इस प्रकार प्रकृति सहित सम्पूर्ण सृष्टि और मनुष्य के बीच एक सूत्रता का बहुत ही सुदृढ़ और रागात्मक सम्बन्ध-सूत्र द्विवेदी जी के ललित निबन्धों में जुड़ता चलता है और इस सूत्र के सहारे 'इतिहास विधाता की लीला' अथवा 'जिजीविषा सहित मनुष्य की जय यात्रा' जैसी वस्तुओं के आयाम बहुत स्पष्टता के साथ उभरते चलते हैं। इन आयामों में निश्चित रूप से आधुनिकता का प्रभाव है। इसीलिए व्यक्तिनिष्ठ ललित निबन्ध के शिल्प-शिखर पर आरुढ़ हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचनाओं में जो भी कल्पना, संवेदना, अनुभूति, चिन्तन, मन्थन, विश्लेषण, तर्क और संश्लेषण का प्रवाह दृष्टिगोचर होता है, उसमें यथार्थ की चोट होती है। वास्तव में ललित निबन्ध की मुद्रा परम्परावादी नहीं, विद्रोही मुद्रा है। वह निबन्ध की परम्परा तोड़कर उछला है। उसमें व्यवस्था, कसाव और अनुशासन नहीं, अव्यवस्था, बिखराव और स्वच्छन्नता होती है। पाठकों के मन को बांधने के लिए वह स्वयं निर्बन्ध और स्वच्छन्द हो जाता है।

वास्तव में बिखराव ललित निबन्ध का महत्वपूर्ण तत्व है। आदि, मध्य और अन्त की क्रमबद्धता और एकसूत्रता से रहित होकर ही उसका लालित्य निखरता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व में कालिदास की चेतना एवं लालित्य, वाणभट्ट का समासगुम्फन, रवीन्द्र की मानवीय दृष्टि एवं कबीर का मस्तमौलापन एक साथ उजागर हुआ है। उन्होंने हिन्दी को सच्चे आत्मव्यंजक निबन्धों से समृद्ध किया है। उनके निबन्धों की भावभूमि व्यापक है। वे अत्यन्त सहजता के साथ जीवन के किसी परिचित सन्दर्भ को लेकर अपने निबन्धों का प्रारम्भ करते

हैं और क्रमशः उस सन्दर्भ को व्यापक सांस्कृतिक भावभूमि के साथ जोड़कर उसके भीतर की संश्लिष्ट एवं जटिल ग्रन्थियों को नवीन आलोक से दीप्त कर लेते हैं। द्विवेदी जी गंभीर से गंभीर तथ्य को सामान्य पाठक के लिए इतना परिचित और सहज बना देते हैं कि वह चकित रह जाता है। वे निबन्ध को 'व्यक्तित्व की स्वाधीन उपज' मानते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि निबन्धकार हजारी प्रसाद द्विवेदी के पीछे हिन्दी विषय के विकास की एक समृद्ध परम्परा है। इस परम्परा के निर्माण में भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग के निबन्धकारों का महत्वपूर्ण योगदान है। इस समृद्ध परम्परा का सच्चा उत्तराधिकारी बनकर परम्परा के बीच अपने निबन्ध साहित्य की अलग पहचान बनाने की विशिष्ट क्षमता के कारण द्विवेदी जी का निबन्धकार व्यक्तित्व आलोचकों और पाठकों के चिन्तन-मनन का विशेष अधिकारी है। 'द्विवेदी जी' ने हिन्दी निबन्ध की समृद्ध परम्परा को आत्मसात ही नहीं किया बल्कि उन्होंने उसे एक नयी दिशा, एक नया आधार भी प्रदान किया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी व्यक्तिव्यंजक अर्थात् ललित निबन्धकारों में शीर्ष स्थान पर है। आचार्य द्विवेदी के निबन्धों में मनुष्य को अदम्य विराट् शक्ति पर गहन आस्था मिलती है। वे मनुष्य की उस सृजनशील शक्ति पर आस्था रखते हैं जो अतीत की नैतिक और सौन्दर्यपरक अनुभूतियों के आधार पर वर्तमान यथार्थ को उच्चतर रूप देने का प्रयत्न करती है।

आचार्य द्विवेदी का लालित्य सिद्धान्त समृष्टि-मानव के आधार पर स्थित है। जिसमें लोकतत्व और मानवता का समावेश हो जाता है। द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति के पोषक हैं। व्यक्तिव्यंजक निबन्धों में शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य का अद्भुत समन्वय मिलता है। वैसे उन्होंने विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक और वर्णनात्मक आदि सभी प्रकार के निबन्धों की रचना की है, किन्तु उन्हें सर्वाधिक सफलता व्यक्तिव्यंजक निबन्धों में मिली है। आम फिर बौरा गये, 'देवदारु', 'शिरीष के फूल', 'नाखून क्यों बढ़ते हैं', 'मेरी जन्मभूमि', तथा 'कुटज' में लालित्य अर्थात् आत्माभिव्यंजक निबन्धों का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप परिलक्षित होता है। इनके निबन्धों में अध्ययन की गम्भीरता और कथावाचक की सरसता के दर्शन एक साथ होते हैं। विषय की दृष्टि से इनके निबन्धों में प्राचीनतम ज्ञान से लेकर अद्यतन अनुभव तक का समन्वय मिलता है। संस्कृति, इतिहास, साहित्य, ज्योतिष तथा धर्म आदि सबका गहन अध्ययन अनायास इन निबन्धों में एकत्र हो गया है।

द्विवेदी जी के निबन्धों में उनकी लालित्य दृष्टि निबन्धों की विषय-वस्तु, भावात्मकता, बौद्धिकता, कल्पना व भाषा-शैली के अंतर्गत स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

ललित निबन्धों की सबसे बड़ी विशेषता निबन्धकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ही होती है। आचार्य द्विवेदी का व्यक्तित्व भारत के प्राचीन और नवीन 'चिन्तन' लालित्य-भावना, सहृदयता, पाण्डित्य, उदारता और मानवता का विराट समन्वय है। यही कारण है कि उनके निबन्धों में उनके इसी व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। उनकी यह निजी विशेषता है कि वे अपने निबन्धों में निजी विचार और निज की विशेषताओं की अभिव्यक्ति करके भी अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करते हैं।

व्यक्तिपरक निबन्धों में तो उनकी निजता पाठक के साथ तादात्म्य स्थापित करने में समर्थ है। कहीं वे अपने बारे में बात करते प्रतीत होते हैं कहीं पाठक से बात करते प्रतीत होते हैं। 'अशोक के फूल में' वे अशोक के फूल को देखकर उदास हो उठते हैं और इस प्रकार अपनी निजता की छाप छोड़ते हैं।

‘शिरीष के फूल’ का तो आरम्भ ही वे व्यक्तिपरक ढंग से करते हैं। इस प्रकार के आरम्भ से निबन्धकार और पाठक के मध्य ममतामय सम्बन्ध स्थापित होता है —

“यहाँ बैठ के यह निबन्ध लिख रहा हूँ उसके आगे—पीछे, दायें—बायें, शिरीष के अनेक पेड़ हैं। जेठ की जलती धूप में, जबकि धरित्री निर्धूम अग्निकुण्ड बनी हुई थी, शिरीष ऊपर से नीचे तक फूलों से लद गया था। कम फूल इस प्रकार की गर्मी में फूल सकने की हिम्मत करते हैं। कर्णिकार आरग्वध (अमलतास) की बात मैं भूल नहीं रहा हूँ।”

‘देवदारु’ में तो आचार्य द्विवेदी का सर्वांग व्यक्तित्व ही मुखरित हुआ है। साहित्यिक और सांस्कृतिक चिन्तन की दृष्टि से तो यह निबन्ध सर्वश्रेष्ठ है ही, निजता की अभिव्यक्ति भी सार्थक और सफल ढंग से हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी पर्वत पर ही बैठकर निबन्ध लिख रहे हैं—

“जहाँ बैठकर लिख रहा हूँ, वहाँ से ऊपर और नीचे पर्वत पृष्ठ पर देवदारु वृक्षों की सोपान—परम्परा सी दीख रही है। कैसी मोहक शोभा है। वृक्ष और भी हैं, लोगों ने नाम भी बताये हैं, पर सब छिप गये हैं। दिखते हैं आकाशचुम्बी देवदारु। ऐसा लगता है कि ऊपर वाले देवदारु वृक्षों की फुनगी पर से लुढ़का दिया जाऊँ तो फुनगियों पर ही लोटता हुआ हजारों फीट तक नीचे जा सकता हूँ अनायास। पर ऐसा लगता ही भर है। भगवान न करे कोई सचमुच लुढ़का दे। हड़डी—पसली चूर हो जायेगी।”

‘आम फिर बौरा गये’ में द्विवेदी जी कहते हैं कि बसन्त पंचमी के आगमन से पूर्व आम मंजरी आ जाने पर उसे हथेली पर रगड़ने से वर्ष भर बिछू के दंश का प्रभाव नहीं रहता है। लेखक ने स्वयं बचपन में अनेक बार अपनी हथेली पर आम्र—मंजरी रगड़ी थी। गत् वर्ष के सम्बन्ध में बात करते हुए वे कहते हैं कि—

“पारसाल भी मैंने बसन्त पंचमी से पहले आम्रमुकुल देखे थे। पर बड़ी जल्दी मुरझा गये। उसी आम को दुबारा फूलना पड़ा। मुझे बड़ा अद्भुत लगा। आगे—आगे क्यों फूलते हो बाबा, जरा रुक के ही फूलते, कौन ऐसी यात्रा बिगड़ी जाती थी। मेरे एक मित्र ने कहा था कि मुझे ऐसा लगता है कि नव—वधू के समान यह बिचारी आम्र—मंजरी जरा सा झांकने बाहर निकली और सामने हमारे जैसे मनहूसों को देखकर लजा गयी। वस्तुतः यह मेरे मित्र की कल्पना थी। अगर सच होती तो मैं कहीं मुँह दिखाने लायक न रहता। पर मुझे इतिहास की बात याद आ गयी। उससे मैं आश्वस्त हुआ, मनहूस कहाने की बदनामी से बच गया। वह इतिहास मनोरंजक है, सुनाता हूँ।”

यहाँ लेखक पाठक से वार्तालाप करता प्रतीत होता है। अपने बारे में और आम्र—मंजरी के बारे में तो कहता ही है, वह आम के वृक्ष से भी बात करता है और पाठक से भी। लेखक के इतिहास ज्ञान की सूचना भी मिल जाती है। इस प्रकार वृक्ष—वनस्पति और पशु—पक्षी आदि में अपने को देखना तथा सब में एक ही आत्मा के दर्शन का भारतीय सर्वात्मवादी सांस्कृतिक प्रभाव भाव—स्तर पर निबन्ध में घुल—मिलकर उसके लालित्य को बढ़ाता है तो वह बहुत मर्मस्पर्शी हो जाता है।

आचार्य द्विवेदी का ललित व्यक्तित्व वृक्ष सम्बन्धी निबन्धों के साथ ही ऋतु सम्बन्धी निबन्धों में भी अभिव्यक्ति पा सका है। उनका मानवतावादी दृष्टिकोण ‘बसन्त आ गया है’, ‘आत्मदान का सन्देशवाहक बसन्त’, ‘प्राचीन भारत के मदनोत्सव’, ‘वर्षाधनपति से घनश्याम तक’, ‘बरसो भी’, ‘सौन्दर्य—सृष्टि’ में प्रकृति की सहायता आदि ऋतु सम्बन्धी निबन्धों में दिखाई देता है। इन निबन्धों में द्विवेदी जी ने विभिन्न ऋतुओं के साथ मानव की उच्च आकांक्षाओं का चित्रण किया है। त्याग, बलिदान और सत्कर्म ही मनुष्य

की विशेषताएँ हैं।

‘बसन्त आ गया है’ में उन्होंने बताया है कि “कमजोरों में भावुकता ज्यादा होती है।”

वे मानव के स्वार्थी रूप की डटकर आलोचना करते हैं—“धरती और आसमान में कुछ सांठ—गांठ है। शायद हमेशा ही रही है। यहाँ भी लोग कहते हैं कि अन्न की कमी नहीं है, पर मिल नहीं रहा है। राशन की दुकानें खाली हैं, चोर बाजार भरे हैं—सब है सिर पर से उड़ रहा है—केवल मिलता नहीं है। अखबारों में पढ़ता हूँ अच्छी व्यवस्था होने जा रही है, आँखें देखती हैं हो नहीं पा रही हैं। आसमान के ग्रह और धरती के ग्रह एक ही समान चुप्पी साधे हैं। क्या होने वाला है ? अकाल की डरावनी छाया बादलों की मादक छाया के समान ही ‘घनघोर’ है। लोगों का कहना है कि किसान त्राहि—त्राहि कर रहे हैं। कौन त्राण करेगा।”

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने पर्व सम्बन्धी निबन्धों की रचना भी की है। ‘आलोक पर्व की ज्योतिर्मय देवी’, ‘अंधकार से जूझना है’, ‘दीपावली’, ‘सामाजिक मंगलेच्छा का प्रतिमापर्व’, ‘नया वर्ष आ गया’ आदि निबन्ध इसी कोटि के हैं। इन निबन्धों में भी उन्होंने मनुष्य की सामाजिक मंगलेच्छा को ही प्रस्तुत किया है—

“चारों ओर जब अभाव का करुण हाहाकार सुनाई दे रहा है, दीपावली अपना मंगल—संदेश लेकर आई है। कई हजार वर्ष पहले मनुष्य ने सामूहिक रूप से समृद्ध होने के समान धधकती लू में यह हरा भी है और भरा भी है। दुर्जन के चित्त से भी अधिक कठोर पाषाण की कारा में रुद्ध अज्ञात जलस्रोत से बरबस रस खींचकर सरस बना हुआ है और मूर्ख के मस्तिष्क से भी अधिक सूने गिरिकान्तर में भी ऐसा मस्त बना है कि ईर्ष्या होती है। कितनी कठिन जीवनी शक्ति है। प्राण ही प्राण को पुलकित करता है, जीवनी शक्ति ही जीवनी शक्ति को प्रेरणा देती है।”

कुटज के समान ही उन्होंने देवदारु के सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। देवदारु नाम महाभारत से भी पुराना है। वह ऊँचा इतना होता है कि पास वाली चोटी से भी ऊपर उठ जाता है मानो वह द्यूलोक को भेदने की लालसा अपने मन में लिये हुए है। उसकी झुकी शाखायें मर्त्यलोक को अभयदान देती हुई लगती हैं। वे कहते हैं—“पेड़ क्या है, किसी सुलझे हुए कवि के चित्त का मूर्तिमान छन्द है—धरती के आकर्षण को अभिभूत करने की जैसी उल्लासकार अभिव्यक्ति है। देवताओं का दुलारा पेड़ नहीं तो यह क्या है ?”

‘शिरीष के फूल’ को देखकर तो वे उसकी मस्ती और फक्कड़पन के आधार पर उसे अवधूत की संज्ञा से अभिषिक्त कर देते हैं। सरसता पाने के लिए अवधूत होना आवश्यक है और उसके सभी गुण शिरीष में मिल जाते हैं—

“एक—एक बार मुझे मालूम होता है कि यह शिरीष एक अद्भुत अवधूत है। दुःख हो या सुख वह हार नहीं मानता। न उधो का लेना न माधो का देना। जब धरती और आसमान जलते रहते हैं, तब भी ये हज़रत न जाने कहाँ से अपना रस खींचते रहते हैं। मौज में आठों याम मस्त रहते हैं। एक वनस्पतिक शास्त्री ने मुझे बताया है कि उस श्रेणी का पेड़ है जो वायुमण्डल से अपना रस खींचता है। जरूर खींचता होगा, नहीं तो भयंकर लू के समय इतने कोमल तन्तुजाल और ऐसे सुकुमार केसर को कैसे उगा सकता था ? अवधूतों के मुँह से ही संसार की सबसे सरस रचनाएँ निकली हैं। कबीर बहुत कुछ इस शिरीष के समान ही थे, मस्त और बेपरवाह पर सरस और मादक। कालिदास भी जरूर अनासक्त योगी रहे होंगे।

शिरीष के फूल फक्कड़ाना मस्ती से ही उपज सकते हैं और 'मेघदूत' का काव्य उसी प्रकार के अनासक्त अनखिल उन्मुक्त हृदय में उमड़ सकता है।"

वृक्षों, ऋतुओं और पर्व सम्बन्धी निबन्धों में तो भावात्मकता के साथ लालित्य के दर्शन होते ही हैं, अन्य निबन्धों में भी उन्होंने जहाँ बन पड़ा वहाँ भावपूर्ण लालित्य का चित्रण किया है। महात्मा गांधी की मृत्यु पर लिखा गया निबन्ध 'वह चला गया' का आरम्भ ही इस प्रकार का है—

" 'वह चला गया', वह ब्रह्मचर्य का विजय-केतन, धर्म का मूर्तिमान विग्रह, संयम की धवल पताका, वैराग्य का प्रसन्न वैभव, सत्य का अवतार, अहिंसा का रूप, प्रेम का आकार, कीर्ति का कैलाश, भक्ति का उल्लास हमारे बीच से चला गया। इतिहास ने इतनी क्षीण काया में इतना बड़ा प्रकाश नहीं देखा था। धरित्री ने इतने अल्प अवकाश में इतना बड़ा प्रकाश नहीं देखा था, मनुष्यता ने इतना बड़ा विजयोल्लास कभी अनुभव नहीं किया था। वह हंसता हुआ आया, रुलाता हुआ चला गया। तपस्या का शुभ हिमालय गल गया, सारा संसार उस शीतल वारिधारा से आर्द्र है। संसार के इस कोने से उस कोने तक एक ही मर्मभेदी आवाज आ रही है—वह चला गया, गान्धी चला गया।"

आचार्य द्विवेदी जी की बौद्धिकता का सौन्दर्य उनके मानवीय-कल्याण की भावना में छिपा हुआ है। वे मानव समानता, मानवीय जिजीविषा और मानव-कल्याण की गाथा गाने वाले साहित्यकार हैं। उनके निबन्धों की यह आत्मा है। आचार्य द्विवेदी जी ने अपने वैयक्तिक और ललित निबन्धों में बौद्धिकता को भी प्रमुखता दी। जैसे—

'अशोक के फूल' में वे मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा को ही केन्द्रीय विचार मानकर निबन्ध का ताना-बाना बुनते हैं। भारतीय संस्कृति में न जाने कितने नवीन तत्वों को स्वीकार किया गया है और पुरानों को फटकार दिया गया। जो भी मानवीय जिजीविषा के उपयुक्त था वह शेष बचा रहा और जो व्यर्थ हो गया था, उसे फेंक दिया गया—

"सभ्यता और संस्कृति का मोह क्षण-भर बाधा उपस्थित करता है, धर्माचार का संस्कार थोड़ी देर तक इस धारा से टक्कर लेता है, पर इस दुर्दम धारा में सब कुछ बह जाता है। जितना कुछ इस जीवनी-शक्ति को समर्थ बनाता है, उतना अंग बन जाता है—बाकी फेंक दिया जाता है।"

'कुटज' में भी बौद्धिकता के दर्शन होते हैं। भयानक गर्मी में पर्वत पर जो पौधे जी रहे हैं और हंस रहे हैं, उन्हें बेहया मानकर अनायास ही कह उठते हैं—

"कभी-कभी जो लोग ऊपर से बेहया दिखते हैं, उनकी जड़ें काफी गहरी पैठी रहती हैं। ये भी पाषाण की छाती फाड़कर न जाने किस अतल गह्वर से अपना भोग्य खींच लाते हैं।"

आचार्य द्विवेदी जी के ललित निबन्धों में 'देवदारु' को सर्वश्रेष्ठ निबन्ध की संज्ञा दी जा सकती है। उसमें तो बौद्धिकता का प्रयोगाधिक्य ही अधिक है। लेखक ने अर्थ की लय का विरोध करते हुए अर्थ के तुक के सिद्धान्त की ही स्थापना कर दी। वे कहते हैं कि "मेरे अन्तर्यामी कहते हैं कि तुक तो अर्थ में रहता है, लय में नहीं रहता।" उनकी दृष्टि में जो सबको लगे, वही अर्थ है, वही तुक है—

"प्रत्येक व्यक्ति के मन में कुछ-न-कुछ लगता रहता है। मजेदार बात यह है कि व्यक्ति का लगना अलग-अलग होता है। 'अ-लग' अर्थात् जो न लगे। लगता है पर नहीं लगता, यह भी कोई तुक की बात हुई ? तुक की बात तो तब होती तब 'अलग' लगना न होता। इसीलिए कहता हूँ कि तुक अर्थ में होता है। जो सबको लगे सो अर्थ, एक को लगे, बाकी को न लगे तो अनर्थ।"

वे तो मानव धर्म का ही पक्ष लेते हैं। 'मानव-धर्म' शीर्षक निबन्ध में वे स्पष्ट कहते हैं कि—

“संसार के श्रेष्ठ मनीषियों ने घोषणा की है कि मनुष्य एक है और इसीलिए मूल मानव-धर्म भी एक ही है। यह इस युग की आवश्यकता नहीं है, किन्तु युग का अनुभूत सत्य है। पहले भी दीर्घ दृष्टि वाले मनीषियों ने इस बात को अपने-अपने ढंग से कहा था, परन्तु आज यह सत्य अधिक व्यापक होकर अनुभूत हुआ है। इसीलिए विभिन्न राष्ट्रीय इकाईयों में पाई जाने वाली संस्कृतियों में और धार्मिक सम्प्रदायों के विश्वासों में समन्वय करने की चर्चा चल पड़ी है।”

इस प्रकार साहित्यिक—सांस्कृतिक, राजनैतिक, राष्ट्रभाषा तथा ज्योतिष निबन्ध स्पष्टतः बौद्धिक निबन्ध ही है। इनकी बौद्धिकता समूह और समज के लिए प्रतिबद्ध है। सामाजिक, राष्ट्रीय—कल्याण से बड़ा मानव कल्याण है। यही उनकी बौद्धिकता का सौन्दर्य है और यही निबन्धों का लालित्य है।

द्विवेदी जी के ललित निबन्धों की एक विशेषता है—काल्पनिकता। जब वे कल्पना की उड़ान भरते हैं तो उनका शब्द और वाक्य—सौन्दर्य की छटा अनुपम हो उठती है। तत्सम शब्दों के प्रयोग का बाहुल्य हो जाता है और वाक्य की लड़ियों के समान बन जाती है। 'रे कवि एक बार सम्भाल' के आरम्भ में ही वे कल्पना की जो उड़ान भरना चाहते हैं, उससे इस बात की पुष्टि होती है—

“आज मेरी कल्पने! उड़ चल पुनः उस देश में, जिसमें मलय—मकरन्द वासित वायु के हिलोल से हैं हिल रहे दुर्ललित कांचन—पद्म्य, इठलाते नवीन मराल—दम्पति परम उत्सुकता सहित अर्द्धोपयुक्त मृणाल—कंबलों से परस्पर को समादृत कर रहे चिक्कन मसृण सुरिन्ध वपु गजशाव लेकर मैं सुगन्धित वारि देता प्यार से ढरका करेणु—विलासिनी के गाल पर, उन्मद—चटुल जल फुक्कुट्टों की पाँति नाना भाँति कल—कल्लोल से करती हृदय अभिभूत.....।”

इसी प्रकार शिवालिक की चर्चा करते हुए वे 'कुटज' में हिमालय की कल्पना शिव के जटा—जूट से करते हैं। हिमालय और समाधिस्थ शिव की क्षमता की कल्पना उन्होंने उचित ही की है—

शिवालिक का क्या अर्थ है? 'शिवालिक' या शिव के जटाजूट का निचला हिस्सा तो नहीं है? लगता तो ऐसा ही है। शिव की लटियाती जटा ही इतनी सूखी, नीरस और कठोर हो सकती है। वैसे अलकनन्दा का स्रोत यहाँ से काफी दूर पर है, लेकिन शिव का अलक दूर—दूर तक छितराया ही रहता होगा।”

ललित निबन्धों की एक विशेषता व्यंग्य तथा हास्य की प्रधानता भी होती है। ललित निबन्धकार अपने निबन्धों में व्यंग्य का सहारा लेता है, उसमें व्यंग्य की धारा नहीं होती, बल्कि बीच—बीच में व्यंग्य के छींटे होते हैं। द्विवेदी जी के निबन्धों में व्यंग्य के दर्शन भी होते हैं। जिससे निबन्धों में लालित्य की झलक भी मिल जाती है :—

आचार्य द्विवेदी शोषण, अत्याचार, अन्याय और असमानता के विरोधी तथा मानवता के पक्षधर लेखक हैं, इसलिए वे व्यंग्य को एक अस्त्र के रूप में प्रयोग करते हैं। 'कुटज' में उन्होंने खुशामदी और चाटुकारों पर अच्छा व्यंग्य किया है।

“कुटज क्या केवल जी रहा है ? वह दूसरे के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश नहीं होता फिरता, अपनी उन्नति के लिए अफसरों को जूता नहीं बांटता फिरता, दूसरों को अपमानित करने के लिए ग्रहों की खुशामद नहीं करता, आत्मोन्नति के हेतु नीलम नहीं धारण करता, अंगूठियों की लड़ी नहीं पहनता, दांत नहीं निपोरता, बगलें नहीं झांकता।”

‘देवदारु’ में द्विवेदी जी ने भूतों की तेईस किस्म गिनाई हैं, जिनमें एक किस्म मुड़कट्टा भी है। उसके मूड़ नहीं होता, छाती पर मशाल की तरह जलती दो आँखें होती हैं और वह घोड़े पर बैठकर चलता है। द्विवेदी जी बुद्धिहीन मानव की इस मुड़कट्टे भूत से ही तुलना करते हुए व्यंग्य करते हैं।

“आज देवदारु के जंगल में बैठा हूँ। लाख-लाख मुड़कट्टों को गुलाम बना सकता हूँ। भूतों में जैसे मुड़कट्टे होते हैं, आदमियों में भी कुछ होते हैं। मस्तक नाम की चीज उनके पास होती ही नहीं, मस्तक ही नहीं तो मस्तिष्क कहाँ।”

इसी के साथ ‘बरसो भी’ निबन्ध में वे राजनैतिक दलों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि “धरती पर कुछ पार्टियाँ गरज रही हैं, बरस नहीं पायेंगी, कुछ नहीं गरज रही हैं, वे भी नहीं बरसेंगी। जनता के लिए दोनों बराबर हैं। जैसे नागनाथ वैसे साँपनाथ।”

द्विवेदी जी का ‘आपने मेरी रचना पढ़ी है’, शुद्ध हास्य व्यंग्यात्मक शैली का निबन्ध है।

आचार्य द्विवेदी अपने निबन्धों के शब्द चयन द्वारा लालित्य उत्पन्न करने की चेष्टा करते हैं। ‘देवदारु’ में तो प्रत्येक वृक्ष के व्यक्तित्व को भिन्न बताते हुए वे शब्दावली प्रयुक्त करते हैं। उससे पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता—

“उनके लिए वह खूसट, वह पाधा, वह सूम, वह झिंझोटा, झबरैला, वह चपरगैगा, वह गदरौना, वह खिटखिता, वह झक्की, वह झुमरैला, वह छोकरा, वह नटखटा, वह चुनमुन, वह बाँकुरा, वह चौरंगी, सब समान है।”

इसी प्रकार ‘कुटज’ में ‘चूसकर’, ‘रगड़कर’, ‘झूमकर’, आदि शब्दों के प्रयोग द्वारा भाषा में लालित्य उपस्थित करते हैं—

“कठोर पाषाण को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अपना भोग्य संग्रह करो, वायुमण्डल को चूसकर, झण्डा-तूफान को रगड़कर, अपना प्राप्त वसूल लो, आकाश को चूमकर, अवकाश की लहरों में झूमकर, उल्लास खींच लो।”

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि आचार्य द्विवेदी जी के निबन्ध लालित्य की दृष्टि से प्रशंसा योग्य हैं। वे सिर्फ कथन के मन्तव्य को ही उजागर करना पर्याप्त नहीं समझते, बल्कि अपनी बात को इस ढंग से कहने का प्रयास करते हैं कि उसका सौन्दर्य सबको प्रभावित करे। आचार्य द्विवेदी मानव की उद्दाम जिजीविषा, मानव समानता, मानव के विकासगामी होने के उद्देश्य को लेकर चलने वाले निबन्धकार हैं। उनके लालित्य सिद्धान्त का केन्द्र-बिन्दु मानव के कल्याण पर आधारित है। उनका मानव-कल्याण ही लोक-कल्याण है। यह मानव ही उनके लालित्य साहित्य का केन्द्रीय बिन्दु है। निश्चित रूप से हजारी प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व एक सहज मानव का था। वे सच्चे साधक, सच्चे रचना-कर्मी और सच्चे सहृदय थे। यही कारण है कि उनके निबन्ध एक ओर वैयक्तिक हैं तो दूसरी ओर विचार-प्रधान। उनके निबन्ध तो ललित हैं ही उनके व्यक्तित्व में भी लालित्य तत्व का पूर्ण समावेश है। अतः आचार्य द्विवेदी का आस्थावादी दृष्टिकोण लालित्य का केन्द्रबिन्दु है।



आधुनिकता की अवधारणा

श्रीमती कामाक्षा बिसेन

अतिथि शिक्षक

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी (म. प्र.)

आधुनिकता शब्द आमतौर पर उत्तर-पारंपरिक, उत्तर-मध्ययुगीन, ऐतिहासिक अवधि को सन्दर्भित करता है, जो सामंतवाद से पूंजीवाद, औद्योगीकरण धर्मनिरपेक्षवाद, युक्तिकरण, राष्ट्र-राज्य और उसकी घटक संस्थाओं तथा निगरानी के प्रकारों की ओर कदम बढ़ाने से चिह्नित होता है। आधुनिकता का सम्बन्ध आधुनिक युग और आधुनिकता से है लेकिन यह एक विशिष्ट अवधारणा का निर्माण करती है। आधुनिकता को सन् 1436-1789 ई० के सांस्कृतिक, साहित्यिक और बौद्धिक आन्दोलनों के साथ जोड़ा गया, जिसका विस्तार सन् 1970 ई० के दशक तक या उसके बाद हुआ है।

अन्य शब्दों की अवधारणाओं की भाँति ही आधुनिकता की भी कोई सर्वमान्य परिभाषा या अवधारणा संभव नहीं है। अवधारणाएँ देश काल सापेक्ष होकर न केवल अपनी तात्त्विकता में बल्कि अपने व्यवहारिक प्रतिफल में भी एक जटिलतर होती जाती हैं। आधुनिकता भी एक जटिल संकल्पना है इसकी जटिलता का मुख्य कारण है इसका अपनी गत्यात्मकता में इसका बहुआयामी विस्तार। आधुनिक शब्द की व्युत्पत्ति पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लैटिन शब्द 'मार्ज़नस' से हुई है जिसका प्रयोग औपचारिक रूप से इसाई वर्तमान को गैर-इसाई रोमन अतीत से अलग करने हेतु किया गया था। आधुनिकता की शुरुआत कब और कहाँ हुई इसकी खोजबीन करते हुये किसी निश्चित तिथि की तलाश करना एक निरर्थक उपक्रम है, क्योंकि जिसे आधुनिकता कहते हैं उसे एक ऐतिहासिक प्रक्रिया में अर्जित किया गया है न कि किसी विशेष तिथि से प्रायोजित। आधुनिकता की शुरुआत यूरोप में हुई, इस मान्यता पर सभी एकमत हैं। इसीलिए अक्सर "आधुनिकीकरण को पश्चिमीकरण का पर्याय" मान लिया जाता है। अमृतराय इस भ्राँति के प्रति सचेत करते हुये लिखते हैं कि "आधुनिकता के लिये हरदम यूरोप और अमरीका की तरफ टकटकी लगाये रहना बेतुकी बात है। आधुनिकता किसी देश या महादेश की बपौती नहीं है"।

आधुनिकता की परिभाषा :-

1. डॉ० इन्द्रनाथ मदान इसे एक प्रक्रिया मानते हैं वे कहते हैं :- "इतना साफ हो चुका है कि यह एक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया में स्वीकृत मूल्य अस्वीकृत होकर फिर बनते - मिटते रहते हैं।" इसीलिये वे इसके अनेक स्तर मानते हैं। उनके अनुसार गोदान में यह एक स्तर पर हैं।

'शेखर एक जीवनी' में दूसरे स्तर पर, 'बचलनामा' में तीसरे स्तर पर, 'न आने वाला कल' में चौथे स्तर पर 'एक चूहे की मौत' में पाँचवे स्तर पर, 'सफेद मेमने' में छठे स्तर पर, 'वे दिन' में सातवें स्तर पर और 'मुरदाघर' में आठवें स्तर पर आधुनिकता के नव आयाम दृष्टिबिम्बित होते हैं।

2. रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार :- "अपने वर्तमान के प्रति तीव्रतम सजगता आधुनिकता का केन्द्रीय तत्व है।"

3. रामदरश मिश्र के अनुसार :- "दुर्भाग्य से शहरी मध्यवर्गीय व्यक्ति-जीवन की जड़ता, ठहराव,

स्तब्धता, टूटन, कुंठा, को ही आधुनिक बोध मान लिया जाता है।”

आधुनिक साहित्यकारों की प्रमुख कृतियों में अभिव्यक्त आधुनिकता बोध

अ. राजकमल चौधरी (1931-1967 ई.) :- इनके कई उपन्यास प्रकाशित हैं। इसमें प्रमुख ‘नदी बहती थी’, ‘मछली मरी हुई’, ‘शहर था शहर नहीं था’, ‘देहगाथा’, ‘ताश के पत्तों का शहर’, ‘अग्निस्नान’ आदि उल्लेखनीय हैं। राजकमल जी मूलतः कवि हैं किन्तु उन्हें आधुनिकताबोध को उजागर करने वाला उपन्यासकार माना गया है।

ब. गोविन्द मिश्र – मिश्रजी के उपन्यास ‘उभरती हुई धूप’ ‘लाल पीली जमीन’ में आधुनिकता का समावेश कर युवाओं के भटकाव पर प्रकाश डाला गया है। ‘तुम्हारी रोशनी’ उपन्यास स्त्री – पुरुष के सम्बन्धों का विश्लेषण करने वाला उपन्यास है। इसमें रमेश और सुवर्णा जो आधुनिक शिक्षा प्राप्त दम्पति हैं उनके दाम्पत्य जीवन के उतार-चढ़ाव को दर्शाया गया है।

गोविन्द मिश्र के अन्य उपन्यास ‘पाँच आँगनों वाला घर’ में आधुनिकता के दबाव से क्रमशः भारतीय संयुक्त परिवार के टूटने और संवेदनशीलता के छीजने का अहसास कराने वाला महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

स. कृष्ण बलदेव वैद :- हार्वर्ड विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में पी.एच.डी. हैं। बहुत दिनों तक स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क में अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे हैं। ‘नर-नारी’ में अन्तरालाप शैली में आधुनिकता युक्त आज के शहरी अभिजात वर्गीय परिवारों की उन समस्याओं को उभारा गया है, जो मुख्यतः सेक्स केन्द्रित हैं।

‘गुजरा जमाना’ ‘विमल उर्फ जायें तो जाये कहाँ’ तथा ‘काला कोलाज’ आदि उपन्यास आधुनिकता बोध से समायुक्त हैं इनके मूल उद्देश्य आधुनिकता से सम्बंधित वर्तमान समस्याओं को उजागर करना रहा है।

द. शिवप्रसाद सिंह- ‘गली आगे मुड़ती है’ ‘मंजुशिमा’ और ‘औरत’ आपके तीन आधुनिकताबोध से जुड़े उपन्यास हैं। ‘गली आगे मुड़ती है’ में युवा आक्रोश, छात्र आन्दोलन, विश्वविद्यालय के अध्यापकों की राजनीति, समाज विरोधी तत्वों और प्रतिक्रियावादी शक्तियों को उजागर किया गया है। ‘मंजुशिमा’ में प्रसादजी ने अपनी पुत्री ‘मंजु’ के जीवन की करुण कथा को केन्द्र में रखकर उसकी प्राणों की रक्षा के लिये किये गये अपने अथक प्रयत्न को रचनाकार ने पूरी ईमानदारी के साथ मूर्तरूप प्रदान किया है। ‘औरत’ में बिहार से लगे हुए उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग की नारी उत्पीड़न की कहानी को आधुनिक परिवेश के साथ प्रस्तुत किया गया है।

य. निर्मल वर्मा :- निर्मल वर्मा की पहली कृति ‘वे दिन’ में आधुनिकता बोध के सारे सूत्र – अकेलेपन का बोध, विजातीयता की अनुमति, महायुद्ध का संत्रास, जीवन की व्यर्थता का बोध, उदासी, तनाव, अनिश्चय आदि विद्यमान हैं। सोचने की बात यह है कि यह सब कुछ युद्धोत्तरकालीन यूरोपीय समाज का सत्य है या भारतीय समाज का ? क्या भारतीय जीवन चाहे वह किसी महानगर का ही क्यों न हो इन सारी स्थितियों एवं असंगतियों का शिकार हो चुका है।

र. मनोहर श्याम जोशी :- इन्होंने अपने उपन्यास ‘कुरु कुरु स्वाहा’ और ‘हरिया हरक्यूलीज की हैरानी’ में आधुनिक कथाशिल्प को विकसित किया है। ‘कुरु कुरु स्वाहा’ में बम्बई के पतनशील समाज

का चित्रण किया हैं। लेखक ने कालगर्ल और फिल्म जगत के सन्दर्भों को सामने रखकर नेहरू युग के खोखलेपन पर प्रहार किया हैं।

ल. कमलेश्वर :- कमलेश्वर ने पुराने नैतिक आदर्शों और आधुनिक व्यवहारिक मूल्यों की टकराहट और उससे उत्पन्न तनाव का यथार्थ चित्र अंकित किया है। 'एक सड़क सत्तावन गलियों' में उन्होंने आधुनिक परिवेश में कस्बे की जिन्दगी की अच्छी-बुरी स्थितियों का चित्रण किया है। 'डाक बंगला' में मातृहीना 'इरा' का 'विमल' के प्रति आकृष्ट होकर पिता से अलग होने और उसके बाद जीवन-प्रवाह में अनेक लोगों से जुड़ने-बिछुड़ने और संघर्ष करने की कहानी कही गयी है। 'तीसरा आदमी' में पति - पत्नी के बीच अनिवार्य परिस्थितियों में आर्थिक दबाव के फलस्वरूप तीसरे आदमी के आने पर और अन्ततः पति के अप्रसांगिक हो जाने की त्रासदी और उससे उत्पन्न तनाव का चित्रण किया गया है।

गहराई से इस बात पर अगर हम सोचें कि आज का साहित्य आखिर इतना ह्यासमान क्यों है, क्यों हमें जीवन में घुटन, संत्रास, एकाकीपन, विद्रोह, अराजकता ही नजर आती है। जीवन मूल्यों के प्रति आस्था, विश्वास क्यों नहीं है, तो शायद इस बात से आसानी से सहमत हुआ जा सकता है कि यह सब पाश्चात्य जीवन की नकल और उससे असंतोष के कारण हैं। पाश्चात्य जीवन शैली का अर्थ आधुनिक माना जाता है, आधुनिक होना गलत भी नहीं है, गलत है तो सिर्फ आधुनिकता की औपचारिकता।

आज से चालीस-पचास साल पहले तक भारतीय भाषाओं में ऐसे अनेक साहित्यकार थे, वे पूर्णतया भारतीय संस्कृति को समर्पित थे। प्रेमचंद, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अमृत लाल नागर, प्रसाद, जैनेन्द्र, विभूतिभूषण मुखोपाध्याय, विमल मित्र, आदि ऐसे बहुत से साहित्यकार हैं जिन्होंने भारतीय साहित्य को गरिमामंडित किया है। आज भी हमारे अंतः पटल पर जब भी किसी भारतीय साहित्यकार का नाम आता है तो हमारे मस्तिष्क में पुरातन साहित्यकारों का ही चित्र अंकित होता है। आज हमने आधुनिकता को पाने की होड़ में अपने अनमोल मूल्यों को पीछे छोड़ दिया हैं। आधुनिकता क्या है, भारतीय सन्दर्भों में हम कहाँ तक आधुनिक हुये, हमारा घर आधुनिक उपकरणों से कितना भरा है, हम भीतर से उतने ही खाली हुये हैं। मन से उतने ही पिछड़े हुये हैं। मानवीय संबंधों से, सामाजिक यथार्थ से आज हम जिस तेजी से कटे हुये हैं, भारतीय मानस से जिस तरह हम दूर हुये हैं, उसने आज के साहित्यकारों को भी उथला किया है। साहित्य को अर्थ - साधन का एक माध्यम हमने बनाया है। अब साहित्य साधना की नहीं, कामना की वस्तु है। मान-सम्मान, ऊंचा पद, अच्छी नौकरी के लिये साहित्य आज सीढ़ी बन गया है। आखिर ऐसा क्यों है कि कुछ ही वर्षों में साहित्य के स्वरूप में इतना बड़ा परिवर्तन आ गया है।

वास्तव में जिस तरह हम अपने जीवन के मूल्यों को पश्चिम से ग्रहण करते हैं, या ग्रहण करने के प्रयास में हैं। उसी तरह साहित्य के मूल्यों का निर्धारण भी पश्चिम से हो रहा हैं। वहाँ के प्रतिमान हमारे नव आयाम बन रहे हैं। भूमण्डलीकरण के नाम पर इसे और बढ़ावा दिया जा रहा है। यह सिर्फ साँस्कृतिक संकट ही नहीं वरन् साहित्य संकट की विभीषिका का आरंभ है। वस्तुतः आज यह स्थिति है कि भारतीय साहित्य पश्चिमी साहित्य का बोझ ढो रहा है। हमें अपनी बात अपने साँस्कृतिक, साहित्यिक रूप से अभिव्यक्त करने में लज्जा का आभास होता है एवं जो पाश्चात्य सभ्यता की उतरन है उसे अपनाने में गर्वानुभूति होती है। इस अवधारणा के पोषक लोगों का मानना है कि आज का जीवन जटिलताओं से युक्त है, असहमति एवं अवमानना ने सारे मूल्यों को बदल दिया है। इस तर्क से असहमत नहीं हुआ जा सकता किन्तु यह जटिलता आज के साहित्य में भी तो दृष्टिबिम्बित होनी चाहिये। आधुनिक

पाश्चात्य साहित्य में स्पष्टता है, राजनीतिक शोर है, अवस्था है, आत्म मुग्धता है, क्षुद्र आकाक्षाएँ हैं, कुटाएँ हैं, जातिगत और वर्गगत विद्वेष हैं और सेक्स के प्रति खुलापन होना चाहिए, वहाँ संकीर्णताएँ आती जा रही हैं। समूह और समाज से कटकर व्यक्ति निजत्व के झंझावत में फँसता जा रहा है। फिर भी रचनाकार इसी को अपनी सफलता का पर्याय मान रहा है। क्या वास्तविकता में एक साहित्यकार की यह सफलता है कि वह व्यक्ति को ज्यादा अतंर्मुखी और तुच्छ बनाता चला जाये।

शायद इसी तथ्य और सत्य को समझकर मोहन राकेश ने बार—बार कहा था “इस्पात के बने दिमाग हैं हम लोगों के जो कि अत्याधुनिक ढंग से स्ट्रीमलाइज्ड रचनाएँ देते हैं। बहुत—बहुत पालिस्ड होती हैं ये रचनाएँ हर नोक—नुक्ते से दुरुस्त मगर बेजान। इन कारखानों में ढली जमीन बंजर होती है। झील सुरमें की, आकाश पथराया हुआ। जो चीज हमसे खोई जा रही है वह है मिट्टी की गंध, उसकी नमी और नरमी, उसका फूहड़पन, अंधड़पन और बेपरवाही। क्षणवाद। कुछ लोगों की लिखी गई पर्वित्तियों में जिन्दगी के धड़कते क्षण उसी तरह सजीव रहते हैं जैसे तेज एसिड में भीगे मुर्दा जिस्म जो कि एक मुद्दत तक ज्यों के त्यों रहने का आभास देते हैं।

अंततः हम यही कहेंगे कि साहित्य की सार्थकता इसी बात में है कि वह समूचे विश्व का परिचायक बने, व्यक्ति विशेष की पीड़ा को सामूहिकता प्रदान करे। प्रत्येक देश की अपनी एक सांस्कृतिक विरासत होती है जो उसका अपना यथार्थ होता है।

सन्दर्भ सूची

1. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण—रमेश कुंतलमेघ
2. सहचिंतन —अमृतराय
3. हिन्दी उपन्यास—डॉ. रामचन्द्र तिवारी
4. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य—इन्द्रनाथ मदान
5. आधुनिकता और भारतीय समाज—मानचंद खण्डेला



उत्तर-औपनिवेशिक चुनौतियों की दास्तान : परछाई नाच

डॉ० सुमन सिंह

असि० प्रोफेसर-हिन्दी विभाग

दयानन्द गर्ल्स पी०जी० कालेज, कानपुर

उपनिवेशवाद एक सच्चाई है जिसका एक लंबा इतिहास है। इस दीर्घकालीन राजनीतिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था की जड़ों ने भारतीय समाज, संस्कृति तथा आर्थिक एवं विकास दृष्टि में व्यापक रूप से घुसपैठ की है, लेकिन आज भी उसके प्रतिरोध का क्रियात्मक प्रयास नहीं शुरू हुआ है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् साम्राज्यवादी शक्तियाँ मंडी की खोज में निकलने लगी थी। उपभोक्तावाद नव-उपनिवेशवाद का एक उपकरण है जिससे वह अपना मार्ग और सुगम बनाता है। उपभोक्त सभ्यता का प्रचार-प्रसार एक साथ उपनिवेशवाद का माध्यम है, लक्ष्य भी है। शंभुनाथ के मतानुसार "उपभोक्तावादी समाज का आदर्श वह व्यक्ति नहीं है, जो सरल और ईमानदार है। वह है जो खूब झूठ, कृत्रिमता और ढोंग जी सके। कुछ भी बेंच सके, कुछ भी खरीद सकें। कभी तर्क में न जाएं।"

आज उत्तर औपनिवेशिक के खिलाफ संघर्ष करने के लिए हमें उपनिवेशित दृष्टि से मुक्त होना आवश्यक है। ऐसे विमर्श के लिए हम भारतीय साहित्य में कई महत्वपूर्ण आयामों को आसानी से ढूँढ सकते हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य, विशेषकर उपन्यासों में वर्तमान कालीन संकट के कई बिन्दुओं को रेखांकित करने का सृजनात्मक प्रयास हुआ है। प्रियंवद का सन् 2000 ई० में प्रकाशित उपन्यास 'परछाई नाच' इस परम्परा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इतिहास और समकालीन परिवेश के कालगत अंतर के होते हुए भी मानवीय विडम्बनाओं की समानान्तर स्थितियों को जो, आज के मनुष्य के सामने प्रश्नचिह्न खड़ा करती हैं, पकड़ने का सराहनीय प्रयास 'परछाई नाच' में हुआ है। "इसमें उपनिवेशवादी राजनीतिक परिवेश में सत्ता की साम्राज्यवादी सभ्यता के बहुआयामी पहलुओं और बाजारीकरण की संस्कृति के बीच अपने अस्तित्व की चिन्ता में छटपटाती मानवीय आत्मा की कटु नियति को उसकी विकरालता को दर्शाया गया है। उपनिवेशवादी संस्कृति जो अब भारत में अपनी जड़ें गहराई में धँसा चुकी है, की एक-एक परत का 'परछाई नाच' उजागर करता है।"²

उपभोगवादी सभ्यता के अंग होने पर व्यक्ति अपनी निजी एवं जातीय संस्कृति से बाहर आ जाता है। अपनी निजी संस्कृति से छूटा व्यक्ति शून्य में खड़ा है और वह झुण्ड संस्कृति का हिस्सा बन जाता है। उसका आदर्श झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा होता है, उसकी अनन्तलिप्सा, भोगातुरता आदि नित्य बढ़ती रहती है। ऐसे व्यापक जन-समुदाय का प्रतिनिधित्व उपन्यास का मुख्य पात्र अनहद करता है। 'बौना' जो उपन्यास में भौगोलिक, उपनिवेशवाद, बाजारीकरण आदि खतरनाक तत्वों से सम्बद्ध प्रतीकात्मक पात्र है अनहद से कहता है- "हाँ.....आज रात फिर तुम हमारे साथ छत पर चलोगे। आज हम तुम्हारी यह पुरानी काया, मन, मस्तिष्क, संस्कार, सम्बन्ध सब बदल देंगे। उस अद्भुत 'हिरण्यगर्भ' से तुम्हारा पुनर्जन्म होगा जिससे यह सृष्टि जनमी है।"³ अनहद के अंदर जो आम जनता है उसके मन में उस कायापलट के प्रति मोह दुगुना हो जाता है और धीरे-धीरे औपनिवेशवादी ताकतों के सामने अपनी अस्मिता खो बैठता है।

भारतीय बाजार के उपर्युक्त विध्वंसात्मक बाहरी स्वरूप के समानान्तर चलने वाली भीतरी दुनिया भी मजबूती पा रही है, जिसके कई विकल्पों को प्रियंवद ने बखूबी दर्शाया है। आज भारतीय बाजार संस्कृति में सबसे अधिक बिकाये जाने वाले माल आम आदमी के सपने हैं। अनहद का मालिक इस सच्चाई से वाकिफ है। इसलिए अनहद से कहता है— “यही सपना तुम बौनों को भी बचोगे..... या उन बस्ती वालों को भी। एक ही सपना दोनों अलग-अलग तरह से देखेंगे। बेचे जाने वाले सपने में, देखे जाने वाले सपने का कोई तत्व नहीं होना चाहिए। शाखाओं की तरह एक सपने से दूसरे सपने को फूटना चाहिए। ऐसे सपनों में आदमी भटकता रहता है। वह भूल जाता है कि उसकी असली सपना क्या था।”⁴ किंशुक एक मात्र व्यक्ति है जो इस कटु सत्य को जानता है कि बाजारीकरण की इस मूल्य भ्रष्ट दुनिया में आम आदमी की अस्मिता बुरी तरह पिसती जा रही है। इसीलिए उसका जनवादी मन अनहद की रक्षा का प्रयास करना चाहता है।

सबसे बड़ी विडंबना यह है कि जब जनता भौगोलीकरण की देन इस उपनिवेशवादी संस्कृति के त्रासद पहलुओं और उनके विकराल परिणामों से परिचित होकर उसके खिलाफ कदम रखने की कोशिश करती है अक्सर समय बीत जाता है। इस उपन्यास में अनहद की बेचैनी, अकुलाहट और प्रतिक्रिया की नाकामयाब कोशिश आदि के सहारे उपनिवेशवादी संस्कृति की प्रत्याशित भीषण परिणति को दिखाया गया है। तरसेम गुजराल के शब्दों में कहे तो—“वैश्वीकरण राष्ट्रों की सीमाओं को पिघलने पर विवश कर रहा है। चीजों को परम्परागत पहचान खोकर बाजार मूल्य पर ठहराया जा रहा है। वस्तु ही नहीं, व्यक्ति ही नहीं, व्यक्ति और संस्कृति भी बिकाऊ माल में आ जाते हैं। सांस्कृतिक लक्ष्य मनुष्य के सर्वांगीण विकास का लक्ष्य होते हैं। जहाँ धन कमाना ही लक्ष्य हो और मूल्यों की उपेक्षा हो वह लक्ष्य चाहे कितना भी गुप्त अथवा सात पदों में क्यों न हो, संस्कृति के नाम पर अप संस्कृति का कार्य ही करेगा।”⁵

‘परछाई नाच’ में भौगोलीकरण और उपनिवेशवाद से संबद्ध कई दूसरे विकल्पों को भी दर्शाया गया है। बाजारीकरण और इस बाजार दुनिया में विज्ञापन का प्रसार ऐसे दो प्रमुख विकल्प हैं। प्रियंवद उपन्यास में एक उपकथा के माध्यम से बतलाते हैं कि भारत में आजकल पेयजल की बिक्री एक बड़े व्यवसाय का रूप धारण कर चुकी है। विज्ञापनों के सहारे वे बाजार में अपने आस्तित्व की रक्षा के लिए तरह-तरह के खतरनाक और समाज विरोधी तत्वों को अपनाती जा रही है। गंगाजल का बोतल बनाने वाला मालिक अनहद जैसे नवयुवक के मस्तिष्क का पूरा फायदा उठाकर मूल्य-विरोधी रास्तों से मनमाने ढंग से भड़काता है। इन रास्तों की आपदाओं और गंदगियों से अनभिज्ञ अनहद अपने मालिक की कंपनी की सफलता के लिए अपना तन और मन न्यौछावर करता है। अनहद का तेज और सजग दिमाग पानी शुद्धता के स्थान पर पवित्रता पर जोर देता है क्योंकि शुद्धता सभी कंपनियों का आम दावा है जबकि पवित्रता इस क्षेत्र में अलग चीज है “हम अपने पानी की शुद्धता पर उतना जोर नहीं देंगे जितना कि पानी की पवित्रता पर। हमारा पानी धर्म और आध्यात्म का पानी होगा। मनुष्य को देवताओं के लोक में ले जाने वाला..... उसके पुरखों की तड़पती, अभिशप्त अतृप्त आत्माओं को मुक्त कराने वाला होगा।”⁶ उपनिवेशवादी सभ्यता में साम्राज्यवादी ताकतों के साथ-साथ संस्कृति, धर्म, दर्शन आदि मूल्यवान क्षेत्रों के तत्वों को जिस बेईमानी के साथ उपयोग में लाया जाता है। इसका ज्वलंत उदाहरण यह गंगाजल की बिक्री का तरीका प्रस्तुत है।

‘परछाई नाच’ एक ऐसा उपन्यास है, जिसके केन्द्र में सर्वहारा वर्ग या सामान्य जनता है। उनकी

अपनी उम्मीदें हैं सपने हैं, लेकिन—प्रतिकूल सामाजिक और तत्संबंधी परिस्थितियों के प्रभाव के कारण वे उनको वास्तविक जीवन में जी नहीं पाते। प्रियंवद ने उन्हीं आम आदमी की स्थिति को वास्तविकता के साथ प्रस्तुत किया है। आज हमारे तरह-तरह के सामाजिक सरोकारों के बीच आम आदमी की उपस्थिति अनिवार्य है, परन्तु सामाजिक जीवन में अपने अस्तित्व को बरकरार रखने में उन्हें किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है अपने आप में बहुत बड़ा प्रश्न। इस उपन्यास में लेखक ने चिंगारियों के माध्यम से इस कटु सत्य को बखूबी उद्घाटित किया है— “मैं वही अंतिम मनुष्य हूँ जिसने अपने श्रम का मूल्य कभी नहीं पाया। समाज के लिए उसका अस्तित्व इतना नगण्य है कि वह उसके द्वारा किये गये श्रम को कोई महत्व.....कोई मूल्य नहीं समझता। जबकि प्रकारान्तर और परोक्ष उस श्रम को पूरा समाज भोगता है। इस समाज की यह विचित्र बुनावट है और इस मनुष्य के श्रम की कथा बहुत बड़ी है। मैं इस कथा में हूँ।”⁷

आम आदमी के इस संघर्ष का सिर्फ बाहरी पहलू ही नहीं, इसके समानान्तर चलने वाली एक अंदरूनी स्थिति भी है। इस बाहरी और भीतरी संघर्ष के बीच आम आदमी मुक्तिबोध के ‘ब्रह्म राक्षस की तरह पिस रहा है। इस भीतरी संघर्ष की विद्रूपता को अनहद के सामने किंशुक प्रस्तुत करता है— “हर मनुष्य अपना अपना यह युद्ध लड़ रहा है। अपने-अपने तरीके से वह चुपचाप उसमें संलग्न है। क्षत-विक्षत है और पराजित हो रहा है। उसका आंतरिक भाव—जगत ही अब वह रणक्षेत्र है जिसके अंधेरों में दुन्दुभियाँ नहीं बजतीं पर शव गिरते हैं। शस्त्र नहीं कटते पर मृत्यु का स्पर्श, मर जाने का आतंक हर क्षण होता है। ये युद्ध अब नहीं रुकेंगे। इन्हीं युद्धों से अब इतिहास बनेगा, न्याय मिलेगा, अस्तित्व बचेगा।”⁸ उपनिवेशवाद शासन, सत्ता, राजनीति सभी में वर्चस्व चाहता है। भूमण्डलीकरण ने कुछ लोगों को पूँजी का साम्राज्य देने में पूरी सहायता की, जनतन्त्र को कमजोर किया है और मानवीय सम्बन्धों की उष्णता को फ्रीज करने में आधारभूत भूमिका का निर्वाह किया है। उपन्यासकार ने यह स्पष्ट संकेत दिया है कि अस्तित्व के लिए होने वाली यह लड़ाई आने वाले दिनों में अधिक तीव्रतर होती जायेगी।

‘किंशुक’ प्रियंवद के लेखकीय प्रतिबद्धता और निष्पक्ष तथा स्वतंत्र सामाजिक जागरूकता का प्रमाण है। जिसके माध्यम से भारत की वर्तमान शिक्षित व बौद्धिक युवा पीढ़ी को रेखांकित किया गया है। आज के बुद्धिजीवी नवयुवकों के पास अपने ठोस विचार हैं, तर्क हैं, सपने व महत्वाकांक्षाएँ हैं, परन्तु इन सबको यथार्थ धरातल पर लाने के लिए कोई ठोस योजनायें नहीं हैं। सत्ता की प्रभुता व प्रभाव के कारण उनकी सारी योजनाएँ कुचल दी जाती हैं। किंशुक का वक्तव्य है कि— “वे सब बुद्धिमान.....पवित्र.....भोले और स्वप्न देखने वाले थे। उनके पास आदर्श थे.....नयी दुनियाँ के स्वप्न थे।..... उसके स्वप्न, पंख कटे पक्षी की तरह लिथड़ रहे थे। उसकी संवेदना, उत्साह, योग्यता को सत्ता के निकृष्ट लोगों ने अपने जंगली खुरों से रौंद दिया था। वे इस देश का सब कुछ बदल सकते थे, धीरे-धीरे परास्त सिर झुकाये, एक भीड़ बनते जा रहे थे।”⁹ भारत में किंशुक जैसे युवाओं की संख्या कम नहीं है, लेकिन विडम्बना यह है कि उनके विचार, तर्क जैसे कच्चे मालों का आज कल न तो फायदा उठाया जा रहा है और न ही उसे सफल परिणति की ओर ले जाने का प्रयास किया जा रहा है। चारों तरफ भ्रष्टाचार रूपी दानव अपना विकराल मुँह खोले खड़ा है, जहाँ मूल्यों, विचारों, तर्कों और सार्थक स्वप्नों की कोई सार्थक भूमिका नहीं है।

इस उपन्यास में अनहद और किंशुक शिक्षित युवा पीढ़ी के दो पहलू हैं। एक तरफ जहाँ अनहद की गहरी दृष्टि पूँजीवादी सभ्यता की खाइयों को अवश्य पकड़ पाती है लेकिन उपनिवेशवादी या उत्तर उपनिवेशवादी सभ्यता की अंधी गलियों में खतरनाक मोड़ों को ढूँढ़ निकालने की ओर उनके विपक्ष में

खड़ा होने की ताकत उसमें नहीं के बराबर है। वहीं किंशुक पूंजीवादी और साम्राज्यवाद के उत्तर-औपनिवेशिक ताकतों और कार्यकलापों से हर क्षण सावधान है इसीलिए वह साम्राज्यवाद के दो पहलू बौने और नुकीले दाँत वाले के अपृथक्त्व से परिचित है। अनहद को सावधान करते हुए कहता है – “वह और बौना एक ही रेखा के दो बिन्दु हैं जो देखने में अलग-अलग हैं, पर एक-दूसरे से जुड़े हैं। नुकीले दाँत वाला तुम्हें इसीलिए डरा रहा है कि तुम उतनी ही तेजी से बौने के शरण में चले जाओ। यही बौना चाहता है।”¹⁰

इस प्रकार ‘परछाई नाच’ में प्रियंवद ने अपने समय और परिवेश का सही अवलोकन कर हमारे सामने सार्थक संकेत प्रस्तुत किये हैं। आज भूमण्डलीकरण एवं उत्तर उपनिवेशवाद अपने इस नये पूंजीवादी प्रार्दुभाव से भारतीय जनमानस को तेजी के साथ चिंतित, चमत्कृत एवं प्रभावित करना शुरू कर दिया है। प्रश्न यही उठता है कि हमारा समाज तेजी से हो रहे इन परिवर्तनों का सामना करेगा तो कैसे? सिर्फ यह जरूरी नहीं कि हम परिवर्तन की दशा एवं दिशा के प्रति सचेत हों, एक जीवंत हस्तक्षेप की सर्जना के स्तर पर ही जरूरत है, जो समाज की आत्मिक एवं सांसारिक रूप से प्रतिगामी बनाने के लिए माहौल बना सके। ऐसे में ‘परछाई नाच’ उपन्यास कसौटी पर खरी उतरती है जो उत्तर औपनिवेशिक चुनौतियों का सामना अपने पात्र किंशुक के माध्यम से डटकर करता है। प्रतिबद्ध औपन्यासिक प्रतिमानों की चर्चा में, अपने समय और समाज की धड़कनों को आत्मसात करने वाले उपन्यासों की पंक्ति में ‘परछाई नाच’ का अपना महत्वपूर्ण स्थान होगा।

सन्दर्भ सूची

1. संस्कृति की उत्तरकथा-शंभुनाथ, पृ० 160
2. समकालीन हिन्दी उपन्यास: समय और संवेदना, सं० डॉ० वी०के अब्दुल जलील, पृ० 114-115
3. परछाई नाच-प्रियंवद, पृ० 204
4. वही..... पृ० 184
5. माध्यम- अक्टूबर-दिसम्बर-2005, पृ० 29
6. परछाई नाच-प्रियंवद, पृ० 123
7. वही..... पृ० 41
8. वही..... पृ० 19
9. वही..... पृ० 66
10. वही..... पृ० 117



उलटवांसी शैली और संत साहित्य

डॉ श्रीपति कुमार यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

साहू जैन कॉलेज नजीबाबाद

‘कबीर दास की उल्टी बानी; बरसै कम्बल भीगे पानी’ वाली उक्ति लोक में प्रायः हम सुनते आ रहे हैं। कुछ लोग इसका स्रोत वेद से मानते हैं तो कुछ सिद्ध एवं नाथों की परम्परा से। इस शैली की परम्परा बहुत प्राचीन है। वेद; उपनिषद; सिद्ध; एवं नाथ से होती हुई; यह परम्परा संत साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। डॉ रमेश चन्द्र मिश्र ने ‘उलटवांसी’ शब्द का अर्थ लोक क्रम के विपरीत जीवन व्यतीत ‘उलट+वास’ करने वाले साधक की वाणी; अनहदनाद ‘उलट+वांशी— उलटवांसी—उलटवंशी—उलटवंसी —उलटवां+सी’ प्रतीत होने वाली वाणी किया है¹। उलटवांसी काव्य शैली का वह रूप जिसमें साधकों ने अपनी गहन अनुभूतियों और विचारों को ऐसे धनीभूत प्रतिकात्मक माध्यम द्वारा अभिव्यक्त किया है जो वाह्य रूप से असम्बद्ध; असम्भव प्रतीत होता है किन्तु मूल रूप में सुसम्बद्ध और चमत्कारिक अर्थ का बोधक होता है। उलटवांसी शैली की रचनाओं को नाथ व संत साहित्य में उलटी चर्चा; उलटविद; उलटी; उलटी रीति; उलटी बात; विपर्यय आदि कई संज्ञाएँ प्राप्त हैं²। उलटवांसियों की चर्चा करते समय कुछ लोग उन्हें ‘संध्यभाषा’ अथवा ‘संध्याभाषा’ नाम से भी सूचित करते हैं। ‘संध्याभाषा’ का अभिप्राय उस अस्पष्ट भाषा से है जो गोधूलि बेला की भौंति; कुछ प्रकाश एवं अंधकार से मिश्रित रहा करती है अर्थात् जिसकी बातों को प्रत्यक्षतः कुछ न कुछ समझ लेने पर भी उसमें निहित रहस्य प्रायः अज्ञात ही रहा करता है³। ‘संध्याभाषा’ शब्द का प्रयोग हमें सर्वप्रथम बौद्ध साहित्य में मिलता है। बौद्धों के प्रभाव से सिद्धों ने भी इसका प्रयोग किया है। ‘संध्याभाषा’ से उनका अभिप्राय सांकेतिक और पारिभाषिक भाषा से था। उलटवांसियों में जिन सांकेतिक शब्दों का प्रयोग होता है; वे एकार्थक होते हैं; अतएव ‘श्लेष’ से भिन्न है। उलटवांसियों में विरोध मूलक कथन होते हैं; जिनमें अर्थान्तर द्वारा विरोध का परिहार होता है। अतः विरोधाभास और उलटवांसियाँ भी एक नहीं होतीं। उलटवांसियों में प्रतीकों का विधान अनिवार्य रूप से होता है, क्योंकि प्रतीक साम्प्रदायिक होते हैं सार्वदेशीय नहीं। किन्तु प्रत्येक प्रतीक विधान उलटवांसी नहीं होता। प्रतीकों में विरोध अनिवार्य नहीं; वे सादृश्यमूलक भी हो सकते हैं। उलटवांसियों में केवल विरोधमूलक प्रतीकों को ही स्थान मिलता है; सादृश्यमूलक प्रतीकों को नहीं। गोरखनाथ ने उलटवांसी के लिए ‘उलटी चरचा’⁴ शब्द का प्रयोग किया है। कबीर ने ‘उलटा वेद’⁵ कहा है। संत सुन्दरदास ने ‘उलटी बात’⁶ संज्ञा से अभिहित किया है तथा ‘विपर्यय कौ अंग’ नामक शीर्षक से अपनी रचनाएँ संगृहीत की हैं। ‘संत पलटू साहब की बानी’ संग्रहों में उलटवांसी के स्थान पर ‘उलटावती’⁷ शब्द का प्रयोग मिलता है। पलटू साहब के उलटवांसी विषयक अधिकांश पदों में ‘अकथ कहानी’⁸ शब्द का प्रयोग हुआ है।

उलटवांसी ऐसी उक्ति जो सामान्य प्रचलित लोक धारणा के विपरीत होती है और अपने अभिधार्थ में विरोधपूर्ण और असम्भव प्रतीत होती है, किन्तु वस्तुतः यह किसी गूढ़ अर्थ की व्यंजना करती है। यह निरर्थक और बेतुकी नहीं होती।

संतों की उलटवांसियाँ सिद्धों और नाथों की उलटवांसियों से नितान्त भिन्न है। सिद्धों और नाथों ने अपनी साधना को सर्वबोधगम्य न बनाने के लिए केवल साधनापरक उलटवांसियों का प्रयोग किया है,

कबीर आदि संतों की उलटवांसियां आध्यात्मपरक हैं। उसमें आध्यात्मिक रहस्य के संकेत हैं, जिनसे वे जनसामान्य को अवगत कराना चाहते थे। उनकी उलटवांसियों में आनुभूतिक अभिव्यंजना है। कबीर आदि संतों की उलटवांसियां पढ़ने से ऐसा लगता है कि वे कुछ छिपाना नहीं चाहते।

कबीर की उलटवांसियां अपने अभिधार्थ में बेतुकेपन जैसी लगती हैं किन्तु उसके प्रतीकात्मक अर्थ बोध से कबीर की प्रतिभा का पता चलता है। उनकी एक ऐसी उलटवांसी द्रष्टव्य है—

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई।
पहलै पूत पीछै भई माई, चेला के गुरु लागै पाई॥
जल की मछली तरवर व्याई, पकरी बिलाई मुरगै खाई।
बैलहि डारी गूँनि धरि आई, कुता कूँ लै गई बिलाई॥
तलि कर साषा उपरि करि मूल, बहुत भांति जड़ लागै फूल।
कहै कबीर या पद को बूझै, तौकू तीन्यूत्रिभुवन सूझै॥⁹

संकेतार्थ — सिंघ—मन। गाई—इन्द्रियां। पूत—जीव। माई—माया। चेला—विनम्रता। गुरु—अहंकार। जल—विषयवासना। मछरी—मनोवृत्ति। तरवर—उच्चतम रहनी की दशा। बिलाई—एकाग्रता। साषा—इंद्रियां। उपरि—उपर मस्तिष्क। मूल—जड़, विचार। तीन्यूत्रिभुवन—इंद्रिय, मस्तिष्क, हृदय।

संत दादूदयाल ने कबीर के समान उलटवांसियों की रचना की है। पी अन्तर यह है कि इनकी उलटवांसियाँ अधिक स्पष्ट एवं सुबोध हैं। कबीर ने जहाँ अप्रस्तुत विधान का प्रयोग उलटवांसियों में किया है। वहाँ ये अप्रस्तुत विधान का प्रयोग उलटवांसियों में करते हैं —

मूनै येह अचंम्भौ थाये।
कीड़ी ये हस्ती बिडाश्यो, तेन्है बैठी खाये॥
जाण हुतौ ते बैठौ हारे, अजाण तेन्है ता वाहै।
पांगुलौ उजाबा लाग्यो, तेन्है कर को साहैं॥
नान्हौ हुतौ ते मोटो थयौ, गगन मँडल नहिं भाये।
माटेरौ विस्तार भणीजै, तेतो केन्हे जायै॥
ते जाणै जे निरखी जौवै, खोजी ने बलि माहैं।
दादू तेन्हौ मरम न जाणै, जे जिभ्या विहूणी गाये॥¹⁰

यद्यपि कि संत यारी साहब के साहित्य में उलटवांसी अत्यंत अल्पमात्रा में हैं। उनकी उलटवांसियों में अरबी फारसी के शब्दों का बाहुल्य है। कबीर की भाँति इनकी उलटवांसियों को समझने के लिए ज्यादा दिमागी कसरत की आवश्यकता नहीं है। यारी साहब की एक उलटवांसी द्रष्टव्य है—

जमी बरखै असमान भीजै; बिन बातिहिं तेल जलाइये जी।
जहाँ नूर तजल्ली बीच है रे; बेरंगी रंग दिखाइये जी॥
फूल बिना जदि फल होवै; तदि हीर की लज्जत पाइये जी।
यारी कहै यहि कौन बुझै; यह का सों बात जनाइये जी॥¹¹

संकेतार्थ — जमी—मूलाधार चक्र से निकलने वाली कुण्डलिनी। असमान—ब्रह्मरन्ध्र। नूर—प्रकाश। तजल्ली—प्रकाश। हीर—गूदा।

उलटवांसी साहित्य को ध्यान पूर्वक देखने से विदित होता है कि इसमें प्रायः आत्मा; परमात्मा; माया; ज्ञानग्नि; मन की चंचलता; ब्रह्मानन्द; काम क्रोधादि मायाभूत शत्रुओं के विनाश; संसार की असारता;

परमपद का स्थायित्व आदि प्रसंगों को लेकर अधिकांश रचनाएँ की गई हैं। इसीलिए प्रतीकात्मक शब्द प्रायः रचनाओं में समान ही मिलते हैं। इन उलटवांसियों के द्वारा सिद्धान्त का प्रचार तथा उसके प्रति जनमानस का आकर्षण बढ़ता है। संत रज्जब की एक विलक्षण उलटवांसी प्रस्तुत है—

संतों यह गति उलटी जानी।
मूरति माहिं देहुरा आया, सुनि सतगुरु की बानी॥
बीज माहै वृक्ष समानी, हाड़ी कण में पाकी।
कूँआ भरै कुंभ में पानी, कहत न आवै ताकी॥
ब्रह्म बूंद में घटा समानी, बाह बीजुली सेती।
अवनि अकाश गए ताही में, चपल चातकहि लेती॥
अक्षर माहै पोथी बैठी, बंचक बीज बिलाना।
जन रज्जब यह अगम अगोचर, गुरु मुखि मारग जाना॥¹²

संकेतार्थ — मूरति—जीवात्मा। देहुरा—माया ग्रस्त ब्रह्मांड। हाड़ी—माया। कण—जीवात्मा। बीज—जीवात्मा। वृक्ष—संसार या माया। कुआं—माया। कुंभ—धट। ब्रह्मबूंद—जीवात्मा। घटा—माया। बाह—प्राणवायु। बीजुली—मन की चंचलता। अवनि—जड़माया। आकाश—आत्मा। चातक—तृषित मन। अक्षर—जीवात्मा। पोथी—मायाच्छादित विश्व। बंचक—माया। बीज—जीवात्मा।

संत सुन्दरदास ने उलटवांसी साहित्य को अपनी प्रतिभा से नया आयाम दिया। उन्होंने अपने जीवन के प्रयोगशाला में अनुभूति के आधार पर नये प्रतीकों का प्रयोग कर उलटवांसी की थकी हुयी गति को वेग प्रदान किया। संत साहित्य में सुन्दरदास की उलटवांसियों का अप्रतिम स्थान है। उन्होंने अपनी उलटवांसियों को 'विपर्यय कौ अंग' में प्रस्तुत किया है—

कीडी कुंजी कौं गिलै स्याल सिंह कौ षाड़।
सुन्दर जल तें माछली दौरि अग्नि में जाइ॥

• • • • •
सुन्दर बरिषा अति भई सूकि गये नदि नार।
मेर बूडि जल में रह्यौ झर लाग्यौ इकसार॥¹³

भाव—भाषा एवं आध्यात्मिक साधना के धरातल पर संत पलटू साहब का स्थान हिन्दी संत—साहित्य में अद्वितीय है। अपनी ओज एवं विद्रोहपूर्ण वाणी से द्वितीय कबीर के नाम से जाने जाते हैं। इनके साहित्य में उलटवांसी शैली की प्रमुखता है। प्रतिभा के धनी संत पलटू की एक उलटवांसी दृष्टव्य है—

एक अकथ कहानी मेरी है, कोई बूझै सखीरी॥
आगि में मीन नीर में जंगल, सिंह चरावै छेरी है॥
पर्वत उड़त अकाश में देखा, ससा स्वान को धेरी है॥
उलटा कूप गगन के बीचे, नीचे बसै पनिहारी है॥
अमावसी को चंदा देखा, पूर्नी रात अंधेरी है॥
सांप कैहां एक मेढक पकरै, काल्हू कैहां तिल पेरी है॥
पलटू दास कहैं संतन से, ऐसी मति अब मेरी है॥¹⁴

संकेतार्थ — आगि—मनोविकार। मीन—जीवात्मा। नीर—आत्मा। जंगल—विषयवासनाएँ। सिंह—मन। छेरी—इन्द्रियां। पर्वत—मन। ससा—अविवेक। श्वान—विवेक। उलटाकूप— ब्रह्मरंध्र। पनिहारी—इड़ा पिगला,

कुण्डलिनी। अमावसी-विषयवासना। चंदा-ज्ञान। पूर्नी-जीवात्मा। अंधेरी- अज्ञान। सॉप-ज्ञानेन्द्रियां। मेढ़क-विषयासक्ति। कोल्हू-शरीर। तिल पेरी-अंतःकरण।

उच्चकोटि की महिला उदासीन संत सुवचनदासी ने अपने साहित्य में उलटवांसी शैली का प्रयोग किया है। भोजपुरी भाषा के मिठास से सिक्त इनकी उलटवांसियां सहज ग्राह्य हैं। दासीजी ने अपने साहित्य में 'योग' वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से किया है। इनकी एक उलटवांसी प्रस्तुत है—

हम देखा एक अचरज भाई। नइया में नदिया डूबल जाई।
बकुला के पकड़ सिधरिया खावैं। रुधिर में गोता सिधरिया लगावैं।
सिधरी जाल को भछन किया। उलटि मल्लाह को मुसुक दिया।
सिधरी अमर होइ सागर सोखी। आगि लहर में आप गये सूखी।
जगी जती सिध तपी सन्यासी। सिधरी खाय बिना रहत उदासी।
गुरु नानक हीरा सुबचन दासी। जुगुल किशोर चारो भए सुख रासी।¹⁵

संकेतार्थ — नइया-शरीर। नदिया-जीवात्मा। बकुला-साधक। सिधरिया-माया। रुधिर- विषयासक्ति। जाल-विवेक। मल्लाह-साधक। मुसुक-जाल बांधना। सागर-ज्ञान। आग-ज्ञान विरह। लहर-विवेक।

संतों की उलटवांसियाँ सामाजिक विकृतियों पर पड़े हुए पर्दे को खोलकर रख देती हैं। उलटवांसी शैली से अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित संतों के प्रतिभा एवं आध्यात्मिक शिखर का अन्दाज लगाया जा सकता है। डॉ० पुरुषोत्तम अग्रवाल ने ठीक ही कहा है—“अर्थ ऐसा खुलापन सम्भव करने वाली उलटवांसियों को पारिभाषिक शब्दावली के व्यायाम के रूप नहीं, जीवन, समाज, सत्ता और समय की विसंगतियों को देखने के न्यौते के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र, हिन्दी संतों का उलटवांसी साहित्य, पृ. 8-9
2. आ. परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, पृ. 180-81
3. आ. परशुराम चतुर्वेदी, संतकाव्य, भूमिका, पृ. 80
4. उलटी चरचा गोरख गावै।- गोरख बानी, पृ. 142
5. है कोई जगत गुरु ग्यौनी, उलटि वेद बूझै। - कबीर ग्रंथावली, पृ. 141
6. सुन्दर कहत विचारि करि उलटी बात सुनाइ।
—डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र, सुन्दर साखी ग्रंथ, विपर्यय कौ अंग, 122/1
7. पलटू साहब की बानी, भाग-1, पृ. 74
8. एक अकथ कहानी मेरी है, कोई बुझै सखी री।
—पलटू साहब की शब्दावली, पृ. 20/65
9. डॉ. श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ. 72/६११
10. दादूदयाल की बानी, भाग-2, पृ. 85/213
11. यारी साहब की रत्नावली, पृ. 20/11
12. डॉ. ब्रजलाल वर्मा, संत कवि रज्जब संप्रदाय और साहित्य, पृ. 304
13. डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र, सुन्दर साखी ग्रंथ, 'विपर्यय कौ अंग', साखी-4, 18
14. पलटू साहब की शब्दावली, पृ. 20/६६५
15. सुवचनदासी, अनुभव प्रकाश, पृ. 36



कबीर की भक्ति का आध्यात्मिक और सामाजिक धरातल

डॉ. बिपिन कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर-हिन्दी विभाग

बी.एच.यू.वाराणसी-221005

कबीर के समय में भारतीय समाज में हिन्दू, इस्लाम, जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, इसाई आदि धर्मों के लोग रहते थे। इनमें से पारसी यहूदी तथा इसाई धर्म के अनुयायियों की संख्या नाममात्र की थी। कबीर ने उपर्युक्त सभी धर्मों के बाह्याचारों का जमकर खण्डन किया तत्कालीन समाज में हिन्दू और इस्लाम धर्म प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी धर्म थे। मुसलमान भारत में एक आक्रमणकारी के रूप में आये उन्होंने भक्ति को धर्म प्रचार का प्रमुख आधार बनाया जिससे हिन्दू धर्म पर संकट के बादल मँडराने लगे। मुसलमानों की मातृभावना तथा शक्ति उपयोग के कारण हिन्दू समाज का अधिकांश निम्न वर्ग मुस्लिम धर्म की तरफ आकर्षित हुआ। मुस्लिम आक्रमणकारियों के सामने हिन्दू धर्म की आत्मसातीकरण की प्रवृत्ति नतमस्तक हो गयी। फलतः इस्लाम धर्म ने भारत में अपनी अलग पहचान बनाने में सफलता प्राप्त की।

कबीर के समय राज्य का धर्म इस्लाम था। राज्य पर इस्लाम धर्म का वर्चस्व स्थापित करने के लिए मुस्लिम शासकों ने अन्य धर्म के व्यक्तियों पर अत्याचार भी किये। हेनरी इलियट की पुस्तक 'हिस्ट्री आव इण्डिया' के प्रथम भाग के उद्धरणों ने मुसलमानों से संघर्ष करने वाले हिन्दुओं की हत्याओं, हिन्दुओं के धार्मिक जुलूसों, पूजा एवं धर्मकृत्यों के आम प्रतिबन्धों के साथ-साथ कुछ असहिष्णुता पूर्ण कार्यों में—मूर्तियों का भंजन, मंदिरों का विनाश, बलात धर्म परिवर्तन और हिन्दू स्त्रियों से मुसलमानों द्वारा दुराचार, बलात हिन्दुओं का देश निकाला और उनकी सम्पत्ति का अपहरण, उनकी हत्याएँ और कत्लेआम का आदेश देने वाले कामुक, शराबी और अत्याचारी मुस्लिमों का उल्लेख है।' इन परिस्थितियों में हिन्दू धर्म इस समय अन्धविश्वासों का पुंज सा बन गया था। जिससे हिन्दू समाज विखण्डित हो रहा था। यह हिन्दू धर्म की स्थिति ही थी कि इतनी विषम परिस्थितियों में भी जीवित रहा। यह उपेक्षा की मार सहते हुए भी अपने अन्दर जिजीविषा को बनाये रखा। धर्म पर अनेक संकट होने के कारण हिन्दुओं में धर्म रक्षा की भावना से अनेक नये सिद्धान्त और सम्प्रदाय जन्में —

क. वैष्णव मत

ख. शैव मत

ग. शाक्त मत,

घ. वारकरी सम्प्रदाय

ड. नाथ सम्प्रदाय आदि।

उत्तर भारत में वैष्णव धर्म इस्लाम के थपेड़ों को सहन करता हुआ भी विकास के लक्ष्य की ओर अग्रसर रहा। कबीर ने अपनी साखियों में सर्वाधिक महत्व वैष्णवों को दिया है। रामानन्द जिन्हें कबीर ने अपना गुरु माना था वह वैष्णव थे सर्व प्रथम ऐतरेय ब्राह्मण में विष्णु को सम्मानित पद दिया गया वैदिक कर्मकाण्ड तथा उपनिषदों के तत्त्वचिन्तन से अबकर मानव को शक्ति प्रधान चिन्तन की आवश्यकता हुई जिसकी पूर्ति करने में वैष्णव धर्म सफल रहा। ग्यारहवीं शती में रामानुजाचार्य ने वैष्णव भक्ति का प्रचार किया। रामानन्द के शिष्य होने के कारण कबीर पर वैष्णवों का प्रभाव अवश्य था। कबीर उन्हीं वैष्णवों को पसन्द करते थे जो विवेक युक्त तथा रामनाम में अविचल निष्ठा रखते हों। वे रूढ़िवादी वैष्णवों से दूर रहते थे।

कबीर के समय में शैव धर्म की अक्षुण्ण परम्परा विद्यमान थी। पशुपत, शैव, लिंगायत और कश्मीरी शैव सम्प्रदाय, शैव धर्म के विख्यात सम्प्रदाय थे। कबीर शैव धर्म का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं करते।

उनके पद 'संकट जोग चरन'² से यह सिद्ध होता है कि वह शंकर (शिव) को एक जाग्रत भक्त और साधक मानकर महत्व दे हैं, किन्तु वह शैव मत से प्रभावित हैं, ऐसी कोई बात प्रमाणित नहीं होती। कबीर के समय उत्तर-भारत में कश्मीरी शैव सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। कबीर और कश्मीरी शैवमत दोनों ने ज्ञान-समन्वित भक्ति पर बल दिया है, जिसके कारण विद्वान वर्ग कश्मीरी शैवमत से कबीर को प्रभावित बताते हैं। कश्मीरी शैव मत 'ईश्वरद्वयवाद'³ के नाम से प्रसिद्ध है। यह शंकर के ब्रह्मवाद या अद्वैतवाद से भिन्न है। शंकर ब्रह्म को क्रिया रहित मानते हैं। जबकि ईश्वर द्वयवाद में स्वयं ब्रह्म में कर्तृत्व शक्ति मानी गयी है कबीर ने भी अपने राम को निर्गुण कहते हुए उसमें कर्तृत्व स्वीकार किया है।

“आपन करता भयेकुलाला, बहुविधि सृष्टि रची दरहाला ॥”⁴

कबीर सम्पूर्ण सृष्टि को बाजीगर का स्वांग कहते हैं। वे गुण में निर्गुण और निर्गुण में गुण की बात करते हैं। ये सभी बातें कबीर को कश्मीरी शैव मत के करीब लाकर खड़ा कर देती हैं।

शक्ति की उपासना करने वाले शाक्त कहलाये। यह उत्तर भारत में पूर्वी भारत से आयी। पूर्वी भारत में शक्ति की अधिष्ठात्री देवी की स्तुति होती थी। शाक्त धर्म में दक्षिणमार्गी और वाममार्गी नामक दो श्रेणियाँ बन गयी थी।⁵ कबीर ने वाम मार्गी शाक्तों के प्रति विरति और अनास्था प्रकट की है, जो कि अनाचार में लिप्त रहा करते थे। शैव और वैष्णव भी शाक्तों से घृणा रखते थे। इसका कारण था उनके द्वारा अपनाये गये पंचमकारों का विकृत रूप। डॉ० भण्डाकर ने शाक्ति उपासना के तीन अलग-अलग रूपों की चर्चा की है। शक्ति उपासना का एक तो साधारण रूप था, जिसमें उपासक विनीत भाव से देवी की उपासना करता था। उपासना का दूसरा रूप भयानक था इस रूप में कापालिक और कालामुख सम्प्रदाय के उपासक शक्ति की उपासना करते थे। उपासना का तीसरा रूप काम मूलक था, जिसमें शक्ति को आनन्द भैरवी, त्रिपुर सुन्दरी या ललिता मानकर उसकी उपासना की जाती थी।⁶ सम्भवतः कबीर के सामने शाक्तों की यह काममूलक उपासना ही थी। कबीर का कहना है कि ब्राह्मण भी यदि शाक्त है तो उससे दूर रहना चाहिए और चाण्डाल भी यदि वैष्णव है तो उसे साक्षात् भगवान समझकर गले मिलना चाहिए।

“साषत् बाँभन मति मिलै, वैष्णो मिलै चंडाल।

अंक मालदेभेटिये, मानो मिले गोपाल ॥”⁷

संत ज्ञानेश्वर ने महाराष्ट्र में बारकरी सम्प्रदाय की स्थापना किया। महाराष्ट्र की संत परम्परा में ज्ञानेश्वर के बाद नामदेव आते हैं। नामदेव के समय बारकरी सम्प्रदाय का प्रभाव उत्तरी भारत तक था। कबीर दास ने नामदेव का उल्लेख श्रद्धापूर्वक किया है। कबीर दास की विचारधारा पर ज्ञानेश्वर तथा नामदेव दोनों का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। कबीरदास, नामदेव से विशेष प्रभावित प्रतीत होते हैं प्रिय के प्रति कान्त भाव से पूर्ण रागात्मक समर्थन, गुरु का महत्व, नाम-जप का महत्व, जाति-पाँत, तप-तीर्थ, व्रत आदि का विरोध, हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को पथभ्रष्ट बताना, कुण्डलिनीयोग का महत्व स्वीकार करना, पुस्तक ज्ञान का विरोध, सहज नैतिक जीवन व्यतीत करने पर बल देना, ये सभी बातें नाम देव की वाणियों में पायी जाती हैं। और ये ज्यों कि त्यों कबीर की वाणियों में भी उपलब्ध हैं।⁸

कबीर के समय में लोकायत, चार्वाक, जैन, बौद्ध तथा नाथ योगियों की परम्परा चली आ रही थी। इन सभी ने उच्च वर्गीय या बाह्यणों द्वारा अनुमोदित समाज-व्यावस्था का विरोध किया। कबीर ने निश्चय ही यह विरोध की प्रवृत्ति नाथ योगियों से ग्रहण की थी। पाण्डितों को जिस प्रकार गोरखनाथ ने चुनौती

दी है उसी प्रकार लगभग उसी शब्दावली में कबीर ने भी उन्हें चुनौती दी है।

गोरखनाथ का कथन — ‘पोथी पढ़ि-पढ़ि केता मुआ, कथि-कथि कहा कीन्ह।
बढ़ि-बढ़ि-बढ़ि बहु घट गया पार ब्रह्म नहिं चीन्ह।।

कबीर का कथन — ‘पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
एकै आखर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय।।⁹⁹

कबीर—मीमांसा, डॉ० रामचन्द्र तिवारी, पृ. 69

कबीर के समय में शंकर के अद्वैतवाद का भी प्रभाव था जिसके विकास में वैष्णव सन्तों द्वारा चार मतों की स्थापना हुई।

क. विशिष्टाद्वैतवाद	—	रामानुजाचार्य
ख. द्वैतवाद	—	मध्वाचार्य
ग. शुद्धाद्वैतवाद	—	विष्णु स्वामी
घ. द्वैताद्वैतवाद	—	निम्नकाचार्य

कबीर के समय हिन्दू धर्म के बाद दूसरे स्थान पर इस्लाम धर्म के अनुयायियों की संख्या थी। इस्लाम धर्म ने ही निम्न हिन्दू वर्ग के अनुयायियों को सर्वाधिक प्रभावित किया। मुसलमानी धर्म एक ‘मजहब’ है।¹⁰ मजहब एक संगठित धर्म-मत है जिसकी विशेषता है एक ही देवता को मानना? एक ही आचार का पालन करना, किसी नस्ल, कबीले या जाति के विशेष व्यक्ति को समूह में मिला लेने पर उसके साथ समान व्यवहार करना। यहां धर्मसाधना व्यक्तिगत नहीं समूहगत होती है। इस्लाम धर्म का संगठन भारत-समाज संगठन से विल्कुल उल्टे ढंग से हुआ था। मुसलमानी समाज का विश्वास था कि जो धर्म-मत का प्रचार इस्लाम ने किया है उसको स्वीकार कर लेने वाला ही अनन्त स्वर्ग का अधिकारी है, जो इस धर्म मत को नहीं मानता है। वह आनन्त नरक में जाने के लिए बाध्य है। अंग्रेज इतिहासकारों की सामान्य धारणा यह रही है कि कबीर ने जिस एक ईश्वरीय भावना पर बल दिया है, वह मुसलमानी ऐकेश्वरवाद के प्रभाव का परिणाम है। किन्तु यह धारणा निर्मूल है। मुसलमानों के ऐकेश्वरवाद से कबीर ने अपना मतभेद स्पष्ट रूप से प्रकट किया है—

‘मुसलमान का एक खुदाई।

कबीर को स्वामी घटि-घटि रहयो समाई।

ईस्लाम धर्म शरा और बेशरा दो प्रकार की कोटियों में बंटा है।¹¹ शरा कोटि सनातनी तथा बेशरा कोटि हरफरमौला फकीरों की है। बेशरा फकीर कभी-कभी पीर-पैगम्बर के चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन का आश्रय लिया करते हैं। ये सिद्धान्तों की उपेक्षा कर दिया करते हैं भारतीय सूफी मुख्यतः सूफी सम्प्रदाय के हैं जो इस्लाम के अनुयायी होकर भी सनातन-पंथी मुसलमानों से भिन्न हैं ऐसे सम्प्रदायों में मुख्य पाँच हैं।¹²

क. चिश्ती सम्प्रदाय	ख. कादिरि सम्प्रदाय
ग. सुहरावर्दी सम्प्रदाय	घ. नक्सबन्दी सम्प्रदाय

इन सूफी सम्प्रदायों का आविर्भाव कबीर के आविर्भाव से बहुत पहले उत्तर भारत में हो चुका था। सूफियों साधकों की प्रेम की पीर हिन्दू जनता को आकृष्ट करने लगी थी। कबीर ने भी सूफियों के समान विरह तथा प्रेम के मार्ग में बलिदान की महत्ता को प्रतिपादित किया।

‘राम रसायन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल ।

कबीर पीवण दुर्लभ है, माँगे सीस कलाल ।’¹³

सूफियों की सिद्धियों का प्रभाव भारत की हिन्दू-मुस्लिम जनता पर समान सा ही था। ये लोग मुस्लिम होने के कारण ऐकेश्वरवादी थे। ये वस्तुतः हृदय में अद्वैतवाद को स्वीकार करते हैं। इनकी अद्वैतवादी धारणा विशिष्टा द्वैतवाद से मिलती जुलती है।¹⁴ कबीर को सामान्यतः सूफियों से प्रभावित समझा जाता है। किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाय तो सिद्धान्त, साधना और अनुभूति तीनों स्तरों पर कबीर दास सूफियों से अलग प्रतीत होते हैं। सूफी तत्व दर्शन के अनुसार परमतत्त्व ज्ञान स्वरूप है, नित्य प्रकाश है, परम् सौन्दर्यमय है और विश्वेच्छा स्वरूप है। विश्व दर्पण में अपने को बिम्बित करना उसका सहज स्वभाव है। यह नाना रूपात्मक जगत् उसकी बाह्य अभिव्यक्ति है। कबीर दास परमतत्त्व को ज्ञान स्वरूप एवं नित्य प्रकाश तो स्वीकार करते हैं किन्तु उसके सौन्दर्य को जगत् के बाह्य प्रसार में उसी रूप में नहीं देखते जिस रूप में सूफी साधक देखते हैं। सूफियों के अनुसार भौतिक सौन्दर्य परमतत्त्व के प्रतिबिम्ब होने के कारण सत्य है किन्तु कबीर के अनुसार यह सारा रूपात्मक जगत् नश्वरी और क्षणभंगुर है। कबीर का अनुभूति पक्ष भी सूफियों से भिन्न है। कबीर के प्रेम के आदर्श सती और सूर हैं। कबीर और राम का मिलन एक ही चेतन तत्व के विद्वधा विभक्त तत्वों का पुनः मिलकर एक हो जाना है। इसी प्रकार साधना के स्तर पर भी कबीर किन्हीं योग या प्रेमसाधना की रूढ़ियों के कायल नहीं हैं। वे सहज तात्त्विक जीवन को सबसे बड़ी साधना मानते हैं सूफी साधक योग और प्रेम साधना की अनेक रूढ़ियों को महत्व देते हुए दिखाई पड़ते हैं। कबीर दास सभी क्षेत्रों में रूढ़ियों के विरोधी हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कबीर के समय में वैष्णवों, शैवों, सिद्धों, योगियों, सूफियों, कट्टर मजहबी मुसलमानों, वारकरी सन्तों आदि की परम्परा कुछ परिवर्तनों के साथ विद्यमान थी। कबीर सभी के कथनों पर विचार करते हुए, उनकी कमजोरियों को उकेरते हुए, उन पर अपनी मौलिकता की छाप लगाकर स्वीकार करते हैं।

कबीर के आविर्भाव के समय भारतीय समाज मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित था –

1. मुसलमान – क. विदेशी ख. भारतीय
2. हिन्दू

समाज का सबसे अधिक समृद्ध वर्ग विदेशी मुसलमानों का था। वह भारत का शासक वर्ग था। यह वर्ग सबसे अधिक प्रभावशाली और विशेष अधिकारों से युक्त था। राज्य के सभी बड़े-बड़े पद इस वर्ग के व्यक्तियों के लिए सुरक्षित थे। विदेशी मुसलमान विभिन्न वर्गों में विभाजित थे। तुर्क, ईरानी, अरब, अफगान, अबीसीनियन आदि ऐसे ही वर्ग थे।¹⁵

समाज का दूसरा वर्ग भारतीय मुसलमानों का था। विदेशी मुसलमान इनको हेय दृष्टि से देखते थे। इसका कारण था हिन्दू वर्ग के निम्न जाति से मुस्लिम धर्म में परिवर्तित होना। आलोच्य काल में हिन्दू धर्म में अनेक बुराईयाँ प्रवेश पा चुकी थीं। हिन्दू जनता विशेष रूप से अन्धभक्त हो गयी थी। वर्णाश्रम व्यवस्था के स्थान पर जाति व्यवस्था से उनमें आपस में बड़ा मतभेद था। हिन्दू आपस में छूआछूत का व्यवहार करते थे। जातिगत आधार पर लोग शूद्रों की छाया से घृणा करते थे। खान-पान एवं हुक्का-पानी विषयक नियम इसी दृढ़ता से निभाये जाते थे जैसे वे ईश्वरीय नियम हों।¹⁶ मुसलमानों के मजहबी जोश और कट्टर भ्रातृ भावना के कारण हिन्दू धर्म का निम्न वर्ग मुस्लिम धर्म अपनाने लगा। यही

वर्ग भारतीय मुसलमान कहलाया।

भारतीय समाज का बहुसंख्यक वर्ग हिन्दुओं का था। मुसलमानों के आने से हिन्दुओं का जाति बन्धन कठोर हो गया, जिससे समाज में विभिन्न नवीन उप-जातियों का निर्माण हुआ। हिन्दुओं में अस्पृश्यता, बलि-प्रथा, धर्म के लिए आत्मघात करना जैसी कुरीतियाँ थीं।

साधारणतया हिन्दू धर्मपरायण, सच्चरित्र, और सात्विक विचारधारा के थे। हिन्दू समाज की स्थिति अपनी स्वयं की दुर्बलताओं और मुसलमानों के व्यवहार के कारण सन्तोषजनक न थी। जो भी हिन्दू सुरक्षित रह सके वह अपने कौशल और शक्ति के आधार पर ही। दिल्ली के सुल्तानों ने हिन्दुओं का जो उत्पीड़न और शोषण किया उससे उनका मनोबल टूट गया। मुस्लिम शासक उत्पीड़न के साथ-साथ हिन्दू संस्कृति पर भी अत्याचार करते थे। उनके मन्दिरों को तोड़ते थे, अपवित्र करते थे। उनकी देव मूर्तियों को तोड़ते थे। हिन्दू जनता इस कृत्य को निरीह भाव से देखती थी। धीरे-धीरे उनका ईश विश्वास भी डगमगाने लगा। कुल मिलाकर हिन्दू समाज की दशा अत्यन्त दयनीय थी और देश में निराशावदिता भी घर कर चुकी थी।

ऐसे विषम वातावरण में कबीर का आविर्भाव हुआ। कबीर ने जीवन के सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण विचारधारा का प्रतिपादन किया। वह विचारों की उच्चता, ताजगी और सादगी से परिवर्ती विचारकों को बहुत पीछे छोड़ गये। उन्होंने वर्ण व्यवस्था पर कुठाराघात, साम्प्रदायिक तत्वों का बहिष्कार और भक्ति की सादगी एवं व्यापकता का प्रचलन किया। उनके विचार किसी स्वार्थ पर नहीं टिके थे। इसीलिए जिस कुरीति पर भी उन्होंने चोट की पूरी निर्भीकता से। उनके विचारों ने धर्म, दर्शन और समाज को प्रभावित किया। जैसा कि मैकॉलिफ ने कहा है, “वह एक निडर अन्वेषी (Path finder) थे, भारत के हिन्दू-मुस्लिम समुदायों की एकता के महान अग्रदूत थे और मानवता की आस्था के समर्थक थे, उनका उपदेश था कि दैवी शक्ति मानव जाति की समग्रता में प्रकट होती है।”¹⁷

तत्कालीन समाज में हिन्दू और मुसलमान दोनों में ही दास प्रथा प्रचलित थी, गुलाम बाजार में बेंचे और खरीदे जाते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपने गुलामों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करते थे। उनके जीवन और सम्पत्ति पर उनके मालिकों का पूर्ण अधिकार होता था। ‘मुस्लिम समाज में दास दो श्रेणियों में विभक्त थे—बन्दा अथवा शाही दास एवं बुर्दा अथवा सामान्यदास। शाही दासों की स्थिति प्रशंसनीय थी। वे महत्वपूर्ण सैनिक और आर्थिक पदों पर नियुक्त किये जाते थे। दासियाँ रखने की भी प्रथा थी।’¹⁸

समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत ही सोचनीय थी। सामन्तों, सुल्तानों के लिए वे ‘खड्ग की चेरी और विलासिता की वस्तु थीं। पण्डितों के लिए संस्कारहीन होने के कारण वे शूद्रवत् थीं और संतों और भक्तों के लिए वे साक्षात् मायामूर्ति थी। भक्तलोग उनके सती रूप की प्रशंसा करते थे और दरबारी लोग के लिए उनके इसी रूप की सामान्य नारी की कोई सामाजिक मर्यादा न थी।’¹⁹ महिलाओं को अनेक प्रकार की अनसुविधाएँ थीं। पर्दा-प्रथा, मुस्लिम एवं हिन्दू शासक वर्गों के बीच प्रचलित थी। बहु विवाह प्रथा भी आम थी। हिन्दू समाज में सती प्रथा और बाल-विवाह और बाल हत्या का प्रचलन था। बाल-विवाह का प्रचलन हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों ही में था। दहेज प्रथा प्रचलित थी। स्त्रियों का अपने पतियों अथवा अन्य पुरुष सम्बन्धियों पर निर्भर रहना हिन्दुओं तथा मुसलमानों के सामाजिक जीवन की एक प्रमुख विशेषता थी।²⁰

कबीर के समाय में समाज में खान-पान पहले जैसा ही था। हिन्दू शाकाहारी तथा मुसलमान मांसाहारी भोजन पसन्द करते थे। सूफी मांसाहारी नहीं थे। कुरान में यद्यपि शराब पीना वर्जित है फिर भी हिन्दू और मुसलमान दोनों में शराब और अफीम दोनों का स्वच्छंदता पूर्वक प्रयोग किया जाता था। हिन्दू और मुसलमान दोनों वर्गों के ही लोग नगर और गांव में निवास करते थे। ग्राम्य जीवन में कोई विशेष अन्तर नहीं आया था। जन साधारण कच्चे मकानों और झोपड़ियों में रहते थे। इस समय वस्त्र, वेश-भूषा और आभूषण के प्रयोग में प्रगति हुई थी। धोती, अँगिया, पेटीकोट, चुनही आदि को प्रयोग के साथ-साथ, कुर्ता, चोली, पायजाम, अंगर खां आदि का प्रयोग होता था। स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषणों का प्रयोग करते थे। सोना, चाँदी जवाहरात आदि का प्रयोग आभूषण बनाने के लिए किया जाता था। हिन्दू होली, दीपावली, वसन्त जैसे त्योहारों को मनाते थे और मुसलमान ईद, सब्बेरात और नवरोज आदि मनाते थे।²¹

सारांश यह है कि कबीर कालीन समाज प्रगतिशील नहीं था। उस समय का जीवन-चेतना, विषय प्रधान, रुढ़ि-ग्रस्त, धर्म-केन्द्रित, संकीर्ण, प्रेरणा रहित और नैतिकता के आग्रह से पूर्ण था। इस्लाम का आगमन मध्याकालीन इतिहास की सबसे बड़ी घटना है। इसने हमारे सामाजिक, धार्मिक मूल्यों को चुनौती अवश्य ही दी किन्तु इसके आगमन से भारतीय जीवन में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ।

संदर्भ सूची

1. मध्यकालीन भारत (1750-1540 ई0) सं0 हरिश्चन्द्र वर्मा, पृ0 374
2. कबीर-मीमांसा, डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0 61
3. कबीर-मीमांसा, डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0 61
4. कबीर ग्रन्थावली, भगवत् स्वरूप मिश्र, पृ0 480
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं0 डॉ0 नगेन्द्र पृ0 102
6. कबीर-मीमांसा, डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0 64
7. कबीर-ग्रन्थावली, सं0 डॉ0 श्यामसुन्दर दास, पृ0 41
8. कबीर-मीमांसा, डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0 66
10. कबीर-ले0 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 137
11. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 102
12. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 102
13. कबीर -वाणी: कथ्य और शिल्प, डॉ0 राम किशोर शर्मा, पृ0 22
14. कबीर-ग्रन्थावली, डॉ0 भगवत् स्वरूप मिश्र, पृ0 13
15. मध्यकालीन भार, एल0पी0 शर्मा, पृ0 256
16. कबीर (साहित्य और साधना) सं0 डॉ0 वासुदेव सिंह, पृ0 21
17. मध्यकालीन भारत (750ई0 1540 ई0), सं0 हरिश्चन्द्र वर्मा, पृ0 440
18. मध्यकालीन (8वीं-18वीं शताब्दी) एक सर्वेक्षण इम्तियाज अहमद, पृ0 131
19. कबीर मीमांसा - डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, 11-12
20. भारत का वृहद् इतिहास-2, मजूमदार, राय चौधरी, दत्त, पृ0 121
21. मध्य कालीन भारत, एल0पी0 शर्मा, पृ0 259



कबीर की नैतिक चेतना का यथार्थ

डॉ० शिवशंकर यादव

21 प्रोफेसर्स कालोनी, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत एक धर्मनिष्ठ देश रहा है, जहाँ प्राचीनकाल से ही उस व्यक्ति को सामाजिक प्रतिष्ठा मिल पायी है, जिसके जीवन का नैतिक पक्ष उज्ज्वल हो। सन्तों, भक्तों एवं महापुरुषों के विषय में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय रही है। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल में बौद्धों तथा जैनों में आचरण पक्ष पर सर्वाधिक बल दिया गया। नाथपन्थी योगियों में साधना की सफलता हेतु नैतिक विकास को अनिवार्य आधार के रूप में महत्ता प्रदान की गयी। इस रूप में भारतीय परम्परा में प्राचीन काल से व्यक्ति के नैतिक पक्ष को उज्ज्वल बनाने तथा उसकी मनः स्ववृत्ति को भौतिक आकर्षणों से विरत करने के लिए अनेक प्रभावशाली प्रयत्न किये गये। इसका प्रभाव भक्ति कालीन कवि कबीर पर भी पड़ा, जिन्होंने व्यक्ति के जीवन में नैतिक पक्ष की शुद्धता को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।

मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के इतिहास में कबीर की युग प्रवर्तक की भूमिका रही है। वे कवि होने के साथ ही साधक, दार्शनिक, तत्वान्वेषी, भक्त और ज्ञानी रहे हैं। अतः उनका जीवन— दर्शन इन सबके समाहारों एवं समन्वय की परिणति व इन सब व्यक्तियों की अभिव्यक्ति है और उनका आधार पटल भी है। कबीर का जीवन दर्शन मूलतः सृजन और रसन की दृष्टि से भी निश्चित रूप से आध्यात्मिक रहा है इसीलिए उन्होंने मनुष्य को मन वाणी और क्रिया इन तीनों पर एक देखना चाहा था। प्रायः हम कहते कुछ है और करते कुछ है। यह मानव चरित्र को विकृत करने वाला सबसे बड़ा दोष है। कबीर ने ऐसे व्यक्तियों की कटु आलोचना की है। उन्होंने कथनी एवं करनी में भेद न करने का उपदेश दिया है। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि वाणी के अनुरूप क्रिया न करने वाला कुत्ते के समान है और अन्त में उसे यमपुरी अवश्य जाना पड़ता है —

“जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै नाँहि।

मानिश नहीं ते स्वानगति बांध्या जमपुर जाहि॥¹

वस्तुतः जिसकी कथनी एवं करनी में असमानता होती है, उसका मन बँट जाता है। वह अपने आराध्य की भक्ति ही नहीं अपितु जगत का कोई भी कार्य सच्चे मन से नहीं कर पाता है। इस दुराव को दूर करने के लिए कथनी एवं करनी में साक्ष्य अनिवार्य है। इसीलिए कबीर ने व्यर्थ के वाह्याडम्बरो से दूर रहने की शिक्षा दी है। इन्होंने मन की चंचलता को ही प्राणी के समस्त विकारों का मूल माना है। मन पर नियन्त्रण, नैतिकता का आधार स्तम्भ है, इससे साधना ही नहीं अपितु समस्त कार्य सही रूप में संभव होते हैं। कबीर मन की बात इसलिए नहीं मानना चाहते हैं, क्योंकि यह जिस कार्य के अवगुण को जानता है वही बारम्बार करता है। जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति हाथ में चिराग लेकर कुएं में गिर पड़े —

मन जाणै सब बात, जाणत की अवगुण करै।

काहे ही कुसलात कर दीपक कुएं पड़ै॥²

इस रूप में कबीर मन की गतिविधियों से पूरी तरह अवगत रहते हैं। इसीलिए कबीर आशाओं के ईंधन जलाकर उसमें मन को जलाकर राख बना डालते हैं, तथा योगियों के समान विरत होकर अपने

प्रभु को बाधने के लिए सत्कर्मों के सूत बीनते हैं।

आशा का ईंधन करौं, मनसा करूँ विभूति।

जोगी फेरी फिल करौं यौ बिनना वै सूति।।³

इस मन का सबसे बड़ा दुर्गुण अहंकार है। अतः मन के नियन्त्रण का तात्पर्य है इसके अहंकार का निरसन। इसीलिए कबीर का मत है कि अपने मन को घर के भीतर ही घर कर नियन्त्रित कर देना चाहिए। यदि वह कभी स्वच्छन्द रूप से चलना चाहे, तब उसको सचेत करके अंकुश द्वारा सही मार्ग पर लगा देना चाहिए।

मैमंता मन माटि रे, घटही माहै घेरि।

जबही चालै पीठि, दे अंकुस दै दै फेरि।।⁴

सत्य, अहिंसा तथा विवेक में तीनों ही साधक की आन्तरिक शुद्धि के सर्वोत्तम साधन हैं। साथ ही नैतिक जीवन की आधारशिला भी हैं। इसलिए कबीर ने अपने जीवन में इन्हें सर्वोपरि स्थान प्रदान किया। सत्य एक नैतिक गुण होने के साथ ब्रह्म का पर्याय भी माना जाता है। व्यक्ति मिथ्या लोक-लाज के भय से उस सत्य को भुला देता है। कबीर की दृष्टि में सत्याचरण के पथ पर न चलने वाला व्यक्ति जानबूझकर कंचन को छोड़कर कच्ची लकड़ी को पकड़ता है।

कबीर अहिंसा के समर्थक रहे हैं, उन्हें जीव हत्या से बहुत चिढ़ थी। इसीलिए वे शाक्तों एवं मुसलमानों को खरी-खोटी भी सुनाते हैं। मुसलमान निरीह पशुओं को पकड़कर बल पूर्वक काट डालते हैं और कहते हैं, कि यह हलाल है पर जब खुदा के दरबार में वे पहुंचेंगे तब उनका क्या हाल होगा। इसके लिए कबीर निम्न रूप में चिन्तित हैं –

“जोरि करि जिबहै करै, कहते हैं ज हलाल।

जब दपतर देखेगा दर्ई, तब हवैगा कौन हवाल।।⁵

इसी तरह जिह्वा को स्वाद के लिए काजी जब जीव वध करता है तब वह ब्रह्म को दो मानता है और जब मस्जिद पर चढ़कर उसे एक बताता है। तब उसकी बात को कैसे सत्य माना जा सकता है। माता के समान जिसका दूध पीया जाता है उसका वध करना कैसे उचित हो सकता है। वस्तुतः यह वध किसी धार्मिक दृष्टि से नहीं, अपितु अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु किया जाता है।

विवेक के बल पर ही कबीर ने विविध धर्मों एवं सम्प्रदायों की आलोचना करके एक सुन्दर सहज मार्ग प्रस्तुत कर सके थे, साधारण जनों के लिए, जिनकी उच्च व क्लिष्ट साधनाओं तक न तो पहुँच थी और न ही सामर्थ्य। कबीर का विवेक इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि इस सृष्टि का रचयिता नित्य तथा एक रस है अतएव उसके द्वारा निर्मित लोगों में भेदभाव कैसा? जो इसमें पार्थक्य समझते हैं वे मूर्ख हैं। पंचतत्वों से निर्मित शरीर का भार सभी लोग ढोते हुए घूमते हैं किन्तु कबीर ने मानव के प्रति समभाव रखते हुए हरि को निम्न रूप में अपना साथी मान लिया है –

“कबीर सब जग हंढिया मंदिल कंधि चढ़ाइ।

हरि बिन अपना को नहीं देखे ठोकि बजाइ।।⁶

मीठी वाणी प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह कितना ही पाषाण हृदय हो, द्रवित करने की क्षमता रखती है। कबीर एक सन्त के रूप में अपनी सरल, सहज व निष्पक्ष भक्ति पद्धति को प्रत्येक व्यक्ति तक

पहुँचाकर, उसके संघर्षमय जीवन को नयी दिशा प्रदान करने का कार्य करते रहे हैं। अतएव उनकी वाणी भी तदनुकूल निम्न रूप में सरल रही है –

“बानी ऐसी बोलिए मन का आपा खोय।

औरन को सीतल करे, आपहु सीतल होय।।⁷

निर्गुण सन्तों की यह अवधारणा रही है कि भक्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा सांसारिक आकर्षण उपस्थित करते हैं। लोभ, धन, ऐश्वर्य, प्रभुत्व आदि सांसारिक प्रलोभन ही व्यक्ति को अनैतिकता की तरफ प्रेरित करते हैं। इन सांसारिक प्रलोभनों में फँसाने वाली शक्ति को ही कबीर ने ‘माया’ कहा है जिससे मुक्ति सच्चे ज्ञान से ही संभव है। शरीर के बार-बार मरने पर भी यह मरती नहीं और जीव के पीछे लगी रहकर उसे आवागमन के चक्र में उलझाये रहती है।

“माया मुई न मन मुवा मरि मरि गया शरीर।

आशा त्रिस्नां न मुई यों कहि गया कबीर।।⁸

नैतिकता की दृष्टि से जीवन में पवित्रता एवं सात्विकता का विशेष महत्व है। इनसे मानसिक तथा आन्तरिक शुद्धि बनी रहती है तथा मस्तिष्क में विकृत विचार पनपने नहीं पाते हैं। कबीर को पवित्रता अत्यधिक प्रिय थी, किन्तु वाह्याऽम्बर वाली नहीं। उनका वे घोर विरोध करते रहे हैं। वे ब्राह्मणों का उपहास इस रूप में करते रहे हैं कि एक ही हवा है, एक ही पानी है, उनसे तैयार की हुई रसोई को तुमने अलग-अलग समझ लिया है। मिट्टी लेकर जमीन पोत लिया परन्तु यह तो बताओ कि उसमें छूत कहां से आ गयी। वास्तविक पवित्रता का स्वरूप कबीर इस रूप में दिखाते हैं—हे जीव, सत्य और शील का अपने अन्तःकरण में चौंका लगाओ, उसके बाद भक्तिभाव पूर्वक भगवान की सेवा करो। ईश्वर भावपूर्ण भक्ति से ही प्राप्त होते हैं। जीव की पवित्रता तथा सात्विकता उसके जीविकोपार्जन तथा अर्थोपार्जन के लिये किये गये कार्यों से खण्डित नहीं होती, अपितु उसकी वैचारिक निम्नता से खण्डित होती है। इसलिए समदर्शिता एवं अहंकार की भावना से शून्य होकर किया गया विचार एवं क्रिया ही व्यक्ति को नैतिक बनाती है। कबीर की समदर्शिनी दृष्टि में तत्कालीन समाज में व्याप्त, भेदभाव, जातिवाद आदि का कोई महत्व न था, सभी उनकी नजरों में एक समान थे।

व्यक्ति के नैतिक जीवन में सदाचार का अत्यधिक महत्व होता है। विहित कर्मों से भिन्न सदाचार की धारणा में ही नैतिकता के स्वरूप का विकास होता है। दार्शनिक चिन्तन की प्रवृत्ति और मतवादों की प्रवृत्ति के साथ नैतिकता तथा सदाचार सम्बन्धी धारणाओं में भी परिवर्तन होता रहता है। कबीर का निर्देश इस तथ्य से जुड़ा है कि मानव व्यवहार तथा आचरण से सम्बद्ध न होकर, वाचिक और मानसिक आचरण से भी सम्बन्धित हो, तभी समाज में भावात्मक एकता की प्रतिष्ठा संभव हो सकती है। उनके अनुसार समाज के बीच सम्पर्क का मुख्य माध्यम वाणी है, इसमें दुराव छिपाव या पक्षपातपूर्ण व्यवहार करना उचित नहीं है।

इस तरह यह तथ्य परिलक्षित होता है कि कबीर की नैतिक दृष्टि में एक आदर्श मानव का रूप निर्मित होता है। मनुष्य ही इस लोक-सृष्टि का सर्वाधिक चेतनशील प्राणी है जो अपने मनसा, वाचा एवं कर्मणा के द्वारा आदर्श मानव का रूप साकार कर सकता है। जीवन और जगत को कबीर ने बहुत ही निकट एवं गहराई से देखा था। उन्होंने आत्मानुभूति, आत्मचिन्तन एवं आत्ममनन के आधार पर जो देखा और अनुभव किया उसे वाणी के माध्यम से था तथ्य रूप में व्यक्त किया। इनकी कविता,

रचना विचारधारा, चिन्तन और प्रकाशन का आधार सत्य है। जिसकी नींव पर लोक कल्याणकारी भित्तियों को निर्मित किया गया। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम कबीर के विचारों को समझें और उन्हें सम्मान दें और अपने जीवन में, व्यवहार में उन नियमों को अपनायें तभी हमारा जीवन सफल होगा और समाज तथा देश की सर्वांगीण उन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा।

सन्दर्भ सूची

1. कबीर ग्रन्थावली, साखी 2 पृ0 195
2. वहीं साखी 7, पृ0 167
3. वहीं साखी 2, पृ0 166
4. वहीं साखी 19, पृ0 171
5. वहीं साखी 15, पृ0 211
6. वहीं साखी 5, पृ0 85
7. वहीं साखी 2, पृ0 189
8. वहीं साखी 4, पृ0 100



अज्ञेय की कविता और प्रकृति

डॉ० गौरी त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर—हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

उ०प्र० विकलांग उद्धार डा० शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

प्रकृति और मनुष्य का संबंध बहुत पुराना है। यह हमारे जीवन के सबसे करीब होती है। साहित्य में प्रकृति का वर्णन लगभग हर युग की विशेषता रही है। संस्कृत महाकाव्यों से लेकर अब तक प्रकृति अनेक रूपों में चित्रित हुई है। छायावाद युग में प्रकृति का वर्णन बहुत बड़े पैमाने पर हुआ है। छायावाद के बाद यदि प्रयोगवाद पर नजर डाले तो वहां प्रकृति की अत्यधिक प्रचुरता तो नहीं मिलती लेकिन अज्ञेय की कविता में हमें प्रकृति के स्वाभाविक सौंदर्य का वर्णन मिलता है। अज्ञेय अपने समय के बड़े कवि थे। कविता में अपनी बौद्धिकता के लिए ज्यादा जाने जाते हैं, इसके बावजूद प्रकृति इनके काव्य का एक बड़ा हिस्सा रहा है। अज्ञेय की कविता में प्रकृति के विविध रूप हैं। इस संबंध में चन्द्रकान्त वादिवडेकर लिखते हैं— “अज्ञेय की कविता में पाया जाने वाला प्रकृति के प्रति आत्मीय भाव और नगर जीवन के प्रति अरुचि, व्यक्तित्व का अतिशय परिमार्जन एवं अभिजातीयत्व उन्हें एक ओर छायावादी दायरे से बाहर नहीं निकलने देता, तो दूसरी ओर उनकी कालगति के प्रति संवेदना उन्हें नई कविता का मार्ग प्रशस्त करने के लिए बाध्य कर देती है।”

अज्ञेय प्रकृति के प्रति गहरी संवेदना रखते हैं। प्रकृति के रोमांटिक चित्रण के साथ-साथ यथार्थ दृष्टि उनके प्रकृति चित्रण की प्रमुख विशेषता है। अज्ञेय प्रकृति को एक नये स्वरूप में चित्रित करते हैं जो एक सम्मोहन के साथ शुरू होकर सूक्ष्म चिंतन के धरातल तक पहुँचता है। वे प्रकृति और मानवीय संबंधों को एक साथ जोड़कर देखते हैं। प्रकृति के प्रेम को वे कई जगह स्वीकार करते हैं—

बंधु है नदियाँ/प्रकृति भी बंधु है/और क्या जाने, कदाचित/बंधु मानव भी/

आज भागदौड़ भरी जिन्दगी में हमें सुकून के दो चार पल प्रकृति के सानिध्य में ही मिल सकते हैं। इस समय हम प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं। जीवन में हम कितना भी आगे क्यों न निकल जायें प्रकृति की गोद सदैव आकर्षित करेगी—

क्षण भर देख सकें/आकाश, धरा/पूर्वा, मेघाली/पौधे/लता दोलती, फूल/झरे पत्ते।

तितली भुनगे/फुनगी पर पूँछ उठा कर इतराती छोटी—सी चिड़िया।

अज्ञेय के प्रकृति चित्रण का सबसे उन्मुक्त रूप ‘इत्यलम’ में मिलता है। वन—पर्वत, सूर्यास्त, ऊषा, के समय, अन्तिम आलोक, ‘सावन मेघ’, शिशिर की राका निशा, भादों की उमस, बदली की सांझ, बसंत गीत सब प्रकृति परक रचनाएं हैं। अज्ञेय प्रणय भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से ही करते हैं। मनुष्यों के प्रेम की तड़प से कम प्रकृति की तड़प नहीं होती है—

ओ पिया पानी बरसा। घास हरी झुलसानी।

मानिक के झूमर सी झूमी मधुमालती,

झर पड़े पीत अमलतास/ चातक की वेदना विरानी।

अज्ञेय की कविता में स्त्री भी प्रकृति के साथ जुड़ी है। स्त्री के मनोभाव और प्रकृति कभी-कभी एक हो जाती है। कई कविताओं में प्रकृति को एक सुन्दरी के रूप में चित्रित किया है जैसे— कतकी पूनो, शरद और क्वार की बयार। “काँगड़े की छोरियाँ,” मानवीय संबंधों पर आधारित प्रसिद्ध कविता है। जिसमें हवा को माँ के रूप में दिखाया गया है जो खेतों को प्रेमपूर्वक लोरी सुना रही है। रात की चाँदनी भी मानवीय गुणों से सुशोभित है—

चाँदनी चुपचात सारी रात / सूने आँगन में / जाल रचती रही।

अज्ञेय का प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण उन्हें प्रयोगवादी कवियों में श्रेष्ठ बनाता है।

“हरी घास पर क्षण भर” प्रकृति कविताओं का एक संग्रह है। इस संग्रह की एक कविता है सबेरे-सबेरे। इस कविता में प्रकृति हमें जीवन यथार्थता का भी सन्देश देती है—

सबेरे-सबेरे / नही आती बुलबुल / न श्यामा सुरीली / न फटकी न दहंगल / सुनाती है बोली / नहीं फूल सुगंधनी / पतैना सहेली / लगाती है फेरे / जैसे ही जागा / कहीं पर अभागा / अड़ड़ाता है कागा / काँय / काँय / काँय /

सुबह के बाद शरद ऋतु की मादक हवा से प्रकृति का प्रणय व्यापार भी शुरू हो जाता है। यहाँ पर प्रकृति हमें स्वतंत्र और स्वाभाविक लगती है—

बदलों के चुबनों से खिल अयानी हरियाली / शरद की धूप में नहा-निखर कर हो गई है मतवाली / झुण्ड कोरो के अनेकों फबतियाँ कसते मंडराते।

झर रही प्रातर में चुपचाप लजीली शेफाली।

‘बावरा अहेरी’ संग्रह में भी अनेक प्रकृति संबंधी कविताएँ हैं। ‘अरी ओ करुणा, प्रभामय’ और ‘आँगन के पार द्वार’ संग्रह में भी प्रकृति परक कविताएँ हैं लेकिन अज्ञेय इन कविताओं में थोड़ा बौद्धिक हो चले हैं। इन सबमें प्रकृति का सबसे सहज रूप ‘असाध्यवीणा’ कविता में मिलता है। प्रकृति का मृदु और कठोर दोनों ही रूप एक कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। बदली में बिजली की कौंध, पत्तियों पर वर्षा-बूँदों की पटपट, रात में महुए का चुपचाप टपकना, खग शावक की चिहूँक, वन झरने का कल-निनाद, ढोलक की थाप, गड़रिये की बाँसुरी, फुलसुगंधी की फुरकन, ओस बूँद की ढरकन का चित्रण है तो प्रकृति के कठोर रूप में काले मेघों की बाढ़ जो हाथियों की चिघाड़ के समान है। चढ़ती बहिया की घरघराहट, झंझा की फुफकार, पेड़ों का अरराहट, टूट-टूट कर गिरना, ओले की कड़ी चपत, गिरती हुई चट्टानों की गूँज इत्यादि का चित्रण किया है। असाध्य वीणा हिन्दी की लंबी कविताओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

इसके अलावा ‘कितनी नावों में कितनी बार, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ’ इन संग्रहों में क्रमशः बौद्धिकता, आती चली गयी है। अज्ञेय प्रकृति का चित्रण बहुत स्वाभाविक, अंदाज में करते हैं। मानवीय संवेदना इनके प्रकृति चित्रण की प्रमुख विशेषता है। प्रकृति के सौंदर्य का चित्रण उनकी खुद की सौंदर्य दृष्टि को भी अभिव्यक्त करता है।

सूप-सूप भर / धूप कनक / यह सूने नभ में गई बिखर / चौंधाया / बीन रहा है। उसे अकेला एक कुरर।

कुछ इसी तरह पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ की पंक्तियाँ, ऐसा लगता है जैसे कवि प्रकृति के साथ-साथ अपनी प्रिया से भी मुखातिब है—

कितनी जल्दी/तुम उझझी/झिझकी/ओट हो गई, नंदा/उतने ही में बीन ले गई/धूप कुन्दन की अंतिम कनिका।

अज्ञेय प्रकृति की भावनाओं और कल्पनाओं से जोड़कर देखते हैं। इसके साथ ही अपनी आंतरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति भी प्रकृति के ही माध्यम से करते हैं। शरद की सांझ के पंक्षी, कविता में अज्ञेय प्रकृति के बहाने अपनी इच्छाओं को स्पष्ट करते हैं। अज्ञेय प्रकृति से कुछ चीजे उधार मांगने में तनिक भी संकोच का अनुभव नहीं करते हैं। धूप से नरमी, घास की पत्ती से हरियाली, शंखुपुष्पी से उज्ज्वलता, हवा से खुलापन और लहरों से उल्लास चाहते हैं—

क्योंकि यही सब तो है जीवन/गरमाई, मिठास, हरियाली, उजाला, गंदवाही, मुक्त खुलापन/लोच, उल्लास, लहरिल प्रवाह।

अज्ञेय की कविता में कहीं—कहीं दार्शनिकता भी नजर आती है। वे जीवन के प्रति बहुत जीवंतता दिखाते हैं साथ ही कविताओं में जीवन के प्रति अनासक्त भाव को भी दिखाते हैं। इस विचार को फूल के माध्यम से रखते हैं—

फूल को प्यार करो। पर झरे तो झर जाने दो।
जीवन का रस लो देह मन आत्मा की रसना से।
पर जो मरे उसे मर जाने दो।

यदि हम ऐसे ही जीनें लगे तो जिंदगी के दुःख कम लगेंगे। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' में भी उन्होंने जीवन की क्षणभंगुरता को प्रस्तुत किया है।

प्रकृति का मानवीकरण प्रकृति चित्रण में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अज्ञेय ने प्रकृति के मानवीकरण पर सबसे ज्यादा कवितायें लिखी हैं। भोर का एक चित्र प्रस्तुत है, जिसमें भोर को एक स्त्री के रूप में दिखाया गया है:—

भोर चोरी से नहीं, अनजाने, अचानक/मैंने तुम्हें झरने पर देखा। आह! ऐसे धुलते हैं तार सोने के। ऐसे मंजता है कुंदन/ऐसे मानो ओस से। प्रभामण्डल से घिरा हुआ। क्वार की धूप में चमक उठता है। सबेरे का फूल।

प्रतीक विधान अज्ञेय के काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। अज्ञेय स्वयं प्रतीकों के बारे में अपनी टिप्पणी देते हुये कहते हैं— “प्रकृति का सानिध्य नये कवि को पहले—सा आश्वस्त भाव नहीं देता, उसकी आस्थाओं को पुष्ट नहीं करता इसलिए वह नये प्रतीकों की खोज करता है। पर प्रतीकों की रचना के—उनकी अर्थवत्ता के विकास और ह्रास अन्वेषण का क्षेत्र, चेतन और अवचेतन के संबंधों का क्षेत्र है जो जोखिम भरा भी है, और केवल प्रकृति काव्य के रूप में परिवर्तन के वर्णन के लिए अनिवार्य भी है।” अज्ञेय प्रतीक को प्रकृति के सभी रूपों से लेते हैं। उनका प्रकृति वर्णन उनकी निजी अनुभूतियों में मिलकर एकदम जीवंत हो उठता है। अज्ञेय का प्रकृति चित्रण जहां एक ओर छायावादी प्रकृति चित्रण परम्परा को आगे बढ़ाता है वहीं स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति का पोषण भी करता है। अज्ञेय व्यक्ति और समाज के बीच में प्रकृति को रखकर देखते हैं। डा० रामविलास शर्मा ने अज्ञेय के प्रकृति चित्रण पर टिप्पणी करते हुये लिखा है—

“प्रकृति से अज्ञेय का वह रागात्मक संबंध है जो उनके काव्य की श्रेष्ठ उपलब्धि है। प्रकृति प्रेम

उनमें नैसर्गिक है, खेतों, खलिहानों से दूर साधारणतः उनका मन ऐसे प्राकृतिक दृष्यों में रमता है जो सामान्य हिन्दी पाठको के लिए असाधारण होते हैं। शब्दों और उपमानों की तरह इस तरह के दृश्य भी काफी अनुसंधान के बाद प्राप्त होते हैं। वर्ड्सवर्थ का प्रकृति चित्रण काफी सुरक्षित किस्म का माना जाता है, किन्तु फिर भी वर्ड्सवर्थ निर्जन प्रकृति के कवि नहीं हैं। वह प्रकृति के संसर्ग में निर्धन, पीड़ित संघर्षरत मनुष्यों को भी देखता है पर अज्ञेय की प्रकृति को मनुष्य का अस्तित्व गंदा नहीं करता। उनके लिए पर्वतों में मनुष्य की बस्तियां नहीं हैं, बस प्रकृति है और हैं अज्ञेय।”

अज्ञेय के काव्य में शुरू से ही प्रकृति के प्रति गहरी संवेदना है। ये प्रकृति के सुख-दुख को पहचानते हुये अपनी निजी सुख-दुख में उसे सहभागी पाते हैं। वास्तव में अज्ञेय का पूरा जीवन— बचपन से जवानी और उसके बाद भी यायावरी ही रहा। इस यायावर जीवन ने ही प्रकृति के प्रति जो गम्भीर चिंतन, मनन उनमें पैदा किया, वह आजीवन उनमें कायम रहा। वे हिन्दी साहित्य के “बौद्धिक पन्त” कहे जा सकते हैं। संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी, बांग्ला, भाषा एवं साहित्य के अध्ययन ने उनके प्रकृति चित्रण को निरन्तर उद्दीप्त किया। उनका प्रकृति चित्रण न केवल उनके कविता-संग्रह में अपितु कहानी-संग्रह, उपन्यासों यात्रा-वृत्तान्तों, निबन्ध संग्रहों, संस्मरण, डायरियों, गद्य एवं नाटक में भी परिलक्षित होता है। आधुनिक काल के श्रेष्ठ समालोचक डा० नामवर सिंह एवं अशोक बाजपेयी को भी ‘अज्ञेय एवं उनकी कविता के प्रति अपने दृष्टिकोण की पुनर्व्याख्या करने की आवश्यकता पड़ी।

निःसन्देह, वे आधुनिक साहित्य के शलाका-पुरुष थे। जिसने हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु के बाद एक दूसरे आधुनिक युग का प्रवर्तन किया।

सन्दर्भ सूची

- ♦ हरी घास पर क्षणभर
- ♦ बावरा अहेरी
- ♦ अरी ओ करुणा प्रभामय
- ♦ आँगन के पार द्वार



भारतेन्दु का नाट्य गौरव : राष्ट्रीय चेतना का नवीन आख्यान

डॉ० आलोक राय

11/23/2, लाजपत राय रोड, नया कटरा, इलाहाबाद-211002

उन्नीसवीं सदी के भारतीय नवजागरण में हिन्दी लेखकों की विशेष भूमिका रही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ऐसे ही देदीप्यमान लेखक हैं जिनका उदय हिन्दी साहित्य के नवजागरण और गतिमयता के लिए प्रेरक सिद्ध हुआ। नवजागरण के अग्रदूत के रूप में उनका प्रयास बहुत महत्वपूर्ण ही नहीं, अपितु गौरवपूर्ण भी है। नवजागरण का यह प्रयास विशेष रूप से नाटकों के माध्यम से व्यक्त किया गया। नाटक को ही इस कार्य हेतु चुनने के पीछे उनकी यह धारणा थी कि उस काल की जनता इतनी साक्षर नहीं थी कि वह पोथी-ज्ञान का सहारा लेती, उसे तो दिखा-सुनाकर ही कुछ समझाया जा सकता था, जागृत एवं जागरूक किया जा सकता था। इसी कारण उन्होंने जनता की नब्ज को पहचानते हुए, उस तक अपनी विचाराधारा पहुँचाने के लिए नाटक को ही माध्यम बनाया और उस साहित्य को पुनः जनता के बीच ला खड़ा किया जो रीतिकाल में दरबारों की ही वस्तु बन गया था। उन्होंने इस बँधी-बँधायी रीतिकालीन परम्परा को तोड़कर बहुत ही सराहनीय कार्य किया और नाटकों को एक नयी दिशा प्रदान की। यही कारण है कि उन्होंने संस्कृत तथा बंगला जैसे समृद्ध साहित्य से भी सामग्री आत्मसात् करने में कोई संकोच नहीं किया।

समाज सुधारक दृष्टिकोण होने की वजह से भारतेन्दु जी ने देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्याओं को उजागर कर उन्हें अपने नाटकों में उचित स्थान दिया है। उनके नाटकों की जीवनधारा प्राचीन आदर्शों और उनके उज्ज्वल पक्ष को उजागर करने की रही है। वे सदैव सामाजिक बुराइयों, विकृतियों और रूढ़ियों का विरोध कर नये आदर्श की स्थापना में सक्रिय रहे। साथ ही प्राचीन परम्परा और आदर्श के पोषक भी रहे। नारी जाति के उत्थान हेतु उन्होंने अत्यधिक परिश्रम किया। यही कारण है कि उनके नाट्य-साहित्य में राष्ट्रीय चेतना एवं सामाजिक पुनरुत्थान की भावनाएँ सर्वत्र दिखाई देती हैं। राष्ट्रीयता और समाज-संस्कार उनके नाटकों के मूल मंत्र हैं। उन्होंने मौलिक और अनूदित—दोनों प्रकार के नाटकों का सृजन किया है। इन नाटकों की अन्तर्वस्तु की सर्वप्रमुख विशेषता है—प्रेम। यह प्रेम कहीं भक्ति के रूप में और कहीं राष्ट्रीय प्रेम, मानव प्रेम तथा संस्कृति-प्रेम के रूप में मूर्त हुआ है। यह प्रेम ही उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है। प्रेम की इसी मधुर व्यंजना के कारण उनके नाटकों को पूर्णत्व की प्राप्ति होती है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अनूदित नाट्यकृतियों में 'विद्या सुन्दर'(1868 ई०) का सर्वप्रथम स्थान है। यह संस्कृत के 'चौर पंचाशिका' नाटक पर आधारित है। नाटक की भूमिका में भारतेन्दु जी का कथन है—“विद्या सुन्दर की कथा बंगदेश में अति प्रसिद्ध है। कहते हैं कि चौर कवि जो संस्कृत में चौरपंचाशिका का कवि है, यही सुन्दर है। कोई इस चौरपंचाशिका को वररुचि की बनायी मानते हैं। जो कुछ हो, विद्यावती की आख्यायिका का मूल सूत्र वही चौरपंचाशिका है।” उसी उपाख्यान को बंगाल के कवि भारतचन्द्र राय ने काव्य-रूप में प्रस्तुत कर प्रसिद्ध किया और बाद में महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर ने

उसी काव्य का आधार लेकर 'विद्यासुन्दर' नाटक का निर्माण किया। भारतेन्दु जी ने उसी नाटक का आधार लेकर अपना अनुवाद किया था।

इसमें तीन अंकों में विभाजित विद्या और सुन्दर की प्रेमकथा का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। नाटक का प्रारम्भ मंगलाचरण आदि से न होकर सीधे विषय से होता है। वर्द्धमान नगर के राजा की विदुषी और रूपवती कन्या विद्या की प्रतिज्ञा है कि जो उसे शास्त्रार्थ में हरायेगा, उसी के साथ वह विवाह करेगी किन्तु सभी राजकुमार परास्त हो जाते हैं। अन्त में कांचीपुर के राजा गुण सिन्धु का पुत्र सुन्दर निमंत्रित किया जाता है। सुन्दर वर्द्धमान में आकर हीरा मालिन के घर ठहरता है। वह विद्या के रूप-गुण को सुनकर उससे इतना प्रेम करने लग जाता है कि उसके पास प्रणय-निवेदनस्वरूप फूलों का एक अत्यन्त कलात्मक धनुष-बाण एवं माला भेजवाता है। विद्या भी उसके कलात्मक कौशल को देख और रूप-गुण को सुनकर उसे बिना देखे ही प्रेम करने लगती है। दोनों का प्रेम एक-दूसरे को देखकर और सुने हुए रूप-गुण के अनुसार ही पाकर और प्रगाढ़ हो जाता है, जो अन्त में माता-पिता की सम्मति से परस्पर विवाह द्वारा स्थायी हो जाता है। दोनों के परस्पर मिलन के प्रयत्नों को दिखाकर लेखक ने नाटकीय औत्सुक्य का सृजन किया है। मिलन के बाद दोनों के विवाह में उत्पन्न बाधाएँ औत्सुक्य को और भी बढ़ा देती हैं। दोनों का वियोग होता है तो थोड़ी देर के लिए, जिससे मिलन और अधिक मधुर हो जाए लेकिन प्रेमी-प्रेमिका तड़प-तड़पकर कुम्हला न जाएँ। बीच-बीच में गीत नाटक का रोमांटिक सौन्दर्य और निखार देते हैं।

यह नाटक विशेष दृष्टिकोण के कारण ही गृहीत हुआ है। कुछ लोगों ने इसे अनायास ही प्रतीकात्मक रूप दिया है जो कि अनुचित है। डॉ० बच्चन सिंह के शब्दों में, "इस नाटक के अनुवाद या छायानुवाद का मुख्य कारण है इसमें उठायी गयी समस्या की सामयिक उपयोगिता। प्रेम-विवाह (Love Marriage) को माता-पिता द्वारा अनुमोदित ब्राह्म-विवाह की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर मानकर भारतेन्दु ने आज के बहुत पहले इस अधुनातन समस्या के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया था। इसके नायक के इसे 'बुरे कर्म' कहने तथा नायिका को इसे 'अपराध' मानने के मूल में सामाजिक बन्धनों का तकाजा ही समझना चाहिए।"¹

'रत्नावली'(1868 ई०) भारतेन्दु का अनुदित और अपूर्ण नाटक है। इस नाटक के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है— "शकुन्तला के सिवाय और सब नाटकों में रत्नावली बहुत अच्छी और पढ़ने वालों को आनन्द देने वाली है।" प्रकृति से ही सहृदय और रसिक होने के कारण उदयन की प्रेम कहानी में रुचि प्रदर्शित करना उनके लिए अस्वभाविक नहीं है। रीतिकालीन परम्परा से सर्वथा मुक्त न होने से भी यह दरबारी नाटक उन्हें प्रिय मालूम हुआ। अर्थ-प्रकृतियों, कार्यावस्थाओं और पंचसन्धियों की दृष्टि से यह नाटक संस्कृत के नाट्यसाहित्य में अप्रतिम है। कदाचित् हिन्दी नाटकों में इन प्रकृतियों आदि को समाहित करने की दृष्टि से भारतेन्दु जी ने इसका अनुवाद करने की योजना बनायी हो। किन्तु 'नाटक' शीर्षक विस्तृत प्रबन्ध में उन्होंने युगानुकूल एवं समसामयिक परिवर्तनों को स्वीकार करते हुए यह भी लिखा है कि, "अब नाटकों में कहीं 'आशीः' प्रभृति नाट्यालंकार, कहीं 'प्रकरी', कहीं 'विलोचन', कहीं 'संफेट', 'पंचसन्धि' वा ऐसे ही अन्य विषयों की कोई आवश्यकता नहीं बाकी रही।"² सम्भवतः यही कारण है कि उन्होंने बाद के प्रायः सभी नाटकों को संस्कृत नाट्यशास्त्र की समीक्षा पद्धति से अलग ही रखा है।

'प्रवास नाटक'(1868 ई०) भारतेन्दु जी का अपूर्ण नाटक है। राधाकृष्णदास ने उनके नाटकों (20)

की सूची में सबसे पहले 'प्रवास नाटक' का ही उल्लेख किया है। सन् 1868 ई० में भारतेन्दु जी ने यह नाटक लिखना शुरू किया था, किन्तु वह अपूर्ण रह गया था और अब उसका कोई अंश उपलब्ध नहीं है।

'पाखण्ड विडम्बन'(सन् 1872 ई०) कृष्ण मिश्र द्वारा रचित 'प्रबोध चन्द्रोदय' के तृतीय अंक का अनुवाद है। यह एक प्रहसन है जिसमें भक्ति की श्रेष्ठता एवं अन्य मतों की व्यर्थता सिद्ध की गयी है। इस प्रहसन से भारतेन्दु जी के धार्मिक विचारों पर प्रकाश पड़ता है। वह न संसार को क्षणिक मानते थे, न केवल भोग का जीवन बिताने में विश्वास करते थे। उनके लिए भक्ति मार्ग ही सबसे कल्याणकारी मार्ग था। इसकी कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है— शान्ति अपनी सखी करुणा के साथ अपनी माँ श्रद्धा को खोजने निकलती है। दिगम्बर सिद्धान्त और भिक्षुक बुद्धागम के साथ तमोगुणी श्रद्धा को देखकर वह अत्यन्त दुःखी होती है। अपने-अपने धर्म के पक्ष-समर्थन के लिए दिगम्बर, भिक्षुक और कापालिक के बीच वाद-विवाद होता है। यहाँ तक कि कापालिक तलवार लेकर दिगम्बर पर आक्रमण भी कर देता है। श्रद्धा, दिगम्बर और भिक्षुक का आलिंगन करती है और अपनी जूठी मदिरा भी पिलाती है। कापालिक श्रद्धा को प्राप्त करने के लिए महाभैरवी विद्या का प्रयोग करने को उद्यत होता है। दोनों सखियाँ यह बात देवी विष्णुभक्ति से कहती हैं।

कहना न होगा, प्रहसन में लेखक ने धार्मिक पाखण्डों पर व्यंग्य³ और वैष्णव धर्म की ओर झुकाव⁴ लक्षित किया है। डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्णीय के शब्दों में, "इस प्रतीकात्मक कथा द्वारा यही दिखलाया गया है कि सांसारिक लोग किस प्रकार सात्विकी श्रद्धा से विमुख होकर तथा इन्द्रियजनित सुख में पड़कर धर्म के वास्तविक उदात्त स्वरूप को भूल जाते हैं और उसके आडम्बरपूर्ण वाह्य रूप में पड़कर झगड़ों और अधर्म की स्थापना करते हैं।"⁵

'धनंजय विजय' (1873 ई०) एक अनुदित व्यायोग है। ग्रन्थ के मूल लेखक कांचन कवि हैं। यह महाभारत की कथा पर आधारित है। अपने अज्ञातवास में पाण्डव राजा विराट के यहाँ समय व्यतीत करते हैं। अज्ञातवास के अन्तिम दिन कौरव विराट की गायें हर लेते हैं। अकेले अर्जुन उन सबको परास्त कर गायें छुड़ा लाते हैं। राजा प्रसन्न होकर अपनी पुत्री का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से कर देते हैं। इस व्यायोग में मंगलाचरण, भरतवाक्य तथा रचना के अन्य लक्षण विद्यमान हैं। पद्यांश इस अनुवाद में भी अधिक हैं। अनेक पदों में रीतिकालीन कवियों की तरह 'वीररस' का वर्णन है— 'कटे कुण्ड सुण्डन के रुण्ड में लगाय तुण्ड' इत्यादि। व्यायोग रूपक का एक भेद है जिसमें एक अंक तथा एक ही दिन का वृत्तान्त होता है।

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'(1873 ई०) एक मौलिक प्रहसन है जिसमें धार्मिक अन्धविश्वासों का व्यंग्यात्मक चित्र है। इसमें मांस-मदिरा भक्षकों और वेद तथा धर्म के नाम पर हिंसा और अनाचार करने वालों पर करार व्यंग्य है।⁶ नाटक के सभी पात्र मांस, मदिरा और मैथुन को जीवन का सार समझते हैं तथा अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए स्मृति, भागवत, वेद आदि तक से प्रमाण प्रस्तुत कर देते हैं। यह प्रहसन धर्म के नाम पर बलि देने का प्रतिकार करता है। उस युग में सनातनधर्मी पण्डितों में बहुत से बलिप्रेमी विद्यमान थे जो दूसरों का परलोक साधने के बहाने अपनी लौकिक तृष्णा मिटाते थे। भारतेन्दु ने इन्हीं पुरोहितों पर प्रहार किया है। पहले अंक में 'रक्त से रंगा हुआ राजभवन' दिखाई देता है। राजा और पुरोहित दोनों जनता को ठगकर अपनी इच्छाएँ पूरी करते हैं। बलिदान के साथ जुआ, मदिरा और मैथुन को भी न्यायपूर्ण ठहराकर ठगों का वर्ग धर्मसाधना करता है। दूसरे अंक में विदूषक के मुँह से

भारतेन्दु ने धूर्त वैष्णवों की आलोचना कराई है। तीसरे अंक में राजा और मंत्री अपने आचार के लिए शास्त्रों की दुहाई देने में एक-दूसरे के कान काटते हैं। यमपुरी में इन सबको दण्ड मिलता है। चलते-चलते भारतेन्दु चित्रगुप्त से यह कहलाना नहीं भूले कि, "अंगरेज के राज्य में जो उन लोगों के चिन्तानुसार उदारता करता है, उसको 'स्टार ऑफ इण्डिया' की पदवी मिलती है।" मंत्री की व्यवस्था के बारे में चित्रगुप्त से कहलाया है, "प्रजा पर कर लगाने में तो पहिले सम्मति दी पर प्रजा के सुख का उपाय एक भी न किया।" इस तरह भारतेन्दु ने अंग्रेजी राज्य की भी आलोचना की है और हिमायतियों का उपहास किया है।

प्रहसन में भारतेन्दु का व्यंग्य तीक्ष्ण और मार्मिक है। वह दूसरों पर निडर होकर फटियाँ कसते हैं। उनका उद्देश्य मनोरंजन करना ही नहीं है, वरन् अपने व्यंग्य के प्रहार से कुरीतियों और उनके पक्षधरों को निर्मूल कर देना भी है। उनकी प्रहसन-कला का आधार यथार्थ जीवन का अनुभव, समाज-सुधार का स्वस्थ दृष्टिकोण और अनाचार के प्रति उनकी घृणा है। प्रहसन के भरतवाक्य से ही कथा का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है—

‘निज स्वारथ को धरम दूर या जग सों होई ।
ईश्वर पद मैं भक्ति करैं छल बिनु सब कोई ॥
खल के विष-बैनन सों मत सज्जन दुख पावैं ।
छुटै राजकर मेघ समय पै जल बरसावैं ॥
कजरी तुमरिन सों मोड़ि मुख सत कविता सब कोई कहै ।
यह कविवानी बुध-बदन में रवि ससि लौं प्रगटित रहै ॥’

इस प्रहसन के माध्यम से भारतेन्दु ने धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वासों का प्रतिकार करते हुए सन्त कवियों की परम्परा को आगे बढ़ाया और वर्तमान युग के रचनाकारों को निर्भीकता से सामाजिक और धार्मिक अन्धविश्वासों का विरोध करने का रास्ता दिखाया।

‘कर्पूरमंजरी’(1875 ई0) एक अनूदित सट्टक है, जिसकी मूल रचना राजशेखर कवि द्वारा शुद्ध प्राकृत भाषा में हुई थी। सूत्रधार के अनुसार यह ‘राजशेखर’ और ‘हरिश्चन्द्र’ का रचा हुआ है। सम्पूर्ण कथा चार अंकों में विभाजित है, जो इस प्रकार है— वसन्त के वातावरण में राजा चन्द्रपाल के हास-उपहास-विलास के बीच सिद्ध भैरवानन्द का आगमन होता है। राजा उससे सिद्धि-शक्ति दिखाने को कहता है तो वह अपने मंत्रबल से विदर्भ नगर की अतीव सुन्दरी राजकुमारी कर्पूरमंजरी को बुलाता है। राजा और कर्पूरमंजरी एक-दूसरे को पसन्द करने लगते हैं। रानी को यह बात अच्छी नहीं लगती है और वह उन दोनों के प्रेम के बीच अनेक बाधाएँ पैदा करती है। वह राजा का विवाह एक अन्य राजा की पुत्री घनसारमंजरी से कराना चाहती है किन्तु भैरवानन्द के प्रभाव से राजा का विवाह कर्पूरमंजरी से होता है।

यह सट्टक मंगलाचरण, भरतवाक्य तथा अपने अन्य लक्षणों से समन्वित है। रचना में हास्य का अच्छा प्रयोग हुआ है। राजा और विचक्षणा का पद्य-संवाद एक नया प्रयोग है। इसमें हरिश्चन्द्र जी ने पद्यमय नाटक लिखने की कला-विशेष का भी प्रदर्शन किया है। राजा और विचक्षणा का पद्य-संवाद एक नया प्रयोग है। कर्षति में रसोत्कर्ष के लिए देव और पद्माकर के छन्द भी दिये गये हैं।

सत्य हरिश्चन्द्र’(1875 ई0) नाटक हिन्दी साहित्य के लिए गौरव की वस्तु है। यह क्षेमीश्वर कष्ट

‘चण्डकौशिक’ के आधार पर लिखा गया है, अतः इसकी मौलिकता विवादास्पद है। बाबू ब्रजरत्नदास और दशरथ ओझा ने इसे मौलिक माना है किन्तु डॉ० सोमनाथ गुप्त इसे रूपान्तरित नाटक मानते हैं। यह भारतेन्दु जी की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में से है। उनको यह रचना अत्यधिक प्रिय थी। इसमें सत्य-प्रतिज्ञ महाराज हरिश्चन्द्र की प्रसिद्ध कथा का चार अंकों में वर्णन है। इसका कथानक इस प्रकार है— नारद इन्द्र से राजा हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता की प्रशंसा करते हैं तो इन्द्र ईर्ष्याभाव दर्शाते हैं और हरिश्चन्द्र की परीक्षा लेने का निर्णय लेते हैं। हरिश्चन्द्र विश्वामित्र को पृथ्वी दान में दे देते हैं। उसके बाद उनके ऊपर अनेक विपत्तियाँ आती हैं किन्तु वह अपनी सत्यवादिता पर अडिग रहते हैं। यहाँ तक कि वे स्वयं को एक डोम के हाथों बेच देते हैं, पुत्र की मृत्यु हो जाती है और पत्नी से वे शवदाह के करस्वरूप उसकी साड़ी का टुकड़ा माँग बैठते हैं। अन्ततः वे अपनी परीक्षा में खरे उतरते हैं और देवताओं द्वारा उनका जयघोष किया जाता है।

नाटक का कथन पौराणिक है, लेकिन लक्ष्य समसामयिक है। इस नाटक में नारद इन्द्र के झूठे शिष्टाचार पर उसे फटकारते हुए कहते हैं, “केवल जैसा राजा लोगों में एक सहज मुँह—देखा व्यापार होता है, वैसी ही बातें आप इस समय कर रहे हैं।” नारद की इस उक्ति से सूत्रधार के उस कथन की तुलना करनी चाहिए जिसमें वह साहित्य के प्रति उच्च वर्गों की उदासीनता और उनकी झूठी शिष्टता पर खेद प्रकट करता है, “परन्तु हा! सोच की बात है कि जो बड़े-बड़े लोग हैं और जिनके लिए कुछ हो सकता है, वे ऐसी अन्ध परम्परा में फँसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं पूछ ही नहीं है। केवल उन्हीं की चाह और उन्हीं की बात है जिन्हें झूठी खैरखाही दिखाना वा लम्बा-चौड़ा गाल बजाना आता है।” नाटक का इन्द्र ऐसे ही बड़े-बड़े लोगों के वर्ग का प्रतिनिधि है। गुणियों की कद्र करना तो दूर, वह उनसे ईर्ष्या करता है। उनके गुणों का उत्कर्ष उसे अपने राजसिंहासन के लिए ही खतरा मालूम होता है। लेकिन नारद ऐसे लोगों को बड़ा नहीं मानते।

वस्तुतः नाटक की कथावस्तु का ऊपरी ढाँचा अलौकिक है, लेकिन वास्तव में यह नाटक यथार्थवाद के नये प्राणों से स्पंदित है। इस नाटक में हम ऋण से दुःखी लोगों को अपनी पत्नी, अपने पुत्र और अपने को ही बेचते नहीं देखते, अपितु यहाँ काशी की भीड़भाड़ भी है जहाँ “कामकाजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं, भीड़ के मारे पैर धरने की जगह नहीं है और मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता।” यह भारतेन्दु की काशी है जहाँ हरिश्चन्द्र सिर पर तृण रखे बिकने को घूमते हैं। शैव्या—विलाप नाटक का सबसे करुण अंश है। एक बार हरिश्चन्द्र भी विचलित होकर आत्महत्या का विचार करते हैं। जब शैव्या व्याकुल होकर नदी में डूबने के लिए दौड़ती है, तब हरिश्चन्द्र, फिर प्रकृतिस्थ होकर, उसे चेतावनी देते हैं, “पराधीन सपनेहु सुख नहीं।” और अन्त में जब हरिश्चन्द्र दुखी शैव्या से साड़ी के कफन से श्मशान—कर के रूप में थोड़ा भाग फाड़ने को कहते हैं, तब पाठक का धैर्य चरम सीमा तक पहुँच कर टूट जाता है और उसके बाद हरिश्चन्द्र की जय—जयकार से ही कथा का अन्त हो सकता है। ‘सत्य हरिश्चन्द्र’ का अन्तिम अंक हिन्दी साहित्य के अत्यन्त करुण अंशों में अमर रहेगा। वह भारतीय जनता के धैर्य और उसके हृदय की अथाह करुणा की अपूर्व व्यंजना है।

भारतेन्दु जी अन्त में यह इच्छा प्रकट करते हैं कि भारत अपना सत्व गहे, नर—नारी सम हों और ग्राम कविता छोड़कर सब लोग सुकवियों की अमृतवाणी सुनें। यह भरतवाक्य ‘सत्य हरिश्चन्द्र’ की मूल प्रेरणा— भारतेन्दु की देशभक्ति का एक और प्रमाण है। इसके साथ ही हरिश्चन्द्र यह भी चाहते हैं कि

दुष्टों के कारण सज्जन दुःखी न हों। बच्चन सिंह ने इस नाटक की प्रशंसा करते हुए लिखा है, “जहाँ भारतेन्दु ने अपने समाज की अनेक त्रुटियों को नाटक के माध्यम से हमारे सम्मुख रखा, वहाँ वे कुछ उच्च आदर्शों को भी सामने ले आये।”⁹ कुल मिलाकर ‘सत्य हरिश्चन्द्र’ भारतेन्दु की अनुपम कृति है।

‘प्रेमजोगिनी’ (1875 ई0) भारतेन्दु का अपूर्ण मौलिक नाटक है। इसमें कथावस्तु का कोई संगठित रूप नहीं है। इसके प्रथम अंक के चार दृश्य ही लिखे जा सके हैं। किन्तु इनमें भी केवल इतनी ही सुसम्बद्धता दिखायी पड़ती है कि काशी के चार विभिन्न स्थानों पर जुटने वाले व्यक्ति अपनी विभिन्नता में भी कुत्सित विचारों में एकता रखते हैं।¹⁰ इस नाटक में बनारस के पण्डों, धर्म के ठेकेदारों और तथाकथित धार्मिक व्यक्तियों पर करारे व्यंग्य हैं। इसमें भारतेन्दु जी ने अपने जीवन के सम्बन्ध में भी संकेत दिये हैं। इसके प्रथम दो दृश्य ‘काशी के छाया-चित्र या दो भले-बुरे फोटोग्राफ’ के नाम से भी प्रकाशित हुए हैं। नाटक में एक तरफ उस संस्कृति का चित्रण है जो भारतवासियों को कापुरुष और दीन बनाती है, दूसरी तरफ एक झलक उस संस्कृति की भी है जो उन्हें इस दीनता और कापुरुषता से निकालना चाहती है। पहली तरह की संस्कृति के प्रतीक वे तमाम निठल्ले लोग हैं जो मन्दिरों में इकट्ठे होकर धर्म के नाम पर अनाचार करते हैं, दूसरी तरह की संस्कृति के प्रतीक ‘देखी तुमरी कासी’ गाने वाला परदेसी और रामचन्द्र हैं। यह अधूरा नाटक है, इसलिए इसमें पहली तरह की संस्कृति की तस्वीर तो भरी-पूरी मिलती है, लेकिन दूसरी तरह की संस्कृति के प्रतिनिधियों का चित्रण विस्तार से नहीं हो पाया है। उसकी झलक भर ही मिलती है।

नाटक का महत्त्व यह है कि यथार्थवादी रचना करने में यह भारतेन्दु का एक नया प्रयास है। यहाँ काशी का नव उज्ज्वल जलधार और पापविनाशिका वाला रूप नहीं मिलता, वरन् मैली गली भरी कतवारन की काशी दिखाई देती है। यहाँ भारतेन्दु ने उस काशी की निर्मम आलोचना की है जिसने उन्हें एक तरह से समाज-बहिष्कृत सा कर दिया था। यह काशी धनवास, वनितावास जैसे लम्पटों और भोजन-दक्षिणा के प्रेमी पुरोहितों की काशी है। ‘प्रेमजोगिनी’ इस पतनशील सामन्ती संस्कृति की तीव्र आलोचना करने वाला नाटक है। समग्रतः नाटक में भारतेन्दु ने वर्तमान पाखण्डमय धार्मिक और सामाजिक जीवन के बीच अपनी परिस्थिति का चित्रण किया है।¹¹

‘श्री चन्द्रावली’ (1876 ई0) भारतेन्दु जी की मौलिक नाटिका है, जिसकी रचना उन्होंने अपने भक्ति-सिद्धान्तों के प्रतिपादन हेतु की है। कथा मूलतः पौराणिक है। भागवत और सूरसागर में भी चन्द्रावली का उल्लेख मिलता है। भारतेन्दु जी ने इस नाटिका द्वारा अपनी पुष्टिमागीय भक्ति का प्रतिपादन किया है। भारतेन्दु स्वयं युगलमूर्ति के उपासक थे, अतः इसमें चन्द्रावली और कृष्ण की गलबाँही डाले युगलमूर्ति की भक्ति भी है।¹² वहीं डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने इस नाटिका में वैष्णवधर्मानुमोदित वल्लभसम्प्रदायान्तर्गत गष्ठीत आध्यात्मिक प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति को स्वीकार किया है।¹³

नाटिका का समस्त कथानक प्रेम, विरह और मिलन के सम्बन्ध-सूत्र में गुथा हुआ है। विरह प्रेम की कसौटी है। चन्द्रावली कृष्ण से प्रेम करती है किन्तु अनेक बाधाओं के कारण कृष्ण से नहीं मिल पाती। उसका विरह तीव्र होता जाता है। अन्त में सखियों के सहयोग से तथा राधा की अनुकम्पा से कृष्ण से उसका मिलन होता है। ‘श्री चन्द्रावली’ प्रेम नाटिका है और साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त ही उत्कृष्ट रचना है। इसके गीत भारतेन्दु के उत्कृष्टतम गीतों में स्थान रखते हैं। नाटिका में काव्य का आनन्द है और यह अपने सभी लक्षणों से समन्वित है। अपनी यह रचना भी भारतेन्दु जी को बहुत प्रिय थी। इसके ब्रजभाषा

और संस्कृत में अनुवाद भी हुए। प्ररोचना से लेखक के जीवन से सम्बन्धित कई बातें ज्ञात होती हैं। डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्णीय के शब्दों में, “चन्द्रावली की कथा में अनुराग, प्रकृति और काव्य के सम्मिश्रण से भावनाओं के चित्र उभर आये हैं और यही उसका सौन्दर्य है।”¹⁴

नाटिका में भारतेन्दु का प्रेमी व्यक्तित्व चन्द्रावली के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है। चन्द्रावली कृष्ण की अनन्य प्रेमिका है। वह उनके वियोग में बावरी जैसी हो जाती है और अन्ततः उनके व्यक्तित्व में लय हो जाना चाहती है। प्रेम का यही आदर्श भारतेन्दु का भी था। भारतेन्दु और चन्द्रावली की एकात्मकता को लक्ष्य करते हुए डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा है— “चन्द्रावली, भारतेन्दु की आत्मा का ही प्रतिरूप है। चन्द्रावली के माध्यम से भारतेन्दु ही अपने आराध्य देव के प्रति अपना प्रेम—निवेदन करते हैं।”¹⁵

‘विषय विषमौषधम्’(1876 ई०)¹⁶ भाण है जिसके एक ही अंक में भण्डाचार्य आकाश की ओर मुख करके 1875 ई० में बड़ौदा नरेश महाराजा मल्हारराव गायकवाड़ को कुप्रबन्ध के कारण गद्दी से उतारे जाने और उनके स्थान पर सयाजीराव के गद्दी पर बैठने की राजनीतिक घटना का उल्लेख करता है। भण्डाचार्य मल्हारराव की ऐयाशी की तुलना मुहम्मद शाह और वाजिद अली शाह से करता है। इस ग्रन्थ से भारतेन्दु की स्वदेश-भक्ति का परिचय प्राप्त होता है। साथ ही उन कारणों पर भी प्रकाश पड़ता है जिनकी वजह से भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना हुई। अंग्रेजों का राज्य कैसे फैला, इस पर सोचते हुए भण्डाचार्य कहता है, “धन्य है ईश्वर! सन् 1599 में जो लोग सौदागरी करने आए थे, वे आज स्वतन्त्र राजाओं को यों दूध की मक्खी बना देते हैं।” भारतेन्दु यह भी रेखांकित करते हैं कि हिन्दुस्तानियों ने ही अंग्रेजों के लिए हिन्दुस्तान जीता था— “साढ़े सत्रह सौ के सन् में जब आरकाट में क्लाइव किले में बन्द था तो हिन्दुस्तानियों ने कहा कि रसद घट गयी है, सिर्फ चावल हैं सो गोरे खाएँ, हम लोग माँड़ पीकर रहेंगे।”

इस रूपक में भारतेन्दु की राजभक्ति और देशभक्ति के द्वन्द्व को देखा जा सकता है। भारतेन्दु ने रूपक के अन्त में अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा की है और उसके चिरकाल तक स्थिर रहने की कामना की है, लेकिन उसके मुख्य भाग में अंग्रेजी राज्य, उसके समर्थक कठपुतली राजाओं और खुशामदियों के प्रति उनका असंतोष साफ जाहिर हुआ है। भारतेन्दु ने भारत के सामन्ती वर्ग की असमर्थता पहचानी थी और राजाओं को अंग्रेजों की कठपुतली कहा था। भण्डाचार्य ऐसे राजाओं की मिसाल देते हुए कहता है, “कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा अपूर्वकृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा हैं तो उन्होंने उत्तर दिया— जैसे शतरंज के राजा, जहाँ चलाइए वहाँ चलें।” भारतेन्दु ने यह भी दिखलाया है कि लोग राजाओं की यह दशा समझते हुए भी बोलने की हिम्मत न करते थे। भण्डाचार्य के अनुसार, “राजा और देव बराबर होते हैं, ये जो करें सो देखते चलो, बोलने की जगह ही नहीं।”

रूपक में एक ही पात्र की बात होने से शुरु से आखिर तक उसे रोचक बनाये रखना कठिन था। कुछ अंश जरूर नीरस हो गए हैं। फिर भी कहावतों और मुहावरों के इस्तेमाल से, स्त्रियों पर अनेक पदों से, श्लोकों, चुटकुलों, व्यंग्य और हास्य के सहारे भण्डाचार्य लोगों का मन ऊबने नहीं देता। राजभक्ति के प्रदर्शन के बावजूद रूपक में देशी राजाओं की असमर्थता और अंग्रेजी राज्य की स्वार्थपरता की खरी आलोचना हुई है।

‘भरत जननी’(1877 ई०) एक छोटा—सा नाट्यगीत है। इसकी मौलिकता विवादित है। ‘हरिश्चन्द्र चन्द्रिका’, ‘मोहन चन्द्रिका’¹⁷ और ‘भारतेन्दु ग्रन्थावली’¹⁸ में तथा राधाकृष्णदास, आचार्य हजारीप्रसाद

द्विवेदी¹⁹, डॉ० सोमनाथ²⁰ द्वारा इसे भारतेन्दु रचित माना गया है। भारतेन्दु ने भी 'नाटक' में इसे स्वरचित माना है। वहीं 'क्षत्रिय पत्रिका'²¹ में तथा रामचन्द्र शुक्ल, श्रीनारायण पाण्डेय और रामदीन सिंह द्वारा इसे अनूदित या संकलित माना गया है। रामचन्द्र शुक्ल जी ने अपने इतिहास में स्पष्ट कर दिया है कि, "भारतजननी उनके एक मित्र का किया हुआ बंगभाषा में लिखित 'भारतमाता' का अनुवाद था जिसे उन्होंने सुधारते-सुधारते सारा फिर से लिख डाला।"²²

यह रचना सर्वप्रथम 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (1877 ई०) पत्र में प्रकाशित हुई थी और मूलतः किरणचन्द्र बन्दोपाध्याय कृत बंगला नाटक 'भारत माता' (1873 ई०) के अनुवाद का संशोधित रूप है। इसमें भारतभूमि और उसकी सन्तान की आपस की फूट, कलह आदि के कारण दुर्दशा और भावी सुधार का वर्णन किया गया है। भारतमाता एक खण्डहर पर बैठी है और प्रस्तावना के बाद विभिन्न राग-रागिनियों में भारत, सरस्वती, साहब, भारत-संतान आदि अपने कथन करते हैं। धैर्य भारत को ढाँढस बँधाता है और शान्ति देता है। अंग्रेज उसकी दुरवस्था पर दुःख प्रकट कर दयालुता, निरपेक्षता और प्रजा-पालन का वचन देता है। हिन्दू अपने कथन में कहता है कि हिन्दू अपना हिन्दुत्व भूल गये हैं। अन्त में भारतेन्दुजी का देशभक्ति से पूर्ण वक्तव्य है। इस रचना में भी गीतों की प्रधानता है। समग्रतः, इस नाट्यगीत में भारतेन्दु जी ने भारत की हृदय-द्रावक तस्वीर पेश की है और स्वयं को, स्वयं के गौरव को पहचानने की प्रेरणा दी है।

'मुद्राराक्षस' (1878 ई०)²³ संस्कृत के नाटककार विशाखदत्त की रचना 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद है। यह एक राजनीतिक नाटक है। नन्दवंश के स्वामिभक्त मंत्री राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त का मंत्रित्व स्वीकार करना इस कथा का मुख्य उद्देश्य है और इसी कार्य की पूर्ति के लिए चाणक्य अपनी कूटनीति बरतता है। कथावस्तु सात अंकों में विभाजित की गयी है। चाणक्य अपनी कूटनीतिक सिद्धि के लिए राक्षस की मुहर वाली अँगूठी प्राप्त कर लेता है और जाली पत्र लिखवाता है। जीवसिद्धि का निर्वासन, शटकदास का भगाया जाना और चन्दनदास की कैद आदि घटनाएँ चाणक्य की सिद्धि में सहायक होती हैं। राक्षस धीरे-धीरे चाणक्य की कूटनीतिक चतुरता का शिकार हो जाता है और चाणक्य ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है कि राक्षस सहर्ष चन्द्रगुप्त का मंत्रित्व स्वीकार कर लेता है। यही इस नाटक में चाणक्य का प्राप्य है।

भारतेन्दु के अनुवादों में सबसे सफल और लोकप्रिय अनुवाद 'मुद्राराक्षस' का ही हुआ है। कूटनीति को लेकर शायद ही किसी ने ऐसा प्रभावशाली नाटक लिखा हो। समग्रतः "मुद्राराक्षस में राजनीतिक दावपेंच के बीच स्वामिभक्ति और देशभक्ति का आदर्श है।"²⁴ इस नाटक के उपसंहार (क) में रंगशाला में समय-समय पर गाये जाने वाले जिन गीतों के निर्देश किये गये हैं, वे उनकी राष्ट्रीय चेतना के द्योतक हैं।²⁵

'दुर्लभ बन्धु' (1880 ई०) अर्थात् 'वंशपुर का महाजन' एक अनूदित नाटक है। इसका अनुवाद भारतेन्दु ने शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' से किया था, इसको हिन्दी के प्रायः सभी विद्वान स्वीकार करते हैं।²⁶ इस नाटक में सच्चे मित्र का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। 1880 ई० में इसका प्रथम दृश्य 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'मोहन चन्द्रिका' में प्रकाशित हुआ था। अपूर्ण रह जाने पर इसको रामशंकर व्यास और राधाकृष्णदास ने पूरा किया।²⁷ अनुवाद करते समय भारतेन्दु जी ने अपने कुछ मित्रों और बंगला पुस्तक 'सुरलता' से सहायता ली थी। इस नाटक के अनुवाद के सम्बन्ध में स्वयं भारतेन्दु जी का 'हरिश्चन्द्र और मोहन चन्द्रिका'²⁸ में दिया गया वक्तव्य महत्वपूर्ण है— "दुर्लभ बन्धु अर्थात् वंशपुर का

महाजन। महाकवि शेक्सपियर के बन्धुत्व निदर्शन के अपूर्व संयोगान्त नाटक 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' का साधु भाषा में अनुवाद। निजबन्धु श्री बाबू बालेश्वर प्रसाद बी० ए० की सहायता से और बंगला पुस्तक 'सुरलता' की छाया से हरिश्चन्द्र ने लिखा।" अनुवाद में कथा को भारतीय आवरण दिया गया है। नामों तथा स्थानों को भी भारतीय रंग में रंग दिया गया है, जैसे— ऐंटोनियो के स्थान पर अनन्त, पोर्शिया के स्थान पर पुरश्री।

नाटक की कथावस्तु के संगठन में भारतेन्दु जी को कोई विशेष स्वतंत्रता प्राप्त न हो सकी, अतः कथानक ज्यों—का—त्यों है। किन्तु अनुवाद करते समय उसमें कुछ असामंजस्य और गड़बड़ी उपस्थित हो गयी है। वास्तव में पूर्ण रूप से अविकल या पूर्णतः स्वतंत्र अनुवाद न होने के कारण 'दुर्लभ बन्धु' के कथानक में अनेक अस्वाभाविक और असंगत स्थलों का समावेश हो गया है।

'भारत दुर्दशा'(1880 ई०) एक नाट्यरासक है जो भारतेन्दु जी की मौलिक कृति है। इसमें उन्होंने उन तत्त्वों को खोजने की कोशिश की है जो भारत—दुर्दशा के कारण हैं। उन्होंने भारतवर्ष की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक अवनति; इस अवनति में ब्रिटिश—शासन की नीति का प्रभाव तथा सुधार के लिए देश प्रेमियों की व्याकुल चेतना — सभी की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति की है। उन्होंने भारत—दुर्दशा का मानवीकरण करते हुए उसके सहायकों— आलस्य, धर्म, प्रतिवृष्टि, अनावृष्टि, अदालत, सत्यानाश, निर्लज्जता, मदिरा, अन्धकार, रोग आदि का भी उल्लेख किया है। नाटक की मूल कथा इतनी ही है कि भारत—दुर्दशा अपनी फौज के साथ भारत पर आक्रमण करता है और उसे मुमूर्ष बना देता है। अंत में भारत—भाग्य आत्म हत्या कर लेता है। किन्तु इतनी—सी कथा के माध्यम से भारतेन्दु जी ने तत्कालीन भारतीय परिवेश की मानो पूरी व्यथा ही कह दी है। अतः यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इसमें भारतेन्दु जी ने अपने राष्ट्रीय विचारों को केन्द्रीभूत कर दिया है।

नाटक की कथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की देशवत्सलता और देश—हितैषिता का आदर्श उदाहरण है। नवोत्थान काल में आविर्भूत होने के कारण वे देश के अतीत—गौरव की भावना से तो अनुप्राणित थे ही, साथ ही वे अपने चारों ओर उसी महान् देश की अधोगति देख रहे थे। उसकी अधोगति में यदि विदेशी आक्रमणकारियों और शासकों का हाथ था तो स्वयं भारतवासियों का भी कोई कम हाथ नहीं था। अपने चारों ओर फैले महाांधकार के लिए भारतवासी ही काफी हद तक उत्तरदायी थे। उनकी यह स्थिति देख भारतेन्दु जी को बहुत निराशा होती है। अन्ततः उसी निराशाजनक अवस्था में भारत—भाग्य आत्महत्या कर लेता है। इस प्रकार नाटक का अन्त दुःखद है। किन्तु भारत—भाग्य द्वारा आत्महत्या करना यह भी दर्शाता है कि भारतवासी, जो भाग्य में अधिक और कर्म में कम विश्वास रखते हैं, को भाग्य का भरोसा छोड़ देना चाहिए क्योंकि भाग्य द्वारा भारतवर्ष को जागृत नहीं किया जा सकता। उसकी जागृति तो कर्म द्वारा ही संभव है और यही भारतेन्दु जी का भी प्राप्य है।

'नीलदेवी'(1881 ई०) एक ऐतिहासिक नाटक है। प्रत्येक देश के नवोत्थान या पुनर्जागरण द्वारा उत्पन्न भावनाओं के फलस्वरूप स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हुआ और उनके लिए उन्नति का मार्ग खुल गया। इसी भावना का प्रतिनिधित्व इस नाटक द्वारा हुआ है। भारतेन्दु जी ने 'नीलदेवी' लिखने का कारण बताते हुए लिखा है कि वे इस नाटक द्वारा यह भ्रम दूर करना चाहते थे कि भारत में स्त्रियों की सदा वही दशा रही है जो उनके समय में थी। रचना का उद्देश्य बताते हुए उन्होंने यही लालसा प्रकट की है कि गृहदेवियाँ हीनावस्था का उल्लंघन कर कुछ उन्नति प्राप्त करें क्योंकि वे हमेशा

से इस हीनावस्था में नहीं थीं। साथ ही वे पश्चिम का अन्धानुकरण भी नहीं कराना चाहते। इसका कथानक संक्षेप में इस प्रकार है— अमीर अब्दुरशरीफ खाँ और राजा सूर्यदेव में युद्ध होता है जिसमें राजा सूर्यदेव हार जाते हैं। पिंजरे में उन्हें बन्दी बनाकर रखा जाता है, लेकिन वे पिंजरा तोड़कर लड़ते हुए मरते हैं। रानी नीलदेवी गायिका वेश में अमीर को छलकर उसका वध करती है और पति की मृत्यु का बदला लेती है। इस कथानक से भारतेन्दु का यह मन्तव्य कि पूर्वकाल में स्त्रियाँ स्वावलम्बी और युद्ध में भी पीछे न हटने वाली थीं, सिद्ध हो जाता है। लेकिन इस नाटक की मूल समस्या नारी की स्वाधीनता नहीं, भारत की पराधीनता है। नाटक में मुसलमानों को भारत के पतन का कारण दिखाया गया है।

नाटक की कथा में भारतीय वीरांगनाओं का उज्ज्वल चरित्र और उसके माध्यम द्वारा देश-प्रेम और कुल-परम्परा मात्र से अलग स्त्रियों की स्वाधीनता का बीजारोपण मिलता है। सूर्यदेव की मृत्यु हो जाने पर नीलदेवी चुपचाप वैधव्य की चादर ओढ़कर नहीं बैठ जाती और न ही सती होती है। इसके विपरीत वह साहस बटोरकर अपनी वीरता, बुद्धि कार्यकुशलता आदि का परिचय देकर नारी जाति के यश में चार चाँद लगा देती है। वह हिंसात्मक ढंग से अपने पति के हत्यारे से प्रतिशोध लेती है। जो तथ्य भारतेन्दु जी हमारे सामने रखना चाहते हैं, वह यह है कि नीलदेवी हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठ जाती। उसका पातिव्रत धर्म उसे क्रियाशील बनाता है, वह उसमें नेतृत्व की शक्ति उत्पन्न करता है। प्यार और कोमलता की गोंद में पली स्त्रियों को अवसर पड़ने पर गठरी बनी बैठी रहने के स्थान पर किस प्रकार अपना रूप परिवर्तित कर लेना चाहिए, इस बात की शिक्षा हमें 'नीलदेवी' की कथावस्तु से मिलती है।

नाटक में भारतेन्दु के कुछ बहुत ही सरस गीत हैं। देवीसिंह सिपाही का 'सोओ सुख निदिया प्यारे ललन' और 'प्यारी बिन कटत न कारी रैन' बहुत ही मधुर और गेय है। चौथे अंक में भटियारी, चपरगट्टू, खाँ और पीकदान अलीखाँ की बातचीत भारतेन्दु की प्रहसन-कला का सुन्दर रूप पेश करती है। कुल मिलाकर "नीलदेवी में भारतीय नारी के सम्मुख जौहर की अपेक्षा वीरता और पराक्रम का एक नया आदर्श प्रस्तुत किया गया है।"²⁹

'अंधेर नगरी'(1881 ई0) भारतेन्दु जी का सर्वाधिक चर्चित और लोकप्रिय प्रहसन है। रंग-सम्भावनाओं से पूर्ण इस व्यंग्यात्मक प्रहसन में राज-व्यवस्था, जातिप्रथा, उच्च वर्गों की काहिली और खुशामद-पसन्दी की तीखी और समर्थ आलोचना की गयी है। इसके छः अंकों में भारतेन्दु जी ने दिखलाया है कि जिस राज्य में गुण-अवगुण का भेद नहीं, वहाँ प्रजा का राजा की मूर्खता के चंगुल में फँस जाने का डर बना रहता है। कहते हैं कि बिहार के किसी जमींदार के अन्यायों को लक्ष्य करके उसे सुधारने के लिए इसकी रचना की गयी। भारतेन्दु ने अंधेर नगरी चौपट राजा की लोककथा लेकर इसमें जीवन्तता ला दी है। उन्होंने यहाँ दिखाया है कि पुराने लोक-संस्कृति के रूपों को राजनीतिक चेतना फैलाने के लिए किस तरह इस्तेमाल करना चाहिए।

प्रहसन के सारे पात्रों और समस्त घटनाओं का केन्द्र बिन्दु राजकीय अव्यवस्था है। इसी केन्द्रीय बिन्दु के चारों ओर सारा नाटकीय वातावरण घूमता रहता है। अंधेर नगरी का परिवेश यथार्थ जीवन का प्रतिरूप है। उसके बाजार में कबाबवाला, चनेजोर गरमवाला, नारंगीवाला, हलवाई, कुँजड़िन, मेवेवाला, चूरनवाला आदि उत्तर भारत के किसी शहर से मानो सीधे अंधेर नगरी चले आये हैं। इनमें जाति बेचनेवाला एक ब्राह्मण भी है, जो लोगों की जाति ही नहीं बदलता वरन् जिसका पेशा है— 'टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें, टके के वास्ते झूठी गवाही दें।'

वस्तुतः 'अंधेर नगरी' अंग्रेजी राज्य का ही प्रतीक है। अंग्रेजी राज्य के अफसर ही घासीराम के चने खाकर लोगों पर दुगुना टैक्स लगाते हैं, लोगों में फूट और बैर को बेचते हैं। इसी राज्य के अमले चूरन खाकर दूनी रिश्वत भी पचा लेते हैं। यह प्रहसन अंग्रेजी राज्य के अन्धकार की आलोचना ही नहीं करता, अपितु इस अन्धकार को समाप्त करने के लिए भारतीय जनता की प्रबल आकांक्षा को भी अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार भारतेन्दु जी ने प्रहसन को जनता के मनोरंजन के साथ-साथ राजनीतिक शिक्षा देने का भी शक्तिशाली माध्यम बनाया।

निश्चय ही 'अंधेर नगरी' एक प्रहसन होते हुए भी अपने तथ्य में आधुनिक, निरन्तर नवीन और शिल्प में मौलिकता तथा लचीलेपन की परम्परा और प्रयोग का उदाहरण है। इसके संवाद इतने जीवन्त और सम्प्रेषणीय हैं कि वे लोगों की जबान पर चढ़ गये हैं। इस रूपक में प्रहसन-कला अपने चरमोत्कर्ष का संस्पर्श करती प्रतीत होती है। डॉ० गिरीश रस्तोगी के शब्दों में, "यह भारतेन्दु के कथा-विन्यास, संयोजन और संरचना का ही वैशिष्ट्य है कि इनती संक्षिप्त कथा और प्रसंगों की नाटकीय स्थितियों और दृश्यों के रचना और संयोजन वह इस प्रकार करते हैं कि एक ओर रोचकता, जिज्ञासा-तत्त्व बना रहता है; दूसरी ओर अपराधी की खोज और फरियादी के न्याय पर भी ध्यान केन्द्रित रहता है।"³⁰ वस्तुतः अपने उद्देश्य की व्यंजना में ही इसका गौरव निहित है।

'सती प्रताप'(1883 ई०) भारतेन्दुकृत एक गीतिरूपक है, जो सावित्री-सत्यवान की पौराणिक कथा पर आधारित है। वे इसे पूरा नहीं कर पाये, केवल चार अंक ही लिख पाये। बाद में 1892 ई० में बाबू राधाकृष्णदास ने इसे पूर्ण किया।

'माधुरी'(1883 ई०) रूपक भी भारतेन्दु कृत माना जाता है। खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना से प्रकाशित इस रूपक के तृतीय संस्करण (1914 ई०, हरिश्चन्द्र सम्वत् 30) के मुख्य पृष्ठ पर लेखक का नाम बा० हरिश्चन्द्र लिखा हुआ है। 'नाटक' नामक आलोच्य ग्रन्थ में स्वयं भारतेन्दु जी ने 'चन्द्रावली' के पश्चात् 'माधुरी' का उल्लेख अपने लिखे नाटकों में किया है। किन्तु, राधा कृष्णदास ने इसे 'सम्पादित, संग्रहित व उत्साह देकर बनवाए गए' ग्रन्थों की सूची में रखा है। बाबू ब्रजरत्नदास ने अपने ग्रन्थ 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' के द्वितीय संस्करण— 1848 ई० के पृष्ठ 207 पर इसे हरिश्चन्द्र कृत न बताकर भरतपुर नरेश राजा दुर्जनसाल के पुत्र तथा भारतेन्दु के अन्तरंग मित्र राव कृष्णदेवशरण सिंह 'गोप' कृत माना है। बाँकीपुर संस्करण के पृष्ठ 9 पर एक पद में 'गोपराज' शब्द आया भी है— '.....गोपराज तन त्यागि राखि प्रन मिलि है तुरत सही।' इसी के आधार पर डॉ० वार्ण्य ने भी अपने 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' में इसे रावकृष्ण कृत माना है किन्तु सूचना मात्र के अतिरिक्त विशेष प्रमाण वहाँ भी नहीं है।

अतः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा 'नाटक' नामक ग्रन्थ में 'माधुरी' को स्वरचित बताना ही अधिक प्रामाणिक है। यह नाटक खड्ग विलास प्रेस से रामदीन सिंह द्वारा सम्पादित 'नाटकावली'³¹ में भी छपा है। वहाँ इसका नाम 'माधुरी' अथवा 'वृन्दावन दृश्यावली' लिखा गया है। यही नहीं, श्री कृष्ण शंकर शुक्ल ने अपने 'आधुनिक हिन्दी साहित्य'³² के आठवें संस्करण में इस नाटक से एक उद्धरण भी दिया है। जहाँ तक 'गोपराज' के एक पद का प्रश्न है, हो सकता है कि भारतेन्दु ने इसे अपने नाटक में उद्धरण के रूप में लिखा हो, जैसे कि 'कर्पूरमंजरी' में देव और पद्माकर के छन्द लिये गये हैं। तब भी दो बातें उसके भारतेन्दु कृत होने में संदेह उत्पन्न करती हैं। पहली यह कि 'माधुरी' और 'चन्द्रावली' का कथानक और दृष्टिकोण लगभग समान है। दूसरी बात यह है कि दोनों ग्रन्थों की शैली में अन्तर है। मिश्रबन्धुओं ने

इसका रचनाकाल 1883 ई० माना है।

‘नवमल्लिका’ भी भारतेन्दु का एक नाटक है जिसका उल्लेख स्वयं उन्होंने ‘नाटक’ नामक ग्रन्थ में किया है। इस नाटक का उल्लेख रामशंकर व्यास के 1884 ई० में लिखे गये एक अंग्रेजी लेख³³ में भी मिलता है। यह नाटक अब अप्राप्य है।

कहना न होगा, भारतेन्दु ने हिन्दी नाट्य-साहित्य को एक मौलिक दृष्टिकोण दिया। इस दृष्टिकोण की व्याप्ति में नाट्य-साहित्य के विविध रूप और अनेक विषय सन्निविष्ट हो जाते हैं। उनके नाटकों में भारतीय गौरव और साहित्यिक-सामाजिक दायित्व की परम्परा को पुनर्जीवित करने का अखण्ड प्रयास मिलता है, जो अतीत से वर्तमान को जोड़ता है। अपने अधिकांश नाटकों में राष्ट्रीय चेतना के नवीन पौधे को संप्राण बनाने की जो चेष्टा उन्होंने की है, वह उनके ऐतिहासिक व्यक्तित्व का कृतित्व है। उनकी इस चेतना में वर्तमान अधोगति पर क्षोभन भरी वेदना, और भविष्य की भावना से जगी हुई चिन्ता का रूप उजागर होता है। उन्होंने अपने ढंग से जीवन और राष्ट्र की अनेक समस्याओं को परखा और जनता को एक दिशा-विशेष की ओर मोड़ा। उनके व्यक्तित्व की यह छाप केवल उनकी नाट्यकृतियों पर ही नहीं दिखाई पड़ती बल्कि उनके समसामयिक तथा परवर्ती साहित्यकारों की रचनाओं पर भी दिखाई पड़ती है।

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी नाटक, डॉ० बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र० सं० 1989 ई०, पृ० 26
2. भारतेन्दु समग्र, सं० हेमन्त शर्मा, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, प्र० सं० 1987 ई०, पृ० 559
3. हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, रामगोपाल सिंह चौहान, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1959 ई०, पृ० 275
4. हिन्दी का गद्य-साहित्य, डॉ० रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, षष्ठम् सं० 2007 ई०, पृ० 470
5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्णीय, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, चतुर्थ सं० 1974 ई०, पृ० 57
6. हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, रामगोपाल सिंह चौहान, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1959 ई०, पृ० 275
7. बाबू ब्रजरत्नदास ने इसे 1876 ई० की रचना माना है।
8. हिन्दी का गद्य-साहित्य, डॉ० रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, षष्ठम् सं० 2007 ई०, पृ० 468
9. हिन्दी नाटक, डॉ० बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र० सं० 1989 ई०, पृ० 26
10. वही, पृ० 29
11. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ सं० 2005 ई०, पृ० 316
12. हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, रामगोपाल सिंह चौहान, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1959 ई०, पृ० 276
13. हिन्दी का गद्य-साहित्य, डॉ० रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, षष्ठम् सं० 2007 ई०, पृ० 270
14. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्णीय, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, चतुर्थ सं० 1974 ई०, पृ० 93
15. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डॉ० रामविलास शर्मा, सं० 1966 ई०, पृ० 91
16. रामगोपाल सिंह चौहान ने अपनी पुस्तक ‘हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा’ में इसका रचनाकाल 1875 ई० माना है।
17. मोहन चन्द्रिका, कला 6, किरण 8, संवत् 1938, भाद्रपद
18. भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्र० म० काशी ना० प्र० सभा
19. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 397
20. हिन्दी नाटकों का उद्भव और विकास, डॉ० सोमनाथ गुप्त
21. क्षत्रिय पत्रिका, खण्ड 1, कार्तिक शुक्ल दशमी, संवत् 1938, संख्या 6, पृ० 148
22. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ सं० 2005 ई०, पृ० 316

23. बाबू ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद क्रमशः संवत् 1931 (1874 ई०) के फाल्गुन मास की बालबोधिनी की संख्या से छपना आरम्भ हुआ और प्रायः तीन वर्ष तक निकलता रहा। बाद में यह पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ।
24. हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1959 ई०, पृ० 275
25. जग में घर की फूट बुरी।
घर के फूटहिं सों बिनसाई सुबरन लंकपुरी ।
X X X X X
जग में तेई चतुर कहावै।
छल में पातक होत जदपि यह शास्त्रन मैं बहु गायो।
पै अरि सों छल किए दोष नहीं मुनियन यहै बतायो।
26. (क) हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० रामचन्द्र शुक्ल
(ख) आधुनिक हिन्दी साहित्य, डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्णीय
(ग) हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
27. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बाबू ब्रजरत्नदास, इलाहाबाद, द्वितीय सं० 1948 ई०, पृ० 205
28. हरिश्चन्द्र और मोहन चन्द्रिका, खण्ड 7, श्वेत शुक्ल 1, संवत् 1967, पृ० 3
29. हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, रामगोपाल सिंह चौहान, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1959 ई०, पृ० 274
30. हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष, गिरीश रस्तोगी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० सं० 2002 ई०, पृ० 15
31. नाटकावली, सं० रामदीन सिंह, खड्ग विलास प्रेस, पटना, प्रथम सं० संवत् 1944
32. आधुनिक हिन्दी साहित्य, श्री कृष्णशंकर शुक्ल, आठवाँ सं०, पृ० 112
33. Kashmir Flower containing a short history of Kashmir, Published by Mallik Chandra and Co. Printed at the Medical Hall Press, 1884.



भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जयशंकर प्रसाद के चुनिंदा नाटकों में सत्ता का प्रतिरोध

डॉ. मीना सिंह

वरिष्ठ प्रवक्ता—हिन्दी, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर (उ.प्र.)

अनैतिकता नैतिकता को जन्म देती है, विसंगति संगति को जन्म देती है, अन्याय—न्याय को पैदा करता है, अत्याचार सदाचार को लाता है, गलत सही की ओर जाने के लिए विवश करता है। समाज में जो भी कुछ अनैतिक, गलत, अन्याय या असंगत घटित होता है उसे वर्तमान में या विशेष रूप से भविष्य में ठीक करने के लिए उचित व सही तरीकों की खोज की जाती है या योजना बनाई जाती है, अलग—अलग माध्यमों से। उसी श्रृंखला में समाज को बेहतर बनाने के लिए साहित्य अपने स्तर पर समाज में व्याप्त बुराईयों का विरोध करता है। साहित्य की इन विधाओं में विसंगतियों की मुखर विरोधी विधा है—नाटक। नाटक सबसे मुखर विरोधी विधा इसलिए है क्योंकि यह श्रव्य के साथ—साथ दृश्य भी है और श्रव्य के साथ यदि दृश्य भी मिल जाये तो विरोध का स्वर दुगुना हो जाता है। अतः नाटक साहित्य में एक ऐसी सशक्त विधा है जिसके माध्यम से समाज में व्याप्त अनैतिकता को ज्यादा बेहतर व असरदार तरीके से दर्शाया जा सकता है। समाज में जितनी भी बुराईयाँ, लड़ाईयाँ, अनैतिकता, अन्याय, अत्याचार व्याप्त हैं, उनके जितने भी कारण या सूत्र नजर आते हैं उनमें दो कारण ऐसे हैं जो सदियों से रहें हैं व मूल कारण भी कहे जा सकते हैं। राजनीति और धन यानि सत्ता व पूँजी, प्रतिष्ठा व पैसा।

प्राचीन से लेकर आधुनिक तक सत्ता व पूँजी का वर्चस्व इन तमाम सामाजिक विसंगतियों के पनपने के पीछे नजर आता है। फिर वह चाहे सत्ता, राजनीति, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, पुरुषत्व की सत्ता या अन्य कोई भी हो—वह सत्ता अपनी सत्ता बरकरार रखना चाहती है और उसके साथ जब पूँजी संयुक्त होती है तो उसका वर्चस्व और ज्यादा तीव्र गति से फलता—फूलता है। यह सत्ता अपनी बादशाहत कायम रखने के लिए किसी भी प्रकार का कार्य कर सकती है और साथ ही अपने से निम्न स्तर की कोटि वालों पर अपने हक व समर्थन में दबाव बनवा सकती है। इस सत्ता व पूँजी के विरोध का प्रदर्शन सामाजिक सुधारकों, विचारकों ने अपने विचारों व आन्दोलनों से समय—समय पर किया है। इसी प्रकार साहित्य भी इस सत्ता के प्रतिपक्ष में अपनी पैनी दृष्टि डाले हुये है और उसका प्रतिरोध करता है। साहित्य में चूँकि यहाँ नाट्य विधा पर चर्चा हो रही है तो नाट्य का (विशेषतः हिन्दी नाटक का) जहाँ से प्रारम्भ होता है, वहीं से यानी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों से ही देखते हैं किस प्रकार से सत्ता व पूँजी का प्रतिरोध दर्शाया गया है।

‘वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति’ नाटक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक प्रहसन के रूप में मांसाहारी पुरोहित का उत्साह से यज्ञ करना एवं शैव वैष्णवों का मांस खाने को लालायित रहना दिखाकर वैदिक धर्मानुयायियों के पाखण्डियों की सत्ता की पोल खोली है व धर्म की आड में अधर्म, पाप, मांस, मदिरा का सेवन करने वाले राजाओं के भी व्यवहार पर चोट की गई है। हिंसामय यज्ञ करने वाला राजा जब यमराज के

सम्मुख उपस्थित होता है तो चित्रगुप्त उसका लेखा उपस्थित करता है “महाराज, सुनिए यह राजा जन्म से पाप में रत रहा, इसने धर्म को अधर्म माना और अधर्म को धर्म माना, जो जी चाहा किया और उसकी व्याख्या पण्डितों से ले ली, लाखों जीवों का इसने नाश किया और हजारों घड़े मदिरा के पी गया, पर आड सदा धर्म की रखी । अहिंसा, सत्य, शोच, दया, शान्ति और तप आदि सच्चे धर्म इसने एक न किए, जो किया वह केवल वितण्डा—कर्मजाल किया, जिसमें मांस—भक्षण और मदिरा पीने को मिले, और परमेश्वर—प्रीत्यर्थ इसने एक कोड़ी भी व्यय नहीं की । जो कुछ व्यय किया सब नाम और प्रतिष्ठा पाने के हेतु ।”¹

नाम और प्रतिष्ठा प्राप्त करना व उसको बरकरार रखने का जो प्रलोभन सत्ता में दिखाई देता है भारतेन्दु जी उसी सत्ता की प्रभुता पर इस नाटक के माध्यम से चोट करना चाहते हैं । प्रजा के हित में कार्य करने का दिखावटी प्रदर्शन, धर्म के नाम पर अन्याय का बढ़ावा, हिंसा, अनाचार, अत्याचार आदि जो भी अपनी सत्ता की सुरक्षा व प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सत्ता कर सकती है वह ‘वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति’ नाटक में राजा करता है । उस समय में सत्ता के खिलाफ बात करना भारतेन्दु जी जैसे नाटककारों का ही विलक्षण व कौशलपूर्ण कार्य हो सकता है । एक शासक का कार्य देश हित व प्रजा हित होता है परन्तु उस शासक की मोह आन्धता व स्वार्थ सिद्धि की वजह से पूरा तंत्र शिथिल हो जाता है, यह सत्ता की विजय है प्रजा पर ।

‘भारत दुर्दशा’ नाटक में भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सम्पूर्ण भारत को एक प्रतीक रूप से इंगित न करके उनका सामुदायिक मानवीकरण करके परोक्ष रूप से समाज व मनुष्य के अहं, प्रतिष्ठा, पद, पूँजी, जाति, धर्म आदि की सत्ता का विरोध इस नाटक में करते हैं । भारत भाग्य एक मानव रूप में आकर भारत को चुनौति देता है ।

“सोई वंश रुधिर वही, सोई मन विश्वास
वही वासना चित वही, आसय वही विलास
कोटि—कोटि ऋषि पुन्य तन कोटि—कोटि अति सूर
कोटि—कोटि बुध—मधुर कवि मिले यहां की धूर
सोई भारत की आज यह भई दुर्दशा हाय ।”²

‘भारत दुर्दशा’ नाटक में सत्ता की हेकड़ी के आगे भारत की दुर्दशा हो रही है । उसमें फटे हाल भारत, खुले अंग वाली निर्लज्जता, लड़की के वेश में आशा, आधा क्रिश्चन, आधा मुस्लमान वेशधारी भारत दुर्देव, सत्यानाश फौजदार, रोग, आलस्य, मदिरा, डिसलायल्टी आदि पात्रों का चित्रण मानवीकरण के रूप में कर सत्ता के आगे इनकी दुर्दशा का विवरण किया गया है । साथ ही सभापति बंगाली, देशी कवि, एडिटर, महाराष्ट्री अपने—अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिससे यह साफ स्पष्ट होता है कि सत्ता अपने समक्ष एकजुटता को बर्दास्त नहीं कर सकती है । इससे उसकी सत्ता को खतरा हो सकता है । अतः वह इनका विखण्डन करती है, विभाजन करती है । नाटक में भारत भाग्य छठे अंक में आता है और वह भारत की दीन—हीन दशा देखकर उसका परिहास करता है और अन्त में निराश होकर भारत भाग्य आत्महत्या कर लेता है । सत्ता के आगे कैसे नतमस्तक हो जाती है जनता यही दिखाना चाहता है यहां नाटककार । सत्ता की ताकत को चुनौती देने वाला यह नाटक एक रूपक के रूप में प्रदर्शित होता है ।

‘अंधेर नगरी’ भारतेन्दु जी का बहुत ही व्यंग्यात्मक, तात्कालिक अंग्रेजी सत्ता का विरोध करने वाला

प्रभावी व सशक्त नाटक है। इस पूरे नाटक की कथा बहुत ही रोचक व मनोरंजनात्मा है व साथ ही इसके गीत सत्ता की जड़ों को खोखला करने के लिए बहुत ही मारक व असरदार सिद्ध होते हैं। सत्ता व सत्ता के नुमाइंदे किस प्रकार से देश व देश की पूँजी व जनता को खा रहे हैं और मात्र अपने स्वार्थ के लिए शेष कार्य किये जा रहे हैं।

“चूरन साहेब लोग जो खाता, सारा हिन्द हजम कर जाता
चूरन पुलिस वाले खाते, सब कानून हजम कर जाते
चूरन हाकिम सब जो खाते, सब पर दूना टिकस लगाते।”³

व्यवस्था अपने लाभ के लिए चूरन रूपी जनता व उसके हक का पैसा सब खा जाती है और जब उसकी भरपाई करनी होती है तो मुद्रा स्फीति बढ़ाकर व जनता पर दुगना कर लगाकर वसूल किया जाता है। यह सत्ता का दोहरा चरित्र भारतेन्दु जी ‘अंधेर नगरी’ में प्रस्तुत करते हैं। यह पूरी नगरी ही अंधेर है। यहाँ सत्ता को पूँजी की चकाचौंध में शेष कुछ भी दिखाई नहीं देता है। यश (मोक्ष) प्राप्त के लिए राजा सूली पर चढ़ने के लिए तैयार है। सत्ता व पूँजी के आगे व्यक्ति जात व धर्म सब बदलने के लिए तैयार है और यह सब वह व्यवस्था के आगे स्वीकार करता है। जाति और धर्म का वर्गीकरण भी सत्ता की अपनी एक चाल होती है जनता को इन प्रपंचों में उलझाने की। “ब्राह्मण—टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाए और धोबी को ब्राह्मण कर दे, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दे। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुस्लमान, टके के वास्ते हिन्दु से क्रिस्तान।”⁴

नाटक के अन्त में “अन्यायी राजा को टिकती पर चढ़ाकर भारतेन्दु जी भविष्य से भारतोद्धार की ओर संकेत भी करते हैं।”⁵ सत्ता व पूँजी के वर्चस्व का खण्डन भारतेन्दु जी अपने इस नाटक ‘अंधेर नगरी’ में बहुत ही सहज व्यंग्यात्मक शैली में करते हैं।

ऐतिहासिक पौराणिक विषय वस्तु के माध्यम से जयशंकर प्रसाद ने तात्कालिक सत्ता पर चोट करने वाले नाटक लिखे। जिसमें ‘राज्यश्री’ नाटक में प्रभाकरवर्धन ने अपनी राज्यशक्ति और राज्य सीमा की इतनी वृद्धि की, कि वह महाराधिराज और परम भट्टारक की उपाधि से विभूषित हो गया। इसी प्रकार कन्नौजराज सर्ववर्मन ने उत्तर पश्चिम के हूणों और तत्कालीन मगधराज दामोदरगुप्त को पराजित करके शक्ति वृद्धि के साथ यश अर्जित हाथ से निकल जाने पर महासेन गुप्त ने मालवा में अपनी शक्ति संगठित की। इसी मालवा में उसका पुत्र देवगुप्त राजा बना, जिसने गोंडराज नरेन्द्र शशांक से मैत्री स्थापित की।

अपनी सत्ता, अपनी शक्ति स्थापित करने के लिए सर्ववर्मन जिस प्रकार से पृथक राज्य की स्थापना करता है और अन्य राजाओं, हूणों को उनके राज्यों से पदच्युत करता है। यह सत्ताधंता व मोहता सत्ता की परिधि में घूमते हुये प्राचीन से अर्वाचीन तक व प्रसाद के अनेक नाटकों में दिखाई देती है। ‘विशाख’ नाटक की रचना में उस समय के राजनीतिक आन्दोलनों का भी हाथ हो सकता है। क्योंकि इसका संकेत इस नाटक की भूमिका में इस प्रकार मिलता है—“मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है, और जिन पर कि वर्तमान साहित्यकारों की दृष्टि कम पड़ती है।”⁶ यह नाटक उस समय की अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध एक सशक्त कदम था। ब्रिटिश शासक पूर्ण रूप से भक्षक हो चुका था। जनता विचलित हो गई थी। देश, जनता व देश का धन विदेशियों के चंगुल में फंस गया। यह बात भारतीय जनता की समझ में आ गई थी। तब इसी प्रकार की घटना को केन्द्र में रखकर ‘विशाख’ नाटक

आता है । कामुक किन्नर नरदेव का चन्द्रलेखा के उपभोग के लिए उस पर आतुर होना और उसका अपहरण करना सत्ता की शक्ति का प्रदर्शन है । वह जिसे और जब चाहे अपने स्वार्थ व सुख के लिए उपयोग व उपभोग कर सकती है । उसी सत्ता के वर्चस्व को खण्डित करने वाला व उसके समक्ष एक चुनौती प्रस्तुत करने वाला नाटक है 'विशाख' ।

जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखा नाटक 'अजातशत्रु' सत्ता का चाक्षुस प्रतिबिम्ब एक जाल के रूप में प्रस्तुत करता है । मगध, काशी, कोशल और कौशाम्बी चारों राज्यों का आपसी तालमेल, राजाओं का एक दूसरे से नाते रिश्ते में संबंध यानी सत्ता का वर्तमान रूप में जो गठजोड़ अनेक दलों का सम्मिलित रूप नजर आता है, वह दृष्य 'अजातशत्रु' में प्रसाद जी बहुत पहले दिखा चुके हैं । सत्ता की प्राप्ति व लालसा के लिए कैसे प्रसेनजित की रानी दासी पुत्री महामाया पुत्र विरूद्धक को लालायित व उत्साहित करती है । 'रानी-दासी की पुत्री होकर भी मैं राजरानी बनी और हठ से मैंने इस पद को ग्रहण किया और तुम राजा के पुत्र होकर इतने निस्तेज और डरपोक..... ।

विरूद्धक-बस मां । अब कुछ न कहो आज से प्रतिरोध लेना मेरा कर्तव्य और जीवन का लक्ष्य होगा । मां मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरे अपमान के कारण इन शाक्यों का एक बार अवश्य संहार करूंगा और उनके रक्त में नहाकर इस कौशल के सिंहासन पर बैठ कर तेरी वन्दना करूंगा ।¹⁷ यानी मुख्य बात है सत्ता की प्राप्ति-कोशल का सिंहासन प्राप्त करना । फिर उसके लिए शाक्यों जैसे कितने ही प्रजाजनों का संहार करना पड़े, सत्ता अपने अस्तित्व के लिए करती है । राजा अपने को सुरक्षित रखने के लिए अपने अनुयायियों को आदेश देता है, ताकि वे उन्ही के अनुरूप कार्य कर सकें । धर्मगुरुओं तक से सत्ता अपनी जय-जयकार करवा लेती है । 'देवदत्त-सम्राट कल्याण हो, धर्म की वृद्धि हो । शासन सुखद हो । अजातशत्रु-कोशल के दांत जम रहें हैं । वह काशी की प्रजा में विद्रोह कराना चाहता है । वहां के लोग राजस्व देना अस्विकार करते हैं ।

देवदत्त-पाखण्डी गौतम आजकल उसी ओर घूम रहा है, इसलिए कोई चिन्ता नहीं । गौतम की कोई चाल नहीं चलेगी । यदि मुनिवृत धारण करके भी वह ऐसे साम्राज्य के षडयंत्रों में लिप्त है तो मैं भी हठवश उसका प्रतिद्वन्दी बनूंगा ।¹⁸ इस प्रकार पूरे नाटक में धर्म और पूँजी के सहारे किसी की भी सत्ता के परचम को लहराने की बात हो वह सत्ता अपना वजूद कायम करने के लिए उसे लहराती है । द्वन्द्वात्मक स्थितियों में विचरित करता हुआ पूरा नाटक सत्ता के केन्द्र को ध्यान में रखकर अलग-अलग राज्यों के प्रतिनिधियों को ध्यान में रखकर चलता है ।

'स्कन्दगुप्त' व 'चन्द्रगुप्त' नाटकों में भी प्रसाद ने पारिवारिक घटनाओं के साथ-साथ राजनीतिक घटनाओं को भी सम्मिलित किया है और यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि सत्ता के लिए पारिवारिक घटनायें भी प्रेरित करती हैं व उनका प्रभाव भी पड़ता है । 'आजीवन कौमार्यवृत्त पालन करने वाले आदर्श वीर देवदत्त में वीरता, प्रेम, राज्य प्राप्ति और त्याग, दोनों का साथ साथ मिलन अत्यधिक आकर्षक बन जाता है ।¹⁹ साथ ही सत्ता की ओर आकर्षित होने वाली दृष्टि को भी यह नाटक संकेतात्मक रूप से प्रेरित करता है ।

'चन्द्रगुप्त' नाटक में सत्ता का अपना परचम जो नन्द बनाये रखता है उसे तोड़ने के लिए चाणक्य चन्द्रगुप्त जैसा शिष्य शिक्षित व निपुण करता है व साथ ही चाणक्य की अपनी सत्ता भी उसमें सम्मिलित होती है, जिसे वह प्राप्त करना चाहता है । अतः कहा जा सकता है कि प्रसाद जी के नाटकों में सत्ता

व पूँजी का प्रतिरोध दिखाई देता है। वह भले ही ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के माध्यम से ही दर्शाया गया हो, परन्तु वर्तमान में भी उसका प्रतिबिम्ब हूबहू नजर आता है। तात्कालिक समय की अंग्रेजी सत्ता का जो विरोध इन नाटकों में प्रदर्शित किया गया है वह आज भी पूर्ण रूप से प्रासांगिक है। बस फर्क इतना है चोला बदल गया है, कहने को प्रजातंत्र आ गया है, परन्तु अन्दर की व्यवस्था ज्यों की त्यों बरकरार है सत्ता के आधिपत्य की।

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, पृ.-125
2. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, पृ.-140
3. अंधेर नगरी-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ.-39
4. अंधेर नगरी-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ.-44
5. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, पृ.-146
6. प्रसाद वाङ्मय-रचनावली, द्वितीय खण्ड, पृ.-160
7. प्रसाद वाङ्मय-रचनावली, द्वितीय खण्ड, पृ.-229
8. प्रसाद वाङ्मय-रचनावली, द्वितीय खण्ड, पृ.-233
9. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, पृ.-213

अन्य सन्दर्भ :

- अन्धेर नगरी-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रकाशन-वाणी, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण-2008
- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, प्रकाशन-राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, संस्करण-2008
- प्रसाद वाङ्मय रचनावली-द्वितीय खण्ड, प्रसाद प्रकाशन, प्रसाद मन्दिर, गोवर्द्धनसराय, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1990-91



नागार्जुन के उपन्यास और भूमिपुत्रों का संग्रामी तेवर

(सन्दर्भ : बलचनमा, बाबा बटेसर नाथ और वरुण के बेटे)

अनिल कुमार सिंह
प्रवक्ता-हिन्दी विभाग

राज0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर

योगेन्द्र कुमार
प्रवक्ता-अर्थशास्त्र विभाग

राज0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर

“मैं भी तो पहले देखा करता था सपने
साथी, अब तो रंग-ढंग ही बदल गए हैं
समझ गया हूँ
जीवन में इस धरा-धाम का क्या महत्व है
कैसे कहलाता कोई धरती का बेटा
आसमान में सतरंगी बादल पर चढ़कर
कैसे जनकवि धान रोपता
समझ गया हूँ
कैसे जनकवि जमींदार के उन अमलों को मार भगाता
हरे बाँस की हरी-हरी वह लाठी लेकर”

स्वतंत्रता के बाद के जिन साहित्यकारों ने हिन्दी जातीय-चेतना को सर्वाधिक गहरे तक प्रभावित किया उनमें नागार्जुन अग्रगण्य हैं। जिस “बहुजन समाज की अनपल प्रगति के निमित्त”¹ उन्होंने प्रतिबद्धता की उद्घोषणा की है, उसके स्वर उनकी कविताओं में निरन्तर ध्वनित होते रहें हैं क्योंकि वे मूलतः कवि हैं— कबीर और निराला की परंपरा के ठेठ जनकवि। वे जनता के सुख-दुख की मार्मिक और सूक्ष्म पड़ताल करने वाले बड़े अनुभवों के बीहड़ कवि और कुशल गायक हैं। सामाजिक विसंगतियों, आर्थिक विषमताओं, राजनीतिक विद्रूपताओं और वैयक्तिक जीवन की विडम्बनाओं पर मर्मन्तक चोट करने का दुःसाहस और अन्याय, शोषण, दमन के विरुद्ध दृढ़ प्रतिरोध करने का संकल्प उन्हें कबीर और निराला की परंपरा में प्रतिष्ठित करता है। वह स्वयं भी रचनात्मक स्तर पर अपने इन पूर्ववर्तियों से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे। स्वयं कवि के शब्दों में— “हिन्दी में मैंने किसी को काव्य गुरु नहीं माना लेकिन मन ही मन निराला को काव्य गुरु अवश्य मानते हैं।”

अतः जनकवि के रूप में नागार्जुन का चर्चित और प्रतिष्ठित होना सहज स्वाभाविक है, किन्तु उनके उर्वर रचनात्मक व्यक्तित्व के अनेक आयाम और भी हैं जो प्रायः अचर्चित अलक्षित ही रहे, बावजूद इसके कि इनमें भी जनपक्षधरता की नागार्जुनी उद्घोषणा पूरे ताप और तेवर के साथ सुनी जा सकती है। मेरा संकेत उनके उपन्यासों की ओर है। जिनकी संख्या 13 है—

1. रतिनाथ की चाची	2. बलचनमा	3. नयी पौध	4. बाबा बटेसर नाथ
5. वरुण के बेटे	6. दुःख मोचन	7. उग्रतारा	8. जमनिया का बाबा
9. कुम्भीपाक	10. इमरतिया	11. अभिनन्दन	12. पारो

13. हीरक जयन्ती।

उन्होंने 'रतिनाथ की चाची' (1948) से लेकर 'पारो' (1975) तक अपने लगभग एक दर्जन उपन्यासों के जरिये जिस कथा-लोक की रचना की है, वह हिन्दी उपन्यास के लिए बिल्कुल नई है, इसमें समय और समाज अपने समूचे उतार-चढ़ाव, खन्दक-खाई, शिखर-कन्दराओं के साथ काफी साफ-साफ दिखाई देगा। 'नागार्जुन का लेखन सिर्फ इतिहास का लेखन नहीं है ना ही वह मात्र इतिहास का आईना है, बल्कि वह इतिहास में हस्तक्षेप है और कहीं-कहीं वह एक समानान्तर इतिहास भी है।'²

नागार्जुन के उपन्यास 'मानव मन की गुह्यतम गुत्थियों को दार्शनिक ऊंचाइयों तक नहीं उठाते जहां दुख को बनाये रखने का आत्मपीड़क और कलात्मक छल'³ पैदा होता है और न ही उनका 'घटना विन्यास इतना चक्करदार और सर्पिल है कि पाठक को भूलभुलैया के भ्रमण सा आनंद पैदा हो।' 'उनके उपन्यास तमाम मिथों और रहस्यों को भेदकर समस्या को सीधे और सच्चे रूप में रखने की कोशिश करते हैं।'⁴ 'इनके उपन्यासों में मिथिला के नितान्त पिछड़े सामन्ती समाज एवं उसकी सड़ांध और घुटन, आम जन की चेतना का उद्भव और संघर्ष के जितने मार्मिक स्पर्श उभरे हैं, विचार, संवेदना और परिवेश का जैसा संसलिष्ट रूप झलका है, उसे जनवादी साहित्य का एक प्रमुख अध्याय मानना होगा— एक ऐसा अध्याय जिनमें समूचे हिन्दी जनपद की धड़कन सुनी जा सकती है।'⁵

प्रेमचन्द का आगमन हिन्दी उपन्यास की वयस्कता का प्रमाण है। हिन्दी जनपद में ग्राम समाज का प्रथम दृष्टि संपन्न, समग्र राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक अध्ययन उनकी रचनाओं में ही परिलक्षित होता है किन्तु प्रेमचन्द के बाद देश-दुनिया और समाज में जो नाना स्तरीय बदलाव आये, लोक-जीवन में संवेदना-दृष्टि और रुचियों के धरातल पर दांव-पेचों के मामले में जो परिवर्तन घटित हुये उनके परिपेक्ष्य में प्रेमचन्द्र की लड़ाई को आगे ले जाने वाले रचनाकारों में नागार्जुन सर्वप्रमुख है। प्रेमचन्द की यथार्थवाद की आदर्शोन्मुख दृष्टि नागार्जुन तक आते-जाते बुद्धि-विवेक में विकसित हुई है इसीलिए वह भविष्य की उन जनवादी दिशाओं की सफलता पूर्वक तलाश कर सके, जिसके लिए भारत के मेहनतकश वर्ग निरन्तर संघर्षरत हैं। इसमें लेखक की पक्षधरता स्पष्ट है। नागार्जुन के उपन्यास के शोषण के विरुद्ध सामूहिक चेतना जगाकर समाज के दलितों, शोषितों, वंचितों को जुल्म के खिलाफ अनवरत संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं किन्तु यह प्रेरणा आयातित, आरोपित एवं कृत्रिम नहीं है। नागार्जुन के अपने शब्दों में "मैंने जो कुछ व्यक्तिगत जिया है, भोगा है, वही लिखा है।" यह "अनुभव सांचा" और "अनभै सांचा" उनके उपन्यास की मूल शक्ति है जिसके कारण वे अधिक धारदार और भरोसे के लगते हैं। किसान सभा और जे०पी० आंदोलन से सीधे जुड़ाव के कारण ही नागार्जुन अनुभव जनित सचेत वर्ग-दृष्टि से सम्यक चीजों को आत्मसात कर लेते हैं। अनुभव और संघर्ष का यह मेल ही व्यापक जीवन-दृष्टि देता है। जिससे कोई भी रचना सार्थक बनती है। बकौल रामविलास शर्मा— 'मिथिला के पिछड़े हुए सामन्ती समाज, उसकी घुटन जनता का संघर्ष और उसकी नई चेतना— इस सबका चित्रण नागार्जुन ने 'बलचमना' तथा अन्य उपन्यासों में किया।' लेकिन नागार्जुन की प्रतिबद्धता अपने मिथिलांचल और सकल हिन्दी समाज के प्रति एक जैसी है। बल्कि यदि जर्मन भाषी हिन्दी विद्वान लोठार लुट्से के अभिमत पर गौर करें, तो नागार्जुन उस 'अभारतीय' के प्रति भी उतने ही प्रतिबद्ध नजर आते हैं, जो 'भारतीय स्थिति की सच्ची पहचान' करना चाहता है। शायद यही वजह हो कि क्या इटली की मारिओला अप्रीदी, क्या अमेरिका के गार्डन रोडरमल और क्या पूर्वी यूरोप की शारका लित्विन, सभी की दिलचस्पी

नागार्जुन के कृतित्व में देखी जा सकती है। फ्रेंच में 'बवतुरिया' (नई पौध) का अनुवाद होता है, अंग्रेजी में गार्डन रोडरमल 'जमनिया का बाबा' (परिवर्तित नाम इमरतिया) का अनुवाद करते हैं और लोठार लुट्से 'बलचनमा' का पढ़ते हुए 17वीं सदी के जर्मन लेखक ग्रिमेलशासेन और उनके उपन्यास 'सिम्पलीसिसीमस' को याद करते हैं।⁶

“बलचनमा” में प्रकाशित नागार्जुन का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। प्रभाकर माचवे का अभिमत है कि 'प्रेमचंद की परंपरा में यदि सचमुच जन साधारण के दर्द को, जनसाधारण की पीड़ा को उसने अनुभव किया है तो 'बिल्लेसुर बकरिहा' के बाद 'बलचनमा' उपन्यास में ही वह जनदृष्टि हमें देखने को मिलती है।'⁶ प्रकाशन के साथ ही इसने हिन्दी जगत में तहलका मचाया था। प्रसिद्ध आलोचक आचार्य नंददुलारे बाजपेई ने 'आलोचना' के सम्पादकीय में लिखा था कि 'बलचनमा' ने हिन्दी उपन्यास के विकास को एक नया मोड़ दिया है। यह ग्रामीण जीवन उसमें होने वाले परिवर्तन और जनसंघर्ष का अत्यंत यथार्थवादी चित्रण है। इस दृष्टि से यह कृषक चेतना के विस्तार का भी महाख्यान है। 'किसान की पूरी पीड़ा प्रेमचन्द ने भी उभारी, उनकी हताशा और अन्दर-अन्दर सुलगती आग उनके यहां भी है, रूढ़ियों की जकड़ और उनसे टकराहट वहां सहज ही देखी जा सकती है। नागार्जुन के उपन्यासों में ये सब तो है ही उसके आगे की हकीकत भी है। यहां घुट-घुटकर मरना नहीं, मर-मर कर जीने का संकल्प है, जमीन से बेदखल होता किसान ही नहीं खोई जमीन को फिर से दखल करने के इरादे भी हैं, अलग-अलग सुलगती आत्माएं ही नहीं संगठित होकर लड़ने का आह्वान भी है, रूढ़ियों की जकड़न से मुक्त होने की छटपटाहट ही नहीं बल्कि एक बार की तोड़कर बाहर आ गई नई पीढ़ी भी है।'⁷ 'बलचनमा' इसी नई पीढ़ी का प्रतिनिधि है। यहां तक आते-आते होरी की निराशावादी दृष्टि बलचनमा की आशावादी दृष्टि में बदल जाती है और वह होरी के समान भारतीय किसानों की दुर्बलताओं और अभावों का सूचक न बनकर निम्नवर्गीय शोषित समाज में जागती हुई चेतना का वाहक बन जाता है। अपने हकों की लड़ाई के लिए प्रतिबद्धता और क्रान्तिकारी चेतना के कारण बलचनमा को महत्वपूर्ण दर्जा मिलना चाहिए।⁸ इस रूप में बलचनमा होरी के बाद हिन्दी उपन्यास की एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है।

बलचनमा की कथा स्वाधीनता-आंदोलन के चौथे दशक के परिवेश और परिस्थितियों से सम्बन्धित है। यह जमींदार-विरोधी किसान आंदोलन का दौर था जो बुर्जुआजी के नेतृत्व में होने वाले राष्ट्रीय-स्वाधीनता आंदोलन के बरक्स जनवादी चेतना सम्पन्न संगठनों द्वारा प्रेरित प्रभावित और संचालित था। मुक्ति की आकांक्षा के स्वर प्रबल हो रहे थे और जमींदारी की विरासत दरक रही थी, लेकिन उसकी ठसक में कोई कमी नहीं आई थी 'चौधरी लोगों का यह घराना किसी जमाने में बहुत ही भरापूरा और अकबाली था। अब इनकी जमींदारी तो नहीं थी, लेकिन रोब-दाब, रहन-सहन, चाल-ढाल और बातचीत से हुकूमत की बड़ी विकट बू आती थी।'⁹ 'सरकार बहादुर अपनी पुलिस पलटन से जमींदारों की मदद करती है।'¹⁰ वास्तव में औपनिवेशिक सत्ता ने जमींदारी व्यवस्था को अपने विरुद्ध पैदा होने वाले जनाक्रोश को रोकने के लिए तरंगरोध के रूप में विकसित किया था। इसलिए रैयत पर अमानवीय अत्याचार और उनका बेलगाम शोषण अनवरत जारी था। बलचनमा भी इसका शिकार हुआ। चौदह बरस की उम्र में ही उसका बाप मर गया। दो कच्चे किसुनभोग आम तोड़ लेने के जुर्म में उसे जमींदार ने मौत की सजा दी। विडम्बना यह है कि 'पेट की फिकिर' में बलचनमा और उसका परिवार उसी ड्यौढ़ी के सामने हाथ फैलाने को मजबूर है। 'ड्यौढ़ी की जूठन के बदले में भैंस चराना बच्चे खेलाना, पानी भरना, बाहर की

बैठक में झाड़ू लगाना, दुकान से नून-तेल, मसाला लाना, मलिकाइन के पैर चापना आदि न जाने कितने काम बलचनमा के जिम्मे हैं।¹¹ 'उसकी पोर-पोर, नस-नस पर मालिक का अधिकार है वह आखिर उनका बहिया है।'

जमींदार के शक्तिशाली होने का मूल कारण उसकी आर्थिक सम्पन्नता है। उत्पादन के साधनों पर उसका अधिकार है। 'मालिकों की चारों पट्टियों की डेढ़ हजार बीघा काश्त जमीन बेनीपट्टी के नजदीक थी, जिसे वहां के छोटे किसानों की मौरूसी जमीन को हड़पा गया था। बलचनमा के थोड़े से खेतों पर भी मालिक की निगाह थी, अपनी कलमी बाग को चौकोर करने के लिए। इस साजिश में जमींदार के साथ पंडित भी शामिल है। धर्म की इस सांठगांठ से ही स्वार्थ, शोषण को जब तब औचित्यपूर्ण सिद्ध किया गया है। पंडित कहता है— 'जो बहिया-महतों को प्रसन्न रखता है उसके लिए स्वर्ग में अमृत की धार बहती है।'¹³ और ——— 'भगवान जो करते हैं अच्छा ही करते हैं।'¹³ इस शाश्वत सत्य पर बलचनमा पहली बार संशय करता है। चार परानी का परिवार छोड़कर मेरा बाप मर गया, यह भी भगवान ने ठीक ही किया। भूख के मारे दादी और माँ आम की गुठलियों का गूदा चूर-चूरकर फांकती थी, यह भी भगवान ठीक ही करते थे और मालिक लोग कनकजीर और तुलसी फूल के खुशबूदार भात, अरहर की दाल, परवल की तरकारी, घी, दही, चटनी खाते थे, सो यह भी भगवान की ही लीला थी चौकोर कलमबाग के लिए उनको हमारा दो कट्ठा खेत चाहिए था और हमें चाहिए अपने चौकोर पेट के लिए मुट्ठी भर दाना।'¹⁴ बलचनमा इस साजिश को समझ रहा था क्योंकि वह कोई मध्यकालीन चेतना वाला खेत-मजदूर नहीं, स्वाधीनता-संग्राम की हवा के थपेड़े से जगा हुआ खेत-मजदूर है नई जनतांत्रिक चेतना, शोषण से मुक्ति की आकांक्षा जो गावों तक फैली है, उससे प्रेरित और उद्दीप्त खेत-मजदूर है। वह जानता था कि 'दुनिया की बातों को समझने के लिए जिस पक्की उमर की जरूरत है। वह यहां नहीं थी। फिर भी छोटी-छोटी दो आंखें तो थीं, दो कान तो थे।' यह आंख और कान का होना बहुत गहरे अर्थ का व्यंजक है और बलचनमा की चेतना के ऊर्ध्व विकास का भी।

आगे चलकर बलचनमा फूल बाबू के साथ शहर में भी रहा। स्वाधीनता की चेतना यहीं उसके दिमाग में समा गई। उसने महेन बाबू से सुना—'सोराज होने पर सबके दिल लौटेंगे, सबका भाग चमकेगा हमारा भी, तुम्हारा भी।'¹⁵ उसकी बहन के साथ छोटे मालिक के दुराचार की कोशिश बलचनमा के व्यक्तित्व में आक्रोश की आग भड़का दी और उसने अन्याय और शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध का संकल्प लिया—'चाहे उजड़ जाना पड़े, चाहे जहल दालुम हो, चाहे फांसी चढ़ूं मगर कभी जालिम के सामने सिर नहीं झुकाऊंगा।'¹⁶ यह एक गरीब कृषक-मजदूर का सदियों से बनायी गयी शोषण परक व्यवस्था को नकार देने का दृश्य-चित्र है और 'जमाना पलट रहा है' की उद्घोषणा भी। लेकिन जमाना अपने आप शोषित-पीड़ित लोगों के पक्ष में नहीं बदलता। बदलाव को अपने पक्ष में करने के लिए संगठित संघर्ष करना पड़ता है। नागार्जुन संगठन के स्वरूप और उसके वर्गीय चरित्र की पड़ताल करते हैं। मध्यवर्ग के नेतृत्व में चलने वाले आन्दोलनों ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए निम्नवर्ग को साथ तो लिया किंतु उसके लाभों से उन्हें वंचित रखा। उनकी समझौतावादी प्रवृत्ति ने मूलगामी परिवर्तन की सम्भावनाओं पर पूर्णविराम लगा दिया। फ्रांस की महान राज्यक्रांति सन् 1789 ई0 व सन् 1840, 1848 ई0 में घटित क्रांतियों के स्वरूप का अध्ययन करने के बाद ही मार्क्स इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि श्रमिकों का अपना नेता अपना संगठन होना चाहिए जो उनके वर्गीय हितों को समझ सके। इसलिए उन्होंने दुनिया के

मजदूरों से एक होने की अपील की थी।

नागार्जुन भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। बलचनमा कहता है— ‘बाबू-भैया लोग वहीं तक हमारा पक्ष लेंगे, जहां तक उनका मतलब रहेगा।’¹⁷ ‘———— सोराजी हो गये तो क्या, थे तो आखिर बाबू भैया ही न। गरीब का दुःख दर्द ये लोग क्या जानें?’¹⁸ इसीलिए महपूरा की किसान सभा में स्वामी जी (सहजानंद सरस्वती) कहते हैं— ‘बाहरी लीडरों के भरोसे मत रहिए, अपने नेता आप खुद बने। ————— आप सब कुछ पैदा करते हैं तो अपना लीडर भी अपने ही यहां पैदा कीजिए। जो आपका आदमी होगा वही आपकी तकलीफों को समझेगा।’¹⁹ संगठित होकर एक हो जाइए, जान जाए तो जाय मगर जमीन नहीं छोड़िये। संघर्ष के लिए संगठन अनिवार्य है। इसीलिए बलचनमा किसान सभा की रसीद रहमान साहब के पास से ले आता है। अपने टोले से उसने दस सदस्य बनाये — ‘इकन्नी दो अधकट्टी रसीद लो’ बस आज से तुम किसान सभा के मेम्बर बन गये। मनियार चाचा से लेकर शेख अब्दुल तक तारानंद बाबू से लेकर तीरी अमात तक और फूदन मिसिर की विधवा से लेकर मोमिन मोसमात हमीदा तक ————— सब मेम्बर बन गये।²⁰ ‘क्रान्ति’ नामक अखबार भी आने लगा जो किसानों और मजदूरों के बारे में खुलकर लिखता था। ‘उसकी पाती-पाती से असन्तोष की चिंगारी निकलती थी’²¹ इससे क्रान्ति चेतना का विस्तार हुआ। बलचनमा सोचता है— ‘अब तक किसानों को कुछ सूझता नहीं था। वे यह बात सोच नहीं सकते थे कि मालिकों की नादिरशाही का मुकाबिला किया जा सकता है। महपुरा के किसानों की लड़ाई से हमारी आंखें खुल गई थीं। हमने तय कर लिया था कि आगे एक बित्ता भी जमीन मालिकों को हड़पने नहीं देंगे।’²² महपुरा का आंदोलन सफल रहा था। बावजूद इसके कि जालिम जमींदार की पीठ पर थाने के दरोगा साहब थे, दरभंगा के कलेक्टर साहब थे, इलाके भर के जमींदार, पंडित और मोलवी सब उसके पक्ष में थे। पश्चिम के दस लठैत, जवान नेपाल के पांच खुखरी-बहादुर ————— बड़ा ताकतवर था खान बहादुर। लेकिन किसानों की एका, संगठन और उनकी संघर्ष चेतना का ही परिणाम था कि फसल किसानों के घर तक पहुंच गई। आंदोलन के इस दौर में कांग्रेस तटस्थ थी, वर्ग संघर्ष में सोशलिस्टों का दुलमुलपन साफ झलक रहा था (सोशलिस्ट नेता राधा प्रसाद का चीनी मिल मालिक के प्रति हमदर्दी)। इसका वास्तविक नेतृत्व कम्युनिस्ट नेता डा० रहमान कर रहे थे। कामरेड शब्द बलचनमा के लिए दुनिया का सबसे प्यारा लफ्ज़ था। वह भी गरीब किसान मजदूरों के पक्ष में संघर्ष करता है। साजिश का शिकार भी होता है और हिंसा का भी। उपन्यास बलचनमा के बेहोश होकर जमीन पर लुढ़कने के साथ ही समाप्त होता है किंतु बलचनमा की यह आत्मकथा कांग्रेस की दोहरी नीतियों, जमींदारों के छल-छद्म और भूमि पुत्रों के शक्ति-संकल्प को व्यंजित कर जाती है।

इस कड़ी का अगला उपन्यास 1954 में प्रकाशित ‘बाबा बटेसरनाथ’ है जो अपनी आत्मकथा के माध्यम से स्वाधीनता संग्राम की तमाम विसंगतियों और अन्तर्विरोधों को उद्घाटित करता हुआ एक नये इतिहास-बोध को व्यक्त करता है और भूमिपुत्रों के संघर्ष के नये सूत्र प्रदान करता है, एक नई समझ विकसित करता है। यह स्वातंत्र्योत्तर काल में जमींदारी उन्मूलन की विसंगतियों और उसके बाद पैदा हुये जटिल भूमि-संबंधों का उपन्यास है। इसमें जमींदारी उन्मूलन के बाद भी सामन्ती भूमि संबंधों को बरकरार रखने की धूर्त राजनीति का पर्दाफाश किया गया है।

जमींदारी उन्मूलन का कानून पास होने के बावजूद उसमें व्यक्तिगत समृद्धि की सीमा निर्धारित नहीं की गई थी। इसका भरपूर लाभ जमींदारों ने उठाया जमीन के बड़े-बड़े हिस्सों पर उन्होंने अपना कब्जा जमा

रखा जिससे वे अपनी शोषण प्रक्रिया बदस्तूर जारी रख सकें। दूसरी ओर जमींदारी उन्मूलन के एवज में सरकार उन्हें भारी हर्जाने भी दे रही थी। सरकार का यह कदम भूमि पुत्रों के खिलाफ सामन्ती शक्तियों का पोषण करने वाला था। जिसका पर्दाफाश करते हुए बाबा बटेसरनाथ कहता है— 'और तेरी यह आजाद सरकार इन सामन्ती श्रीमन्तों को ज्यादा हर्जाना देने की तिकड़में भिड़ा रही है। व्यक्तिगत सम्पत्ति वाजिब हकों का दायरा बेहद बढ़ाकर जमींदारी प्रथा का नकली श्राद्ध कांग्रेसी लोग कर रहे हैं, क्या नतीजा निकलेगा इसका'²² सचमुच इसका नतीजा यह निकला कि किसानों की आर्थिक दशा संकट में पड़ गई। जमींदारों ने सार्वजनिक उपयोग की जमीनें चुपके-चुपके बेंच डालीं। उपन्यास के जयनारायण झा और टुनाई पाठक ऐसे पात्र हैं जिन्होंने सामूहिक हितों की उपेक्षाकर गाँव की बरगद वाली जमीन और पुराने पोखर की चुपचाप बंदोबस्ती करवा ली और सम्पूर्ण गाँव के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में एक संकट उत्पन्न कर दिया।

जैकिशुन, जीवनाथ आदि जमींदार की इस चाल का विरोध करते हैं। नये जनतंत्रिक जमाने में दमन का रूप भी बदल गया है, यह प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष हो गया है। एक गूंगे आदमी की हत्या बाँस के झुरमुट के पास जमींदार करवा देता है और सभी जागरूक संघर्षशील नौजवान गिरफ्तार कर जेल भेज दिये जाते हैं और उनके विरुद्ध हत्या का मुकदमा चलता है। पूरी सरकार समन्ती स्वार्थ के पक्ष में खड़ी हो गई। यहाँ सत्ता-पक्ष का वर्गीय चरित्र भी पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है जब पुराने स्वतंत्रता संग्राम सेनानी दयानाथ जी भूमि-पुत्रों के पक्ष में क्षेत्रीय विधायक से पैरवी करने पटना पहुँचते हैं तो विधायक उग्रमोहन दास बड़ी चतुराई से मामले को टाल देता है। क्षुब्ध दयानाथ जी नई परिस्थिति में भूमि-पूत्रों की आर्थिक दुर्दशा के बारे में सोचते हैं। साथ ही उन्हें लगता है सारी कुर्बानी बेकार गयी क्योंकि 'आजादी मिली है हमारे उग्रमोहन बाबू को, कुलानन्द दास को कांग्रेस की टिकटों पर जो भी चुने गये हैं उन्हें मिली है अजादी। मिनिस्ट्रों को तो और ऊँचे दर्जे की आजादी मिली है। सेक्रेटिरियट के बड़े साहबों को भी आजादी का फायदा मिला है'²³ और ये सब आजादी की सत्ता पाकर सामन्ती शक्तियों के पक्ष में खड़े हो जाते हैं। यह सब देख-समझ कर दयानाथ विधायक-आश्रम से निकलकर लंगरटोली का रास्ता पकड़ते हैं। जहाँ किसान सभा का दफ्तर है।

पाँच नौजवान जेल में थे। उसका लाभ उठाकर जैकिशुन के भाई ने एक दिन पुराने पोखर जो काफी उथला था, उसमें हल चलवा दिया। दयानाथ ने मोर्चा सम्भाला गाँव वालों के साथ। हल नहीं चल सके। अगले ही दिन जमींदार की ओर से दयानाथ और अन्य लोगों पर मुकदमें ठोक दिये गये। इस प्रकार जमींदारों का शोषण और अत्याचार बदस्तूर जारी रहा। इसके विरुद्ध भूमि-पुत्रों ने जनबल को अच्छी तरह संगठित किया और अपने रूपौली गाँव के जनान्दोलन को जन संघर्ष की जिला और प्रदेश व्यापी धारा से जोड़ दिया। उन्होंने संगठन को और मजबूती प्रदान करने के लिए किसान सभा और नौजवान सभा की ग्राम कमेटियां कायम कर लीं। इनकी सक्रियता से किसान सभा के 1200 मंम्बर बन गये और 9 ग्राम कमेटियां चालू हो गईं। उच्चवर्ग के श्वेच्छाचारियों से अपनी हिफाजत के लिए, तानाशाह अधिकारियों से वाजिब हक हासिल करने के लिए बीसों देहाती तरुण भूमिपुत्र आगे निकल आये। इस संगठन की शक्ति के आगे सामन्ती शक्तियां और शोषक वर्ग परास्त होने के लिए विवश हैं। इससे बस्ती की हवा ही बदल जाती है। अब जगह-जगह जमींदार के तरफदार टुनाई पाठक की फजीहत होने लगी। यह सामन्ती शक्तियों के कमजोर पड़ने और भूमिपुत्रों की संघर्ष चेतना के व्यापक और गहन प्रभाव की

सांकेतिक अभिव्यक्ति है। साथ ही पुराने बरगद की जगह नये बरगद का लहराना एक सकारात्मक बदलाव का प्रतीक है। इसके पास लगा सफेद ध्वज, जिस पर सिन्दूरी अक्षरों में स्वाधीनता, शान्ति और प्रगति— ये तीन शब्द लिखे हुए हैं, जो भूमि-पुत्रों के आंदोलन का अन्तिम लक्ष्य है। इसके लिए आवश्यक शर्त है उनकी एकता। इसीलिए अंतिम अवसर पर बाबा बटेसर नाथ का जैकिसुन को दिया गया आशीर्वाद उल्लेखनीय है— मैं आशीर्वाद देता हूँ रूपऔली की यह एकता हमेशा बनी रहे। सुखमय जीवन के लिए तुम्हारी यह सामूहिक प्रचेष्टा कभी मंद न हो। स्वार्थ की व्यक्तिगत भावना कभी तुम्हारी चेतना को धुंधला न बनाये।²³ यह नागार्जुन की अपनी आंकाक्षा है जो जमीनी स्तर पर अधिक प्रखर रूप में 'वरुण के बेटे' में स्पष्ट हुई। जहाँ वह 'जल जंगल जमीन के लिए देशभर में बिखरे भूमिपुत्रों के जन संघर्षों को एक जमीन पर लाने और साझे मोर्चे के निर्माण की वकालत करते हैं।

'बलचनमा' और 'बाबा बटेसरनाथ' से मिथिलांचल के सामन्ती जकड़ वाले भूमिपुत्रों का जो विमर्श नागार्जुन के यहां शुरू होता है, 'वरुण के बेटे' (1957) उसमें एक नया आयाम जोड़ता है। वह नया आयाम है— भूमिपुत्रों के शोषण उत्पीड़न से ऊभचूभ जीवन और उनकी संघर्ष चेतना को विस्तार देता वरुण के बेटों का जुझारु मानस।

'वरुण के बेटे' उपन्यास में मछुआरों के जीवन संघर्ष की कहानी कहीं नहीं है। गढ़-पोखर पर एक जमाने से मलाही-गोढ़ियारी के मछुआरों का अधिकार था। वे वर्षों से मछली पालन ताल-मखाना उगाने और कछार में खेती करने का कार्य करते चले आ रहे थे। यूँ तो गढ़-पोखर देपुरा के मैथिल जमींदारों का था, पर भोला, गंगा सहनी और नकछेदी ने इसे पट्टे पर ले रखा था। यह पोखर पूरे मलाही-गोढ़ियारी बस्ती के मछुआरों का पेट पालता था। जब जमींदारी-उन्मूलन कानून आया तो देपुरा के जमींदारों ने इसे सतघरा के जमींदारों के हाथों बेच दिया। इसलिए जब नये खरीददार-सतघरा के जमींदार मलाही-गोढ़ियारी के मछुआरों को 'गरोखर' के पानी से बेदखल कर नये सिरे से बंदोबस्ती देकर ज्यादा रकम बटोरना चाहते हैं तो विरोध के स्वर उठने लगते हैं क्योंकि ग्रामीण जीवन में चारागाह, पोखर, परती-परांत आदि केवल प्राकृतिक संसाधन और मुनाफा कमाने का माध्यम नहीं होते हैं। इनका सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व होता है। इनके इर्द-गिर्द जीवन के अनेक मोहक तन्तु विकसित होते हैं। ये जीवन का आधार है। इसलिए गढ़पोखर से बेदखल होते 'वरुण के बेटे' कहते हैं— यह पानी सदा से हमारा रहा है, किसी भी हालत में हम इसे छोड़ नहीं सकते। पानी और माटी न कभी बिके हैं, न कभी बिकेंगे। गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं है, वह तो हमारे शरीर का लहू है। जिनगी का निचोड़ है।²⁴

मछुआरों के इस संघर्ष को मोहन मांझी नेतृत्व प्रदान करता है। वह गांव के लोगों को संगठित करता है और वे जमींदारों की ज्यादाती के विरुद्ध संघर्ष करने को उद्यत होते हैं। लेकिन यह संघर्ष किसी एक गांव या किसी एक समुदाय का नहीं है। बल्कि यह शोषण के खिलाफ शोषितों, उत्पीड़ितों के अनथक संघर्ष का एक अविभाज्य हिस्सा है। नागार्जुन का मानना है कि शिक्षित और संगठित भूमिपुत्रों में क्रान्ति चेतना के विस्तार के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने समकालीन चलने वाले जन संघर्षों से गहरा जुड़ाव महसूस करें और समान धरातल पर एक जुटता प्रदर्शित करें। इसके लिए मोहन मांझी लगातार कोशिश करता है कि गढ़पोखर के अपने सनातन अधिकारों की मान्यता का मछुआरों का यह संघर्ष देश की आम मेहनतकश जनता की सामान्य जद्दोजहद से अलहदा न रह जाये।²⁵ इसके लिए तवाखीणि की वापसी के मुद्दे पर भड़के किसानों का वार्षिक सम्मेलन 'चमुड़िया' से दो मील उत्तर बस्ती

कुसोधर के बाहरी मैदान में किया। जिसमें पचास गाँवों के किसान खेत-मजदूरों के साथ-साथ 'मलाही-गोढ़ियारी' के पाँच प्रतिनिधि भी शामिल थे। यह भूमि-पुत्रों का साझे संघर्ष के लिए साझे मोर्चे के निर्माण की शुरुआत है। लेकिन यह संघर्ष इतना आसान नहीं है। शोषक के पक्ष में सत्ता की शक्ति है, साम-दाम-दण्ड-भेद की खतरनाक साजिशें हैं और मजबूत सामाजिक-आर्थिक आधार है। मछुआरों के संघर्ष में नये मालिक भी डरा धमकाकर, मुँह के कौर छीनकर, छाती पर संगीन की नोक का दबाव डालकर, फुसला-बहकाकर चाहे कैसे भी हो, मछुआरों से अपना प्रभुत्व मनवा लेने पर आमादा थे।²⁶ गढ़पोखर पर धारा-144 लगा दी जाती है। लेकिन मछुआरों का संगठन तयकर चुका है कि किसी भी स्थिति में न तो घुटने टेकेंगे और न ही सतभरा वालों को गढ़पोखर की सीमा में घुसने देंगे। गढ़पोखर की विशाल जल-सम्पत्ति अब जनता की है। मछुआरों पर लूट और गैर-कानूनी कार्रवाइयाँ करने का अभियोग लगाया जाता है और जब पुलिस इन्हें गिरफ्तार करके ले जाने लगती है— हक की लड़ाई जीतेगे! जीतेगे! गढ़पोखर हमारा है, हमारा है के नारे हवा में गूँजने लगते हैं।²⁷

'वरुण के बेटों' के ये क्रान्तिकारी स्वर अपने ताप और तासीर में 'बलचनमा' के इन्कलाबी स्वर— 'जमीन किसकी जोते बोये उसकी, कमाने वाला खायेगा..... इसके चलते जो कुछ हो' से मेल खाती है। भूमिपुत्रों का यह संग्रामी तेवर बाबा नागार्जुन के उपन्यासों में शब्दशः अनुस्यूत है।

इस रूप में उनके उपन्यास भारत के भूमिपुत्रों का और उनके आंदोलन का भी इतिहास बन जाते हैं। बलचनमा नामक एक किसान मजदूर पहले कांग्रेसी बना और तब कामरेड राजनीतिक चेतना के संक्रमण की यह कहानी किसी एक बलचनमा की नहीं है और न ही जैकिसुन, जीवनाथ, मोहनमांझी, खुरखुन, भोला, मंगल एवं मधुरी का संघर्ष केवल उनका है। यह प्रक्रिया लगभग पूरे भारत में अपनायी गई। भूमिपुत्रों में राजनीतिक चेतना आयी जिसकी परिणति 1946-47 में तेभागा और 1944-51 तेलगाना आंदोलनों के रूप में हुई। इसी कड़ी में 1969 के नक्सलबाड़ी आंदोलन को भी देखा जाना चाहिये। ये आंदोलन मुख्यतः सामंती व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश का परिणाम थे। वर्तमान पस्त हिम्मती के दौर में जब पूंजीवाद के निर्मम प्रहार से भूमिपुत्रों का अस्तित्व ही संकट में है, कृषि-संस्कृति को नष्ट करने की पूरी साजिश रची जा चुकी है, उनकी उपजाऊ जमीनें हड़पी जा रही हैं, उन्हें कर्ज के जाल में फंसाया जा रहा है। जल-जंगल-जमीन पर कब्जेदारी की तैयारी है। जंगलों से बेदखल करने की जबरदस्त मुहिम चल रही है। भूमिपुत्रों के संग्रामी तेवरों की तपिश नागार्जुन के उपन्यासों से निकलकर अपने आस-पास महसूस की जा सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. नागार्जुन: 'प्रतिबद्ध हूँ' शीर्षक कविता से उद्धृत
2. राय डा0 ब्रजेश — नागार्जुन के उपन्यास : जनवाद की लोक मुद्रा, परिषद-पत्रिका वर्ष 38 अंक 1-4 अप्रैल 98 — मार्च 99, पृ. —204
3. मिश्र शोभाकान्त — नागार्जुन चुनी हुई रचनाएं भाग-1 भूमिका, पृ. —10
4. उपरोक्त— पृ. —10
5. राय डा0 ब्रजेश—नागार्जुन के उपन्यास : जनवाद की लोक मुद्रा, परिषद-पत्रिका, पृ. —205
6. सलिल सुरेश— नागार्जुन के उपन्यास, आलोचना त्रैमासिक, सहस्राब्दी अंक-43
7. आजकल, मई 1953
8. मिश्र शोभाकान्त—नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ, भाग-1 भूमिका, पृ. —12

9. नाथ संगीता —नागार्जुन के उपन्यासों में समाजवादी दृष्टि, परिषद्-पत्रिका, पृ. —223
10. मिश्र शोभाकान्त — नागार्जुन चुनी हुई रचनाएं भाग 1, बलचनमा, पृ. —137
11. उपरोक्त
12. उपरोक्त
13. उपरोक्त
14. उपरोक्त, पृ. — 142
15. उपरोक्त, पृ. — 144
16. उपरोक्त, पृ. — 193
17. उपरोक्त, पृ. — 183
18. उपरोक्त, पृ. — 195
19. उपरोक्त, पृ. — 196
20. उपरोक्त, पृ. — 244
21. उपरोक्त, पृ. — 253
22. उपरोक्त, पृ. — 255
23. नागार्जुन : बाबा बटेश्वर नाथ, पृ. — 30
24. उपरोक्त पृ. — 114
25. मिश्र शोभाकान्त— नागार्जुन चुनी हुई रचनायें भाग-1, वरुण के बेटे, पृ. — 283
26. उपरोक्त, पृ. — 272
27. उपरोक्त, पृ. — 342
28. उपरोक्त, पृ. — 346



नागार्जुन : आम जन के कवि

डॉ० आभालता चौधरी

असिस्टेंट प्रोफेसर – हिन्दी विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फतेहाबाद, आगरा

सन् 1930 ई० के आस-पास भारत में गांधी जी के नेतृत्व में स्वतंत्रता आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था। नये उद्देश्यों से प्रेरित, नये संकल्पों से दृढ़, नये ओज से दीप्त भारत आगे की ओर बढ़ रहा था। ऐसी ही चेतना कुछ साहित्य में भी दृष्टिगोचर हो रही थी। क्षुब्ध नवयुवक वर्ग दशा को विदेशी शासन के चंगुल से मुक्त करने के साथ ही मनुष्य को मनुष्य के शोषण से भी मुक्त करने को तत्पर हो रहा था। इसी नयी चेतना की ध्वनि साहित्य में अनेक नये कवियों की वाणी में सुनायी पड़ने लगी थी। यही युग साहित्य में प्रगतिवाद के नाम से जाना गया। इस काल के अनेक कवियों में से सबसे सशक्त और प्रतिनिधित्व नाम है नागार्जुन का। शोषित पीड़ित जनता के मुक्ति और संघर्ष की बेवाक और तीखी अभिव्यक्ति की सांस्कृतिक संज्ञा है नागार्जुन की कविता।

यथार्थवादी कवि नागार्जुन ने आम जनता के दुःख, दर्द और परेशानियों को अपनी कविताओं के माध्यम से अत्यन्त स्पष्ट एवं बेलाग भाषा में प्रस्तुत किया है। नागार्जुन के हृदय में शोषित, पीड़ित और दलितों की दीन-हीन अवस्था के प्रति प्रारम्भ से ही सहानुभूति दिखायी पड़ती है। चित्रा काण्य की 'परम सत्य' मैथिली कविता में कवि जनशक्ति के समक्ष अपना सिर झुका लेता है। कवि की दृष्टि में श्रमशील मानव ही पूजनीय है। नागार्जुन कहते हैं "धन्य हे श्रमशील मानव विश्वभरि में व्याप्त, धन्य तोहर जाति—"

नागार्जुन ने हिन्दी में अनेक काव्य संग्रह जैसे युगधारा, सतरंगे पंखों वाली, प्यासी पथराई आखें, तालाब की मछलियाँ, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, तुमने कहा था, हजार-हजार बाहों वाली, पुरानी जूतियों का कोरस तथा रत्नगर्भ की रचना की। 'युगधारा' काव्य संग्रह में अपने जीवन के माध्यम से कृषक जीवन की अभिव्यक्ति नागार्जुन ने की है। कृषक वर्ग समाज में दीन-हीन तथा शोषित हैं युगधारा की संकलित रचनाएँ सामाजिक समस्याओं पर स्पष्ट प्रकाश डालती हैं। व्यंग के माध्यम से कवि ने अध्यापक के विषय में मार्मिक अभिव्यक्ति की है। उसके कन्धों पर समाज के विकास का दायित्व है पर आर्थिक दृष्टि से इतना संतुष्ट है कि स्वयं अपना ही उत्तरदायी निर्वहन करने में अक्षम है :-

"धुन खाये शहतीरों पर की

बारह खड़ी विधाता बाचें

फटी भीत है, छत चूती है

आले पर बिस्तुरिया नाचे"।।

आलोचक मैनेजर पाण्डेय नागार्जुन के विषय में लिखते हैं कि—"हिन्दी में जनता के कवि बहुत हैं, लेकिन, जन-आन्दोलन के कवि नागार्जुन ही हैं। उनकी बहुत सी कविताएँ जन आन्दोलनों से पैदा हुई हैं और अनेक कविताएँ जन आन्दोलनों की प्रेरक शक्ति के रूप में काम करती रही हैं। सन् 1947 ई. के बाद शायद ही कोई बड़ा जन आन्दोलन होगा, जिसकी गूँज नागार्जुन की कविता में मौजूद न हो"। नागार्जुन अशिक्षित, गरीब, बेवस, और पस्त जनता के कवि हैं। उनकी कविता में शोषित-पीड़ित

जनसमुदाय की व्यथा, बेबसी, भूख, गरीबी, और तंगहाली का हृदयस्पर्शी चित्रण है। अपनी लम्बी काव्य यात्रा में कवि ने शोषित-पीड़ित जनसमुदाय के अभावग्रस्त जीवन का यथार्थ चित्रण बार-बार किया है। युवा वर्ग बेरोजगारी के भंवर में पड़ा हुआ है। भूखे नंगे, पुराने चिथड़े में अपने शरीर को ढके, कष्टमय जीवन जीने वाली जनता की पुकार है नागार्जुन की कविता। कवि भूखमरी के शिकार लोगों की विवशता का चित्रण करते-करते विद्रोहक भाव से भर उठते हैं :-

“भूखों मरते हो बच्चे तो यो ही मत रह जाओ,
आतें सूज रही हो तो आँसू मत बूथा बहाओ
हाथ पैर वाले हो, नाहक कायर नहीं कहाओं
कीड़ो और मकोड़ो जैसे यों मत प्राण गवाओ”

नागार्जुन बीसवीं सदी के हिन्दी के सबसे बड़े जनकवि हैं। जन जीवन का जैसा व्यापक और गहन चित्रण उनकी कविताओं में मिलता है, और इस परिस्थित के लिए जिम्मेदार जमींदार, सेठ, साहूकार, नेता और नौकरशाह पर जैसा सीधा और तल्लख प्रहार नागार्जुन की कविताओं में मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है। नागार्जुन की कविताएँ भारतीय आम जन जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। कवि की कविता स्वयं को कुंठा और अवसाद की आग में जला कर नहीं लिखी गयी है। वह संवेदना की मध्यम आँच पर पकाई गयी है। मानवीय मूल्यों के जितने प्रतिमान हो सकते हैं, सभी उनकी कविता में स्वतः आते गये हैं। आपकी व्यापक समृद्ध लोक चेतना की ही ताकत है कि वे इन्हें भी कविता का न सिर्फ विषय बनाते हैं, बल्कि इनके ही बीच से वे कविता के लिए कोई नया प्रतीक खोजकर ले आते हैं, जो जगत की निधि है। नागार्जुन के काव्य में निम्न वर्ग के जीवन की विद्रूपताओं, सर्वहारा वर्ग की भूख और दरिद्रता के अलावा लोकजीवन की अछूती संवेदना सर्वत्र दिखाई देती है। डा० नामवर सिंह लिखते हैं-“जो वस्तु औरों की संवेदना को अछूती छोड़ जाती है। वही नागार्जुन के कवित्व की रचनाभूमि है। कवि की कविताओं में उपेक्षित तथा पीड़ित जनसमुदाय के प्रति कवि की गहरी सहानुभूति है। वे जनता के विषाद, दुख और पीड़ा को अपना ही समझते हैं। युगधारा काव्य संग्रह में संग्रहित कविता में कवि ने व्यक्तिगत जीवन को चित्रित किया है। कवि के स्वयं का जीवन संघर्ष और कठिनाइयों में बीता है और इसी कारण उसमें दुख और दर्द का स्वतः की भोगी अनुभूति है। उन्होंने लिखा है :

“पैदा हुआ था मैं,
दीन-हीन अपठित किसी कृषक कुल में,
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से
कवि? मैं रूपक हूँ दबी दूब का।”

डा० विद्या प्रधान ने नागार्जुन के विषय में लिखा है कि : “नागार्जुन हिन्दी के ऐसे कवि हैं, जिनका कर्म परिवेश और व्यक्तित्व, उनकी कविता के सम्मिलित रूप की संज्ञा बन जाती है। उनके जीवन से गुजरती है देश, धरती, प्रकृति। सम्वेदना से जनमती है कविता, कविता से जमनता है उनका व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से चमकती है एक गर्भस्थ सुन्दर दुनिया जहाँ मनुष्यता हंसती, मुस्कराती, मानवता उछलती-कूदती करुण रुदन करती है। वह एक ऐसी सुन्दर दुनिया है, जो अपनी किलकारियों का आभास देती है। नागार्जुन के काव्य में इन्सानियत से जूझता है, उसका रचनाकार, अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द करता है।

नागार्जुन के काव्य में प्रकृति प्रेम और सौन्दर्य का उज्ज्वल रूप है, जहाँ कवि कहीं रिझता है, कहीं खिझता है, कहीं व्यंग्य करता है, तो कहीं आक्रोश से भर जाता है। नागार्जुन के काव्य व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए डा० कृष्ण लाल हंस ने लिखा है "हिन्दी काव्य साहित्य में नागार्जुन का प्रवेश एक क्रांतिकारी कवि के रूप में होता है। वे सच्चे अर्थों में सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते दिखायी देते हैं। उनका सम्पूर्ण प्रगतिवादी काव्य जीवन के यथार्थ पर आधारित है। उन्होंने अपने काव्य में सामाजिक-जीवन के विभिन्न पक्षों एवं स्तरों को उनके यथार्थ रूप में चित्रित किया है। उनकी दृष्टि व्यापक और भावनाएं उदात्त हैं।

स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र में लोकतंत्रात्मक शासन की व्यवस्था हुई। भारत का स्वर्णिम भविष्य लोगों को दिखाई दे रहा था। पर यथार्थ कुछ और ही कह रहा था। कवि नागार्जुन को इस कारण बड़ी निराशा हुई। लोग भोजन के लिए परेशान हैं, नौकरशाह और नेता आनन्द में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कवि नागार्जुन को चारों ओर अव्यवस्था ही अव्यवस्था दिखाई दे रही है। अत्याचार स्वेच्छाचार और निरंकुशता शासन में घुस आई है, तथा स्वतंत्र भारत की निहत्थी व दीन जनता इससे जूझ रही है। नागार्जुन ने समाज की गरीबी, शोषण, उत्पीड़न, क्रन्दन, राजनीतिक, सामाजिक प्रपंच आर्थिक, वैषम्य, धार्मिक प्रदूषण आदि को सामान्य जनपदीय भाषा में व्यंग्य, करुणा, और आक्रोश के स्वर में अभिव्यक्ति कर अपने जीवन और व्यक्तित्व को तदाकार कर दिया है। एक ओर समाज के अनगिनत भूखे-नंगे लोगों का करुण क्रन्दन है तो दूसरी तरफ व्यवस्था के वे ठेकेदार हैं, जिनमें निजी स्वार्थ की आत्मकेन्द्रित दृष्टि है। यह दृष्टि शोषण की स्थिति को बरकरार रखना चाहती है। जिससे लगातार जूझता है नागार्जुन का कवि हृदय।

प्रगतिशीलता नागार्जुन के काव्य की विशेष विशेषता है। उल्लेखनीय है कि नागार्जुन की प्रगतिशीलता थोपी हुई नहीं है बल्कि उनके भीतर का सहज स्वाभाविक जन चरित्र है। नागार्जुन ने सच्चे अर्थों में मार्क्सवादी दृष्टिकोण को व्याख्यायित स्थापित कर अपने जीवन, कर्म और कविता में उतारा है। नागार्जुन के विषय में कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है कि "नागार्जुन का मार्क्सवाद, जो दलगत राजनीति से ऊपर है। मार्क्सवादी दर्शन से प्रेरणा लेते हैं, किन्तु राष्ट्रीयता का परित्याग करके नहीं। इसलिए जो राष्ट्र के लिए सत्त जागरूक है, नागार्जुन धरती से प्यार करने वाले ऐसे व्यक्ति के प्रति श्रद्धावन्त हैं। उनकी कविता में कहीं कोई उलझाव दुराव नहीं है। वह सबके लिए सुगम और सबसे लिए ग्राह्य है। वे ठेठ जनता के कवि हैं।"

नागार्जुन किसानों-मजदूरों की वास्तविक स्थिति से बहुत दुःखी है। वे उन्हें नजदीक से देख रहे हैं और उनके मेहनत पर ऐश कर रहे सत्ताधारी वर्ग के चरित्र को भी देख समझ रहे हैं। उन्हें इस बात का दुख है कि ये अपने ही लोग हैं, जो यमदूतों की तरह से अपने लोगों का शोषण कर रहे हैं। वे नरभक्षी की तरह से आचरण करते हुए दिखाई दे रहे हैं। इस पर आक्रोश व्यक्त करते हुए वे कहते हैं –

मंडराती है यम की नानी खेतों में खलिहानों में,
भूख अकाल महामारी की फसल उगी मैदानों में,
लूटपाट की होड़ मच गई नरभक्षी, हैवानों में,
लटक रहा ताला गल्ले की सरकारी दुकानों में।

वे इस बात से दुखी हैं कि शोषक वर्ग किस तरह से शोषण कर रहा है। अफसर हो, नेता हों या

पूँजीपति सब अपने-अपने तरीके से जनसामान्य का शोषण करने में लगे हुए हैं। अफसर जो जनता की सेवा और मदद करने के लिए मोटी तनखाह पाते हैं, लेकिन वे अपने कर्तव्य को भुलाकर अपनी स्वार्थ सिद्धि करने में लगे हुए हैं और अपने नाते-रिश्तेदारों को ऊँचे-ऊँचे पदों पर बैठा रखा है, जहाँ से वे जनता के पैसे से ऐश कर रहे हैं –

“छोटे-छोटे बाल छटे हैं चिकनी मोटी गर्दन
पहली को पाते हैं साहब तीन हजारी वेतन
मुंसिफ बना दमाद भतीजे ने पाया प्रमोशन,
बेटे ने पकड़ा दामोदर वेली कॉरपोरेन
छोटे-छोटे बाल छटे हैं चिकनी मोटी गर्दन,
उतरे हैं देवता स्वर्ग से धरती पर, अफसर बन।”

इन्हीं अफसरों एवं पूँजीपतियों के बल पर हमारे नेता कूद रहे हैं। एक दूसरे से मिले हुए हैं, एक दूसरे का हित कर रहे हैं और सब मिल कर किसान और मजदूर का ही शोषण करने में लगे हैं—

“लाख-लाख श्रमिकों की गर्दन कौन रहा है रेत,
छीन चुका है कौन करोड़ों खेतिहरों का खेत,
किसके बल पर कूद रहे हैं सत्ताधारी प्रेत।।”

जनवादी कविता के पुरोधा नागार्जुन का कवि व्यक्तित्व समसामयिक परिस्थितियों का सहभोक्ता एवं जीवनबोध का प्रतीक है। नागार्जुन ने अपने साहित्य सृजन का केन्द्र बिन्दु आम आदमी को ही बनाया है। उनके काव्य में जहाँ आम व्यक्ति की घुटन देखने को मिलती है। वहीं पूरी सिद्धत से साथ वह सामाजिक विडम्बनाओं विकृतियों से संघर्ष करता भी नजर आता है। नागार्जुन ने समाज में हो रहे जातिगत अन्याय, दमन, क्रूरता, शोषण आदि से विचलित व्यक्ति को अपना कथ्य बनाकर कविता के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत किया। उनकी लेखनी अन्याय के खिलाफ बेबाक आग उगलती नजर आती है। नागार्जुन जैसे तो सर्वहारा वर्ग के शीर्षस्थ कवि हैं और साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित लेकिन मूलतः देखा जाये तो वे अपने को किसी विचारधारा के हाथों रेहन नहीं रखा और उन्मुक्त होकर बेबाक साहित्य रचते हैं, जो एक सच्चे जनकवि की पहचान है। प्रभाकर श्रोत्रीय के शब्दों में “नागार्जुन हर तरह की चौखट से इन्कार का नाम हैं। वे दरअसल नागार्जुन का कर्म क्षेत्र और काव्य क्षेत्र परिपाटीजनित दृष्टि के लिए अनेक तरह के बेमेल विरोधों और करणियों – अकरणियों का घालमेल रहा है।” ‘हरिजन गाथा’ नागार्जुन की एक लम्बी कविता है। इस कविता के माध्यम से कवि ने स्वतंत्र भारत में यातनाग्रस्त दलितों के जीवन में ऊँची जातियों के लोगों के द्वारा हो रहे बर्बतापूर्ण आचरण को रेखांकित किया है। इस कविता के माध्यम से नागार्जुन ने वर्गगत-भेदभाव और उनके साथ हो रहे अमानवीय अत्याचारों को दिखाने का प्रयास किया है—

“अरे भगावों इस बालक को, होगा यह भारी उत्पाती,
जुलुम मिटायेगा धरती से, इसके साथी और संघाती,
आज भगाओं, अभी भगाओ, तुम लोगों को मोह न घरे
होशियार इस शिशु के पीछे, लगा रहे हैं गीदड़ फेरे।”

डा० प्रभाकर चन्द्र भट्ट ने नागार्जुन के विषय में लिखा है कि “नागार्जुन एक जनवादी कवि थे इसलिए वे समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, भाग्यवाद, उच्चवर्ग के प्रति आक्रोश उनके समस्त साहित्य में देखने को मिलता है। कवि को निम्न वर्ग के रहन सहन का बड़े निकट से अनुभव है। इसलिए वह कविता में इस वर्ग की पीड़ा के यथार्थ चित्र और उनके अभावों के प्रति निश्चल संवेदना व्यक्त हुई है।”

जनचेतना के प्रति गहन आस्था और विश्वास के कारण ही नागार्जुन साम्यवाद और क्रान्ति द्वारा नई सामाजिक व्यवस्था को बनाने में लगे रहे। मधुरेश के शब्दों में “नागार्जुन का सम्पूर्ण साहित्य उन अत्यन्त साधारण लोगों का साहित्य है जो अपनी सारी मेहनत, निष्ठा और ईमानदारी के बावजूद एक घृणित और नारकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं।” नागार्जुन ने समाज की गरीबी, शोषण, उत्पीड़न, क्रंदन, राजनीतिक सामाजिक प्रपंच आर्थिक वैषम्य, धार्मिक प्रदूषण आदि को सामान्य जनपदीय भाषा में व्यंग्य करुणा और आक्रोश के स्वर में अभिव्यक्त कर अपने जीवन और व्यक्तित्व का तदाकार कर दिया है। नागार्जुन के साहित्य में शोषक व शोषितों का द्वन्द्व है। हिन्दी साहित्य के प्रगतिशील धारा के कवियों में नागार्जुन का स्थान अत्यन्त उच्च है। उनकी कविताओं में समान सामाजिक व्यवस्थाओं का उत्स देखा जा सकता है। उनकी कविताओं में अनुभूति और भावना के साथ-साथ मार्मिकता और वैचारिकता का समावेश देखा जा सकता है। इनकी कविताएँ भावात्मक स्तर पर हमें उतना ही उद्बलित और सक्रिय करते हैं, जितना विचार के स्तर पर।

संदर्भ सूची

- ◆ नागार्जुन : मूल्यांकन पुनर्मूल्यांकन—स० परमानन्द श्रीवास्तव
- ◆ नागार्जुन जीवन और साहित्य—डा० प्रभाकर चन्द्र भट्ट
- ◆ जन संवेदना का कवि नागार्जुन—स० डा० गोविन्द दास एवं डा० विमला
- ◆ नागार्जुन काव्य में शिल्पगत प्रयोग — खगेन्द्र ठाकुर



परसाई जी के व्यंग्य—समकालीन यथार्थ के संदर्भ में

डॉ. आराधाना सिंह

सहायक प्राध्यापक, हितकारिणी महिला महाविद्यालय, जबलपुर (म. प्र.)

आधुनिक हिन्दी व्यंग्य लेखन में हरिशंकर परसाई (सन् 1924—1995 ई.) का स्थान सर्वोच्च है। हरिशंकर परसाई ने हिन्दी की व्यंग्य विधा को एक नई दिशा देकर उसे इतना परिमार्जित और परिष्कृत किया है कि परम्परा से चली आ रही व्यंग्य संबंधी धारणा को सर्वदा एक नवीन स्वरूप और ताजगी प्राप्त हुई है। जिस समय उन्होंने लिखना आरम्भ किया, उस समय साहित्य में केवल हास्य के नाम पर कुछ रचनाएँ उपलब्ध थीं। व्यंग्य का यह रूप जो आज प्रतिष्ठित है, वह कदापि नहीं था। उस समय परसाई जी ने लीक से हटकर लिखा। उनका व्यंग्य लेखन ऐसा था कि पाठकों ने उनके लेखन की चुभन को पहली बार पहचाना। उन्हें पाठकों का ऐसा वर्ग मिला जो उनकी सराहना भी करता रहा है। परसाई जी को साहित्यिक दृष्टि ने सम्पूर्ण समाज, देश और विश्व की समकालीन घटनाओं को अपने दृष्टिकोण से समझकर लेखों में समाहित किया है।

परसाई जी ने अपने व्यंग्य लेखन में उन समस्याओं के प्रति अत्यधिक चिन्ता व्यक्त की है, जिससे आम व्यक्ति भी परेशान है। वे समस्याएँ जो जन विरोधी हैं, जो मानव समाज की व्यवस्थाओं को छिन्न-भिन्न करती हैं, उन पर अपने व्यंग्य लेखों द्वारा कुठाराघात किया है। वे कहते हैं— “35 वर्ष अपने विश्वासों को मजबूती से पकड़कर बिना समझौते के मैंने जो सही समझा लिखा है, जो कुछ मानवविरोधी है, उस पर निर्मम प्रहार किया है।” (परसाई रचनावाली भाग 6)

परसाई के व्यंग्य लेखन के संबंध में नार्गाजुन जी लिखते हैं— “परसाई जी के व्यंग्य बाण जब छूटते हैं, तो सभी शोषण, अत्याचारी, पाखंडी यहाँ-वहाँ मुँह छिपाने लगते हैं। स्वाधीन भारत की पृष्ठभूमि में, मोहभंग, विकृति-निराशा, असफलता और विडम्बना की पृष्ठभूमि में व्यंग्यों को अपनी अभिव्यक्ति का बल्कि साहित्यिक अभिव्यंजना का एक रूप बनाकर जिस पर परसाई जी उपस्थित हुए, उस तरह दूसरा कोई गद्यकार नहीं हुआ।”

व्यंग्य के संबंध में स्वयं परसाई जी कहते हैं— “व्यंग्य एक औषधि है, जो बीमारी दूर करती है।” उन्होंने विद्रूपताओं और नकारात्मक शक्तियों का विरोध करते हुए जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि एवं व्यंग्य के सृजन को मनुष्यता का आधार माना है, उनके लेखन में जीवन के आदर्श और धवल रूप में यथार्थ की कुरूपता भी दृष्टिगत होती है।

परसाई जी में स्पष्टता एवं तटस्थता दोनों का ही समन्वय है वे विसंगतियों को उघाड़कर रख देते हैं, सत्ता और व्यवस्था उससे जुड़ी नौकरशाही और राजनीति को भी वे बेपर्दा करते हैं— वे अपने समय में जी रहे आदमी की तकलीफ के ऐतिहासिक, सामाजिक कारण ढूँढते हैं, और स्थितियों, घटनाओं के संदर्भ तलाशते हैं— इस रूप में समकालीन शोषण और अमानवीयता को एक खास वैचारिक नजरिये से देखने के कारण एक खास दार्शनिक आस्था से जुड़ जाते हैं। “मैंने देखाकि जीवन में बेहद विसंगतियाँ हैं, अन्याय, पाखंड, छल, दोमुहांपन, अवसरवाद, असामंजस्य आदि है। मैंने उनके विश्लेषण के लिए

साहित्य, दर्शन, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र का अध्ययन किया। मैंने जाना कि जीवन की सबसे सही व्याख्या कार्लमार्क्स ने की है। मनुष्य की नियति को बदलने का सबसे श्रेष्ठ और अंतिम दर्शन, मार्क्सवाद ही है।² (हरिशंकर परसाई, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, पृ. 6)

द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण से वे जीवन में घटित होने वाली घटनाओं के अर्थ खोजते हैं, और समस्याओं के असली कारणों की तह तक पहुँच जाते हैं।

परसाई जी दर्शन के समाधान को रचना पर सीधे लागू नहीं करते अपनी प्रतिबद्ध सोच के बल पर वे संवेदनीय अनुभव को दार्शनिक आस्था के साथ मिलाकर चलते हैं। 'लेखक का संबंध दर्शन से है जिसमें उसका बुनियादी विश्वास है, प्रश्न और उत्तर का है। लेखक दर्शन से प्रश्न करता है। समाधान चाहता है। समाधान नहीं मिलता तो चिंतन आगे बढ़ता है, इसलिए दर्शन को अनुभव से जोड़ना जरूरी है, अनुभव ही लेखक का ईश्वर होती है।³ (हरिशंकर परसाई, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, पृ. 6) परसाई के बुनियादी विश्वास पर दर्शन हावी नहीं होता, अद्भुत जीवन के संवेदनशील अर्थ ही उसके इष्ट बन रहते हैं।

परसाई का चिंतन मार्क्सवाद से प्रभावित था। अतः उनके लेखन में मार्क्सवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है, तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त अन्तर्विरोधों को उन्होंने अपने व्यंग्य लेखन का विषय बनाया है। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का भारतीय समाज पर सामाजिक, राजनैतिक प्रभाव, उसके दुष्परिणामों को उन्होंने अपने लेखन में व्यक्त किया है। देश में फैले वैचारिक विरोधों, मानवीय मूल्यों के विघटन, भ्रष्टाचार, मुनाफाखोरी, कालाबाजारी आदि पर उन्होंने तीक्ष्ण प्रहार किए हैं।

राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय स्तर पर घटित होने वाली हर घटना को परसाई ने अपनी तीखी पैनी दृष्टि से यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया। जिन्हें हम 'सदाचार का ताबीज', विकलांग श्रद्धा का दौर, 'जैसे उनके दिन फेरे' 'रानी नागफनी की कहानी' आदि रचनाओं में देख सकते हैं।

परसाई जी की रचना 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में लेखक ने स्वतंत्रता प्राप्ति के समय जनमानस के स्वप्न संजोए थे, कि हम स्वतंत्र हो जाए हर बन्धन से। हमारी पीड़ाएँ समाप्त हो जाएंगी लेकिन भोली जनता को यह नहीं मालूम था, कि विदेशी अपनी हुकुमत हमारे ही देश के ऐसे पूँजीपतियों व सामन्तों को दे गए हैं। जिनके इशारे पर देश के राजनीतिज्ञ व धर्म के ठेकेदार नाचते हैं, तथा जिनके द्वारा औद्योगीकरण, शहरीकरण अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ही किया गया। इस पूर्ति के लिए उन्होंने हर हथकंडे अपनाए। अनैतिकता की चरम सीमा तक जाकर भ्रष्टाचार की सड़ांध चारों ओर फैल गयी है। आम जनता कोल्हू के बैल की तरह पिसती रही। समाज में जिसने इनके विरुद्ध आवाज उठाई, उसको समाप्त कर दिया गया। ऐसे समाज में परसाई जी ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण, पाखण्ड, छल-कपट को व्यंग्य जैसे विधा से पर्दाफाश किया। उन्होंने स्वयं लिखा, "नौकरी गई। कुछ करने को नहीं रहा तो लेखक हो गया। सामाजिक चेतन सम्पन्न लेखक कहा जाने लगा तो मैं साहित्य में थानेदार हो गया। सोचने लगा, समाज को मैं ही सुधारूँगा, मैं कानून व्यवस्था स्थापित करूँगा।" (जिन्दगी और मात का दस्तावेज-विकलांग श्रद्धा का दौर, पृ. 50-51)

'भेड़ और भेड़िए' शीर्षक रचना में परसाई ने स्पष्ट लिखा है, कि भेड़िए के समान स्वार्थी और शोषण करने वाले शासक भेड़े रूपी भोली जनता का शोषण करते हैं। राजनैतिक दल देश के विकास का चिंतन करने के बजाए यही सोचते हैं कि किस प्रकार एक-दूसरे पर कीचड़ उछालकर, झूठे प्रचार के द्वारा जनता को गुमराह कर चुनाव जीत लिया जाए।

‘देशवासियों के नाम संदेश’ व्यंग्य रचना में नेता भ्रष्टाचार को खत्म करने के लिए गर्भवती महिला को ऐसा इंजेक्शन लगवाने की बात करते हैं, जिनसे सदाचारी बच्चे पैदा होंगे।

‘संसद और मंत्री की पूछ’ व्यंग्य रचना में संसद अधिवेशन देश के विकास हेतु नीतियों के निर्धारण के लिए होता है। वर्तमान में विविध पार्टियों द्वारा एक-दूसरे पर व्यर्थ कीचड़ उछालकर देशवासियों के धन व समय की बर्बादी की जाती है।

समकालीन यथार्थ एवं चेतना से साक्षात्कार करने हेतु परसाई जी ने ‘जिन्दगी भर बबूल और भटकटैया’ पसंद करने वाले व्यंग्यकार रहे। उन्होंने अपने साहित्य में विविध राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्थितियों को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया। वे राजनैतिक परिस्थिति के संबंध में कहते हैं कि यह सर्वमान्य बात है कि प्रजातंत्र में सबको अधिकार होने चाहिए, अपने विकास के लिए किन्तु होता है विपरीत। उनके जीवनकाल में विभिन्न राजनैतिक दलों की सरकारें बनीं लेकिन उनके आचरण में कोई विशेष अन्तर नहीं मिला। सभी जनहित को उपेक्षित करने हेतु अपनी कुर्सी के लिए लड़ते हुए दिखाई दिए इसलिए परसाई जी व्यंग्य करते हैं— ‘जिन्दगी भर बबूल और भटकटैया’ रचना में — “जनता कच्चा माल है। इसे पक्का माल विधायक या मंत्री बनाते हैं। पक्का माल बनाने के लिए कच्चे माल को मिटना ही पड़ता है” जनता की वेदना को परसाई जी व्यक्त करते हुए लिखते हैं “राजनीतिज्ञों के लिए हम नारे और वोट हैं। बाकी के लिए गरीबी, भूख, बीमारी और बेकारी है। मुख्य मंत्रियों के हम सिरदर्द हैं और पुलिस के लिए हम गोली दागने के निशाने हैं।”⁵ (माटी कहे कुम्हार से)

“इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर”— में परसाई जी व्यंग्य करते हैं— “वैज्ञानिक कहते हैं चाँद पर जीवन नहीं है।” लेकिन मातादीन दावा करते हैं— “ये वैज्ञानिक केस का पूरा इन्वेस्टीगेशन नहीं करते। उन्होंने चाँद का उजला हिस्सा देखा और कह दिया वहाँ जमीन नहीं है। मैं चाँद का अंधेरा हिस्सा देखकर आया हूँ। मनुष्य वहाँ जाते हैं। अर्थात् चाँद के उजले पक्ष में मनुष्य नहीं है किन्तु मनुष्य उसके उजाले में न रहकर यातना उत्पीड़न एवं शोषण के अंधेरे में है। कितना हृदय भेदी व्यंग्य किया है।

उन्होंने अंधविश्वास पाखंड और अन्याय पर भी अनेक प्रहार किए हैं, (इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर)— “चाँद पर थाने में हनुमान का मन्दिर न देखकर मातादीन आई. जी. को समझाते हैं, “हनुमान सुग्रीव के यहाँ स्पेशल ब्रांच में थे। उन्होंने सीता माता का पता लगाया था। एबुकेशन का मामला था, दफा 362। हनुमान ने रावण को सजा वहीं पर दे दी। उसकी प्रापटी में आग लगा दी। अदालत में जाने का झंझट नहीं, मगर यह सिस्टम अभी हमारे रामराज में भी चालू नहीं हुआ।” पौराणिक प्रसंग और वर्तमान अंधविश्वासी किन्तु निरंकुश पुलिस दोनों के माध्यम से आज के हालातों पर व्यंग्य किया है। इसी तरह ‘सदाचार का ताबीज’ में राजा प्रजा की प्राचीन पृष्ठभूमि आधार बनाकर वर्तमान भ्रष्टाचारियों पर व्यंग्य किया है। इसमें सरकार की आर्थिक मदद से संन्यासी जी सदाचार का ताबीज बनाने का कारखाना स्थापित करते हैं। ताबीज बांधना हर कर्मचारी के लिए आवश्यक है। जिससे कर्मचारी की अन्तरात्मा की बुरी आवाज को ताबीज से निकालने वाली ईमानदार और नेक आवाज दबा दे। लेकिन ताबीज बांधने से कर्मचारी ईमानदार नहीं होते, माह के अन्तिम दिनों में उनकी आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है, और उन्हें भ्रष्ट होने को विवश करती है। राजा भेष बदलकर कर्मचारी को पकड़ता है तो उसका ताबीज कहता है, “अरे इक्कीस है आज तो ले लो।”

देश की भ्रष्ट राजनीति व्यवस्था में लिप्त लोग जो स्वार्थ हित में डूबे हुए हैं। अपना वर्चस्व एवं मान

बढ़ाने हेतु विविध प्रकार के तरीके अपनाने में व्यस्त हैं को परसाई जी ने 'दो नाके वाले लोग' कहा वे कहते हैं, "मेरा ख्याल है नाम की हिफाजत सबसे ज्यादा इसी देश में होती है। कुछ बड़े आदमी जिनकी हैसियत है, इस्पात की नाक लगवा देते हैं।" (दो नाक वाले लोग) यहाँ परसाई भ्रष्टाचार में लिप्त पूंजीपति, मुनाफाखोर अफसरों को ओर इंगित करते हैं। उनकी अन्य रचनाएँ 'अकाल उत्सव', हरिजन को पीटने का यज्ञ, ससंद और मंत्री की पूछ, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, महात्मा गांधी को चिट्ठी पढ़ें, जैसे व्यंग्य लेखों के माध्यम से शासकीय एवं राजनीतिक तंत्र पर तीखा व्यंग्य करते हुए समकालीन यथार्थ को उघाड़कर रख देते हैं।

'अकाल उत्सव' में अकाल के दौरान जनता को राहत सामग्री पहुंचाने के बजाय जमाखोर, मुनाफाखोर अनुष्ठान कराते हैं। इस अनुष्ठान में उनके परिवार वाले भी साथ देते हैं। इंजीनियर की पत्नी भजन गाती है। 'प्रभु कष्ट हरो सबका'। भगवान पिछले साल अकाल पड़ा था। तब सक्सेना और राठौर को आपने राहत कार्य दिलवाया था।.....इस बार राहत कार्य का इंचार्ज इनको बना दो। सुना है विधायक भार्या और मंत्री प्रिया भी अनुष्ठान कराती हैं। अकाल के वक्त पधारे मंत्री का स्वागत भी किया जाता है।

समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा भेद के खिलाफ वे बड़े ही स्पष्टवादी दिखाई देते हैं। 'हरिजन को पीटने का यज्ञ' में परसाई जी लिखते हैं — "बच्चा जब माँ के पेट में आता है तभी से पोथी-पत्री और पूजा शुरू हो जाती है। आदमी पैदा हुआ तो ब्राह्मण तैयार बैठा है। फिर चालू होता है, लम्बा सिलसिला—छठी, नामकरण, मुण्डन, कन छेदन, जनेऊ, विवाह—सभी में ब्राह्मण। आदमी 'मर भर जाए' तो तेरहवें दिन ब्राह्मण भोजन करके दक्षिणा ले जायेंगे।

यज्ञ तथा इस तरह की दूसरी चीज इसीलिए कराई जाती हैं, कि समाज उन्हीं पुरानी मान्यताओं में जकड़ा रहे। उसी भेदभाव को मौन, जाति भेद माने, ऊँच-नीच माने अंधविश्वास में जकड़ा रहे। यज्ञ करने वालों का यही उद्देश्य है कि वह पिछड़ी हुई रुग्ण मानसिकता बनी रहे, जिससे वर्ण और वर्ग भेद बने रहें। वही मानसिकता बनी रहे कि हरिजन दूल्हा घोड़ा पर बैठे तो ऊँची जाति के लोग भड़क कर कहें— देखो इस चमरे की हिम्मत हमारे समाने घोड़े पर बैठता है।" परसाई जी के व्यापक दृष्टिकोण की सहजता ने उन्हें दलित और शोषित वर्ग का अग्रदूत बना दिया है। इसी कारण उनका सारा साहित्य ईमानदारी का दस्तावेज माना जाता है।

आधुनिक हिन्दी व्यंग्य को नई दिशा देने वाले हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य को उच्च वर्ग के संस्कार प्रदान किए हैं। उन्होंने इसे हास्य उपसर्ग की बैसाखी से हटाकर आत्मनिर्भर बनाया है, इसीलिए परसाई जी हिन्दी के सबसे अधिक महत्वपूर्ण और सर्वाधिक पढ़े जाने वाले साहित्यकार हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत की विसंगतिजन्य सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक विषमताओं को सही तरीके से समझाने के लिए परसाई जी का व्यंग्य, साहित्य को यह सही दस्तावेज प्रदान करता है। इनका प्रत्येक व्यंग्य रचनात्मक है, और उनकी प्रत्येक वक्रदृष्टि, मूल्यदृष्टि है, व्यंग्य के द्वारा परसाई जी ने समाज में एक विशिष्ट चेतना पल्लवित की है, क्योंकि इसने समाज, राष्ट्र और व्यक्ति को जगाया है। इसी कारण उनके व्यंग्यों में वर्ग चेतना दर्शायी गई है। हिन्दी की ऐतिहासिकता, सार्थकता और सामाजिक सरोकार देने वाली पहले हिन्दी व्यंग्य लेखक हरिशंकर परसाई के संबंध में उनका रचनाकार व्यक्तित्व और सामाजिक दायित्व व्यंग्य को एक रचना के रूप में महत् अर्थ प्रदान करता है।



दलित कविता : चिन्तन से जगाती चेतना

डॉ० अशोक एम. पवार

स्नातक एवं स्नातकोत्तर-हिन्दी विभाग

गजमल तुलशिराम पाटील कॉलेज, नंदुरबार (महा.) 425412

हम सभी ने अपनी जिंदगी में यह प्रतिज्ञा की है कि भारत मेरा देश है और सभी भारतीय मेरे भाई-बहन हैं। फिर भी वर्ग-भेद कहो या जाति-भेद जैसी समस्या बनी ही रही। इसे मिटाने के लिए हमारे महापुरुषों-महात्मा फुले, महात्मा गांधी, महाराजा गायकवाड, महाराजा शाहू, डॉ. भीमराव अंबेडकर आदि ने अथक प्रयत्न किये राजनीतिक उद्देश्य से गैर दलितों में पतीत पावन, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज जैसी सामाजिक-धार्मिक संस्थाओं ने भी जातिभेद मिटाने के प्रयास किये। परंतु ये संस्थाएँ दलितों में चेतना उत्पन्न करने में प्रयत्नशील तो रहीं लेकिन यश संपादन नहीं कर पायीं। स्वतंत्र भारत में संविधान लागू होने के बावजूद जाति-भेद जैसी कुप्रथा बनी ही रही। इससे पीड़ित लोगों ने अपनी भावनाएँ साहित्य के द्वारा दुनिया के सामने रखीं। भारत के विभिन्न प्रदेशों में-पश्चिम भारत (महाराष्ट्र) का विशेष स्थान रहा है। गुजरात में भी यह धारा आरंभ हुई। दक्षिण, उत्तर और मध्य भारत में भी दलित साहित्य लिखा जा रहा है। राष्ट्रभाषा हिन्दी इससे अछूती नहीं रह सकी। आज हिन्दी भाषा दलित साहित्य लेखन में अग्रणी है। दलित साहित्य वैश्विक स्तर पर भी लिखा जा रहा है। इक्कीसवीं शती के प्रथम दशक ने ओबामा के माध्यम से यह साबित कर दिखाया कि अश्वेत (दलित) आदमी दुनिया भर के देशों में प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है।

सदियों से चली आयी स्पृश्य-अस्पृश्य परंपरा को मिटाने के अनेकों ने प्रयत्न किये वे सारे प्रयत्न राजनीतिक एवं धार्मिक ही कहे जा सकते हैं। गांधी राष्ट्र के शीर्षस्थ नेता थे, जिन्होंने भारत की आजादी के लिए विभिन्न आंदोलन चलाये। इनकी रचनात्मक प्रवृत्तियों में अस्पृश्यता निवारण करना भी शामिल था। इसलिए तो उन्होंने दलित को हरिजन कहा मगर इनका दलितोद्धार अंबेडकर के दलितोद्धार से भिन्न था। अंबेडकर खुद दलित थे और उनके विचार दलितों के लिए प्रेरणादायी एवं चेतना उत्पन्न कर देते थे।

चेतना एक ऐसा विषय है जो हर साहित्यिक विधा एवं रचनाकारों से विशेष रूप से जुड़ा हुआ पाया जाता है। चेतना शब्द मनुष्य एवं मनुष्य मात्र के अधिकारों से सम्बन्ध रखता है अतः चेतना का संबंध मानवाधिकारों से है। संसार में जहाँ कहीं शोषण, अत्याचार, भूख, गरीबी, हीनता, वर्ग-भेद, जातिभेद, वंश-भेद, धर्म-भेद, बहिष्कृतता या इससे मिलता-जुलता अमानवीय व्यवहार होगा, स्वअस्तित्व के लिए संघर्ष या विद्रोह होगा ही और जहाँ इस तरह का वैचारिक संघर्ष होगा वहाँ दलित साहित्य जन्म लेगा। अतः दलित साहित्य एक आंदोलन है हर तरह के शोषण के खिलाफ।

दलित साहित्य का केंद्र बिंदु मानव है।¹ यह साहित्य संघर्ष का साहित्य है। यह असंतोष से जन्मा है इसलिए इसका विद्रोही सुर है। दलित साहित्य अपने वर्ग की तमाम समस्याओं को अपनी भाषा में अभिव्यक्त करता है साथ ही साथ समाज में नवचैतन्य भर देता है, और जीने की आस जगाता है। इस

साहित्य की विशेषता यह भी है कि यह मात्र व्यक्तिगत या अपनी जाति की लड़ाई नहीं लड़ता बल्कि राष्ट्रीय अस्मिता की लड़ाई भी लड़ता है और दुनिया के पीड़ित-शोषित मानव की भी। यह साहित्य दीन-दुखियों में चेतना जगाता है और कभी भी किसी भी हालत में सकारात्मक होती है। चेतना दलित साहित्य में स्थान-स्थान पर प्रस्फुटित होते हुए दिखाई देती है। इसमें मानवाधिकारों की माँग है तथा पुरानी सड़ी-गली रुढ़ियों का विरोध भी है। दलित कविता पर दृष्टि डालते हुए मन में एक विचार आता है कि नई कविता और दलित कविता का नजदिकी संबंध है। दोनों समानांतर से दौड़ती हुई दिखती है। वह मनुष्य से मनुष्यत्व की माँग करती है।

स्वतंत्रता के बाद दलित व्यक्तियों ने डॉ. अम्बेडकर जी से प्रेरणा पाकर अपने जाति की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को देखा तो निराशा ही मिली। उसी निराशा की बदौलत बेचैन होकर इन कवियों ने व्यवस्थावादियों से सवाल किये हैं। उनके सवालों में बौद्धिक विमर्श दिखाई देता है। आठवें दशक के बाद हिन्दी साहित्य में उत्तर आधुनिकता की चर्चा हो चली है। उत्तर आधुनिकता के इस दौर में हिन्दी दलित साहित्य अपना विशेष स्थान रखता है। इसने तमाम साहित्यकारों को चौका दिया है। उनकी नजरें अपनी ओर खींच ली हैं। एक समय मराठी दलित साहित्य के प्रति ऐसा ही हुआ था। दलित साहित्य किसी भी भाषा में लिखा गया हो, गैर दलितों के सामने सवालों की झड़ी लगा देता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता देखिए –

“यदी तुम्हें,
अपने ही देश में नकार दिया जाए
बनाकर बंधुआ
छीन लिए जाएँ अधिकार सभी
जला दी जाए समूची सभ्यता तुम्हारी
नोच नोचकर फेंक दिए जाएँ
गौरवमय इतिहास के पृष्ठ तुम्हारे
तब तुम क्या करोगे?”²

दलित को हमेशा व्यक्तिगत, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक, व्यावसायिक संघर्ष के साथ अनाज, पानी, आवास, कपड़े, लत्ते आदि के लिए संघर्ष करना पड़ता है। इन सबकी जड़ दलितत्व ही है। दलितत्व यानी, अभावहीनता, घृणा, तिरस्कार या दूर-दूर (परे-हट) का मानसिक व्यवहार। इन्हें जीवन के हर मोर्चे पर संघर्ष करना पड़ता है।

दलित भिखारी हो या लकड़ी तोड़नेवाला अति सामान्य व्यक्ति हो या कोई सांसद हो या सुप्रीम कोर्ट का जज, उसे व्यक्तिगत तौर पर हीनता का सामना करना ही पड़ता है। वह यह कभी नहीं भूल पाता कि वह दलित है और उसे भूलने भी नहीं दिया जाता। उसे नित्य दूर-दूर की मानसिकता का सामना करना पड़ता है।

“अपने ही घर-आंगन में
छला जाकर अपनों से ही
होता रहा आहत”

“सह-सहकर पदाघात
बन गया वह पत्थर-सा
डटा रहा फिर भी निरंतर आग के मैदान में।”³

इस देश के हर गांव में दलितों की बस्तियां गैर दलितों की बस्तियों से अलग पायी जाती हैं। ये बस्तियाँ टीन-कनस्तर की बनी या घास-फूस की होती हैं। ईंट-पत्थरों से बनी टेड़ी-मेड़ी दीवारों वाली और संकीर्ण गलियों वाली गंदगी भरी इन बस्तियों में नंग-धड़ंग बच्चे धूल में लोटते नजर आते हैं। दूसरी ओर साफ-सूथरे मकान और गलियाँ, ऊँची-ऊँची इमारतें दिखाई देती हैं। अतः सामाजिक और आर्थिक असमानता का दृश्य नजर आता है। गरीबों की इन झुग्गी-झोपड़ियों पर आक्रमण करके उनका संसार उद्धस्त करने वाले किसी दस्यु से कम दिखाई नहीं देते। कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता इसे उजागर करती है—

“इन झुग्गी-झोपड़ियों में
कभी सूरज की तेज गर्म किरणें
जबरन घुस आती हैं
किसी खूंखार दस्यु की तरह।”⁴

भारतीय संविधान के भाग तीन में वर्णित मूल अधिकारों में समानता, स्वतंत्रता, शोषण का विरोध, धर्म की स्वतंत्रता, संस्कृति एवं शिक्षा आदि अधिकारों की कल्पना की है जो हर भारतीय नागरिक को दिये गये हैं। इन अधिकारों के मूल में जनकल्याण की भावना निहित है जो हम सबको समाजवादी धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य की सार्थकता की ओर ले जाती है। डॉ. परविन्दर कौर ने लिखा है कि, “प्रत्येक युग में शोषित-पीड़ित जनता अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाती त्यों-त्यों शक्तिशाली शासक अथवा वर्ग इस आवाज को दबाने के लिए अत्याचारों का सहारा लेता रहा। लेकिन जैसे-जैसे अत्याचार बढ़ते गये, वैसे ही जनता अपने अधिकारों के लिए अधिक सचेत एवं विद्रोही होती गई। फलस्वरूप जनतांत्रिक व्यवस्था स्थापित हो गई।”⁵ लेकिन भारत में राजनीतिक दृष्टि से जनतांत्रिक प्रक्रिया पूर्ण रूप से लागू नहीं हो पायी। जनता का शोषण हर तरह से होता ही रहा है। कवि सदियों से दी जा रही मानवाधिकारों की पुकार को पुनः बुलंद करने से नहीं चूकता —

“करोड़ों दलित वंचित हैं
सदियों से
बहुत सारे मानवाधिकारों से।”

आज के मनुष्य को धार्मिक स्वातंत्र्य प्राप्त है। वह जिस धर्म के विचारों को पसंद करता है, उसे स्वीकार कर सकता है। हिन्दू धर्म की बात करे तो, इस धर्म में दलितों को सामाजिक सम्मान नहीं मिल सका इसलिए धर्म-परिवर्तन बड़ी मात्रा में हुआ। स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने धर्म परिवर्तन किया और वैसी प्रेरणा भी दी। आज के दौर में ईसाइयों पर हो रहे हमले हसी विचार से प्रेरित हैं कि वे हमलावर अल्पसंख्यांक न बन जाएं। दलित कवि नवेन्दु उन्हें पूँछते हैं —

“कदम-कदम पर
हमारी अस्मिता को

घृणा के तीरों से
कौंचते हो तो फिर तुम
धर्म परिवर्तन से हमें
किस अधिकार से रोकते हो।”

इस देश के राजनीतिक पंडे-पुजारी दलितों को धर्म परिवर्तन से रोकते हैं। प्रसिद्ध दलित साहित्यकार एवं समीक्षक डॉ. एन. सिंह ने लिखा है—“जहाँ-जहाँ पर दलितों ने धर्म परिवर्तन किया है, वहीं-वहीं पर हिन्दूवादी ताकतों ने उनका उत्पीड़न किया है। क्योंकि वे जानते हैं कि यदि इस देश का अठाइस करोड़ दलित किसी अन्य धर्म में दीक्षित हो जाएगा तो हिन्दू भारत में ही अल्पसंख्यांक हो जाएंगे।”⁸ दलित कविता का रचनाकार राजनीतिक, रामाजित चेतना की सार्थक पहचान कराती है। राजनीतिक व्यवस्था के कारण दलितों की स्थिति बड़ी दयनीय हो चुकी है। आजादी के तीन दशकों बाद भी पंचवर्षीय योजनाओं के असफलता के कारण निम्न वर्ग का आदमी भूखा है, नंगा है कारण उसका शोषण हुआ है। हमारी व्यवस्था भ्रष्ट हो चुकी है।

इसलिए निम्न वर्ग रोटी, कपड़ा और मकान जैसी आवश्यकताओं को पा नहीं सकता तो शिक्षा और बीमार होने पर अच्छी दवाई कहाँ से पा लेगा। उसके पास एक ही रास्ता है वह है विद्रोह का। कवि जयप्रकाश कर्दम निःसंकोच बताते हैं दलितों को झुलसाने वाला और कोई नहीं बल्कि हमारी व्यवस्था है। जमींदारों से लेकर बड़े-बड़े उद्यमी तक के तमाम सेठ-साहब दलितों का शोषण करते रहे हैं। देश में सबसे बड़ी संख्या में दलित वर्ग के लोग ही शोषित हैं। उनके आर्थिक एवं शारीरिक शोषण को कवि के अंदर का व्यक्ति सहज कह उठता है –

“सूरज की गर्मी से
नहीं झूलसता मेरा शरीर
उसे झूलसाता है
यंत्रणाओं का सूरज।”⁹

दलित कवि अब व्यवस्था पर व्यंग्य भी करने लगा है। हिन्दू धर्म-दर्शन, भारतीय राजनीति, संविधान, आरक्षण व्यवस्था आदि तमाम विषयों पर दलित कवि व्यंग्य दृष्टि डालकर हमारे समाज का ध्यान आकर्षित करना चाहता है। दलित कवि अपने समकालीन राजनीतिक, धार्मिक जीवन में घटित होनेवाली हर घटना और प्रसंग को अपनी कविता में प्रस्तुत करता है। वह मुख्यतः पुरानी धर्मनीति पर घोर नाराज है क्योंकि उसी के होते दलित समाज का विकास नहीं हो पाया है। दलित कवि विज्ञान के नजदीक है क्योंकि वह जीवशास्त्रीय प्रक्रिया को जानता है इसलिए तो काल्पनिकता का खुलकर विरोध करने की क्षमता रखता है और हिन्दू धर्म की पुराणकथाओं पर व्यंग्य करता हुआ लिखता है। कवि छेदी पंडित ‘कुंडलिया’ नामक रचना में लिखता है –

“नारायण की नाभी थी, बड़ी उर्वरा खेत,
जिससे उपजे चतुर्मुखी, ब्रह्मा वेद समेत,
ब्रह्मा वेद समेत, लक्ष्मी थी बांझ बेचारी,

कान से पैदा किया मधु कैटव बलधारी,
इसी कथा को करते रहते भक्त पारायण /¹⁰

भारतीय लोकतंत्र की शान है संसद भवन । इस भवन पर आतंकवादियों ने हमला किया यह बात हम सब जानते हैं। संसद को मिटाने का यह रास्ता गलत था। संसद पर भारतीय साहित्यकारों ने भी व्यंग्य करके एक प्रकार से वैचारिक हमला ही किया है इनमें दलित कवि भी शामिल हैं। हिन्दी-साहित्यकारों के व्यंग्य-हमले संसद की गरीमा बनाए रखने के प्रयास हैं। धर्म निरपेक्ष वाली संसद में धर्म प्रभाव कवि नवेन्दु कैसे सहन करता। संसद तो सवर्ण है रचना में कवि कहता है –

“दिल्ली चाहती लाना
संविधान की जगह
मनुस्मृति
लोकतंत्र की जगह रामराज्य
आजादी की जगह
गुलामी इक्कीसवीं सदी के समय की जगह..... /¹¹

इस तरह दलित साहित्यकारों एवं कवियों ने देश की सांप्रदायिकता को उजागर किया है। बाबरी मस्जिद का विध्वंस, गुजरात के दंगे जैसे सांप्रदायिक दंगों और हिन्दुत्व की सत्ता स्थापित करके रामराज्य की स्थापना करना जैसे प्रयास यह कवि कैसे बर्दाश्त कर सकता है। रामराज्य की स्थापना दलित कवियों को शैतान का पुनर्जन्म लगता है क्योंकि उनकी जाति उसके प्रकोप को सह चुकी है।

यह कवि डॉ० अम्बेडकर को किसी महामानव से कम नहीं मानता। इस महामानव ने उन्हें प्रतिष्ठा से जीना सिखाया और इस देश में सम्मान से जीने का मार्ग दिखाया। वे उन लोगों को भी ठुकराते हैं जो आरक्षण का आधार लेकर सर्वोच्च पद पर विराजमान हुए। यह कवि आदमी पर भी नजर डालता है। वह कहता है कि आदमी सबकुछ बन सकता है, जैसे-ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, अमीर, गरीब, खास-आम, स्पृष्ट-अस्पृष्ट, शोषक-शोषित आदि। परंतु सिर्फ वह आदमी नहीं बन जाता। कवि डॉ. सी. बी. भारती आदमी कविता में लिखते हैं –

“आदमी !
आदमी ही नहीं होता
बाकी सब कुछ होता है । /¹²

यह कवि आदमी के आदमी बनने के इंतजार में खड़ा दिखाई देता है। इस कविता के बारे में इतना कह सकते हैं कि यह कविता-धारा भारत के एक प्रदेश से आरंभ होकर देश के सभी प्रान्तों में पहुंच गयी। यह केवल किसी पीड़ित जाति विशेष की लड़ाई नहीं बल्कि देश-विदेश में उपेक्षित जीवन जीनेवाले की लड़ाई लड़ती है इसलिए नये दलित कवि श्रीरंग कहते हैं –

“अनायों, दलितों, शोषितों, पिछड़ों
आओ आगे आओ
विश्व की घोषित महान नस्लों के विरुद्ध
मोर्चा संभालो..... /¹³

यह कविता मात्र संघर्ष, विद्रोह, स्वाभिमान ही नहीं जगाती बल्कि समानता का भाव भी जगाती है। उपेक्षितों-पीड़ितों को जीने की राह दिखाती है। अन्याय के खिलाफ एक होकर लड़ना भी सिखाती है। आक्रोश, विद्रोह, संघर्ष, मानवीय संवेदना का विकास, जनतंत्र का वास्तविक विकास, मानवीयता आदि दलित कविता के सौन्दर्य स्रोत हैं। दलित साहित्य का विद्रोह वैचारिक है। यह विद्रोह शस्त्र उठाकर नहीं, कलम उठाकर चल रहा है। यह कविता उन तमाम बंधनों को टुकराती है जो मनुष्य को मनुष्य नहीं समझते। इतना ही नहीं तो जो धर्म, जो जाति मनुष्य को मनुष्य मानने के लिए तैयार नहीं, उससे जुड़ी भाषा को भी यह कवि अस्वीकार करता है। यह कविता उन सभी अंत्यजों को सावधान करती है आनेवाले संकटों का सामना करने के लिए। अतः यह कविता अन्त्यजों के व्यापक अनुभव का परिणाम है। यह कविता बौद्धिक विमर्श करने के लिए पूर्ण तैयार है। वह दलित अस्मिता की तलाश करती है। कहा जा सकता है कि यह कविता उन तमाम पाठकों में चेतना जगाने में सक्षम साबित हुई है अर्थात् यह कविता चिंतन से जगाती है चेतना।

सन्दर्भ सूची

1. दलित साहित्य और युगबोध – डॉ. एन. सिंह
2. श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि – सदियों का संताप
3. निर्णायक भीम, अक्टूबर 1978, कानपुर
4. निर्णायक भीम, अक्टूबर 1978, कानपुर
5. हिन्दी काव्य-नाटकों का अध्ययन – डॉ. कौर
6. तिनका-तिनका आग – जयप्रकाश कर्दम
7. संसद तो सवर्ण है – नवेन्दु
8. दलित साहित्य 2004, संपा. जयप्रकाश कर्दम
9. तिनका-तिनका आग – जयप्रकाश कर्दम
10. दलित साहित्य 2004, संपा. जयप्रकाश कर्दम
11. संसद तो सवर्ण है – नवेन्दु
12. दलित साहित्य 2004, संपा. जयप्रकाश कर्दम
13. दलित साहित्य 2004, संपा. जयप्रकाश कर्दम



भिखारी ठाकुर के साहित्य में ग्रामीण व शहरी मजदूर

धनंजय सिंह

महात्मा गांधी संस्थान, मोका, मॉरीशस

भिखारी ठाकुर के नाट्य-साहित्य में किसान-मजदूरों की उपस्थिति उस रूप में नहीं है जिस रूप में प्रेमचंद के कथासाहित्य में। यह अंतर केवल साहित्य भेद के रूप में ही नहीं वरन् दोनों की दृष्टि में भी है। अर्थात् भिखारी ठाकुर का ध्यान जहाँ किसान-मजदूरों के सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों पर गया है तो प्रेमचंद की दृष्टि उनके सामाजिक-आर्थिक पक्षों पर केन्द्रित है। अतः भिखारी के नाट्य-साहित्य में जो किसान-मजदूर उपस्थित हैं उनकी आर्थिक परिस्थितियों को जानने के लिए अगर प्रेमचंद का सहारा लिया जाए तो भोजपुरी किसान-मजदूरों की एक मुक्कमिल तस्वीर उभर जाएगी। क्योंकि प्रेमचंद भी भोजपुरी क्षेत्र के ही किसान-मजदूरों को केन्द्र में रखकर पूरे उत्तर भारतीय किसान-मजदूरों के लिए रचनात्मक संघर्ष कर रहे थे। ध्यातव्य है कि भिखारी ठाकुर और प्रेमचंद दोनों समकालीन थे। दोनों एक ही समय को आँक रहे थे। फर्क सिर्फ इतना था कि भिखारी की दृष्टि लोकसंस्कृति एवं उसकी समस्याओं पर केन्द्रित हैं जबकि प्रेमचंद की दृष्टि उत्तर भारत के मध्यवर्ग व किसान जीवन पर केन्द्रित है। प्रेमचंद ने अपने समकालीन किसान जीवन का जो आर्थिक-चित्रण किया है, वह बहुत ही यथार्थ व इतिहास-सम्मत है — “चारों तरफ तबाही छायी हुई थी। ऐसा बिरला ही कोई घर था जिसमें धातु के बर्तन दिखायी देते हों। कितने घरों में लोहे के तवे तक न थे। मिट्टी के बर्तनों को छोड़कर झोंपड़े में और कुछ दिखाई न देता था। न ओढ़ना, न बिछौना, यहाँ तक कि बहुत से घरों में खाटें तक न थीं और वह घर ही क्या थे! एक-एक, दो-दो कोठरियाँ थीं। एक मनुष्यों के लिए, एक पशुओं के लिए। उसी कोठरी में खाना, सोना, बैठना—सब कुछ होता था। बस्तियाँ इतनी घनी थी कि गाँव में खुली हुई जगह दिखाई ही नहीं देती थी। जो किसान संपन्न समझते जाते थे उनके बदन पर साबित कपड़े न थे, उन्हें भी एक जून चबेना पर ही काटना पड़ता था। वह भी बोझ से दबे हुए थे। अच्छे जानवरों को देखने को आँखें तरस जाती थी। जहाँ देखो छोटे-छोटे मरियल, दुर्बल बैल दिखाई पड़ते थे और खेत में रेंगते और चरनियों पर औंघाते थे। कितने ही ऐसे गाँव थे जहाँ दूध तक मयस्सर न होता था।”¹ भिखारी ठाकुर का नाता भी क्या ऐसे ही किसान-जीवन से नहीं था? क्या ऐसे ही जहालत में जीते हुए किसान पर जमींदारों, महाजनों इत्यादि औपनिवेशिक शोषण के साथ सामंती उत्पीड़नों की वजह से लगातार नारकीय जीवन जीने को अभिशप्त नहीं था? ऐसे ही किसान जीवन की पृष्ठभूमि पर भिखारी ठाकुर के नाटक अपना रूप-आकार ग्रहण कर रहे थे। इसी पृष्ठभूमि के भीतर से उन्होंने अपने नाट्य-रचनाओं में जीवन एवं संस्कृति की अभिव्यक्ति दी। इस अभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि में भले ही अंग्रेजों द्वारा जबरन नील की खेती कराये जाने के खिलाफ चंपारण में गांधी का आंदोलन, सहजानंद सरस्वती का जमींदारों के विरुद्ध किसान-आंदोलन, त्रिवेणी सभा का पिछड़ी जातियों का आंदोलन और अन्य दलित आंदोलनों की अनुगूँज न सुनाई पड़ती हो। परंतु इसका मतलब, भिखारी ठाकुर इस तरह की घटनाओं से अनभिज्ञ होंगे, नहीं कहा जा सकता। दरअसल, भिखारी ठाकुर सांस्कृतिक कलाकार थे और फिर उनका नाता समाज के जिस वर्ग से था — वह समाज

तो उस तरह की घटनाओं से तत्कालीन दौर में बहुत दूर रहा है। राजनीतिक घटनाओं की अनुगूँज भिखारी के यहाँ भले ही नहीं, परंतु किसान जीवन के कई स्तर थे उनके नाट्य-रचनाओं को देखने से पता चलता है।

भिखारी ठाकुर के दौर में किसानों की कई श्रेणियाँ थी। सबसे नीचे की श्रेणी में भूमिहीन खेतिहर मजदूर था। तत्कालीन दौर में सबसे अधिक संख्या इसी श्रेणी के किसानों की थी और निम्न जातियों के लोग भी यही थे। इनमें से बहुत बनिहारी यानि बंधुआ मजदूरी भी करते थे। इन्हीं किसानों में से कुछ बँटाईदार किसान थे, जो मूलतः भूमिहीन थे परंतु बड़े जोतदार किसानों की भूमि पर बँटाई की खेती करते थे। इनकी आर्थिक स्थिति खेतिहर मजदूरों और अत्यंत छोटे किसानों के बीच की थी। छोटे किसानों में कुछ बँटाईदार किसान भी थे लेकिन कुछ के पास स्वयं की भूमि न थी। यह किसान मौसमी अनाजों को पैदा करता था और शेष समयों में बेकार रहता था। बेकारी के समय में वह अपना श्रम शहरों में भी बेचता था। इसकी स्थिति खेतिहर मजदूरों या बँटाईदार किसानों से कुछ विशेष भिन्न न थी। छोटे किसानों के ऊपर संपन्न रैयतों की थी। ये लोग स्वयं खेती नहीं करते थे बल्कि इनके खेतों में खेतिहर मजदूर या बनिहार काम करते थे। बनिहार से यहाँ तात्पर्य है – दिन भर के श्रम के बदले में ‘बन’ (मजदूरी) अनाज के रूप में लेना। संपन्न रैयत अपनी अतिरिक्त भूमि के हिस्से को – जो आमतौर पर बहुत कम उपजाऊ होती थी, बँटाईदार किसानों को दे देते थे। और सबसे ऊँची श्रेणी वाले लगान भोगी-किसान थे। इस किसान के बारे में आर्थिक इतिहासकार श्री सब्यसाची भट्टाचार्य ने लिखा है – “यह कानूनी तौर पर जमींदार और ताल्लुकेदार नहीं थे लेकिन ये जमींदार की तरह इनमें से अनेक जमीन के स्वामित्व के एवज में लगान पाते थे। इनकी बहुत कम संख्या थी।”² भिखारी ठाकुर का किसानी समाज इन्हीं श्रेणियों में विभक्त था। जिनकी बहुत कुछ समस्याएँ अपने तरह की थीं तो कुछ समस्याएँ सबमें समान रूप से थी। भिखारी ठाकुर के साहित्य के अध्ययन से खेतिहर मजदूर, बँटाईदार किसान, छोटे किसान इत्यादि निम्नवर्गीय किसान समुदाय का जीवन व संस्कृति ही उभरकर सामने आता है। इन किसानों के संदर्भ में श्री सहजानंद सरस्वती का यह कथन काफी महत्वपूर्ण है – “यो तो वे कहने के लिए किसान हैं किंतु खेतों में बैलों से भी ज्यादा मेहनत करते हैं। इतने पर भी उन्हें पूरी मजदूरी नहीं मिलती है।”³ इस कथन से एक महत्वपूर्ण बात निकलती है कि उन्हें हाड़-तोड़ मेहनत के बावजूद पूरी मजदूरी नहीं मिलती है। इसीलिए वह बाहर जाकर कमाना चाहता है, जहाँ उसे अपने श्रम का पूरा मूल्य मिल सके। भिखारी के ‘बिदेसिया’ का बिदेसी वही खेत-मजदूर है जिसको हमेशा काम नहीं मिलता है और जो काम करता है – उसकी पूरी मजदूरी भी उसे नहीं मिलती है। तभी तो वह अपनी नव-ब्याहता पत्नी प्यारी सुंदरी से कलकत्ता जाकर नगद मजदूरी करने का प्रस्ताव रखता है – “कहना मान करब ना देरी, जल्दी भेजब सनेस। बल-बुद्धि से रोजे कमाइब, नगद मजदूरी हरमेस।”⁴ उसके सामने बाहर जाकर कमाने के सिवा कोई और विकल्प नहीं था और फिर वह सुन भी चुका था कि कलकत्ता में हरदम और श्रम का मूल्य नगद रूप में मिलता है।

लेकिन ‘बेटी-वियोग’ का किसान अत्यंत छोटा किसान है जो अपना खेत रेहन (ca/d) कर चुका है। उसके पास बेटी के विवाह के लिए दहेज देने के लिए कुछ भी नहीं है। वह गोदान के होरी की तरह बेटी को बेचने को मजबूर हो जाता है। इसके हृदय में होरी की तरह अपराध बोध या आत्मग्लानि भी नहीं है बल्कि यदि कुछ है तो वह समाज का भय है। वह समाज से छुपकर बेटी बेंचकर घर का खर्च

और रेहन खेत को पुनः छुड़ा सकता है। वह यही करता है – “जहवाँ सदिया कइल जाई, तहवाँ से कुछ रोपेया ले लिआई। जेह से सदियों हो जाई आ के खेतवा बाझल बा तवनो झूट जाई।”⁶ तत्कालीन आर्थिक जहालत ऐसे किसानों को बेटी भी बेच देने को मजबूर कर रही थी। बेटी जहाँ गई, वहाँ बूढ़ा किसान पति था। पर वह आठ-दस बीघे जमीन का मालिक होगा। तभी तो वह कन्या के बाप को उस समय सोलह सौ रुपये दिया था। इस अनमेल विवाह को कराने वाला अगुवा पंडित कहता है – “जइसे कि एह लइकी का ऊपर में सौरह स रोपेया के बातचीत बा, जवना में से दू स हमरा के करार भइल बा।”⁶ ऐसे किसान समाज में पंडित-पुरोहितों की क्या भूमिका थी, उक्त कथन स्पष्ट कर देता है। लेकिन यहाँ यह बात भी नोटिस करने लायक है कि तत्कालीन मौजूदा दौर में कोई बूढ़ा किसान या उम्रदराज ही सही कहें तो, स्वयं के लिए कन्या की खरीददारी क्यों करेगा? इस सवाल के एवश में दो स्थितियाँ उभरती हैं एक, मौजूदा दौर में किसान समुदाय में बहुविवाह की प्रथा थी और दूसरे, उस किसान को वंश बढ़ाने की आवश्यकता थी। ये दोनों ही स्थितियाँ भिखारी ठाकुर के दौर में मौजूद थीं। ऐसे किसान जीवन में परिवार में विघटन की स्थिति नहीं हो सकती है लेकिन ऐसे ही आर्थिक स्तर वाला किसान संयुक्त परिवार के रूप में भी रह रहा था। जिस पर औपनिवेशिक व्यवस्था के दबाव स्वरूप प्रभाव पड़ रहा था। उसी दबाव की देन है – भिखारी ठाकुर का ‘भाई-विरोध’ नाटक, जिसमें किसान परिवार के संयुक्त परिवार के टूटन को दिखाया गया है। संयुक्त परिवार में किसी के बेटा-बेटियाँ अधिक हैं तो उनके शादी-विवाह में खर्च की स्थिति कर्ज की रूप में भी हो सकती है। इसे भांप कर परिवार का कोई सदस्य अलग भी हो सकता है। इस अलगगैझे की स्थिति में बेटा-बेटी की शादियों के लिए कर्ज लेनी पड़ सकती है और कर्ज की मार औरों के खेतों में मजदूरी करवा सकती है या बाहर जाकर कमाने को विवश कर सकती है। ये सभी स्थितियाँ भिखारी ठाकुर की समकालीन थी। ‘भाई-विरोध’ नाटक संयुक्त परिवार के टूटन की दर्द भरी कहानी है। यह कहानी दोहरायी न जा सके, इसीलिए भिखारी ठाकुर लोगों को आगाह और नाटक का फलागम बताते हुए कहते हैं – “एह विरोध नाटक तन-मन से विधिपूर्वक जे गाई। भरत-राम-लछुमन-रिपुसुदन करिहन तेकर भलाई।”⁷

भिखारी ठाकुर की नाट्य-रचनाओं में भोजपुरी किसान जीवन के आर्थिक पक्ष से अधिक सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन मुखर हुआ है। भोजपुरी किसान के सामाजिक जीवन की अपनी लंबी परंपरा रही है। भोजपुरी समाज के परंपरागत स्वरूप और उपनिवेशी राज्य व्यवस्था के दबाव से उत्पन्न द्वन्द्व, तनाव और नियति की अभिव्यक्ति भिखारी ठाकुर की रचनाओं में मिलती है। उपनिवेशी राज्य-व्यवस्था ने भोजपुरी समाज ही नहीं, बल्कि भारतीय समाज के परंपरागत ढाँचे को कई जगह से तोड़ा है या तोड़ने की कोशिश की है या व्यवस्था के दबाव से यह ढाँचा टूटा है। भिखारी ठाकुर की रचनाओं में टूटन की प्रक्रिया और परंपरागत समाज की उत्पीड़न के प्रति किया गया प्रतिरोध अभिव्यक्त हुआ है। उनके ‘पुत्रवध’, ‘भाईबिरोध’, ‘बिदेसिया’ इत्यादि नाट्य-रचनाओं में यदि टूटन की पीड़ा है तो ‘बेटी-वियोग’, ‘विधवा-विलाप’, ‘गंगा-स्नान’, ‘कलजुगप्रेम’ इत्यादि नाट्य-रचनाओं में परंपरागत समाज की उत्पीड़न के प्रति प्रतिरोध अभिव्यक्त हुआ है। भाई-बिरोध नाट्य-रचना में निम्नवर्गीय किसान-परिवार और संपत्ति के बँटवारे की टूटन को दर्ज करती हैं। इस किसान परिवार में टूटन का कोई ठोस कारण नहीं दिया गया है बल्कि घर-परिवार तोड़ने वाली लोककथा परंपरा में चली आ रही पड़ोस की एक बुढ़िया कुटिनी है, जो परिवार के जिम्मेदार लोगों की अनुपस्थिति में घर की छोटी बहू को ‘अलगा’ रहने का

फायदा समझाती है —

“पीसत बाडू अकेले रानी। तोहरे खातिर कहत बानी।

X X X
लउकत बाटे हाथ में टेला। पीसत कूटत बाडू अकेला।

X X X
फरका होके करबू सूख। सुन निहोरा मोर।”⁸

आगे और समझाती है — “तोहार मरदू हर जोते आ भसरू कचहरी करे गइलन बाइन। लोगवा कहेला जे बुढ़िया कुटनी है। ओकरा अतना खनिहार, तोहरा के बा जे अतना दुःख सह के काम करत बाडू? ओकर चार-चार गो खनिहार आ तोहरा के बा? एगो काम कहतानी, तवन कर। तू अपना गोतिनियों से अलगा हो जा।”⁹ परिवार विघटन से परंपरागत सामाजिक मूल्य नाममात्र के लिए बच रहे थे और भीतर-ही-भीतर उपनिवेशी जीवन मूल्य उनका स्थान ले रहे थे। किसान अपनी जीवन-पति में परंपरागत रूप में जीना चाहता है। वह वही कार्य करना चाहता है, जो अब तक होता आया है। चोरी के इल्जाम में पकड़े जाने पर ‘भाई-विरोध’ का छोटा भाई उदर का दोष बड़ा भाई उपकारी अपने ऊपर ले लेता है। ताकि घर की इज्जत रह जाए। अलग्गोझे की स्थिति में भी भाई के घर को अपना घर समझता है। प्रेमचंद के होरी की तरह उपकारी भी घर की ‘मरजाद’ बचाना चाहता है। प्रेमचंद का होरी घर की मरजाद बचाने के क्रम में स्वयं लहुलुहान ही नहीं, निःपेश हो जाता है लेकिन भिखारी का उपकारी द्वारा घर की लाज बचाने के क्रम में पुलिस असली दोषी यानि छोटे भाई उदर को पकड़ ले जाती है। घर की मरजाद को बचाने का प्रयास भिखारी के यहाँ प्रेमचंद के होरी जैसा ही है।

भिखारी ठाकुर के मौजूदा दौर में परंपरागत समाज के उत्पीड़न की शिकार मुख्यतः स्त्रियाँ और निम्न जातियाँ ही थीं। इनमें से भिखारी के नाट्य-साहित्य में स्त्रियाँ ही केन्द्र बिन्दु बनी हैं। स्त्रियों पर किये जाने वाले उत्पीड़न की चर्चा आगे विस्तारपूर्वक की जाएगी। जहाँ तक किसान समाज की सहयोगी निम्न जातियों का सवाल है तो वह भिखारी के नाट्य-साहित्य में उनके सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के रूप में है। परंतु भिखारी ठाकुर के आत्मकथात्मक काव्य ‘नाई बहार’ में उनके जीवन के माध्यम से कमीन (iough) जातियों की स्थिति का अंदाजा हो जाता है।

भिखारी ठाकुर का भोजपुरी समाज वर्ण-व्यवस्थागत था। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों में विभक्त था और इन सबके भीतर भी कई उपविभाजन थे। भिखारी की रचना ‘चौवर्ण-पदवी’ इसी वर्णागत समाज की संरचना को चित्रित करती है। उन्होंने लिखा है — “बाबा ब्राह्मण, बाबू छत्री, भइया वैश्य, बबुआ शूद्र। मालूम होला जे पहिले पदवी ना रहलन हा। हमनी का सुनीला, सतानंद वशिष्ठ जी। आज बाबा जी के पदवी उपद्येया जी, दूबे जी, मिसिर जी..... बाबू के पदवी पहिले के हमनी का सुनीला जनक जी, दशरथ जी..... आज बाबू राजा दशरथ सिंह। सत नारायण व्रतकथा में हमनी का सुनीला साधु बनिया, आज वैश्य के पदवी साधु साह। जवन पदवी आज पोस्ट आफिस में लिखालन। पदवी आज छपरा जिला में बाड़न। धनिक चाहे गरीब बनहरा के लोग चाल करेला फलना महतो, फला ठाकुर, फला मांझी अउर जगह पदवी कम पर गइल।”¹⁰ इसे चौपाई छंद में लिखा है — “बात-बात में जात रे पदवी छपरा के लोग होखेला/अवरु जगह उँच-निचाई बुर्बक चतुर के जोखेला।”¹¹ यह वर्णवादी समाज किसान जीवन में था.... भले ही अन्य जगहों पर कम हो गया था। ‘अन्य जगह’ से भिखारी का तात्पर्य

शहर से था। जहाँ पर वर्णवादी समाज की संरचना ढीली पड़ गई थी। यह अनुभव उन्हें अपने प्रवसन के दौरान हुआ था। गाँव के लिए जातिवादी समाज एक सच्चाई था। इस जातिवादी किसान समाज में किसानों की सहयोगी जातियों का शोषण भी एक सच्चाई था। यह एक यथार्थ था। भिखारी ठाकुर स्वयं नाई जाति के थे। वे स्वयं वर्णवादी समाज की विकट परिस्थितियों में जीवन जीए थे। इसे उन्होंने अपने आत्मकथात्मक काव्य 'नाई-बहार' में दर्ज किया है। इससे पूर्व सरस्वती पत्रिका में सन् 1914 में पटना के हीरा डोम की 'अछूत की शिकायत' कविता में वर्णवादी समाज की क्रूर, दमनकारी और शोषक जाति व्यवस्था का असली रूप और चरित्र पूरी तरह से उभर चुका था। कविता शुरू में बता देती है –

‘हमनी के राति दिन दुखवा भोगत बानी,
हमनी के साहेबे से मिनती सुनाइबि।
हमनी के दुःखवा भगवनो ना देखता जे,
हमनी के कब ले कलेसवा उठाइबि।’¹²

और अंत में यातना, पीड़ा और बेबसी को इस तरह प्रस्तुत करती है –

‘हमनी का इनरा का निगिजे ना जाइले जा,
पांवेफ में से भरि-भरि पियतनी पानी।
पनहीं से पिटि-पिटि हाथ-गोड़ तुरि देले
हमनी के एतना काहे के हलकानी।’¹³

वर्णवादी समाज के शोषण और दमन के चक्की में पीसे जाने की यातना, पीड़ा और लाचारी की आत्मानुभूति भिखारी ठाकुर के 'नाई बहार' में भी है। इसमें भी वर्णवादी भोजपुरी समाज खुलकर आ गया है। नाई की परंपरागत भूमिका बाल काटने की रही है। शादी-विवाह से लेकर श्राद्ध जैसे सभी आनुष्ठानिक अवसरों पर पुरोहित के नेतृत्व में नाई सहयोग करता है। दरअसल उसे सहयोग नहीं, बल्कि बेगारी कहें तो बेहतर होगा। बेगारी करते हुए – ‘पावत छूटल गोड़ के छाल / ह जजमनिका निज महाल / रात के बोलाहटा दिन के नेवता / काम के कइक तरह के भेंवता।’¹⁴ और उसके एवज में मिलता क्या है! ‘कच्चा सेर भर सतुआ-नून। बेसी ना पड़बएको बून/एतने पड़बद्ध जइबद्ध जरूर। ना त करबके मार के चूर।’¹⁵ कच्चा सेर भर सतु और नमक नगद रूप में मिलता है। इसलिए ‘खोजद्ध महाजन काढह रिन/मिली मजूरी बरिसवाँ दिन।’¹⁶ परंपरागत श्रम से भरण-पोषण नहीं हो सकता। कर्ज लेना नियति बन गया था। इस तरह भिखारी ठाकुर ने वर्णवादी भोजपुरी समाज में ‘पउनियों’ के बेगारी का इतिहास लिखा है।

भिखारी ठाकुर 'नाई-बहार' के माध्यम से अनुष्ठानपरक अवसरों पर प्राप्त दान को बराबर हिस्सों में मिलने की वकालत भी करते हैं। वे माँग करते हैं कि – ‘श्राद्ध-कर्म पर काग, गाय और कुत्ता के लिए पिंडदान के बाद काग बल दिया जाता है। एक ही साथ सब चीजों को मिलकर अलग-अलग बराबर हिस्सों को दे दिया जाता है। श्राद्ध-कर्म तीन जातियों से शुद्ध होता है – नाई, ब्राह्मण और महापात्र। इसलिए इन तीनों जातियों का हिस्सा बराबर होना चाहिए।’¹⁷ पर यह भी चिंता थी कि कब तक और कितना ही मिलेगा। ‘जजमनिका में कुछ ना बाटे। लगबद्ध सीलवट लोढ़ा चाटे।’¹⁸ इसलिए बाहर जाकर कमाने की जरूरत है और वे नाई जातियों को सैलून खोलने की हिदायत देते हैं – ‘छौर कर्म के घर बनावाव। भीतर बड़ल माथ कमावद्ध/शीत झरी आ पानी। तनिको ना काम परी नुकसानी।..... एह में

खरचा लागी कम। रोजी चलत रही हरदम।'¹⁹ इस प्रकार भिखारी देखते हैं कि यजमानी प्रथा में परंपरागत श्रम से बेगार लोगों का भरण-पोषण नहीं हो सकता। इसलिए श्रम का नया रूप अपनाना ही होगा। इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि एक तरफ वर्णवादी व्यवस्था का शोषण परंपरागत श्रम रूपों को टूटने के लिए मजबूर कर रहा था जो दूसरी तरफ औपनिवेशिक व्यवस्था जो इस कौआझापट के ताक में ही थी कि परंपरागत श्रम रूपों को कब अपने आगोश में लेकर नए श्रम रूपों का शोषण करें।

कहना न होगा कि औपनिवेशिक व्यवस्था की जमींदारी प्रथा का चरित्र लगान वसूली के समय बहुत क्रूर हुआ करता था। प्रकृति का प्रकोप तबाह ही कर देता था और हिन्दुस्तानी समाज की संरचना भी ऐसी थी कि जिसमें शोषण के बहुत स्तर बन गये थे। ये सभी चीजें भोजपुरी समाज को पलायन के लिए मजबूर कर रही थीं। गाँव का वही निम्न आर्थिक किसान शहर का मजदूर बनने को मजबूर था। भिखारी ठाकुर के बहुत समय पहले से ही प्रवासी मजदूर वर्ग की पृष्ठभूमि बन चुकी थी। ध्यातव्य है कि हिन्दुस्तान में सर्वहारा मजदूर वर्ग का जन्म कृत्रिम औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप हुआ था। औपनिवेशिक शासकों की औद्योगिक पूँजी के वित्त पूँजी में परिवर्तन के साथ ही जो पूँजीवादी वर्ग अस्तित्व में आया उसके मुख्य घटक थे, व्यापारी, बिचौलिए तथा उपनिवेशवादी सरकार और व्यावसायिक फर्मों के कर्मचारी। यह वर्ग आर्थिक रूप से प्रत्यक्षतः उपनिवेशवादी सरकार पर आश्रित था और ब्रिटिश पूँजी से इसके हित जुड़े थे। प्रारंभिक दौर में नील, चाय, कॉफी के उद्योगों के बाद सूती वस्त्र उद्योग और जूटमिल कारखाने शुरू हुए। मजदूर तबका भी इसी प्रक्रिया में विकसित हुआ।

लेकिन पश्चिमी देशों में हिन्दुस्तान से बहुत समय पहले ही सर्वहारा वर्ग का जन्म हो चुका था। पश्चिमी समाज में मजदूर वर्ग का जब विकास हुआ तब तक सामान्यतः पूँजीवादी जनतांत्रिक चेतना भी विकसित हो चुकी थी। चिंतन और दर्शन के क्षेत्र में भाववादी विचारधारा का प्रभुत्व जरूर था परंतु द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी चिंतन का विकास भी हो गया था। गैलिलियो और कोपरनिकस ने धर्मिक विश्वासों पर सवालिया निशान लगाने की जिस संघर्षशील परंपरा का सूत्रपात किया, वह डार्विन तक आते-आते एक सशक्त आंदोलन का रूप ले लेती है। फिर भी पारंपरिक भाववादी दृष्टि और आद्य भौतिकवादी दृष्टिकोण से पूँजीवाद पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया था, व्यक्ति स्वातंत्र्य जरूर महत्वपूर्ण बन गया। इससे आर्थिक-राजनीतिक चिंतन में जहाँ व्यक्ति स्वातंत्र्य की धरणा बुनियादी मुद्दा बनी, वहीं कला और साहित्य में यथार्थवादी विधाएँ और शैलियाँ विकसित हुईं। श्रम को प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन का वास्तविक मानक स्वीकार करने वाले एडम स्मिथ तथा वस्तु विशेष के उत्पादन में लगने वाले श्रम की मात्रा के आधार पर मूल्य निर्धारित करने के पक्षधर डेविड रिकार्डो जैसे सिद्धांतकार जिस अर्थव्यवस्था के प्रवक्ता थे उसकी आधारभूत विशेषताएँ थी — मुक्त बाजार, प्रतिस्पर्धा, जिन्स-उत्पादन और तलब मजदूरी आदि। राजनीतिक आर्थिक चिंतन में पूँजीवादी चेतना से उद्भूत नये और क्रांतिकारी विचार थे — वयस्क मताधिकार, जनतांत्रिक गणतंत्र, जनमत संग्रह और सत्ता का पृथक्करण। जाहिर है कि समाज में किसी आर्थिक वर्ग के उदय व प्रभुत्व से महज आर्थिक चेतना का विकास नहीं होता.... राजनीति, धर्म, दर्शन आदि भी उसके अनुरूप ढलने लगते हैं। इस समग्र और सर्वांगीण पूँजीवादी चेतना के आधार पर ही आगे चलकर मजदूर चेतना विकसित हुई।

यह गौरतलब है कि यूरोपीय पूँजीवादी चेतना के समानांतर भारत में पूँजीवादी चेतना का विकास नहीं हुआ है। अंग्रेज शासकों द्वारा प्रवर्तित कृत्रिम औद्योगिकीकरण के चलते भारत में चूँकि पूँजीवाद का

सहज और स्वाभाविक विकास नहीं हुआ, इसलिए यहाँ पूँजीवादी जनतांत्रिक चेतना विकसित नहीं हो पाई। भारत में पूँजीवादी चेतना के विकास के दो प्रेरक बिन्दु रहे हैं – एक, पश्चिम में पूँजीवादी चेतना का विकास और वहाँ की जनतांत्रिक क्रांतियाँ, दूसरा, भारत में साम्राज्यवाद और सामंतवाद के विरुद्ध संघर्ष। भारत में मजदूर चेतना का विकास भी इन्हीं दो मुद्दों के इर्द-गिर्द हुआ।

उधर पश्चिम में मजदूर चेतना के विकास के शुरुआती दौर में संघर्ष के मुद्दे थे – काम के घंटों का निर्धारण, मजदूरी में बढ़ोतरी और काम के लिए बेहतर परिस्थितियाँ व जरूरी सुविधाएँ। इन सवालों से जूझने की प्रक्रिया में क्लेक्टिव बारगेनिंग या 'सामूहिक सौदेबाजी' की धारणा बनी और संगठित श्रम शक्ति की सामर्थ्य का अहसास हुआ। फिर ट्रेड यूनियनवाद के रूप में शिकागो के मजदूरों ने इसे अभिव्यक्त किया। उसकी अगली कड़ी के रूप में 'पेरिस कम्यून' तक आते-आते यह स्पष्ट हो गया कि आर्थिक सवालों पर संघर्षरत मजदूर चेतना अब राजनीतिक चेतना का रूप लेने लगी है। पेरिस कम्यून के रूप में इतिहास की जिस प्रथम मजदूर राज्य सत्ता का निर्माण हुआ, उसे स्थायी नहीं रखा जा सका। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि उत्पादन के साधनों पर मजदूर वर्ग का अधिकार तब तक संभव नहीं है जब तक कि राज्यसत्ता पर उसका अधिकार नहीं हो जाता। मजदूरों की राज्यसत्ता का प्रश्न वस्तुतः उसकी अपनी राज्य मशीनरी और सैनिक शक्ति का प्रश्न है। वर्ग संघर्ष ही परिवर्तन का आधार है। संघर्ष की प्रक्रिया में मजदूरों और किसानों की मैत्री जरूरी है। सर्वहारा की तानाशाही की धारणा मजदूर चेतना की धारणा बन गयी। साम्राज्यवाद के शोषक स्वरूप को समझते हुए उपनिवेशों की स्वाधीनता का संघर्ष विश्वस्तर पर श्रमिक क्रांति का अंग बना। शोषक शक्तियों ने मजदूर चेतना पर आघात करने के प्रयत्न भी निरंतर किए। इन प्रयत्नों के विरुद्ध संघर्ष भी मजदूर चेतना के विकास क्रम का जरूरी हिस्सा रहे हैं।

विश्वस्तर पर मजदूर चेतना को विकसित करने में मार्क्सवादी चिंतन की ऐतिहासिक भूमिका रही है। मार्क्स व एंगेल्स द्वारा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, श्रमिक वर्ग की तानाशाही और वर्गहीन समाज की धारणाओं तथा लेनिन द्वारा विकसित साम्राज्यवाद की संकल्पना ने मजदूर चेतना को सशक्त व सुसंगठित स्वरूप दिया। भारत में सर्वहारा वर्ग और मजदूर चेतना के विकास को यह वैचारिक आधारभूमि उत्तराधिकार में प्राप्त हुई। उत्तराधिकार में प्राप्त होने का अर्थ यह है कि यहाँ स्वाभाविक औद्योगिकरण व स्वतंत्र रूप से पूँजीवाद का विकास न हो पाने के कारण पूँजीवादी जनतांत्रिक चेतना का विकास भी नहीं हो सका था और फिर व्यापारी, बिचौलिये तथा उपनिवेशवादी सरकार और व्यावसायिक फर्मों के कर्मचारी उस पूँजीवादी जनतांत्रिक चेतना के लिए बाधक बने हुए थे।

फिर भी भिखारी ठाकुर के दौर में गाँव से निम्न आर्थिक वर्गीय किसानों का भोजपुरी क्षेत्र ही नहीं, वरन् पूरे हिन्दुस्तान से शहर की ओर पलायन हो रहा था। यह पलायन थोड़ा-बहुत नहीं, बल्कि भोजपुरी क्षेत्र से काफिला का काफिला कलकत्ता इत्यादि जैसे नगरों की ओर हो रहा था। प्रेमचंद भी अपने उपन्यास 'गोदान' (1936) में शहरों की ओर हो रहे पलायन पर लिख रहे थे – "गाँव के और कई आदमी मजूरी की टोह में शहर जा रहे थे। गोबर हैरान था, इतने आदमी नगर में कहाँ से आ गए? आदमी पर आदमी गिरा पड़ता था। बाजार में चार-पाँच सौ से कम मजदूर न थे। राज और बढ़ई, लोहार और बेलदार, खाट बुनने वाले और टोकरी ढोने वाले और संगतराश सभी जमा थे। गोबर यह जमघट देखकर निराश हो गया, इतने सारे मजूरों को कहाँ काम मिल जाता है।"²⁰ कलकत्ता के संदर्भ में उसी दौरान बंगाली मजदूरों को निकालने और उसके जगह सस्ते देहाती मजदूरों को रखा जा रहा था। 1905

ई. में बी. फोले नामक एक अंग्रेज अधिकारी ने लिखा है – “20 वर्ष पहले जूट मिलों में सारे मजदूर बंगाली थे। अब उनका स्थान संयुक्त प्रांत और बिहार के हिन्दुस्तानियों ने ले लिया।.... जिसका परिणाम यह हुआ कि आज अधिकांश मिलों के दो-तिहाई मजदूर देहाती हैं।”²¹ देहात से आये यह शहरी अकौशल मजदूर गाँव के किसान से कम शोषित नहीं था। ‘कलकत्तिया’ मजदूरों के शोषण के बारे में आर.एन. गिलविफ्रिस्ट ने, जो बंगाल का श्रम और सूचना अधिकारी था— इस प्रकार लिखा है – “सरदार (बिचौलिया) उनका (मजदूरों का) किराया और सस्ते में खाने-पीने के लिए थोड़े पैसे दे देता है। वही उन्हें कुछ पैसे भी इसलिए पेशगी देता है कि हो सकता है कि उन्हें फौरन काम न मिल पाए। वह उन्हें किसी क्वार्टर विशेष में रहने और खास दुकान से चावल खरीदने की हिदायत करता। धीरे-धीरे उन्हें (मजदूरों को) यह मालूम हो जाता है कि जिस मकान में वह अन्य छह मजदूरों के साथ रहते थे और जिसका वे सभी किराया देते हैं। वह सरदार का ही है और जिस दुकान से वह चावल खरीदता है उसका मालिक भी वही सरदार हैं।”²² कारखानों में जो सरदारी प्रथा थी, वह निःसंदेह साधरण मजदूरों के उनके निरीक्षकों या उच्चतर अधिकारियों द्वारा शोषण का ही दूसरा रूप थी। लेकिन यह भी जायज तौर पर कहा जा सकता है मालिक इस प्रकार के भ्रष्टाचार की छूट देते थे क्योंकि उनसे उन्हें ऐसी संस्थाओं में पैसा नहीं लगाना पड़ता था जो पूँजीवादी श्रमिक नियंत्रण की विशेषता थी। 28 मिल मजदूरों द्वारा 1906 ई. में किसी बंगाली वकील को लिखे गए पत्रों से उनके शोषण का और खुलासा होता है – “हमें छुट्टी के लिए साहब से अनुमति लेनी पड़ती है। लेकिन छुट्टी पर जाते समय हमें बाबू और सरदार को घूस देनी पड़ती है। इसके लिए वे हमसे हर महीने रिश्वत लेते हैं और तब भी जब दूर्गापूजा का पर्व आता है। अगर हम रिश्वत नहीं दें तो वे हम पर ठीक ढंग से काम न करने का आरोप लगाकर साहब से जुर्माना लगवा देते हैं या नौकरी से निकलवा देते हैं।”²³ दरअसल सरकार की इसलिए चलती थी कि लोग भयभीत रहते थे। सरदारों के आतंक के बारे में इतिहासकार दीपेश चक्रवर्ती ने जो सूचनाएँ एकत्रित की हैं, वे द्रष्टव्य हैं – “सरदार के प्रतिशोध की भावना का ऐसा आतंक था कि रॉयल कमीशन ने जब कई मजदूरों से मिलकर असलियत जानने के लिए सवाल पूछे तो सभी ने एक जबान होकर यह उत्तर दिया कि हमने अपनी नौकरी के लिए रिश्वत नहीं दी। लेकिन उनके इस इंकार में कोई दम नहीं था।”²⁴ पर बबुनिया नाम की एक बिहारिन मजदूरिन ने रॉयल कमीशन के सम्मुख जो बयान दिया, वह उल्लेखनीय है – “जब पहले पहल मेरी नौकरी लगी थी तो मुझे उस सरदार को चार रुपये बक्शीश में देने पड़े थे, जिसने मुझे मिल में लगवाया था। हर बार जब मैं गाँव से लौटकर आती हूँ मुझे सरदार को वही रकम देनी पड़ती है। मैं उसे हर हफ्ते दो आने भी देती हूँ। जब मेरे पति की पहली नौकरी लगी थी तो उसने छह रुपये दिये थे। वह सरदार को चार आने देता है। अगर हम सरदार को पैसे देने से इंकार कर दें तो हमें काम ही न मिले। हर मजदूर इसी तरह सरदार को पैसे देता है।”²⁵ सरदार का प्राधिकार इतना प्रभावी कैसे हो गया था? इसका सटीक उत्तर दीपेश चक्रवर्ती ने देने की कोशिश की है – “संस्कार – इसके तहत सरदार भी आता है और मजदूर भी। असल में यह पूर्व पूँजीवादी संस्कार थे जिनमें धर्म, संप्रदाय, नातेदारी, भाषा और अन्य आदिकालीन विश्वासों पर विशेष बल दिया जाता था। इस संबंध में प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं मिलता है परंतु जो हैं वह इसकी ओर निश्चित रूप से संकेत करता है।”²⁶ इस प्रकार देखा जा सकता है कि जिस तरह किसानों के शोषण करने वालों के कई स्तर हैं वैसे ही शहरी मजदूर भी शोषण के कई स्तरों में पिसता है।

शहरी मजदूर के शोषण को भिखारी ठाकुर ने अपने नाट्य-साहित्य में विमर्श के बतौर भले ही न उठाया हो परंतु उस तथ्य को वे नजरअंदाज नहीं कर पाये हैं। 'बिदेसिया' नाटक का बिदेसी भी शहरी मजदूर हैं, उसने शहर में आकर अपनी सहकर्मी से दूसरी शादी भी कर ली है और बच्चे भी हो गए हैं। वह अपने घर को भूल गया है। लेकिन बटोही के समझाये जाने पर वह घर लौटने की तैयारी करता है और घर लौटने के लिए जैसे ही वह अपने कमरे से निकलता है, बाड़ी वाला और साहुकार अपना मकान किराया और बकाया राशि लेने के लिए आ जाते हैं। बिदेसी के पास रुपये पैसे न रहने पर उसको वे पीट देते हैं और कपड़ा तक उतरवा लेते हैं 'बिदेसिया' नाटक का रंग संकेत देखिए – "बाड़ी वाला आ साहुकार आ के घर-भाड़ा आ कर्जा के तगादा करत बाड़े। भाड़ा आ कर्जा ना चुकवला खातिर रक-झक तोर-मोर होता। बाड़ी वाला आ साहुकार बिदेसी के कपड़ा उतरवा लेत बाड़े। बिदेसी एक गमछी पेन्ह के घर जात बाड़े।"²⁷ जैसा कि पहले भी कहा गया, परंतु पिफर भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि बाड़ी वाला वही मकान मालिक है, वही सरदार है जो मजदूरों से कमीशन के नाम पर रिश्वत लेकर उन्हें कारखानों आदि जगहों पर काम दिलाता है, अपने ही मकान में रहने के लिए कमरा भी मुहैया करवाता है और अपने मकान की दुकान से ही समान आदि खरीदने के लिए हिदायत देता है। भिखारी ठाकुर उस सरदारी व्यवस्था को नजरअंदाज नहीं कर पाते हैं। इससे उस व्यवस्था की शोषण की व्यापकता का पता चलता है। बिदेसी के घर लौट जाने पर उसकी दूसरी पत्नी 'रंडी' भी उसके गाँव जाने के लिए निकलती है तो बाड़ीवाला मना करता है कि वह न जाए –

“बाड़ी वाला – ‘का हो, चल देलू?’

रंडी – हँ, चल देलीं।

बाड़ीवाला – हमार घर-भाड़ा के दी?

रंडी : हमरा रउरा कवनो बात बा?

बाड़ीवाला जाये के मना करता, बाकी रंडी अपना सर-सामान का साथे बिदेसी के घर खातिर चल देत बाड़ी।"²⁸ बाड़ी वाला द्वारा मना किये जाने के पीछे दो स्थितियाँ हो सकती हैं – एक, रंडी काम-धंधा करके बाड़ी वाले की मकान किराया दे देगी और दूसरे, बाड़ी वाले के मन में यौन-शोषण की स्थिति भी हो सकती है। या तो यह है कि पुरुष मजदूर की अपेक्षा महिला मजदूर का शोषण अधिक होता है। 'बिदेसिया' नाटक की 'रंडी' उस महिला मजदूर का प्रतिनिधित्व करती है, जो गाँव के तमाम सामाजिक बहिष्कारों की स्थिति में कलकत्ता जैसे शहरों में भागकर पनाह लेती है, मजदूरी करती है और सहकर्मी पुरुष साथी से शादी करती है और फिर 'रंडी' संज्ञा से जानी जाती है। इस तरह स्पष्ट होता है कि भोजपुरी क्षेत्र से महिलाओं को कई तरह की असहनीय कठिनाईयाँ आती थीं, तो वे कलकत्ता की ओर रुख करती थीं।

भिखारी ठाकुर के साहित्य में जो मजदूर वर्ग उपस्थित है, उसका कलकत्ता से बहुत गहरा रिश्ता है। तत्कालीन दौर में कलकत्ता भोजपुरी क्षेत्र के लोगों के लिए रोजी-रोटी का केन्द्र बना हुआ था। भोजपुरी के भाषा वैज्ञानिक डॉ. उदयनारायण तिवारी ने कलकत्ताियों लोगों के बारे में लिखा है – "भोजपुरी क्षेत्र के बाहर भोजपुरियों का सबसे बड़ा अड्डा कलकत्ता है। कलकत्ता को हम वास्तव में भोजपुरी जीवन और संस्कृति का केन्द्र कह सकते हैं। हजारों भोजपुरी कलकत्ता तथा भागीरथी के किनारे स्थित जूट के कारखानों में काम करते हैं। कलकत्ता में प्रति रविवार को वे सहजों की संख्या में धरमतल्ला के मैदान

में 'आक्टरलोनी मॉनुमेंट' के पास एकत्र होते हैं। इस स्थान पर वे कबड्डी, कुश्ती आदि खेलों से तो मनोरंजन करते ही हैं किन्तु कुछ लोग बिरहे, कजली, फाग और चैता आदि भी शौक के अनुसार गाते हैं। भोजपुरी गीतों में प्रचलित लोरिकी, सोभनयका और सोरठी आदि लोककथाओं को भी यहाँ लोग गाते हैं। यही कारण है कि अनेक भोजपुरी पुस्तकों का प्रकाशन दूधनाथ प्रेस, सलकिया, हाबड़ा से हुआ है।²⁹ इस संदर्भ में कहना न होगा कि भिखारी ठाकुर ने अपने नाटकों का प्रदर्शन धरमतल्ला मैदान में ऑक्टरलोनी मॉनुमेंट के पास अनगिनत बार किया है और यह भी कहने की आवश्यकता नहीं है कि उनकी रचनाएँ फुटकल रूप में दूधनाथ प्रेस, सलकिया, हाबड़ा से छपी हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि कलकत्ता जब भोजपुरी जीवन में समाया हुआ था तो उनकी संस्कृति से वह अछूता कैसे रह सकता था। भिखारी ठाकुर के नाट्य-साहित्य ही नहीं, भोजपुरी लोकसंस्कृति में भी कलकत्ता की उपस्थिति दिखती है। भिखारी के यहाँ – 'पियवा गइलन कलकतवा ए सजनी / तूरि दिहलन पति पतनी के नातवा ए सजनी'³⁰, 'पति कहे पतनी से बाता, हम जाइब देखे कलकता'³¹, 'पिया मोर, मत्ति जा हो, पूरुबवा'³², 'अइल कलकतवा त खतवा भोजइत ताबर हो तोर।'³³ इत्यादि में कलकत्ता के बिना मजदूर वर्ग की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। भिखारी ठाकुर के अलावा भोजपुरी लोकगीतों में कलकत्ता की उपस्थिति लगातार रही है। 'लागल झुलनिया का धका, बलम कलकत्ता निकल गये' या 'कलकतवा से आवेला झुमक भारी'³⁴, 'अपने त गइले संझ्या पूरुबी रे बनिजिया'³⁵, 'पिया कलकतिया लगाल आके छतिया'³⁶ इत्यादि लोकगीतों में कलकत्ता में प्रवासी मजदूर पति के लिए अभिव्यक्ति मिली है। कलकत्ता से मजदूरों के गहरे रिश्ते पर भोजपुरी और हिन्दी के कवि महेन्द्र शास्त्री ने लिखा है –

‘जिसे कहीं शरण नहीं, उसका भी स्वागत है,
इस महासमर में सबको है खपना।
काम है हजारों जो हजारों प्रकार के हैं,
देर तक किसी पड़ेगा नहीं अपना।
झरिया से नैहाटी, हबड़ा, सियालदह,
देह न चुराओ तो सुख नहीं सपना।
दिल्ली है हाकिमों की, बम्बई भी मालिकों की,
कलकत्ता मजदूरों का अपना।’³⁷

भिखारी ठाकुर के तत्कालीन दौर में अपनी माँगों को लेकर बड़े भारी पैमाने पर हड़ताल करने वाला या राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी देने वाला मजदूर भले ही दिखाई नहीं पड़ता हो परंतु कारखानों में बड़े सबेरे से शाम दीया जले तक खट कर थका-माँदा और अवसाद-ग्रस्त मजदूर भिखारी के नाटकों में जरूर दिखाई पड़ता है जो अपनी दैहिक और मानसिक थकान मिटाने के लिए वेश्याओं की कोठों की ओर रुख करता है, या फिर नशाखोरी या जुआखोरी की ओर प्रवृत्त होता है। उनके 'बिदेसिया' और 'कलयुग प्रेम' नाटकों में ऐसे ही मजदूर उपस्थित हैं। 'बिदेसिया' का बिदेसी वही प्रवासी मजदूर है जो दैहिक और मानसिक थकान मिटाने के लिए वेफ क्रम में जुआखोरी का आदि हो गया है। 'बैठी के सलोनी पास, खेलत रहलन तास'³⁸ यानि सलोनी (रंडी) के साथ बैठा रहता है और दिनभर ताश खेलता रहता है। शहरी मजदूरों की इन कुप्रवृत्तियों की ओर प्रेमचंद ने भी गोदान में संकेत किया है – “बड़े सबेरे से मजदूर शाम दीया जले तक खटता है।..... सभी श्रमिकों की यही दशा थी, सभी ताड़ी या शराब में

दैहिक थकान और मानसिक अवसाद को डूबाया करते।³⁹ भिखारी के जीवन पर उपन्यास लिखने वाले कथाकार संजीव भिखारी के माध्यम से लिखते हैं – “देसवाली आदमी जो भी मिला, परदेशी मिला, नई-नई ब्याहता पत्नी को छोड़कर पैसा कमाने के लिए आया हुआ जैसे-तैसे जीते हुए, नाच, तमाशा, बतकही में मन भुलाए हुए और बतकहीं भी क्या गाँव जवार, पत्नी, माँ-बाप, बच्चों की यादें, सीने की धुकधुकी में हर पल बजता हुआ गाँव। लेकिन देह का भी अपना तकाजा है और जब बाबूलाल के लौंडे या पतुरिया आग भड़का चुकी हो – सुलगते तन-मन में जल कर बर-बुता जाने की चाहत का एक कोना – रंडी!”⁴⁰ शहरी मजदूर इन बुरी लतों का शिकार कैसे हो जाता था? इसका उत्तर देना बहुत कठिन है। फिर भी सुविधा के लिए कहा जा सकता है कि कारखानों के अचानक बंद हो जाने से मजदूरों का बेगार हो जाना; प्रसिद्ध भोजपुरी गीत है – ‘बरहमसिया तालवा लटकल, हाय रे चटकल।’ और कारखानों के खुलने पर बहुपारी पति से मजदूरों के श्रम करने से दैहिक और मानसिक अवसाद और अपने घर परिवार से दूर एलियेनेशन की स्थिति उन्हें उन कुप्रवृत्तियों की ओर धकेलती थी।

संदर्भ सूची

1. प्रेमाश्रम – पृ. 433.
2. आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, पृ. 69.
3. सहजानंद सरस्वती रचनावली – भाग-4, पृ. 358.
4. भिखारी ठाकुर ग्रंथावली, पृ. 31.
5. वही, पृ. 74.
6. वही, पृ. 81.
7. वही, पृ. 67.
8. वही, पृ. 62.
9. वही, पृ. 63.
10. भिखारी ठाकुर रचनावली, पृ. 265.
11. वही.
12. मैनेजर पांडेय – आलोचना की सामाजिकता, पृ. 121.
13. वही.
14. भिखारी ठाकुर रचनावली, पृ. 270.
15. वही, पृ. 270.
16. वही, पृ. 279.
17. वही, पृ. 276.
18. वही, पृ. 278.
19. वही, पृ. 275.
20. गोदान, पृ. 115.
21. निम्नवर्गीय प्रसंग – भाग-1, पृ. 77.
22. वही, पृ. 81-82.
23. वही, पृ. 83.
24. वही, पृ. 84.

25. वही, पृ. 85.
26. वही, पृ. 85.
27. भिखारी ठाकुर रचनावली, पृ. 50.
28. वही, पृ. 49.
29. भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृ. 237.
30. भिखारी ठाकुर रचनावली, पृ. 27.
31. वही, पृ. 28.
32. वही, पृ. 31.
33. वही, पृ. 40.
34. टी सीरिज, गायक—शारदा सिन्हा
35. वही, गायक—बेचनराम राजभर
36. रामा कैसेट, गायक—मुन्ना सिंह
37. डी.एन. राय — लोक कलाकार भिखारी ठाकुर : इयादन के खोह से, पृ. 12.
38. भिखारी ठाकुर रचनावली, पृ. 40.
39. गोदान, पृ. 226.
40. सूत्रधर, पृ. 42.



महिला सशक्तिकरण सामाजिक-आर्थिक चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ० मंजू अवस्थी

रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, डी०बी०एस० (पी०जी०) कालेज कानपुर

महिला और पुरुष सृष्टि निर्माण और मानव समाज के आधार हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। ये जीवन रूपी रथ के ऐसे पहिए हैं जिनसे जीवन-यात्रा सुचारु रूप से संचालित होती है परिवार और समाज में स्थायित्व के लिये दोनों की ही भूमिका समान रूप से महत्वपूर्ण रही है। किसी समाज में परिवर्तन और विकास का आधार पुरुषों और महिलाओं के पारस्परिक मेल-जोल, कदम से कदम मिलाकर चलने और दोनों की समान गतिशीलता पर ही निर्भर है। किसी भी एक पक्ष के पिछड़ने पर सामाजिक जीवन में अराजक स्थिति निर्मित होती है।

मनुस्मृति में नारी के लिये कहा गया है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्त तत्र देवता।

यत्रैतास्नु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्रफल क्रिया।।

अर्थात् “जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। यदि ईश्वर प्रकाशपुंज है तो नारी उसकी किरण है जो प्रकाश को चारों ओर बिखेर देती है अर्थात् यदि ईश्वर शब्द है तो नारी उसका अर्थ है।

एक कहावत भी प्रचलित है कि “यदि एक पुरुष को शिक्षित किया जाए तो केवल एक व्यक्ति ही शिक्षित होता है किन्तु यदि एक स्त्री को शिक्षित किया जाए तो पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है क्योंकि स्त्री परिवार की धुरी होती है।” अर्थात् एक महिला के शिक्षित होने से उसके पूरे परिवार की शिक्षा और कल्याण जुड़ा होता है। सबसे पहले नागरिकता की शिक्षा माता की गोंद से ही प्रारम्भ होती है, यदि स्त्री शिक्षित नहीं है तो वह परिवार में रहकर अपने बालक-बालिकाओं को नागरिकता का पाठ नहीं पढ़ा सकती और अपने कर्तव्यों का पालन भी भली भाँति नहीं कर सकती।

भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ गरीबी और अशिक्षा एक भयंकर समस्या हैं, वहाँ स्त्रियों की शिक्षा का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि यदि वह शिक्षित नहीं हुई तो विकास की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पायेंगी। यद्यपि हमारे देश में स्त्री को देवी का स्वरूप माना जाता है व उसकी पूजा वंदना की जाती है। पुराणों में स्त्री को शक्ति का स्वरूप माना गया है उन्हें माता का स्थान दिया गया है परन्तु शिक्षा के अभाव में वर्तमान स्त्री की स्थिति आज भी चिंताजनक है क्योंकि सदियों से उनका केवल शोषण होता आया है।

आज विश्व के अन्य देशों की तरह भारतवर्ष में ही महिलाओं पर अत्याचार एवं हिंसा के आंकड़ों का ग्राफ काफी तेजी से बढ़ रहा है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण है पिछले पांच दशकों में घटता महिला पुरुष अनुपात। जहाँ सन् 1951 में 1000 पुरुषों पर महिलाओं का अनुपात 946 था वहीं सन् 2001 में यह अनुपात 933 रह गया जिसका मुख्य कारण महिलाओं में बढ़ती मृत्युदर, कुपोषण एवं कन्या भ्रूण हत्यायें

माना जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WTO) के तत्कालिक अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि हमारे देश में प्रतिवर्ष औसतन 20 लाख से 50 लाख तक कन्या भ्रूण हत्याएँ हो रही हैं। वह भी आर्थिक रूप से सम्पन्न प्रान्तों— पंजाब, हरियाणा, गुजरात, राजस्थान एवं देश की राजधानी दिल्ली में सबसे ज्यादा हैं।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार हमारे देश में पिछले पांच वर्षों में महिलाओं के विरुद्ध होने वाले छेड़छाड़ के अपराधों में करीब 39.60 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त महिलाओं को प्रति व सम्बन्धियों द्वारा दी जाने वाली मानसिक एवं शारीरिक यातनाओं में 67.57 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वहीं दहेज हत्याओं के मामलों में 47.73 प्रतिशत और बलात्कार की घटनाओं में 39.80 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसके अलावा 'राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो' की एक रिपोर्ट के अनुसार आज स्वतंत्र भारत में प्रति 26 मिनट पर एक महिला का बलात्कार होता है और प्रत्येक 102 मिनट पर एक दहेज हत्या। हर 51 मिनट पर यौन उत्पीड़न व हर 33 मिनट पर महिला उत्पीड़न होता है, जबकि महिला उत्पीड़न के 94 प्रतिशत मामलों में अपराधी घर का व्यक्ति व निकट सम्बन्धी होता है। 'सेन्टर फार विमेंस डेवलपमेन्ट स्टडीज' दिल्ली की रिपोर्ट (2002) के अनुसार 45 प्रतिशत महिलाएं, अपने पतियों की पिटाई का शिकार होती हैं।

नारी की शिक्षा एवं शोषण का सीधा सम्बन्ध है भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् स्त्री शिक्षा एवं उनको स्वावलम्बी बनाने हेतु अनेक कार्यक्रम चलाये गये जैसे—

नई सदी में महिलाओं के कल्याण के लिये योजनाएँ

क्र. योजना का नाम	वर्ष	प्रमुख उद्देश्य
1. किशोरी शक्ति योजना	2000-01	चिन्हित किशोरियों को पोशाहार देने के साथ स्वास्थ्य, शिक्षा तथा व्यावसायिक कुशलता हेतु प्रशिक्षण प्रदान करना।
2. स्वयं सिद्ध योजना	2001-02	स्वयं सहायता समूहों के गठन के माध्यम से महिलाओं को स्वरोजगार में स्थापित कराते हुए आर्थिक स्वावलम्बन प्रदान करना।
3. स्वाधार योजना	2001-02	कठिन परिस्थितियों में रहने वाली जैसे दीनहीन विधवाएं, जेल से छूटे कैदी, आतंकवाद से प्रभावित बेसहारा महिलाओं का मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराना।
4. महिला उद्यमियों हेतु ऋण योजना	2001-02	महिला उद्यमियों को सार्वजनिक बैंकों के माध्यम से कुल ऋण राशि का एक समुचित भाग ऋण के रूप में उपलब्ध कराकर उन्हें स्वरोजगार अपनाने हेतु प्रेरित करना।
5. जीवन भारती महिला सुरक्षा योजना	2002-03	18 से 50 वर्ष आयु वर्ग वाली महिलाओं को गंभीर बीमारियों एवं उनके शिशुओं के जन्मजात अपंग होने की दशा में उन्हें सुरक्षा कवच प्रदान करना।
6. कस्तूरबा गांधी विशेष बालिका विद्यालय योजना	2003-04	शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए क्षेत्रों में बालिकाओं का शैक्षिक पिछड़ापन दूर करने हेतु निःशुल्क आवासीय विद्यालय खोलकर गुणवत्तापूर्ण बालिका शिक्षा की व्यवस्था करना।
7. वन्दे मातरम् योजना	2003-04	गर्भवती महिलाओं को निजी चिकित्सकों की सहायता से प्रत्येक माह मुफ्त जाँच तथा आवश्यक दवाएं उपलब्ध कराना।
8. आशा योजना	2004-05	सभी गांवों में एंक्रिडेटीड सोशल हेल्थ वर्कर की तैनाती के माध्यम

- से घर-घर जाकर महिलाओं और बच्चों को स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी व सेवाएं उपलब्ध कराना।
9. आंगनवाड़ी विशेष बीमा योजना 2004-05 देश के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को सरकारी सहायता के माध्यम से बीमा कवच उपलब्ध कराना।
10. जननी सुरक्षा योजना 2003-04 गर्भवती महिलाओं को स्वास्थ्य केन्द्र में पंजीकरण के एवं शिशु जन्म तक आवश्यक चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराते हुए बच्चे के जन्म पर नकद सहायता उपलब्ध कराना।
11. बालिका शिक्षा प्रोत्साहन योजना 2005-06 8वीं पास करने वाली चयनित बालिकाओं को नौवीं कक्षा में प्रवेश पर एक मुफ्त 3000 रु० की राशि बालिका के नाम बैंक में जमा करके उन्हें शिक्षा हेतु प्रोत्साहित करना।

इन प्रयासों के बाद भी स्त्री व पुरुष की साक्षरता दर में बहुत बड़ा अन्तर है जैसा कि तालिका में स्पष्ट है।

प्रमुख राज्यों में महिला साक्षरता तथा लैंगिक आधार पर साक्षरता दर (1991 एवं 2001)

राज्य	साक्षरता दर 2001			साक्षरता दर 1991		
	व्यक्ति	पुरुष	स्त्री	व्यक्ति	पुरुष	स्त्री
केरल	90.92	94.20	87.86	89.81	93.62	86.17
मिजोरम	88.49	90.69	86.13	82.27	85.61	78.09
गोवा	82.32	88.88	75.51	75.51	83.64	67.09
महाराष्ट्र	77.27	86.27	67.51	64.87	76.58	52.32
राजस्थान	61.03	76.46	44.34	38.55	55.99	20.44
उत्तरप्रदेश	57.36	70.23	42.98	41.60	55.73	25.31
अरुणाचल प्रदेश	54.74	64.07	44.24	41.59	51.45	29.89
जम्मू कश्मीर	54.46	64.75	41.82	-	-	-
झारखण्ड	54.13	67.94	39.36	-	-	-
बिहार	47.53	60.32	33.57	52.63	52.63	23.10

स्रोत- जनगणना रिपोर्ट (भारत) 191 एवं 2001

महिला साक्षरता के संदर्भ में प्रथम तीन स्थान, केरल, मिजोरम व गोवा इन तीन राज्यों को प्राप्त है जहाँ 75 से 88 प्रतिशत तक महिलाएं साक्षर हैं। साक्षरता दर लैंगिक अन्तर भी इन तीनों राज्यों में तुलनात्मक रूप से बहुत कम। बिहार व झारखण्ड जैसे राज्यों की स्थिति इस संदर्भ में सर्वाधिक शोचनीय मानी जा सकती है जहाँ पर महिला साक्षरता दर 40 प्रतिशत से भी कम है। उत्तर प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, राजस्थान, जम्मू कश्मीर जैसे राज्य जहाँ 50 प्रतिशत से कम साक्षर महिलाएं हैं। परन्तु इस सभी राज्यों में पिछले दशक में साक्षरता दर में उल्लेखनीय सुधार हुआ है।

आजादी के 66 वर्ष बीत जाने के पश्चात भी महिलाओं की स्थिति में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं आया है। उपरोक्त तालिका द्वारा महिलाओं की शैक्षिक स्थिति का अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है। महिलाओं के शोषण व उत्पीड़न का मुख्य कारण उनका अशिक्षित होना ही है अर्थात् स्त्री की विकास

यात्रा में सबसे बड़ा बाधक तत्व उसका अशिक्षित होना ही है। शिक्षा ही वह प्रकाशपुंज है जिसके द्वारा अज्ञानता रूपी अंधकार को दूर किया जा सकता है। जैसा कि गुन्नार मिर्डल ने कहा है— “साक्षरता संसार का एक मार्ग प्रशस्त करती है अन्यथा वह बन्द पड़े रहते हैं।

भारत में उच्च पदों पर महिलाओं की प्रस्थिति निम्न तालिका में प्रस्तुत है—

क्र० सं०	पद का नाम	अवधि	वास्तविक प्रस्थिति	स्त्रियों की प्रस्थिति
1.	राष्ट्रपति	26 जनवरी 1950 से अभी तक	15	01 (श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल) (25 जुलाई 2007 से अभी तक)
2.	उपराष्ट्रपति	1952 से अभी तक	12	कोई नहीं
3.	प्रधानमंत्री	15 अगस्त 1947 से अभी तक	18	01 (श्रीमती इन्दिरा गांधी) (24 जन० 1966 से 24 मार्च, 1977) (14 जन०, 1980 से 31 अक्टूबर, 1984)
4.	मुख्य न्यायाधीश	26 जनवरी 1950 से अभी तक	37	कोई नहीं
5.	मुख्य निर्वाचन अधिकारी	21 मार्च 1950 से अभी तक	15	01 (श्रीमती बी०एस० रमा देवी) (26 नव० से 11 दिस० 1990)
6.	भारत रत्न	1954 से 2001 तक	40	04 (इंदिरा गांधी, मदर टेरेसा, सुब्बालक्ष्मी, लता मंगेशकर)
7.	यू०पी०एस०सी० अध्यक्ष	1 अप्रैल 1947 से अभी तक	19	कोई नहीं
8.	लोकसभा अध्यक्ष	15 अगस्त 1947 से अभी तक	15	01 (श्रीमती मीरा कुमारी) (मई 2009 से अभी तक)

भारत में उच्च पदों पर स्त्रियों की प्रस्थिति

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सरकार द्वारा उठाये गये कदम के बावजूद इसका पूरा लाभ महिलाओं को नहीं मिल पा रहा है।

समाधान : महिलाओं से जुड़ी तमाम सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के समाधान की दिशा में हमारी सरकार ने कई प्रयास किये हैं व स्वतंत्रता पश्चात् कई नियम कानून बनाये गये हैं जिन्हें कड़ाई से लागू करने की आवश्यकता है। महिलाओं के संरक्षण को ध्यान में रखकर अनेक संरक्षणात्मक विधियां भारतीय संसद में पारित की गई जो इस प्रकार है—

1. कन्या भ्रूण हत्या से संरक्षण— भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 312–314 के मध्य गर्भपात विषयक प्रावधान के अन्तर्गत ऐसे गर्भपात दण्डनीय अपराध हैं जो स्त्री के जीवन रथार्थ न किये गये हो तथा उसकी स्वीकृति के बिना किये गये हो। यदि गर्भपात स्त्री के जीवन रक्षा के उद्देश्य से किया गया है तो वह दण्डनीय नहीं होगा। मेडिकल टर्मिनेशन आफ प्रेगनेन्सी एक्ट, 1971 में इस प्रकार व्यवस्था है, इससे न केवल गर्भवती स्त्री के अधिकारों को संरक्षित किया गया है, वरन् गर्भ में विद्यमान शिशु को भी संरक्षण प्रदान किया गया है। वस्तुतः विरोधी का प्रमुख उद्देश्य कन्या भ्रूण की हत्या को रोक कर कन्या

के जनम लेने के अधिकार को सुनिश्चित करना है, किन्तु विभिन्न शोधों से यह तथ्य सामने आ रहा है कि 'कन्या भ्रूण हत्या' को नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। भारत में विगत 100 वर्षों में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की निरन्तर घटती संख्या इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है— 1901 में जहाँ प्रति हजार पुरुषों में महिलाओं की संख्या 972 थी, वहीं 1911 में 964, 1921 में 955, 1931 में 950, 1941 में 945, 1951 में 946, 1961 में 941, 1971 में 930 1981 में 934, 1991 में 927 व 2001 में 933 रह गई है। भारत में महिलाओं का यह घटता अनुक्रम कोई जीव वैज्ञानिक घटना नहीं बल्कि कन्या भ्रूण हत्या का परिणाम है जो बालिकाओं के प्रति सामाजिक प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं। बालिका के जन्म का आज भी एक भार माना जाता है। इस चिन्तनीय स्थिति का कारण प्रशासन द्वारा कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन न होना है। इस स्थिति में सुधार के लिये सरकार ने 'प्रसव पूर्व निदान तकनीक विनियम दुरुपयोग निवारण अधिनियम' लाकर इसे प्रभावी बनाने के लिये वर्ष 2002 में संशोधन द्वारा निम्न प्रावधान किया है। 1. लिंग निर्धारण परीक्षण में भ्रूण के बालिका या बालक शिशु में परिवर्तन होने के पूर्व और बाद में दोनों को सम्मिलित किया गया है। 2. अल्ट्रासाउण्ड उपकरण का पंजीकरण और जांच का प्रमाण पत्र रखना आवश्यक किया गया। 3. संचल अल्ट्रासाउण्ड मशीनों को प्रतिबंधित किया गया है। 4. अधिनियम का उल्लंघन करने पर दोषी को 5 वर्षों की कैद और 1 लाख रुपये जुर्माना के साथ मशीन जब्त करने का प्रावधान। 5. उन परिस्थितियों को उल्लेख आवश्यक किया गया है, जिनमें अल्ट्रासाउण्ड किया जाना जरूरी है। 6. कानून के उल्लंघन की स्थिति में शिकायत कहाँ और कैसे की जाय की जानकारी। 14 फरवरी, 2003 को उपर्युक्त कानून लागू हो गया जिसका उद्देश्य बालिका के जन्म लेने के अधिकार को सुनिश्चित करना है। परंतु स्थिति यथावत है, इसी कारण उच्चतम न्यायालय ने 19 अगस्त, 2006 को कन्या भ्रूण हत्या को कठोरता से प्रतिबन्धित करने के लिये सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों को नोटिस जारी किया है।

2. बाल विवाह संरक्षण अधिनियम— भारतीय कानून में प्रणय सूत्र में बंधने हेतु न्यूनतम आयु निर्धारित है जो बाल विवाह निषेध करता है। 'राजाराम मोहन राय' और 'ईश्वर चन्द्र विद्यासागर' जैसे चिन्तकों के प्रयास से 'बाल विवाह अवरोध अधिनियम 1929' अस्तित्व में आया। वर्ष 1978 में इसमें संशोधन किया गया जिसके पश्चात वर्तमान समय में लड़कों की विवाह आयु सीमा 21 वर्ष एवं लड़कियों को 18 वर्ष निर्धारित की गई है। जिसके उल्लंघन पर दण्ड का प्रावधान है।

3. दहेज उत्पीड़न से संरक्षण — दहेज जैसी कुरीति का सामना महिलाओं को न करना पड़े, इसके लिये 'दहेज अधिनियम 1961' बनाया गया जिसे सन् 1984 में संशोधित किया गया। दहेज के लिये क्रूरता व्यवहार को संज्ञेय अपराध की श्रेणी में रखा गया है तथा दोषी व्यक्ति के लिये दण्ड का प्रावधान किया गया है इसके बावजूद उत्तर प्रदेश में दहेज प्रथा का दानव अपने विकराल रूप में दिखाई देता है, वर्ष 1995 में पूरे देश में दहेज हत्या के 7305 मामले दर्ज हुए जिसका प्रमुख कारण दहेज से सम्बन्धित पूर्ववर्ती हत्या को प्रशासन और न्यायिक प्रशासन और न्यायिक आधार पर तत्काल दण्डित नहीं किया जा सका, जो प्रशासनिक एवं कानूनी दोनों ही स्तरों पर कमियों को स्पष्ट करता है।

4. घरेलू हिंसा संरक्षण— भारत में घरेलू हिंसा के नियंत्रण हेतु घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 पारित हुआ तथा 26 अक्टूबर 2006 से यह कानून सम्पूर्ण देश में लागू हुआ। इस कानून में महिलाओं के प्रति की जाने वाली हिंसा शारीरिक मारपीट ही नहीं, अपितु उत्पीड़न, भौतिक, मौखिक, भावनात्मक तथा

आर्थिक पक्ष के साथ-साथ महिला को घर से निर्वाचित करना या निकालने की धमकी देना भी घरेलू हिंसा में शामिल किया गया है।

5. बलात्कार से संरक्षण— महिलाओं के प्रति किये जाने वाले अपराधों में यह सर्वाधिक घृणित रूप से लज्जा भंग या बलात्कार के रूप में समाज के सक्षम है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 375 द्वारा बलात्कार को दण्डनीय घोषित किया गया है। इसमें महिलाओं के लिये विशेष प्रावधान यह है कि उन्हें सह अपराधी के रूप में दण्डित नहीं किया जाता है। किन्तु दोषी व्यक्तियों को दण्ड न दिया जाना, न्याय की दीर्घ प्रक्रिया तथा सामाजिक अवमानना जैसे कारक महिलाओं के लिये दण्ड के समान ही होते हैं

यह निर्विवाद सत्य है कि महिलाओं की भागीदारी के अभाव में कोई समाज, राज्य एवं राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास की कल्पना संभव नहीं है, क्योंकि इनके विकास सन्निहित हैं। सशक्तिकरण बाहर से थोपा नहीं जा सकता वह तो स्वयं के भीतर से उत्पन्न होना चाहिए। शिक्षा एवं जागरूकता के बढ़ने पर ही स्त्रियाँ सरकार द्वारा दी जा रही सुविधाओं का लाभ उठा सकती है, जब हम चाहते हैं कि स्त्रियाँ विकास की मुख्य धारा में भागीदार बनें तब उनका शिक्षित एवं जागरूक होना नितान्त आवश्यक है।

शिक्षा ही वह केन्द्र बिन्दु है जिस पर परिवार एवं समाज केन्द्रित होता है। सशक्त समाज से ही देश मजबूत होता है।

संदर्भ सूची

1. डा0 प्रभा खेतान, 'स्त्री विमर्श के अन्तर्विरोध, हंस, सितम्बर, 1996।
2. डा0 राजकुमार, 'भारतीय नारी : सामाजिक अध्ययन', अर्जुन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
3. हिन्दुस्तान समाचार पत्र, 2 अप्रैल, 2007
4. गृहशोभा, जनवरी 2006
5. रजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त, भारत सरकार (2001), नई दिल्ली।
6. राष्ट्रप्रति डा0 प्रतिभा देवी सिंह पाटिल, 'सशक्त स्त्री सशक्त देश', मीनाक्षी प्रकाशन दिल्ली।
7. कपूर प्रमिला (1976), 'भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएँ', राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
8. भारत सरकार ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, 1994 प्रकाशन वहीं पृ0 711
9. कुमार स्वामी ए0के0, 'द स्टेटस ऑ हिन्दू वूमेन', एशिया पब्लिकेशन्स, मुम्बई।
10. डा0 शशि शेखर, 'महिला सशक्तिकरण और भारत'।



वैश्वीकरण का भारतीय महिला सशक्तिकरण पर नकारात्मक प्रभाव

डॉ० अंजना जैन,

प्राध्यापक-अर्थशास्त्र

शास० महारानी लक्ष्मीबाई स्नात. कन्या महा., किला भवन, इन्दौर

यदि आप किसी देश या युग की उपलब्धियों एवं श्रेष्ठता का मूल्यांकन करना चाहते हैं तो इसका सर्वोत्तम मापदण्ड है, उस देश में उस युग में स्त्रियों की दशा कैसी है? क्योंकि स्त्रियाँ संस्कृति सभ्यता व प्रगति का अभीष्ट मापदण्ड होती हैं। यदि महिलाएं सशक्त होंगी तो देश सशक्त होगा। महिला सशक्तिकरण का अर्थ है – महिलाओं को समाज में इस तरह अधिकार व सम्मान प्राप्त हो कि वे समाज में उनके अस्तित्व की पहचान अबला के रूप में नहीं सबला के रूप में हो। स्त्री अपनी अन्तरनिहित ऊर्जा को पहचान सके। उसे विचार, कथन व कार्य करने की आजादी हो, अवसर, सुविधा, आन्तरिक और बाह्य वातावरण ऐसा उपलब्ध हो जिसमें वे अपने आत्मबल, आत्मविश्वास, सामाजिकता, आर्थिक आत्मनिर्भरता का विकास कर सकें। साथ ही अन्याय प्रताड़ना और अपने ऊपर हो रही हिंसा के विरुद्ध आवाज उठा सकें। सदियों से शोषित की जा रही नारी शोषण से मुक्त हो सके।

वैश्वीकरण के इस युग में आज विश्व का कोई भी देश इसके प्रभाव से अछूता नहीं है। वैश्वीकरण ने भी भारतीय महिलाओं की स्थिति को बहुत हद तक प्रभावित किया है। प्रस्तुत शोध आलेख में वैश्वीकरण का भारतीय महिलाओं पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव जैसे – क्या महिलाएं शोषित हो रही हैं, क्या इस भौतिकवादी युग में महिलाएं केवल प्रोडक्ट बेचने का साधन हैं? जानने का प्रयास किया है।

वैश्वीकरण और 21वीं सदी के इस युग में महिला सशक्तिकरण आन्दोलन खुद को एक नये मोड़ पर खड़ा पा रहा है। बाजारवाद और खुली अर्थव्यवस्था में महिलाएं समाज में अपनी स्थिति, अधिकारों एवं समस्याओं को लेकर अधिक मुखरित हुई हैं। विश्व प्रसिद्ध लेखिका नाओमी वुल्फ ने अपनी पुस्तक “फादर विद फादर” में कहा है कि, सामाजिक क्षेत्र के साथ-साथ आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्र में भी स्त्रियों को ‘वोट’ और ‘पोस्ट’ के महत्व को मान्यता मिल रही है। भारत सहित दुनिया के कई देशों में सर्वोच्च पदों पर महिलाएं सत्ता व अधिकारी हासिल कर रही हैं। वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गई हैं और चौतरफा प्रगति कर रही हैं। ऐसे कानून बनाए जा रहे हैं जिनसे कार्यस्थलों पर महिलाओं के लिए बेहतर अवसर मुहैया करने और घरों में स्त्री विरोधक हिंसा को रोकने की उम्मीद बंधती है। लेकिन यह महिला सशक्तिकरण वैश्वीकरण के इस युग में छलावा मात्र है। चंद प्रतिशत महिलाओं की प्रगति व आत्मनिर्भरता सम्पूर्ण महिला सशक्तिकरण का पर्याय नहीं हो सकती। वैश्वीकरण ने नारी को एक भोग्या के रूप में प्रस्तुत किया है।

वैश्वीकरण के कारण महिलाओं पर निम्न प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं :-

- ❖ वैश्वीकरण ने महिलाओं को वस्तु बना दिया है। विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं प्रिन्ट मीडिया ने कोई भी फैशन शो हो या विज्ञापन महिलाओं के अभाव में सम्भव नहीं।
- ❖ सिनेमाई संस्कृति व टी.वी. सीरियलों ने अवैध सम्बन्धों को प्रोत्साहन दिया है, जिसमें अश्लीलता को बढ़ावा दिया है।
- ❖ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया नारी को सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रचार-प्रसार करने वाली लदी फदी गुड़ीया के रूप में पेश कर रहा है। जो केवल भावुक, कामुक और एक चिताकर्षक देह मात्र है।
- ❖ शैम्पू, साबुन, मैगी का विज्ञापन करने वाली सेक्सी मॉ का रूप है। जो बाजारवाद की इस व्यवस्था में साध्य नहीं अपितु प्रोडक्ट बेचने का एक साधन मात्र है।
- ❖ वैश्वीकरण के इस युग में महिला सशक्तिकरण के नाम पर आर्थिक आत्मनिर्भरता भी एक छलावा है। उच्चपदों के स्थान पर महिला के हिस्से में आ रहे हैं निम्न स्तर के पद। महिला बन रही है तो – कम्प्यूटर ऑपरेटर, सेल्सगर्ल, माबुल, विमान परिचारिका, रिसेप्शनिस्ट आदि। उच्चपदों पर पुरुषों का वर्च हो रहा है।
- ❖ आज के भौतिकवादी चकाचौंध के तिलिज्म में नारी ने स्वयं को फंसाकर बाजारवादी संस्कृति का एक प्रमुख आकर्षक माध्यम बना लिया है, जिससे उपभोक्ता को सन्तुष्टि प्रदान करने के लिये अपने अर्धनग्न बदन को प्रस्तुत कर रही है। आज नारी इण्डिया के सामने पुरजोर लगाकर खुद को भोज्या और बुद्धिरहित खुबसुरत देह सिद्ध करने में लगी हुई है और आधुनिकता के नाम पर पुरुष प्रधान समाज द्वारा छली जा रही है।
- ❖ सस्ती और क्षणिक लोकप्रियता के ग्लैमर में पड़कर स्त्री ने स्वयं को पुरुष के सम्मुख एक प्रोडक्ट के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। ऐसा क्यों है कि स्त्री के सारे मापदण्ड चाहे वे सौन्दर्य बोध के हो, बौद्धिकता के हो या मान-सम्मान के हो पुरुष मानसिकता पर ही निर्भर है।
- ❖ यह वैश्वीकरण का प्रभाव है कि अब भारत की अधिकांश नारी स्वयं अपने बौद्धिक सौन्दर्य की अपेक्षा दैहिक सौन्दर्य की ओर भाग रही है, सौन्दर्य प्रतियोगिता में बढ़चढ़ कर भाग ले रही है।
- ❖ वैश्वीकरण का ही प्रभाव है कि लड़कियों का व्यवहार, आचरण और पहनावा पुरुषों को छेड़छाड़, बलात्कार का खुला निमन्त्रण दे रहा है।

महिला सशक्तिकरण के अर्थ को अनर्थ करने वाले वैश्वीकरण के इस प्रभाव को दो मुहे राग अलापने मापदण्डों के व्यक्तित्व को समझना होगा।

आज नारी को वैश्वीकरण के इस छलावे को समझना होगा कि वह प्रोडक्ट नहीं है, वह भोग्या नहीं है, सौन्दर्य की सामग्री नहीं है। उसे अपनी शक्ति को पहचानना होगा। उसके इस विश्वास को लौटना होगा कि विधाता ने उसकी रचना इसलिये की है जिसके तले आदमी आज भी संघर्षों की धूप कठिनाईयों की आंधी से राहत मिलती है। उसका यही लौटा हुआ आत्मविश्वास वैश्वीकरण के इस युग में सच्चा महिला सशक्तिकरण होगा।

स्त्रियों को समाज में चाहे कितनी ही स्वतंत्रता मिल जाये, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी हो जाये लेकिन जब तक उनका दैहिक व भावनात्मक शोषण होता रहेगा तब तक महिला सशक्तिकरण का अर्थ सार्थक नहीं होगा। देशीकरण हो या वैश्वीकरण, कितने ही सेमीनार, कान्फ्रेंस करवा दिये जाये महिला सशक्तिकरण के आन्दोलन या महिला संरक्षण कानून बनावाले महिला सशक्तिकरण का राग बेसुरा होगा। वैश्वीकरण के इस युग में महिलाओं की गरिमा और उसके अस्तित्व को बनाये रखना महिला सशक्तिकरण के मार्ग की सबसे बड़ी चुनौति है।

सन्दर्भ सूची

1. राणा नायर—द बैक लैश, द सण्डे ट्रिब्यूनल, 12 नवम्बर 2000।
2. डॉ. मंजू मिश्रा—वैश्वीकरण एवं नारी मुक्ति, सन् 2010 पृ.सं. 315।
3. डॉ. ए.सी. चौहान—महिला सशक्तिकरण के स्याहपक्ष, सन् 2010 पृ.सं. 222।
4. डॉ. वी0 एस0. यादव —नई सहस्राब्दी का महिला सशक्तिकरण, सन् 2010 पृ.सं. XV से XVII.



पंचायती राज एवं महिला सशक्तिकरण के उभरते क्षितिज

डॉ० अनुपमा यादव

सहायक प्राध्यापक—राजनीति विज्ञान

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भेल, भोपाल (म.प्र.)

“भारत गाँवों का देश है गाँव यदि नष्ट होंगे तो भारत नष्ट हो जायेगा” महात्मा गांधी के इसी विचार को ध्यान में रखते हुए उनके ग्राम स्वराज्य के सपने को साकार करने के लिए भारत में पंचायती राज की स्थापना की गई जिसमें यह आशा व्यक्त की गई थी। कि गाँव का हर व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष ग्राम में बैठकर ग्राम विकास की योजना स्वयं बनाए तथा स्वयं क्रियान्वयन करें। इसके लिए देश में त्रिस्तरीय व्यवस्था द्वारा ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद की स्थापना हुई तथा उनके मुखिया के रूप में क्रमशः सरपंच, प्रधान तथा प्रमुख का पद चुनाव प्रक्रिया द्वारा तय हुआ तथा सारे अधिकार इन्हें दिये गये।

भारत में पंचायती राज का विचार कोई नया नहीं है। प्राचीनकाल से ही पंचायत लोकतंत्र की धड़कन के रूप में सामाजिक, सामुदायिक तथा आर्थिक विधियों का संचालन करती रहीं हैं। मजूमदार के अनुसार “संभवतः जब मानव समुदाय का उदय हुआ लगभग उसी समय से पंचायत व्यवस्था का उद्भव हुआ होगा पाँच सदस्यों की सभा अत्यन्त प्राचीन संस्था है, जिसका अस्तित्व अनेक राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के पश्चात् भी बना रहा”¹ निःसंदेह इसका मूल आधार इतिहास में निहित रहा है, किन्तु विभिन्न कालखण्डों में उनका स्वरूप भी भिन्न-भिन्न रहा। अंग्रेजों के आधिपत्य में आने के बाद यह राज्य व्यवस्था के अधीन कर ली गई। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान में नीति निर्देशक तत्वों में धारा-40 के अन्तर्गत पंचायती राज से सम्बन्धित प्रावधानों को सम्मिलित किया गया, जिसमें स्वतंत्रता और न्याय को महत्व देते हुए जनता की सहभागिता समानता के सिद्धांत के आधार पर प्रत्येक नागरिक के लिए प्रस्तुत की गई वास्तव में “पंचायत ऐसी संस्था है जो न केवल जनता के समीप है, बल्कि जिसमें जनता को, विशेषकर महिलाओं और समाज के उपेक्षित वर्गों को सभी स्तरों पर गाँव, खण्ड विकास और जिला स्तर पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया गया है।”²

किसी भी देश का समग्र विकास महिलाओं को अनदेखी करके नहीं किया जा सकता है। जनसंख्या का आधा हिस्सा महिलाओं का होने के कारण कोई भी समाज तब तक अविकसित एवं शोषित है जब तक वह उनका सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विकास नहीं करता। प्राचीनकाल से ही भारत में सभी क्षेत्रों में विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की अहम भूमिका रही है। वैदिक काल में ग्राम प्रशासन न्याय व्यवस्था की स्वतंत्र इकाई मानी जाती थी। ऋग्वेद में सभा का उल्लेख है, जिसका सम्बन्ध महिलाओं से था। उत्तर वैदिक काल तक सार्वजनिक मामलों में महिलायें शरीक होती थीं। तैत्तरीय ब्राह्मण में बारह रत्न का उल्लेख है जिसमें तीन महिलायें होती थीं। इस व्यवस्था में जनजाति तत्व मौजूद थे। प्राचीन छत्तीसगढ़ में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका का उल्लेख मिलता है।³ सभ्यता के उषाकाल में महिलायें पुरुषों के साथ-साथ घर के अन्दर तथा बाहर समस्त क्रियाकलापों में

समान रूप से सम्मिलित होती थीं। परन्तु भाग्य की विडम्बना और काल गति के क्रूर प्रहार से विदेशी शासन के परिवेश में उनकी सम्पूर्ण गरिमा धूमिल होने लगी।

मध्यकाल स्त्रियों की दशा परिवर्तन के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी है। “मुगलों के आक्रमणों के कारण स्थिति और बिगड़ गई। पर्दा प्रथा, बाल विवाह, बेमेल विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध की बेड़ियों ने नारी को पशु तुल्य बना दिया।”⁴ पुरुषों की स्त्री के प्रति दुर्भावना ने स्त्री को पुरुषों की दासता स्वीकार करने के लिए विवश किया। पुरुष का पौरुष नारी को दबाकर रखने में सफल होता रहा और नारी इसे अपनी नियति मानने को विवश होती रही। परन्तु परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है। इसी नियम के फलस्वरूप स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन आया। सामाजिक सुधारकों ने नारी उद्धार के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। फलस्वरूप नारी में सामाजिक चेतना विकसित हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में लोकतंत्र की उद्घोषणा तथा आधुनिक सभ्यता के प्रवाह की धारा में निष्णात् होकर भारतीय नारियों में जागृति एवं चेतना की अपूर्व शक्ति उत्पन्न हो गई। भारत सदैव ही सैद्धान्तिक रूप से महिलाओं को समान अधिकार प्रदान करने का पक्षधर रहा है।⁵ इसलिए राजनैतिक परिवर्तनों के वृहत्तर एजेण्डा से लोकतंत्रीकरण से, पंचायतीकरण से महिलाओं में सशक्तिकरण लाना सम्भव हो गया है। आजादी के बाद देश के समग्र विकास एवं पंचायती राज की स्थापना से उपेक्षित ग्रामीण महिलाओं की स्थिति अधिक मजबूत हुई। पंचायतों में महिलाओं की एक तिहाई भागीदारी सुनिश्चित करने के उद्देश्य से 1992 में 73वाँ संवैधानिक संशोधन अधिनियम पारित किया गया। राजीव गांधी के कार्यकाल में स्थानीय स्वशासन में महिलाओं को राजनीतिक अधिकार दिलाने का अभिनव प्रयास था। इसमें 33% स्थान महिलाओं के लिए सुरक्षित रखे गये। यही वह पाठशाला है जहाँ से व्यक्ति अपने राजनीतिक जीवन का कैरियर प्रारम्भ करता है। महिलाओं को आत्मविश्वास बढ़ाने का श्रेष्ठतम मौका प्राप्त हुआ। डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि—“राजनीतिक शक्ति वह मास्टर चाबी है जिससे हर वर्ग के पिछड़ेपन रूपी चाबी को खोला जा सकता है।”⁶ पंचायती राज के इस प्रावधान से महिलाओं की छिपी शक्ति को उजागर करने का अवसर मिला और भारतीय राजनीति में महिलाओं को जमीनी स्तर पर आरक्षण व्यवस्था कर राजीव गांधी की कल्पना को यथार्थ रूप से परिवर्तित करने का सफल प्रयास हुआ।⁷

73वें संविधान संशोधन अधिनियम में प्रथमतः महिलाओं हेतु पदों के आरक्षण के फलस्वरूप ग्राम पंचायत स्तर पर दस लाख सदस्यों एवं लगभग 80 हजार ग्राम प्रधानों के पद अब महिलाएं संभाल रही हैं। पंचायत स्तर एवं जिला पंचायत स्तर पर अधिकांश पद उनके पास हैं। शहरी निकायों में भी महापौर एवं पार्षदों तथा नगर अध्यक्षों, उपाध्यक्षों एवं सदस्यों के पद पर वे आसीन हैं। ये उनके राजनीतिक सबलीकरण की प्रथम सोपान है। इस प्रक्रिया से 33% महिलाएँ स्थानीय स्तर निर्णय प्रक्रिया में भाग लेने हेतु अग्रसर हुईं। अतः वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था में पुरुष प्रधान निर्णय लेने वाले समाज में अब निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी होने लगी। वे ग्रामीण महिलाएं जो अपने कार्यों की विभिन्न भूमिकाओं में इस प्रकार गुंथी हुई थी कि उनकी स्वयं की अस्मिता ही धुंधली होती जा रही थी। अब उनमें आत्मविश्वास और अधिकारों के प्रति जागरूकता का विकास होने लगा।⁸ महिलाओं की पंचायत संस्थाओं में भागीदारी से आ रहे परिवर्तन को चिन्हित किया जा सकता है। पंचायत स्तर के जनप्रतिनिधियों ने इसे इंगित करते हुए कहा है कि इससे समाज में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है इससे महिलाओं की क्षमता में बढ़ोत्तरी हुई है उनका घरों में मान बढ़ा है तथा उनके साथ समानता का व्यवहार होने लगा है।⁹

परिणाम स्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में लोगों के सोच और व्यवहार में परिवर्तन के स्पष्ट लक्षण दिखाई दे रहे हैं। पंचायतों के माध्यम से यह परिवर्तन शुभ संकेत है। महिलाएँ चाहे वे किसी जाति अथवा वर्ग की हों, वे हमेशा से वंचित एवं हाशिए पर ही रही हैं। पंचायती राज से यह पहली बार हुआ है कि ग्राम पंचायतों में उन्हें पुरुष के बराबर जाजम पर बैठकर विचार-विमर्श का अवसर प्राप्त हुआ। उनकी भागीदारी से कमजोर वर्ग को सीधा लाभ मिला है। जनप्रतिनिधियों का यह भी कहना है कि इससे कार्य में ईमानदारी आई है तथा कार्य के प्रति सजगता और कमजोर वर्ग को प्रतिनिधिक संस्थाओं में अधिक महत्व मिलने लगा है। यह बिल्कुल सही है कि किसी भी समाज में महिला की स्थिति उस समाज के विकास को इंगित करते हैं।¹⁰ पंचायती राज व्यवस्था में व्यापक स्तर पर महिला सहभागिता से सामाजिक परिवर्तन का मार्ग तो प्रशस्त हुआ है साथ ही गुणात्मक चेतना का विकास भी हुआ है, लेकिन यह भी सत्य है कि मानवता की श्रेणी में बैठने वाली नारी समाज व्यर्थ में यह भ्रम बिल्कुल न पाले कि उसकी स्वत्व साधना पूर्ण हो गई है। इसके लिए उसे निरन्तर अपने हृदय को संवेदनशील एवं संघर्षशील बनाये रखना पड़ेगा। तभी वह अपने नारीत्व की रक्षा कर पायेगी¹¹ और तभी वह महिला सशक्तिकरण को यथार्थ रूप दे पायेगी। किन्तु व्यापक परिवर्तन के बाद भी आज समाज की संकुचित मानसिकता के चलते अभी भी इस रास्ते में महिलाओं के सामने अनेकानेक कठिनाइयाँ हैं। महिलाओं की भागीदारी पर विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि उत्तर भारत में पर्दा प्रथा है और दक्षिण में घूँघट प्रथा नहीं है फिर भी महिलाएँ अभी भी पुरुष के अधीन हैं। इसी प्रकार उच्च और दलित महिलाओं के बीच समस्याएँ हैं। दलित महिलाएँ सरपंच होने पर भी नीचे बैठने को मजबूर हो जाती हैं। कई स्थानों पर स्वयं महिलाएँ निर्णय नहीं लेती हैं और उसका पति ही निर्णय लेता है, जिसे साधारण बोलचाल की भाषा में सरपंच पति को एस.पी. नाम से पुकारा जाने लगा।¹¹ पंचायती राज व्यवस्था में सक्रिय भागीदारी एक ओर का यह परिदृश्य जहाँ बेहद उत्साहजनक है वहीं दूसरी ओर लाखों करोड़ों महिलाएँ उपेक्षा, शोषण एवं उत्पीड़न की शिकार हैं।¹² लेकिन इन अनेक आपदाओं एवं विपदाओं के बावजूद भी महिलाओं ने अपनी शक्ति सामर्थ्य तथा विवेक से निर्णय लेने की क्षमता के कई महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जैसे कि अलवर जिले के एक गाँव की महिला सरपंच ने अपने ही ससुर एवं पति को अधिसूचना जारी की और उनसे पूछा कि पंचायत की जमीन हड़पने और उस पर कब्जा करने की वजह से क्यों न उनके विरुद्ध कार्यवाही की जाए? इसी प्रकार बिहार के किशनगंज जिले के केवसा पंचायत की सरपंच चुनी गई सिमिरा देवी जो गाँव में चाय बेचती थी। अब सरपंच की हैसियत से लोगों को उनके अपराधों के लिए सजा देने जेल भेजने के लिए पुलिस को आदेश दे रही है।¹³ इस तरह राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार सहित कई प्रदेशों में महिला सरपंचों ने सराहनीय कार्य बहुत तेजी से किये हैं जिसमें प्रमुख है शराब पर प्रतिबंध, शराब की दुकान हटवाना, पेयजल समस्या का प्रभावी समाधान, छुआछूत उन्मूलन आदि। दलित महिला सरपंचों का शोषण, उनके साथ बदसलूकी उनके साथ दुर्व्यवहार की घटनाएँ जरूर समय-समय पर घटित हुईं लेकिन इन विपरीत परिस्थितियों के होने के बावजूद महिलाएँ अच्छा प्रदर्शन कर रही हैं। धीरे-धीरे सामाजिक परिदृश्य भी बदल रहा है। पंचायती राज की संस्थाओं में महिलाओं की बढ़ती उपस्थिति ने यह एहसास दिला दिया है कि यह स्थायी व्यवस्था है और ग्रामीण समाज को इस स्थिति को आत्मसात करना ही है। यद्यपि निर्णय लेने की भूमिका में अनुभव न होने के कारण उन्हें दी गई जिम्मेदारियाँ पूरी करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है और इसके लिए उन्हें शैक्षिक रूप से और सुदृढ़ करना

होगा, साक्षरता दर व विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर उनकी स्थिति को निरन्तर उन्नत करना होगा। इस संदर्भ में सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य हेतु चलाये जा रहे “सर्वशिक्षा अभियान” जैसे कार्यक्रमों को पूरी निष्ठा से संचालित किये जाने की आवश्यकता है। तभी शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकना संभव होगा।¹³ इसके अलावा महिला सदस्यों के लिए महिला नीति बनाने, गहन, प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कराने, बैठकों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना महिला सशक्तिकरण में सहायक हो सकता है।

आज सत्यता यह है कि पंचायती राज व्यवस्था में खामोशी से बढ़ते महिला सशक्तिकरण से अनेक अच्छे परिणाम प्राप्त होने एवं आशावादी भविष्य के बढ़ने की सुनहरी संभावनाएँ दिखाई पड़ रही हैं। जैसे-भ्रष्टाचार में कमी की संभावना, संकीर्ण राजनीति में कमी, राजनीतिक जागरूकता का विकास, सामाजिक समरसता की संभावना, महिलाओं के प्रति व्यवहार में परिवर्तन की संभावना! पुराने लोगों के स्थान पर नये नेतृत्व की संभावना आदि। राष्ट्रीय महिला आयोग, मानव अधिकार आयोग, स्वयं सेवी संगठन आज हर ओर से इन संभावनाओं को सार्थक करने एवं नारी को सुदृढ़ करने की पुरजोर कोशिश कर रहे हैं।¹⁴

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पंचायती राज अपने आप में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है और उसमें महिलाओं को नेतृत्व के अवसर प्रदान करना एक ऐतिहासिक कदम है। इसमें महिला नेतृत्व के द्वारा एक खामोश परिवर्तन जो तेजी से क्रांति के रूप में आ रहा है, वह पूर्णतः सफल होगा ऐसी आशा की जा रही है।

संदर्भ सूची

1. मजूमदार, वी.वी. प्राक्कलन ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पृ.-205, पटना, 1995
2. योजना, मासिक पत्रिका, अगस्त 2004, पृ.-29, नई दिल्ली।
3. ए जर्नल ऑफ एशिया फॉर डेमोक्रेसी एण्ड डेवलपमेंट, अगस्त 2008, पृ.-71
4. डॉ. सिंह मनोज, शिक्षा और समाज, पृ.-57
5. दौडियाल, विजयारानी, महिला सशक्तिकरण साक्षरता एवं निरक्षर महिलाओं के मध्य तुलनात्मक अध्ययन, प्रौढ़ शिक्षा, भा. प्रौ.शि. संघ, नई दिल्ली, सितम्बर 2004, पृ.-1
6. श्रीवास्तव, मुक्ति, पंचायती राज और स्वयंसेवी संगठन प्रौढ़ शिक्षा, भा. प्रौ. शि., दिसम्बर 2002, पृ.-10
7. Art 243(O) Constitution of India Publishe by Lok Sabha Secretariat, New Delhi, 1995
8. आलोक कुमार यादव, ए जर्नल ऑफ सोशल फोकस, जुलाई-दिसम्बर 2010, पृ.-49
9. मूल प्रश्न, पंचायती राज में महिला भागीदारी, अप्रैल-जून 2006, पृ.-17
10. डॉ. मौर्य, शैलेन्द्र, महिला राजनैतिक नेतृत्व एवं महिला विकास, पृ.-17
11. कृतिका देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान, सं० डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, जनवरी-जून 2008, पृ.-36
12. विधि भारती, अक्टूबर-दिसम्बर 2010, दिल्ली, पृ.-365
13. मूल प्रश्न, लेख चाय बेचनेवाली महिला बनी सरपंच, पृ.-58
14. कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ.-8
15. शेण्डे, हरिदास रामजी, नारी सशक्तिकरण, पृ.-70



वैश्वीकरण व निजीकरण से प्रभावित कामकाजी महिलाओं का जीवन

डॉ० मीना मनराल

असिस्टेंट प्रोफेसर—शिक्षा संकाय

कुमायूँ विश्वविद्यालय, एस०एस०जे० परिसर, अल्मोड़ा

निजीकरण एक ऐसी सर्वव्यापी प्रक्रिया है जिसमें सरकारी व सार्वजनिक क्षेत्र के किसी उद्योग, संस्थान या प्रक्रिया पर निजी प्रतिष्ठान या मालिक का स्वामित्व हो जाता है और वही उसके लिए संसाधनों तथा धन की व्यवस्था करते हैं। निजीकरण के पीछे हमेशा लाभ कमाने की भावना समावेशित होती है। आज विश्व में सर्वत्र निजीकरण की प्रक्रिया बड़ी तीव्र गति से अपनाई जा रही है। इस कारण इसका प्रभाव मानव जीवन के सामाजिक, शैक्षिक व आर्थिक क्षेत्र में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है। इसके प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं है। निजीकरण के कारण बाजार में प्रतिस्पर्धा होने के कारण जहाँ एक ओर विकास की गति तीव्र दिख रही है वहीं इससे मानव समाज के जीवन पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ रहा है। वर्तमान समय में शिक्षा के प्रचार—प्रसार तथा जीवन की आवश्यकताओं के बढ़ जाने के कारण महिलाओं को भी घर की चहारदीवारी से बाहर निकल कर पुरुषों के समान कार्य करना पड़ रहा है। जिस कारण श्रम के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या में निरन्तर बढ़ोत्तरी होती जा रही है। अपने परिवार को आर्थिक सशक्तिकरण प्रदान करने के उद्देश्य से महिलाओं को नौकरी या किसी प्रकार का व्यवसाय करना आवश्यक हो गया है। आज शिक्षा प्राप्त करने तथा नौकरी या व्यवसाय करने वाली भारतीय महिलाओं की संख्या में बढ़ोत्तरी स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रही है। पूरे आर्थिक परितंत्र का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ पर महिलाएँ कार्य न कर रही हों। वह क्षेत्र चाहे उद्योग का हो, तकनीकी का, संचार का, नौकरी का, शिक्षा का या व्यवसाय आदि का, सभी में महिलाओं का दखल प्रारम्भ हो गया है। इसी कारण आज वैश्विक श्रम बाजार में महिला कामगारों की भागीदारी दो तिहाई है और इनमें से अधिकांश महिला कामगार असंगठित क्षेत्रों में काम कर रही हैं।

1980—90 के दशक से विश्व में आए उदारीकरण के कारण भारत में महिलाओं के शिक्षा प्राप्त करने तथा नौकरी करने के अवसरों में तेजी आई है। वैश्वीकरण ने मध्यमवर्गीय शिक्षित महिलाओं को नौकरी व व्यवसाय के माध्यम से अपने सपनों को उड़ान देने की सामर्थ्य दी है। इस पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं के लिए आर्थिक स्वतंत्रता का जो क्षेत्र पूर्व में अविजित था अब अपनी योग्यता के कारण वह उस पर विजय प्राप्त कर रही हैं। यद्यपि अभी भी इस क्षेत्र में महिलाओं की संख्या अधिक नहीं है तथापि ये महिलाएँ भावी पीढ़ी के लिए आदर्श प्रस्तुत कर रही हैं व उनके लिए राह आसान कर रही हैं।¹ परन्तु इसके साथ ही इनके द्वारा तैयार की गई नीतियों के कारण महिलाओं की स्थिति में न्यूनता भी आ रही है। वैश्वीकरण के कारण विश्व के राजकीय व सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को विकास व लाभ कमाने की दृष्टि से निजी हाथों में हस्तान्तरित कर दिया गया है। जिस कारण सरकारी नौकरी के दरवाजे महिलाओं के लिए बन्द हो गए और उन्हें काम प्राप्त करने के लिए निजी क्षेत्र का सहारा लेना पड़ रहा है। आर्थिक

वैश्वीकरण के कारण कई कम्पनियाँ अपने खर्चों में कमी कर रही हैं। इसके लिए वे अपने कर्मचारियों की संख्या में कटौती करना, उनके वेतन तथा भत्तों में कटौती करना, पूर्ण कालिक कर्मचारियों के स्थान पर अंशकालिक कर्मचारियों की भर्ती करना, सेवा निवृत्ति की आयु वाले कर्मचारियों को सेवानिवृत्त करना तथा कार्यरत कर्मचारियों को काम के अत्यधिक बोझ से लाद देना आदि उपायों को अपना रही हैं। विश्व में अधिकांश महिला कामगार शिक्षक, स्वास्थ्य कर्मी, सरकारी कार्यालयों में क्लर्क, समाज सेवा आदि क्षेत्रों में कार्यरत हैं क्योंकि अभी भी महिलाओं के लिए ये क्षेत्र सम्मानजनक, अच्छे वेतन वाले तथा सुरक्षित माने जाते हैं। परन्तु इनमें से अधिकांश महिलाएं किसी भी श्रमिक संगठन का अंग नहीं होतीं। कनाडा लेबर कांग्रेस की रिपोर्ट के अनुसार – विश्व में कुल कामकाजी महिलाओं में से एक चौथाई महिलाएँ ही श्रम संगठन वाले उद्योगों या प्रतिष्ठानों में काम करती हैं, जबकि दो तिहाई महिलाएँ श्रम संगठन रहित सार्वजनिक क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं।¹² अतः जब किसी कारण से ये संगठन अपनी आर्थिक नीतियों को बदलते हैं या प्रतिष्ठान का निजीकरण करते हैं तो इन महिलाओं को किसी प्रकार का लाभ प्राप्त नहीं हो पाता। वैश्वीकरण के कारण औद्योगिक जगत में बढ़ रहे निजीकरण से महिला कामगार स्पष्ट रूप से प्रभावित हो रही हैं। इसके कारण जहाँ महिलाओं के लिए आर्थिक शिक्षा प्राप्त करने व आर्थिक स्वतंत्रता के दरवाजे खुले हैं वहीं इसके कारण हो रहे निजीकरण से उनकी आर्थिक व सामाजिक सुरक्षा पर भी कुठाराघात हो रहा है। निजीकरण के कारण राजकीय व सार्वजनिक क्षेत्रों के प्रतिष्ठानों को निजी हाथों में दे दिए जाने के कारण महिलाओं की नौकरियाँ छिन रही हैं और उन्हें दैनिक वेतनभोगी होने पर मजबूर हो रही हैं। यदि हम महिलाओं के परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण और निजीकरण की बात करें तो यह एक दोधारी प्रक्रिया के रूप में परिलक्षित होती है। जिसमें एक ओर तो महिलाओं को शिक्षा तथा रोजगार के बेहतर अवसर प्राप्त हो रहे हैं। वहीं दूसरी ओर इसके कारण उनकी सामाजिक सुरक्षा, श्रम कानूनों के अन्तर्गत प्राप्त सरकारी छूट तथा कानूनी सहायता की सुविधा उनसे छिन रही है।¹³

हमारे समाज में महिलाओं को सदा से ही दोगुना दर्जे का नागरिक माना जाता है। जिस कारण उनका पालन-पोषण हो, पौष्टिक आहार हो, शिक्षा हो या फिर नौकरी हर जगह उसके साथ दोगुना दर्जे का व्यवहार किया जाता है। यद्यपि आज महिलाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं व उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हो रही हैं, तथापि आज भी कई क्षेत्र व व्यवसाय ऐसे हैं जहाँ पर महिलाओं का प्रवेश निषेध माना जाता है। देश के आज भी अधिकांश महिलाएँ श्रमिक के रूप में असंगठित क्षेत्रों में ही काम कर रही हैं। जिनके लिए किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा प्राप्त नहीं है। भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के NFHS 3 के अनुसार देश में 6.5 प्रतिशत महिलाएँ तकनीकी/व्यावसायिक तथा प्रबंधन के क्षेत्र में, 1.8 प्रतिशत महिलाएँ क्लर्क, 3.7 प्रतिशत व्यवसाय, 6.8 प्रतिशत सेवा क्षेत्र, 22.1 प्रतिशत कुशल व अकुशल श्रमिक के रूप में तथा 58.8 प्रतिशत कृषि श्रमिक के रूप में कार्य कर रही हैं।¹⁴ इससे यह स्पष्ट है कि हमारे देश में उच्च पदों पर केवल 6.5 प्रतिशत महिलाएँ ही कार्यरत हैं। महिलाओं के शैक्षिक क्षेत्र में पिछड़े होने के कारण वे सरकारी क्षेत्र के उच्च पदों को प्राप्त करने में असमर्थ हैं जिस कारण उन्हें असंगठित क्षेत्र का ही सहारा लेना पड़ रहा है। वैश्वीकरण के कारण आज विश्वभर में अधिकांश राजकीय तथा सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों को निजी क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया गया है। वैश्वीकरण के कारण औद्योगिक सीमाओं के समाप्त हो जाने के कारण निजी प्रतिष्ठान अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से अब विश्व में कहीं भी अपने उत्पादों को तैयार कराने के लिए स्वतंत्र हैं। जिस कारण विकसित देशों

के अधिकांश निजी संस्थान ऐसे विकासशील देशों में अपने उद्योगों को स्थापित करने लगे हैं जहाँ महिला श्रमिकों के रूप में सस्ते श्रमिक आसानी से प्राप्त हो रहे हैं। इसीलिए आज अनेक विदेशी निजी औद्योगिक प्रतिष्ठान भारत में अपने संस्थान स्थापित कर रहे हैं। ये औद्योगिक प्रतिष्ठान महिला कामगारों को अपने यहाँ श्रमिक के रूप में नियुक्त करने में अधिक रुचि लेते हैं। इसका कई कारण है जैसे – कम वेतन पर महिला कामगारों का उपलब्ध हो जाना, महिला कामगारों के किसी श्रमिक संगठन का सदस्य न होना, महिलाओं के द्वारा बिना किसी प्रकार की आनाकानी के हर कार्य करने में सहमति दे देना आदि। इससे इन कम्पनियों के मुनाफे में तो वृद्धि हुई परन्तु महिला कामगारों का प्रत्यक्ष रूप से शोषण हुआ है। महिलाओं की मजदूरी कम हुई है, उनके काम करने के घण्टे बढ़े हैं और उनकी सामाजिक सुरक्षा में कमी हुई है। कई कम्पनियों के द्वारा तो महिला श्रमिकों को पी.एफ. तथा मातृत्व काल में सवैतनिक अवकाश भी नहीं दिया जा रहा है। यदि हम भारत की महिला श्रमिकों तथा विकसित देशों की महिला श्रमिकों की मजदूरी में जमीन-आसमान का अन्तर है। इसका मुख्य कारण यहाँ की महिलाओं का अल्प शिक्षित या अशिक्षित होना है। क्योंकि उसका मानना है कि भले ही वह शोषित हो रही है परन्तु उसे अपने व अपने परिवार के भरण-पोषण हेतु काम तो मिल रहा है। भारत सरकार के संरचनात्मक सुधार कार्यक्रम की आड़ में असंगठित क्षेत्र की कामगार महिलाओं को उनकी सामाजिक सुरक्षा से वंचित कर दिया गया है। विभिन्न श्रम कानूनों जैसे – मातृत्व लाभ कानून (1961), कामगार राज्य जीवन बीमा योजना, फ़ैक्ट्री एक्ट (1948), समान मानदेय कानून (1948), बौम्बे शॉप्स एण्ड स्टैबलिसमेंट एक्ट (1984), प्लान्टेशन लेबर एक्ट आदि के द्वारा संगठित क्षेत्र की महिला कामगार को मिलने वाली सामाजिक सुरक्षा से असंगठित क्षेत्र की महिला को दूर कर दिया गया है। जबकि आज भारत में असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली कामगार महिला का प्रतिशत 90 है।¹⁵

वैश्वीकरण तथा निजीकरण का एक और विपरीत प्रभाव भारतीय कामगार महिलाओं के जीवन पर पड़ रहा है और वह है उनका आर्थिक व शारीरिक शोषण। शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं के पिछड़े होने के कारण अधिकांश कामकाजी महिलाएं दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में कार्यरत हैं। जिस कारण उनको बहुत ही कम वेतन पर तथा अत्यधिक अमानवीय परिस्थितियों में काम करना पड़ता है। अधिकांश महिलाएं ऐसे समाज का प्रतिनिधित्व करती हैं जहां पर अत्यधिक गरीबी व अशिक्षा व्याप्त है। अल्प शिक्षित व अकुशल होने के कारण वे जीवन यापन हेतु किसी भी प्रकार का कार्य तथा कोई भी वेतन लेने के लिए तैयार हो जाती हैं। कार्यक्षेत्र में यदि उन्हें बुनियादी सुविधाएँ प्राप्त नहीं भी होती हैं तो भी वे किसी प्रकार का विरोध या शिकायत नहीं करती। क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें अपने रोजगार को खो देने का भय होता है। इसलिए वे चुपचाप नियोक्ता की हर प्रकार की ज्यादाती को सहन कर लेती हैं। जबकि नियोक्ता उनकी इस मजबूरी का फायदा उठाकर उनके श्रम से अधिक से अधिक लाभ कमा रहे हैं। निजीकरण के कारण जहाँ बड़े औद्योगिक घराने करोड़पति से अरबपति बन रहे हैं वहीं अधिकांश लोग इस बात से जानकार नहीं हैं कि असंगठित क्षेत्र की कामगार महिलाएं और अधिक शोषित होती जा रही हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण नौएडा के एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन में काम करने वाली महिलाओं को देखकर लगाया जा सकता है, जो बहुत कम वेतन तथा काम करने के अमानवीय वातावरण में दिन में बारह घण्टे काम करती हैं।¹⁶

यद्यपि महिलाएँ घर-परिवार, बच्चों, खेती, जानवरों आदि की देखभाल के रूप में जीवनभर काम

करती रहती हैं परन्तु उनके श्रम का अधिकांश हिस्सा अवैतनिक रहता है जिस कारण उनके श्रम को किसी प्रकार का अधिभार नहीं दिया जाता। आज भी हमारे देश में श्रम शक्ति के आंकड़ों में केवल 26 प्रतिशत भारतीय महिलाओं को कामगार का दर्जा दिया गया है। इन महिलाओं में से अधिकांश जो उद्योगों व कृषि क्षेत्र में दैनिक मजदूरी में लगी हैं उन्हें बहुत कम मजदूरी प्राप्त होती है। कृषि क्षेत्र में लागत मूल्य कम करने के लिए भूपतियों द्वारा औरतों के सस्ते श्रम का इस्तेमाल, एक महत्वपूर्ण रणनीति बन गई है। कृषि मजदूर यूनियन द्वारा आन्ध्र प्रदेश के पांच जिलों के सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि धान, कपास, मिर्च, हल्दी, तम्बाकू तथा फूलों की खेती के लिए मर्दों से ज्यादा औरतों को काम पर रखा जाता है। मालिक लोग महिलाओं को काम पर रखने के लिए इसलिए अधिक इच्छुक रहते हैं क्योंकि महिलाएँ अधिक मेहनती होती हैं, बगैर छुट्टी लिए लगातार काम करती रहती हैं तथा मर्दों की तुलना में 30 से 36 प्रतिशत कम मजदूरी पर मिल जाती हैं।⁷

इस प्रकार इस शोध अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि वैश्वीकरण के कारण औद्योगिक क्षेत्र के हुए निजीकरण के कारण भारतीय महिलाओं के लिए शिक्षा और रोजगार के अवसरों में बढ़ोत्तरी हुई है। आज महिलाएँ अच्छी शिक्षा प्राप्त कर आर्थिक स्वतंत्रता के अपने सपने को पूरा कर पा रही हैं। परन्तु इसके साथ ही कामकाजी महिलाओं का एक वर्ग ऐसा भी है जिसे निजीकरण के कारण रोजगार के अवसर प्राप्त तो हुए हैं, लेकिन अल्प शिक्षित या अशिक्षित होने के कारण ये रोजगार के अवसर असंगठित क्षेत्र की निजी कम्पनियों में हैं। आर्थिक व सामाजिक रूप से कमजोर होने के कारण इन महिलाओं का रोजगार करना आवश्यक है। अपने परिवार के आर्थिक व सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिए वे निजी उद्योगों व फैक्ट्रियों में काम करती हैं। जहाँ बुनियादी सुविधाओं की कमी या अभाव होता है। जिस कारण उन्हें अमानवीय स्थिति में कार्य करने को मजबूर होना पड़ता है। उन्हें मिलने वाला अल्प वेतन उनके परिवार के पोषण के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है जिस कारण वे शोषण को सहकर भी अपने मालिकों से बगावत नहीं कर पातीं। महिलाओं के किसी प्रकार के श्रमिक संगठन का सदस्य न होने के कारण उनके अधिकारों के लिए लड़ने वाला भी कोई नहीं होता और अशिक्षा के कारण वे अपने अधिकारों के बारे में जानकारी भी नहीं रखतीं। निजी क्षेत्र में महिला कामगारों के द्वारा ईमानदारी पूर्वक व कम वेतन पर कार्य किए जाने के कारण सेवा प्रदाता या नियोक्ता की पहली पसन्द महिला कामगार होती हैं। जो कि बिना बोले, शोषण सहते हुए केवल उत्पादन देने में व्यस्त रहती हैं। सरकारी व सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का निजीकरण हो जाने के कारण महिलाएँ सरकारी नौकरी से वंचित हो रही हैं और वे दैनिक वेतनभोगी मजदूर के रूप में आर्थिक शोषण का शिकार हो रही हैं। इस प्रकार आज वैश्वीकरण व निजीकरण ने लाखों गरीब कामगार महिलाओं और बच्चों को आर्थिक तंत्र के हाशिए पर धकेल दिया गया है। संरचनात्मक सुधार कार्यक्रम (SAP) ने तो कामगार महिलाओं को असंगठित क्षेत्रों की ओर धकेल कर उन्हें उनके अधिकारों से वंचित कर दिया है।⁸

सुझाव – प्रस्तुत शोध अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर वैश्वीकरण व निजीकरण के कारण कामकाजी महिलाओं के जीवन पर पड़ रहे प्रभाव को कम करने के लिए निम्न उपायों को अपनाया जा सकता है –

- ♦ निजी क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए कानूनों का प्रावधान किया जाए तथा उन्हें कठोरता से लागू किया जाए।

- ♦ सरकार द्वारा महिला कामगारों के लिए लागू की गई ई0पी0एफ0, मातृत्व अवकाश योजना जैसी कल्याणकारी योजनाओं को लागू करने हेतु व्यावसायिकों पर दबाव बनाया जाए।
- ♦ प्रत्येक निजी प्रतिष्ठान में जहाँ महिलाएँ कार्यरत हों बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता के निरीक्षण हेतु सरकार द्वारा कमेटी का गठन कर उसे इस कार्य को कराने के लिए जिम्मेदार बनाया जाए।
- ♦ निजी क्षेत्र की अशिक्षित व अल्प शिक्षित कामकाजी महिलाओं के शैक्षिक स्तर को उठाने हेतु इनके लिए अल्पकालिक कक्षाओं का आयोजन किया जाए, ताकि शिक्षा प्राप्त कर वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकें।
- ♦ अकुशल कामकाजी महिलाओं के कौशल विकास हेतु महिलाओं के लिए सांध्यकालीन, निःशुल्क, अल्पकालिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए।
- ♦ कामकाजी महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा हेतु बनाए गए कानूनों को निजी क्षेत्र व असंगठित क्षेत्र की महिलाओं के लिए भी लागू किया जाए।
- ♦ कामकाजी महिलाओं को स्व-विकास हेतु प्रेरित कर उन्हें निरौपचारिक शिक्षा साधनों के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने हेतु प्रेरित किया जाए
- ♦ समाज, परिवार, नियोक्ता आदि को कामकाजी महिलाओं के प्रति संवेदनशील बनाया जाए।

संदर्भ सूची

1. Khokhar, Reem, The Phenomenal Indian Women, www.chillibreeze.com, mht, document.
2. Globalization and Women's Work, Women The Economy, A Project of UNPC.
3. G. Sandhya Rani (2010), Globalization and Woman, Asia Pacific Journal of Social Sciences, Special Issue No. 1, Dec 2010. Electronic Print, Page 147.
4. Kishor Sunita & Kamla Gupta, (2009), National Family Health Survey (NFHS 3) India 2005-06, Gender Equality and Women's Empowerment in India, Ministry of Health and Family Welfare, Page No. 51
5. Patel, Vibhuti, (2007), Impact of globalization on women, September 2007, www.infochangeindia.org, pdf file. Page 2.
6. Negative effect of globalization, Tripod, MHTML Document.
7. मेनन-सेन, कल्याणी एवं ए0के0 शिव कुमार, (2002), भारत में औरतें कितनी आजाद? कितनी बराबर, संयुक्त राष्ट्र संघ के भारत में स्थानिक समन्वयक के कार्यालय द्वारा अधिकृत रिपोर्ट, 55 लोधी एस्टेट, नई दिल्ली, पेज सं0 57
8. Patel, Vibhuti, (2007), Impact of globalization on women, September 2007, www.infochangeindia.org, pdf file.



वैश्विक परिदृश्य और मीडिया की अनिवार्यता : एक मूल्यांकन

डॉ० कल्पना वशिष्ठ

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष – समाजशास्त्र विभाग

जनता महाविद्यालय, अजीतमल, औरैया

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। आज विज्ञान समाज का अभिन्न अंग बन गया है जो जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित कर रहा है। हमारे रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार सभी विज्ञान से प्रभावित हैं। विज्ञान के विकास से दुनिया की दूरियाँ घट गई हैं। पूरी दुनिया एक विश्व ग्राम में बदल गई है। विज्ञान के विकास की पहुँच जमीन से लेकर आसमान ही नहीं, वाह्य अंतरिक्ष तक हो गई है। सौर मंडल के ग्रहों पर कब्जा का प्रयास जारी है। कृषि, उद्योग, यातायात, चिकित्सा तथा संचार के क्षेत्र में भी विज्ञान की उपलब्धियाँ हैं। इस वैज्ञानिक शोध, विकास तथा उपलब्धियों को दुनिया के विभिन्न देशों तथा समाज में ज्ञान-विज्ञान को प्रचारित तथा प्रसारित करने में मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मीडिया का योगदान कितना महत्वपूर्ण है। यह किसी भी देश की उन्नति से आंका जा सकता है क्योंकि इस माध्यम के द्वारा हम जनता तक बौद्धिक संदेश पहुंचाते ही नहीं हैं बल्कि उनका नवीनीकरण भी करते हैं। रूस की क्रांति, औद्योगिक क्रांति तथा अपने अधिकारों की मांग ने यह सिद्ध कर दिखाया कि मीडिया, समाज तथा देश में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में आमूल परिवर्तन लाने के लिये महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य है।

जन संचार माध्यमों के दो भाग हैं— प्रिंट मीडिया तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। वैदिक काल से ही मीडिया का विशेष महत्व रहा है। हमारे धर्मग्रन्थों में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि लोग कौवे की गर्दन में चिट्ठी बांधकर एक देश से दूसरे देश को समाचार पहुंचाते थे। राजा महाराजा एक दूसरे को दूत के साथ पत्र द्वारा सूचना भेजते थे, कागज के अभाव में वे सूचनायें भोज-पत्र और ताड़-पत्र तक पर लिखकर भेजी जाती थीं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण संस्कृति संग्रहालयों में आज भी उपलब्ध है। भारतवर्ष में आज भी कुछ ऐसे ज्योतिष संस्थान हैं जहाँ हमारा भूत, वर्तमान और भविष्य ताड़-पत्रों पर तमिल भाषा में उपलब्ध है। आम लोगों तक ज्ञान-विज्ञान को पहुंचाने में पहले प्रिंट मीडिया का विशेष महत्व था परन्तु संचार माध्यमों के विकास तथा उसके स्वरूप परिवर्तन से मीडिया का स्वरूप भी बदला है। आकाशवाणी, दूरदर्शन, दूरभाष तथा इंटरनेट आज मीडिया के महत्वपूर्ण माध्यम हैं, क्योंकि इनकी पहुँच विश्व में करोड़ों लोगों तक है। प्रगतिशील इलेक्ट्रॉनिक युग में महत्वपूर्ण संसाधन शक्ति के रूप में उभरी सूचना प्रौद्योगिकी का व्यापक प्रभाव मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई भी देता है और बहुत कम समय में विभिन्न क्षेत्रों जैसे— ज्ञान-विज्ञान, अभियान्त्रिकी, चिकित्सा, कृषि, कला, विधि, न्यायिक सेवा, अनुसंधान, व्यावसायिक, उद्योगों, अपराध विज्ञान, जल-विद्युत, खेलकूद, सैन्य संचालन और शांति व्यवस्था आदि में अपनी महत्ता को सिद्ध कर दिया है। मीडिया के सभी माध्यमों की अपनी-अपनी विशेषतायें एवं सीमायें हैं जो अपनी-अपनी पद्धतियों से समाज को प्रभावित करते हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी ने समस्त विश्व को ग्लोबलाइज कर दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी की उन्नति के

कारण ही यूरोप के बड़े-बड़े देशों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समाचार एजेन्सियाँ खोली गईं जो दिन प्रतिदिन विश्व के सभी देशों में फैलकर हमारे सामने अनेक चुनौतियाँ रख रही हैं। यही नहीं औद्योगीकरण के कारण सूचना प्रौद्योगिकी का यदि एक ओर बिना किसी बाधा के प्रयोग हुआ है तो दूसरी ओर सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाकर उसकी चेतना को भी जगाया है। समाज का एक वर्ग जिसे स्त्री वर्ग, दलित, जनजातीय एवं पिछड़ा वर्ग कहा जाता है, उसमें जागृति आई है। उन्होंने अपनी स्थिति को पहचानने का प्रयत्न किया है। अपने अधिकारों के प्रति सजग हुये हैं। कानून का सहारा लेकर वे आगे बढ़ सकते हैं। अपनी आवाज को बुलन्द कर सकते हैं— यह सन्देश भी उन्हें मीडिया से ही मिले हैं। अब अपने अधिकारों को समझकर वे शासन-व्यवस्था को कानून बनाने के लिए मजबूर कर सकते हैं। यदि यह कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी के मीडिया विज्ञान एवं तकनीकी पर आधारित आधुनिकतम समाज में शिक्षा का एक सशक्त माध्यम भी है क्योंकि प्रत्येक देश में जनता का कल्याण, समृद्धि, वैभव तथा विकास पूर्ण रूप से शिक्षा पर निर्भर करता है, जिसका प्रभाव मानव के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक जीवन पर भी पड़ता है। आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में विश्व के सामने इतनी विविधतायें हैं, चुनौतियाँ हैं, सम्भावनायें हैं और बहु आयाम हैं कि हर दिन हर समय नई तकनीक हमारे सामने उपस्थित हो जाती है जो व्यक्तियों के लिये रोजगार के नये-नये अवसर प्रदान करती है, मीडिया सूचनाओं के असंख्य भण्डार खोलकर उनकी सार्थकता के विषय में ज्ञान प्रदान करती है।

01 अप्रैल 2005 से पूरी दुनिया के खुल जाने से पत्रकारिता का परिदृश्य काफी चुनौती भरा हो गया है। जहाँ विदेशी कम्पनियाँ सभी क्षेत्रों में अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी के साथ हमारे देश में पहुँच रही हैं, अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी से उत्पादित कम लागत वाले उत्पाद को हमारे देश में झोंक रही है तथा विपणन (मार्केटिंग) की आधुनिक तथा वैज्ञानिक व्यवस्था के साथ हमारे बाजारों में अपना पाँव पसार रही हैं। इस चुनौती से प्रिंट तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को ही मुकाबला करना होगा। हमें विदेशी निर्भरता घटाकर टिकाऊ विकास, अत्याधुनिक मार्केटिंग के साथ निर्यात प्रोत्साहन के लिये जनता को तैयार करने सम्बन्धी 'फीड बैक' देना होगा। आज बदलते परिवेश में इसका उपयोग शिक्षा क्षेत्र, चिकित्सा, सूचना संचार, सैटेलाइट संचार, मौसम, रेलवे आरक्षण, विमान पत्तन, शेयर मूल्य में उछाल-गिरावट, रोजगार, व्यवसाय, पुस्तकालय, मार्केटिंग, डिजाइनिंग, निर्वाचन, जनगणना आदि के दौरान आँकड़ों को तीव्र प्रभावशाली गति से एक स्थान से मुख्य केन्द्र तक पहुँचाने में तथा समय-समय पर सही दिशा निर्देश देने में भी होता है। बदलते समय के साथ समन्वय स्थापित करने तथा सही विचारों के आदान-प्रदान के लिये प्लेटफार्म तैयार करने में मीडिया अनिवार्य है जो प्रत्येक पीढ़ी के व्यक्तित्व विकास और रोजगार के साथ-साथ देश के विकास में भी सहायक होगा जिससे भारत पुनः विश्व गुरु के स्थान पर होगा।

आज लोकतन्त्र में लोगों को सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक मुद्दों से अवगत कराना और उनमें जागरूकता पैदा करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। इससे सूचनाओं को एक अनिवार्य शक्ति के रूप में माना जाने लगा है। यही कारण है कि मीडिया एक प्रभावशाली सशक्त माध्यम के रूप में उभर कर आया है। प्रत्येक समाज की विकास सम्बन्धी सूचनायें जब देश-विदेश के कोने में पहुँचती हैं तभी लोग अपने हितों के बारे में जागरूक होते हैं और अपने अधिकारों की माँग करते हैं। इसके जरिये व्यापक स्तर पर लोगों के बीच न सिर्फ पहुँच ही बनती है बल्कि विभिन्न मुद्दों पर नीतिगत परिवर्तन हेतु विभिन्न देशों की

सरकार पर संगठित दबाव भी बनाया जा सकेगा, साथ ही नीतिगत लक्ष्यों की पूर्ति के लिये आम जनता, नीति निर्धारक और निर्णय लेने वाले व्यक्तियों को प्रभावित करने के अलावा सामुदायिक सोच में बदलाव एवं मुद्दों के नीतिगत समाधानों को ढूंढने में मदद मिलेगी। मीडिया की अनिवार्यता और व्यापकता हर क्षेत्र में इतनी बढ़ चुकी है कि जिसके चलते अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर के विभिन्न मुद्दों एवं अपराधिक घटनाओं के सम्बन्ध में जन पैरवी करना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जा रहा है।

अतः कहा जा सकता है कि मीडिया हमें विश्व दर्शन कराता है। मीडिया आज हमारे प्रहरी का कार्य भी कर रहे हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि मीडिया के कारण समूचा संसार हमारे दरवाजे पर है। वर्तमान दौर को यदि मीडिया युग भी कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। भूण्डलीकरण के इस दौर में मीडिया मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना प्रभाव छोड़ रही है। बाजारवाद के विकास से साम्राज्यवादी देशों को लगभग 40 प्रतिशत बाजार मिल गया है, सौन्दर्य प्रसाधन महलों से झोपड़ी तक पहुंच गये। गरीब व अविकसित देशों को अपनी सामाजिक व्यवस्था विकसित देशों के लिए खुली करनी पड़ रही है एवं उनकी न्याय व्यवस्था कैसी होनी चाहिये यह भी शक्तिशाली और विकसित देश तय करने लग गये हैं। अतः भूण्डलीकरण और मीडिया एक दूसरे के पर्याय बन गये हैं। आजादी के बाद भारत ने जिस तरह अनवरत प्रगति पथ पर चलते हुए विश्व वैश्विक बाजार में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है उसके लिए मीडिया को ही श्रेय जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. विज्ञान गरिमा सिन्धु-त्रैमासिक पत्रिका-संयुक्तांक, 55-56, 2006
प्रकाशक-वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ.-41, 105-107
2. ज्ञान गरिमा सिन्धु-त्रैमासिक पत्रिका-संयुक्तांक-25-26, 2010
प्रकाशक-वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ.-66-68
3. समाज कल्याण-मासिक पत्रिका-केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार-जून-2011, पृ.-36-38
4. 'कृतिका' इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ हाफ इयरली ह्यूमनिटीज एण्ड सोशल साइन्सेज, वाल्यूम-6, वर्ष-3, जुलाई-दिसम्बर 2010, सं.-डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ.-82-85



भाषा प्रौद्योगिकी के उभरते क्षितिज, गहराती चुनौतियाँ

डॉ० शोभारानी श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर—हिन्दी विभाग
बद्रीविशाल पी०जी० कालेज, फर्रुखाबाद (उ०प्र०)

आधुनिक सभ्यता के विकास ने व्यापार और व्यवसाय का समग्र संसार में अत्याधिक प्रचार प्रसार किया और व्यावसायिक संचार के विविध रूपों का महत्व उतना ही विस्तीर्ण होता गया। व्यावसायिक संचार की सबसे प्राचीन पद्धति मौखिक है जिसमें सम्पूर्ण व्यावहारिक व्यवहार आमने सामने बातचीत के आधार पर सम्पन्न होता रहा है। दूरभाष के आविष्कार ने इसी मौखिक संचार को तकनीकी नव्यता दी है।

आजकल वे राष्ट्र ही अधिक प्रगतिशील हैं जिनके पास संचार एवं सूचना की तीव्रतर प्रौद्योगिक है। जिन राष्ट्रों के पास इस प्रौद्योगिकी के अच्छे संसाधन अनुलब्ध हैं उन देशों के विकास की गति भी धीमी है। विज्ञान के प्रगति के साथ-साथ संचार प्रौद्योगिकी के नवीन तंत्र हमारे समक्ष आ रहे हैं। आज प्रौद्योगिकी प्रोन्नति के कारण ही हम गर्व से कहते हैं—कर लो दुनियां मुट्ठी में। विश्व का ग्लोबलाइजेशन करने में इस प्रौद्योगिकी का बड़ा महत्व है। विज्ञान द्वारा समुन्नत तथा विकसित इस प्रौद्योगिकी का बड़ा महत्व है। विज्ञान द्वारा समुन्नत तथा विकसित इस प्रौद्योगिकी के माध्यम से सामान्य व्यक्ति भी लाभान्वित एवं आनंदित हो रहा है। आज मीडिया पर सूचना प्रौद्योगिकी हावी है। मोबाइल फोन से लेकर “लैपटाप” तक का प्रयोग हो रहा है। आज प्रिन्ट मीडिया से लेकर अत्याधुनिक इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी सूचना प्रौद्योगिकी का ऋणी है। समाचार संकलन से प्रसारण तक के विविध सोपानों की सफलता हेतु आई०टी० अर्थात् सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका शरीर में रीढ़ की हड्डी की भाँति अनिवार्य है। क्षण-क्षण होने वाली संचार क्रान्ति के कारण जनसंचार क्षेत्र में चुनौतियाँ समक्ष आ रही हैं। सरकार ने वर्तमान समय में सूचना प्रौद्योगिकी के महत्व से विधिवत भिन्न होकर उसे उद्योग का स्थान प्रदान करके उसकी प्रोन्नति हेतु अनेक कारगर उपाय किए— साफ्टवेयर निर्यात को बढ़ावा देने, देश में हार्डवेयर निर्माण के साथ-साथ उसके निर्यात को बढ़ावा देने, सीमा शुल्क को तर्कसंगत बनाने, करों में रियायत करने जैसे प्रयास करके भारत को सूचना प्रौद्योगिकी की महाशक्ति बनाने का संकल्प पूर्ण करने की चुनौतियों को स्वीकार किया है। सूचना प्रौद्योगिकी में टेलीफोन, टेलीग्राम, टेलेक्स तो आज प्राचीन हो गए हैं किन्तु ई०मेल, ई० फैक्स, सेल्यूलर, पेजर, टेली, टेक्सट, माइक्रोचिप्स, उपग्रह माइक्रोवेव्स आदि प्रचलित हैं।

इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों के विकास की कल्पना भाषा के बिना नितान्त असम्भव है। अतः भाषा का विकास भी संचार माध्यमों के विकास के साथ-साथ होता चलता है। “भाषा मानव के बहुमुखी विकास के साथ न केवल कदम से कदम मिलाकर चलती है, प्रत्युत वह भावी विकास के लिए नूतन आयाम भी खोलती है। मानव की आधुनिकता के रचना में वास्तविक रूप से स्वतन्त्र बल जन संचार माध्यम है।” (इंकेल्ज एवं स्मिथ, 1974) आधुनिक संचार तकनीक का मूलाधार है— कंप्यूटर इंटरनेट विश्व का सबसे बड़ा कम्प्यूटर नेटवर्क है। विश्व के प्रत्येक कोने में फैला सूचना प्रौद्योगिकी में अधिकाधिक “इंटरनेट” विस्तार से मानव जीवन के विविध क्षेत्रों की गतिविधियों में आमूलचूल परिवर्तन आए हैं।

जिससे हमारी आर्थिक व्यवस्था (ई-कामर्स द्वारा) तथा प्रशासनिक व्यवस्था भी प्रभावित हुई है।

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने भाषा विज्ञान और भाषा के क्षेत्र में बहुत काम किया है उनका मानना है— “जैसे उद्योग धंधों की एक टेक्नालॉजी है वैसे ही भाषा वैज्ञानिक धंधे की एक टेक्नालॉजी है। टेक्नालॉजी में टेक्निकल शब्दावली की भरमार हो तो उसे विज्ञान समझने के भ्रम से बचाना और जरूरी है।”¹

भूमण्डलीकरण और भाषा के रिश्तों का अध्ययन करने वालों ने मान लिया है कि यदि दुनिया में भाषाओं की एक इमारत बनाई जाए तो अंग्रेजी, मंडारिन, स्पेनी, रूसी, अरबी बांग्ला, पुर्तगाली, मलय, जापानी और जर्मन के साथ भाषा को भी ऊपर के तल्ले में रखना होगा। चूंकि भारत, नेपाल, पाकिस्तान, फीजी, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका और कई पश्चिमी देशों में फैले हुए इसलिए इनकी विधिवत गणना नहीं की जा सकती है।

हिन्दी का जो कुछ उद्धार पिछले दिनों हुआ है उसका श्रेय मीडिया और बाजार को है। हिन्दी बोलने वालों की संख्या जयादा थी। अतः उसे भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया का लाभ मिला। व्यक्ति के जीवन में इंटरनेट से अधिक नवीन वस्तु अभी तक कोई और नहीं आई है। हिन्दी का यह नव्य मानचित्र इंटरनेट के साथ हिन्दी के रिश्ते का ब्योरा दिए बिना पूर्ण नहीं हो सकता है। इंटरनेट एक नया, किन्तु तेजी से फैला हुआ माध्यम है बतौर भाषा हिन्दी का प्रौद्योगिकी के साथ एक उद्यमहीन और हिचकता हुआ रिश्ता रहा है। इसलिए यह देखकर ताज्जुब नहीं होता कि बीस और तीस के पेटे में चल रहे नौजवानों ने ब्लॉगिंग जैसा ताजातरीन माध्यम जमकर अपनाया है। हालांकि हिन्दी के ब्लॉग संख्या में पाँच सौ के आसपास पहुँच गए हैं पर अभी यह इलाका हिन्दी के प्रारम्भिक दिनों की याद दिला रहा है।² हिन्दी का यह बूम केवल राजनीतिकरण, बाजार, पाठक, सर्वेक्षण और विज्ञापन से होने वाली आमदनी और उपभोक्ताकरण की ही झलकियाँ मार रहा है। मीडिया मार्केट के किनारे-किनारे पनप रही इस विचित्र दुनिया में कुछ पत्रिकाएँ सतत् मरती रहती हैं। लेकिन उनकी भरपाई करने के लिए उसी दर पर नई पत्रिकाओं का जन्म होता रहता है। हिन्दी के विस्तार का एक बहुत बड़ा कारण है संस्कृति के लोकरंजक रूपों पर हिन्दी फिल्मों का बोलबाला। हिन्दी में आई इस उछाल का एक अन्य कारण है भाषाई दीवारों के आर-पार होने वाले प्रेम विवाहों की संख्या में बढ़ोत्तरी।³ संभव है कि हिन्दी अभी एक घिरी हुई और संघर्ष में फंसी भाषा की छवि देती हो। विडंबना ये है कि खासतौर से उदारीकरण के बाद आए जमाने में तरह-तरह की सामग्री के भूखे और ज्यादा से ज्यादा श्रोताओं पाठकों और दर्शकों के दम पर पनपने वाले मीडिया बाजार (जिसमें उन्नीसवीं सदी से पनप रहा प्रिंट मीडिया तीस के दशक से बनी फिल्मों फिर रेडियो और बाद में आया टी0वी0 शामिल हैं) ने हिन्दी को दुनिया की सबसे बड़ी भाषाओं में से एक बनने की संभावनाओं से लैस कर दिया है।⁴

बढ़ते विश्व संपर्क के कारण और अनायास तकनीकी विस्फोट के कारण हिन्दी ने हर भाषा से शब्द ग्रहण किए हैं। प्रिंट मीडिया ने एक परिनिष्ठत हिन्दी बनाई, जिसमें हम गोष्ठियाँ करते हैं। टी0वी0 ने इस भाषा को ही एक विराट बोली में बदल दिया है। यद्यपि ऐसा करते हुए उसने प्रिंट मीडिया को प्रभावित तो किया है, नष्ट नहीं किया। इस प्रकार टी0वी0 की भाषा की हर शिकायत टी0वी0 इतर मीडिया की भाषा की शिकायत है। लेकिन एक स्थिर परिनिष्ठीकृत भाषा को ग्लोबल बनाकर उसे रोजमर्रा की बातचीत में बदल डालना एक क्रांतिकारी कार्य है जो दूरदर्शन और अन्य हिन्दी चैनलों ने

किया है। सदियों बाद इस उप महाद्वीप को एक ऐसी भाषा नसीब हुई है जिसमें श्रीलंका से लेकर खाड़ी के देशों तक संचार संभव हुआ। यह मुक्त बाजार में निर्मित मध्यवर्ग की बाजार द्वारा बाजार के लिए बनी है। अनेक चैनलों के भावी परिदृश्य में हम एक ऐसी भाषा पाएँगे जो और भी वर्ण संकर और भी खिचड़ी होगी। बाजार की शक्तियों और उनके सहयोगी माध्यम टी0वी0 ने यह मसला सुलझा दिया है कि कौन सी भाषा जन संचार में सक्षम है जो सक्षम है वही बड़ी भाषा है।⁵

प्रारंभ में जो लोग कम्प्यूटर और तकनीक को साहित्य विरोधी, संस्कृति विरोधी और पाश्चात्य सभ्यता का आक्रमण मानते थे वे भी अब मानने लगे हैं कि कम्प्यूटर तो एक माध्यम भर है। यह संस्कृति नहीं इसके माध्यम से संस्कृतियाँ आ जा सकती हैं। यदि हम दूसरी संस्कृति हो रोकने का प्रयास करेंगे तो अपनी संस्कृति को अन्यत्र कैसे पहुंचाएँगे। हिन्दी को जाना है माइक्रोसाफ्ट ने, गूगल ने, याहू ने और आज इन्टरनेट पर सूचना भंडारण कोई समस्या नहीं रही सर्व की जो सुविधा हिन्दी में आई है उसने हिन्दी के परिवार के लिए अचानक बहुत बड़ा काम किया है। आज अपनी संस्कृति और भाषा के व्यापकतम स्तर पर फैलने का माध्यम है नई सूचना प्रौद्योगिकी। दिन प्रतिदिन नए-नए जनसंचार माध्यमों से प्रौद्योगिकी से हिन्दी का प्रवाह तीव्र हो रहा है और प्रतीत होता है कि वह इस भूमण्डल की एक महत्वपूर्ण संपर्क भाषा बन सकती है।⁶

भाषा के क्षेत्र में विदेश सेवा प्रसारण को छोड़कर शेष सेवाओं के प्रसारण में हिन्दी का सर्वप्रथम स्थान मिला है। हिन्दी के नवीन शब्द हिन्दी को और समृद्ध तथा अधिक प्रभावशाली बना रहे हैं। हिन्दी भाषा को अनेक जाति अनेक धर्म के लोग स्वीकार करते चले आ रहे हैं श्रव्य माध्यम आकाशवाणी द्वारा हिन्दी के विकास में गतिशील परिवर्तन आया है किन्तु सुखद भविष्य के लिए हिन्दी को दृढ़ संकल्पशील होना होगा। आकाशवाणी में अच्छे लेखकों की हिन्दी साहित्य सम्मेलनों की कार्यशालाओं की परिषदों या विभागों के अभिरुचियों को जाग्रत करने से सरकार द्वारा प्रोत्साहन पुरस्कार आदि के कारण हिन्दी और सबल तथा सशक्त होती जा रही है।

दूरदर्शन की भाषा परिनिष्ठत होनी चाहिए क्योंकि दूरदर्शन पर प्रशासनिक, व्यापारिक और राजनीतिक विषयों का प्रदर्शन होता है। संविधान के 375वें अनुच्छेद में कहा गया है कि संघ का कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भारत की सामाजिक संस्कृति के सम्पूर्ण तत्वों की अभिव्यक्ति बन सके। इसके प्रसार एवं प्रयोग व इसे समृद्ध करने के लिए इसकी प्रकृति में हस्तक्षेप के बिना अनुसूची में निर्दिष्ट अन्य भाषाओं के रूपों का आत्मसात् करते हुए इसकी समृद्धि सुनिश्चित करें। इस दृष्टि से दूरदर्शन कार्य नहीं कर रहा है। आज दूरदर्शन की हिन्दी उर्दू प्रधान बम्बइया हो गई है। हिन्दी को जीवन्तता प्रदान करने के लिए दूरदर्शन को विदेशी शब्द, तत्सम व देशज शब्दों को भी हृदयंगम करना होगा।

दूरदर्शन आज संचार माध्यमों में सर्वोपरि है इसमें जो शब्द आज प्रयुक्त हो रहे हैं, उसमें क्यों न व्याकरणिक अशुद्धियाँ हों किन्तु हिन्दी के नवीन शब्दों से लोग भिन्न हो रहे हैं। सूत्रात्मकता अतिशयोक्ति की भाषा, भाषा संकर प्रयोग भी दूरदर्शन पर हो रहा है। इक्कीसवीं सदी की इस प्रतियोगिता एवं प्रतिस्पर्धा के युग में हिन्दी और दूरदर्शन परस्पर एक दूसरे की आवश्यकता बनी रहेगी एवं हिन्दी का प्रयोग उसकी प्रयुक्तियाँ, अभिव्यक्तियाँ, विचित्रताएँ टेक्नीक द्वारा व्यापक रूप में परिलक्षित होगी।

हिन्दी फिल्मों में संसार के प्रेम, युद्ध, इतिहास, धार्मिक एकता, स्वतंत्रता संग्राम डाकू समस्या गरीबी, बेरोजगारी, शोषण, अत्याचार आदि अनेक विषयों को उदघाटित किया है। आज हिन्दी सिनेमा जगत में

सभी भाषाओं में सर्वाधिक प्रभावी हिन्दी भाषा हो गई। 21वीं सदी में हिन्दी सिनेमा चित्रपट जगत में कई नए कीर्तिमान स्थापित करने में सफल हो रहा है। विज्ञान और तकनीकी शिक्षा ने इन माध्यमों में धूम मचा दी। भाषा के नए प्रयोजनिक संदर्भ अत्यंत प्रभावशाली हो रहे हैं। व्याकरणगत व भाषा ज्ञान के अभाव में अशिक्षित भी कई तकनीकी शब्द सुनकर अर्थ ग्रहण करने लगे हैं। अभिव्यक्ति में हिन्दी का प्रयोग केवल हिन्दी के रूप में ही नहीं हो रहा प्रत्युत् हिन्दी एक मिश्र भाषा बन गई है। अब इसका शब्द विज्ञान मात्र संस्कृतपरक नहीं है वरन् कई शब्द अन्य भाषाओं के भी कुछ-कुछ अंश में जुड़े रहे हैं। ग्रामीण और शहर सर्वत्र समाचार पत्र से लेकर दूरदर्शन, रेडियो, सिनेमा में हिन्दी शब्द प्रयुक्त हो रहे हैं हिन्दी भाषा प्रयोजनिक संदर्भों में इतना परिवर्तन हो गया है कि हम इसके उदाहरण जन संचार की नई प्रयुक्तियों में पग-पग अनुभव कर रहे हैं। और देख भी रहे हैं कि आज हिन्दी भाषा के प्रयोजनिक रूपों को नवीन प्रयुक्तियों में भाषा के उपयोग को भी नई दृष्टि से नए लेखक लिख रहे हैं।⁷

आज विज्ञान के क्षेत्र में भले ही हिन्दी की उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न हो किन्तु विज्ञापनों के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली हिन्दी का स्वरूप भाषागत वैचित्र्य प्रायः परिलिखित हो रहा है। हिन्दी लोकदृष्टि में मानक एवं आधुनिक हो रही है। हिन्दी विज्ञापनों के लिए हिन्दी शब्द चयन वाक्य गठन, सादृश्य विचलन, समानांतरता आदि महत्वपूर्ण हैं। आज देश की समृद्धि की दिशा में कम्प्यूटर क्रांति के जोश में अपने ही कदमों के नीचे हिन्दी और नागरी को रौंद न डालें यह चिंता स्वाभाविक है कि कम्प्यूटरीकरण की छाया हिन्दीकरण की हरीतिमा को कहीं शुष्क और निष्प्राण न कर दें। किन्तु हिन्दी प्रयोजनिक व्यक्तित्व को संवारते हुए कम्प्यूटरीकरण की तीव्रगति के साथ हिन्दी की तकनीकीलय निर्धारित करना ही हिन्दी के पक्ष में सामयिक होगा।

प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. आत्माराम का कथन है “हिन्दी में लिखते रहें, तकनीकी शब्दों का निर्माण और उनका प्रयोग भी होता जाएगा। हिन्दी विज्ञान लेखन में तकनीकी शब्दों को आड़े नहीं आना चाहिए।⁸

आज भाषा का प्रयोग एक छलावा है। प्रश्न उठता है कि क्या भाषा को बाजार में तब्दील कर दिया जाएगा। क्योंकि बाजार मनुष्यता के स्थान पर वस्तुओं को रख देता है, उसमें मात्र राजनीतिज्ञ ही नहीं वरन् समूचे प्रवंचक तथा जो भाषा को, कला को मनोरंजन के रूप में देखते हैं। पूर्णतया दत्तचित है। इस संदर्भ में धूमिल की एक कविता दृष्टव्य है— “भाषा को रख दिया है उन्हें मालूम है कि भूख से/भागा हुआ आदमी/भाषा की ओर जाएगा।.....भाषा उस तिकड़मी दरिन्दे का कौर है/जो सड़क पर और है/संसद में और है/इसलिए बाहर आ/सड़क के अंधेरे से निकलकर सड़क पर आ/भाषा ठीक करने से पहले आदमी को ठीक कर/आ अपने चौदहों मुखों से बोलता हुआ।”

संसद से सड़क तक :

इस कठिन समय में भाषा के कारीगरों ने अंतर्वस्तु को दरकिनार करते हुए भाषा की प्रोद्योगिकी को इतना विस्तार दिया है कि शेष सम्पूर्ण विषय बौने हो गए हैं। भाषा का ताण्डव करते हुए मनुष्यता को चीराफाड़ा जा रहा है। वस्तुतः भाषा का यह खेल इस दौर में बहुत विस्तार से चल रहा है। इसलिए अपेक्षित है ऐसा अध्ययन किया जाए, जिसमें मात्र भाषा की कारीगरी न हो वरन् समाज की समूची अंतर्वस्तु भी हो तो छलावे से दूर जाने की प्रतिज्ञाएँ भी हों।⁹

विश्व में महाशक्ति के रूप में उभरते भारत की राजभाषा हिन्दी अभी तक संयुक्त राष्ट्र की अधिकारिक भाषा नहीं बन पाई है, जबकि वह संख्या बल के अनुसार विश्व की तीसरी भाषा है। दुखद

यह है कि अभी तक वह हिन्दी प्रदेशों की उच्च शिक्षा तथा अनुसंधान संस्थानों की भाषा नहीं है। अतः हिन्दी को समस्त ज्ञानवाहिनी के रूप में विकसित करने पर भारत सरकार को पूर्ण राष्ट्र भावना के साथ प्रयास करना होगा। तभी वह सही अर्थों में राजभाषा एवं विश्व भाषा बनने में समर्थ होगी।

सूचना क्रांति के इस युग में कम्प्यूटरीकरण की बढ़ती हुई स्थिति के कारण कम्प्यूटर पर हिन्दी में कार्य करने की सुविधा हेतु सूचना एवं प्रौद्योगिकी विभाग तथा राजभाषा विभाग द्वारा पर्याप्त प्रयास किए जा रहे हैं। इंटरनेट पर भी आज हिन्दी लोकप्रिय होती जा रही है। हिन्दी के बेव पोर्टल समाचार साहित्य व्यापार, ज्योतिष, सूचना, प्रौद्योगिकी आदि की जानकारी सुलभ करा रहे हैं। विश्वविद्यालय ने हिन्दी के पाठकों एवं अध्येताओं के लिए हिन्दी साहित्य के एक लाख पृष्ठ अपनी बेवसाइट पर उपलब्ध करा दिये हैं तथा इसका विस्तार जारी है। अर्थ जगत में एक महाशक्ति के रूप में उदीयमान भारत के उज्ज्वल भविष्य को देखते हुये विदेशों में हिन्दी प्रशिक्षण का प्रचार प्रसार हो रहा है। हाल ही में हिन्दी को आस्ट्रेलिया के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। अमेरिका की विख्यात पेनसिल्वेनिया यूनीवर्सिटी में एम0बी0ए0 के छात्रों हेतु हिन्दी का दो वर्षीय कोर्स अनिवार्य कर दिया। दुनिया के सबसे शक्तिशाली देश में हिन्दी की यह स्थिति बता रही है कि आने वाले दिनों में विश्व में हिन्दी की क्या स्थिति होगी।

आज हिन्दी भाषा को ऐसा नूतन रूप उपलब्ध कराना है, जिसके विराट एवं व्यापक अंतःस्तल में सभी भाषाएँ समा जाएँ जो पुष्ट एवं विकसित हो। भाषा के प्रति ऐसा समर्पण हो कि किसी प्रकार का कुचक्र एवं षडयंत्र काम न कर सके। जिसके विकास में राष्ट्र, मातृभाषा की रक्षा, भारतीय जाति एवं संस्कृति का भविष्य अन्योन्याश्रित है।

स्रोत :

1. भारत के प्रचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड एक, पृ0 22, डॉ0 रामविलास शर्मा
2. रविकांत, वर्चुअल कंफ्रंट्स दि रियल : तहलका, दिल्ली।
3. अरविंद काला, हेरेमनी ऑव हिन्दी दि टाइम्स ऑव इंडिया, दिल्ली 6, जनवरी 2007
4. रविकांत, वर्चुअल कंफ्रंट्स दि रियल, तहलका दिल्ली।
5. सुधीश पचौरी, हिंग्रेजी का समाजशास्त्र।

संकलित : पुरुषोत्तम अग्रवाल और संजय कुमार सं0 हिन्दी नई चाल में ढली एक पुनर्विचार, देशकाल प्रकाशन— 2000, पृ0 91—101

6. वाक् पत्रिका, नए विमर्शों का त्रैमासिक वर्ष, 2007—अंक—2, पृष्ठ 67
7. हिन्दी अनुशीलन, मार्च 2004, सं डॉ0 रामकमल राय, डॉ0 यतीन्द्र तिवारी।
8. आजकल पत्रिका— सितंबर 2009, पृ0 47
9. हिन्दी अनुशीलन—मार्च—जून— 2007 (संयुक्तांक) 1—2, पृ0 97



मीडिया की भाषा और नारी

डॉ० सविता मसीह

सहा. प्रा.—हिन्दी विभाग

शास. स्ना. महा. विद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

पिछले चार दशकों में नारीवाद के फलस्वरूप वैचारिक स्तर पर स्त्रीत्व की अवधारणा और कार्यक्षेत्र में कई मूलभूत परिवर्तन आए हैं। मीडिया की भाषा के माध्यम से सवाल और जबाब सामने आते रहे हैं। उनमें भारतीय स्त्री मुक्ति के विभिन्न चरणों से गुजरती क्या अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकी है ? मनुवादी व्यवस्था के विरुद्ध खड़ी आज की स्त्री कहीं पश्चिमी संस्कृति को तो आत्मसात् नहीं कर रही है ? आज बाजार बनाने के लिए उसे अनावृत किया जाता है। स्त्री देह की भौगोलिक अर्थवत्ता ही केन्द्र में है। गोरापन, सेक्स बम, सुन्दरता जैसे विज्ञापन शब्द स्त्री के प्रति पुरुष की सामन्ती दृष्टि को ही पुख्ता करते हैं। फैशन के तहत टेढ़ा बनवाना, चेहरे के कई हिस्सों में आभूषण पहनना और कॉस्मेटिक सर्जरी के माध्यम से अंगों का सुडौल बनवाना क्या आत्मपीड़न नहीं है ? प्रश्नानुकूलता इस बात की है, कि स्त्री ने निजी सौन्दर्य की कोई परिभाषा क्यों नहीं गढ़ी ? स्त्री स्वायत्तता के अर्थ को समझना होगा और अपनी भाषा भी ईजाद करनी होगी। अतः सार्वभौमिक और स्थानीय स्तर पर भी पुनर्विचार की आवश्यकता है।

मीडिया में आज भारतीय स्त्री की जो छवि दिखायी जा रही है वह इन करोड़ों औरतों में कितनों का प्रतिनिधित्व कर रही है। भूमण्डलीकरण जिन औरतों को फोकस कर रहा है, पितृ सत्तात्मक समाज में पुरुषों के मुकाबले वह कहाँ खड़ी हैं। आज भी समाज में घरेलू हिंसा, दहेज, हत्या, बलात्कार, स्त्री देह व्यापार, भ्रण हत्या का प्रश्न है। ऐसे ही न जाने कितने स्त्री संबंधी प्रश्न खड़े हैं, पर कोई भी मीडिया इस पर बहस नहीं छेड़ता। स्त्री प्रश्न पर जारी नये विमर्श का एजेण्डा भी आज मीडिया में समाज की वर्तमान पुरुष वर्चस्ववादी संरचना और बाजार की जरूरतों के हिसाब से तय किया जा रहा है। और राजनैतिक सत्ता मिलकर मीडिया की पूरी पहचान को ही दाव पर लगा रहा है।

नारी की चाल-ढाल आदतें तौर-तरीके अंग-प्रत्यंग की साज सज्जा, शृंगार प्रसाधन वस्त्र, आभूषण इत्यादि आचार-विचार मीडिया उपकरणों के माध्यम एवं समाज के मापदण्डों से निर्धारित होते हैं। प्रकृति ने स्त्री को स्वतंत्र रूप दिया स्त्री पुरुष को धारण करती है। इस नाते वह श्रेष्ठ है। किन्तु पुरुषों ने उसे छल बल से अबला बना दिया। पुरुष सोच व व्यवस्था को ही उसने स्वीकृत किया उसने न स्व को पहचाना और न ही उसकी कोई दृष्टि बनी। सामन्ती युग में पुरुषों की दृष्टि में वह भोग्या थी कालान्तर में सभ्यता के विकासक्रम में पूँजीवादी दौर में वस्तु बना दी गयी। वर्ग समाज के अस्तित्व में आने पर वह और भी कमजोर होती गई। प्रतिक्रिया स्वरूप नारी चेतना का अभ्युदय होता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आज का मीडिया नारी उत्कर्ष उसके अधिकारों को लेकर क्या भूमिका निभा रहा है इस पर चिंतन आवश्यक है। मीडिया के अंतर्गत चाहे वह प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रानिक मीडिया नारी को लेकर समाज में किस ढंग से प्रस्तुत कर रहा है। जनसंचार के विभिन्न माध्यमों में स्त्रियों से संबंधित एक ही छवि समान प्रकार की अवधारणा और आदर्शों की अभिव्यक्ति हुई है। मुख्य वृत्तान्त में प्रायः भारतीय स्त्री

को समर्पित पत्नी और वत्सल्यमयी, मातृ रूप में स्त्री की गरिमा, मातृ शक्ति के रूप में देवी और राष्ट्रवाद के संदर्भ में मातृ भूमि की परिकल्पना और ममतामयी स्त्री, वैराज्य की परम्परा में भिक्षुणी, गणिका के रूप में स्वतंत्र नारी, अस्त्र शस्त्र तथा शासन तंत्र में प्रवीण वीरांगना, सामंती व्यवस्था में पराधीन और नियंत्रित, स्वतंत्रता आंदोलन में संघर्षरत, साहित्य में सृजनशील कलाओं में निपुण रही है।

नारी के सामाजिक परिवर्तन की दिशा में साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। विभिन्न समाजों में महिलाओं की प्रस्थिति उसकी भूमिका उनके कार्य एवं उनके योगदान को मापने के आधार भिन्न-भिन्न रहे हैं। साहित्य एवं लोक ज्ञान के माध्यम से निर्मित नारी का स्वरूप व छवि उसे सीता जैसी अनुगामिनी और द्रौपदी जैसी समर्पणमयी नारी के रूप में स्थापित करती है। कथाकारों ने नारी के नखशिख वर्णन के माध्यम से उसके सौंदर्य-बोधक पक्ष की प्रस्तुती की है। अनेक धार्मिक ग्रन्थों में उसे मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में बाधक मानकर वर्जित करार दिया गया है। नारी निर्माण की इस प्रक्रिया से समाज में उसकी स्थिति, असमानता शोषण व उत्पीड़न से जुड़ती चली गई है। “ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी सकल ताड़ना के अधिकारी” इस पंक्ति के रचियता तुलसीदास की लोकप्रियता के कारण यह पंक्ति स्त्री उत्पीड़न के लिये जीवन मूल्य सी हो गयी।

साहित्यकार सदैव पतिता और कलुषित करार की जाने वाली स्त्री के प्रति अत्यधिक संवेदनशील रहें हैं। राजेन्द्र यादव के अनुसार “प्रेमचन्द्र के कथा- साहित्य विशेष रूप से ‘गोदान’ में स्त्री को वस्तु की अपेक्षा प्राणी बनाने की चेष्टा है। कृष्णा सोबती की कथा यात्रा औरत को प्राणी के साथ ही व्यक्ति के रूप में प्रस्तुती का सशस्त प्रयास है।”

आज महिला लेखन इस बात का आग्रह करता है कि माता और पत्नी के अतिरिक्त स्त्री का अपना व्यक्तित्व है। उसे सम्पूर्णता में देखना समझना और स्वीकारना वांछनीय है। नारी भी अपनी पराधीनता पीड़ा को अभिव्यक्ति देकर स्वतंत्रता के झरोखे तलाशती रही है। महादेवी का तो जीवन भी एक मुक्ति गाथा है। पराधीनता, रूढ़िवादियों, के विरुद्ध सक्रिय संघर्ष। उस संघर्ष को उन्होंने साहित्य में अधिक व्यापक रूप दिया। महादेवी की सुप्रसिद्ध पुस्तक ‘श्रृंखला की कड़ियाँ’ (सन् 1943) चटकने टूटने के संदर्भ को व्यक्त करती है। “फूल नहीं चिंगारी हैं हम भारत की नारी हैं,” यह चर्चित नारा सातवें दशक के नारी आन्दोलन का है। स्त्री चेतना का उत्कर्ष इसी दरम्यान लक्षित होता है। इसलिए सातवे दशक उत्तरार्द्ध के लेखन में नारीवादी विचारधारा अधिक परिपक्व होती दिखाई देती है। —भारतीय लेखन में इस्मत चुगताई पहली शख्सियत थीं, जिन्होंने स्त्री के स्वायन्त अनुभवों को कथाकृतियों में अंकित किया। औरतें वस्तु न होकर हाड़ मांस की मनुष्य बन गयीं हिन्दी में यह पहल कृष्णा सोबती ने की। कृष्णा सोबती का ‘मित्रो मरजानी’ उषा प्रियंवदा का ‘पचपन खम्भे लाल दीवारें’, और मन्नू भण्डारी का ‘आपका बंटी’ जैसी कृतियों के द्वारा स्त्री की देह, उसकी आकांक्षा, समानाधिकार और व्यक्ति स्वतंत्रता के मुद्दे अधिक प्रखर ढंग से अभिव्यक्ति करती हैं।” इनके इसी संघर्ष को अधिक व्यापक बनाया है, बाद की रचनाकारों ने प्रभा खेतान, मैत्रेयी, पुष्पा, कृष्णा अग्निहोत्री, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, शशिप्रभा शास्त्री, सूर्यबाला, कुसुम अंसल, कमल कुमार, ममता कालिया, अलका सरावगी, मेहरुनिषा परवेज, लवलीन, लता शर्मा, मृणाल पाण्डे आदि कथा लेखिकाएं स्त्री मुक्ति के अभियान में सक्रिय हैं। पाकिस्तानी लेखिका तहमीना दुरानी एवं बांग्लाभाषी तसलीमा नसरिन का क्रांतिकारी लेखन तो पूरी फिजा को ही झकझोर देता है। मैत्रेयी पुष्पा के शब्दों में “यही कारण है, कि तथ्यात्मक और कथ्यात्मक ईमानदारी से लवरेज

लेखन स्त्रियों के लिए देशव्यापी आन्दोलन का रूप ले रहा है। साहित्यिक फतवों से बेपरवाह रहकर।" पश्चिमी लेखिकाओं में सिमॉन द बोउवार ने सही बात कही हैं कि स्त्री पैदा नहीं होती, बनायी जाती है। यही सोच मेरी वाल्सटन काफ्ट, जॉन स्टुआर्ट मिल व टेलर की भी थी। इस तरह स्त्री मुक्ति का संदर्भ स्वतंत्र नहीं है। उसे सामाजिक, राजनैतिक आन्दोलन के रूप में देखने समझने बताने के लिए मीडिया की भाषा का योगदान होता है।

वस्तुतः स्त्रीवाद या स्त्री विमर्श स्त्रियों के अस्तित्व सम्पन्न होने की प्रक्रिया है। इस प्रयत्न से स्त्री की नियति में बदलाव आता है। वह पितृसत्तात्मक समाज की मान्यताओं को तोलती है। वैश्वीकरण और सूचनाक्रान्ति के युग में महिला लेखन जगत की यही सच्चाई व्यक्त हो रही है। वैचारिक क्रान्ति के मूल में कलम का महत्व रहा है। अतः स्त्री विमर्श, नारी चेतना के प्रश्न को गम्भीरता से उठा रहा है। मीडिया और आधुनिकीकरण की जो जबर्दस्त भूमिका है उसके साथ तालमेल बिठाते हुए ही स्त्री अपनी अस्मिता, अधिकार और अपने सामाजिक पक्ष को मजबूत आधार दे सकती है, और इस मजबूत आधार में ही नारी मुक्ति के नये-नये आयाम तथा स्त्री के बेहतर भविष्य की परिकल्पना स्त्री ही सही तरीके से व्यक्त कर सकती है। नारी समाज की पुर्नव्याख्या और पुनर्मूल्यांकन का मूलधार है। आज का मीडिया और उसकी भाषा जो नारी को लेकर नित नई छवि को व्यक्त करता है। समाज और समय को समझे बिना मीडिया अपने दायित्व का निर्वहन कर ही नहीं सकता। मीडिया में संवेदना और सामाजिक रिश्तों की अहम भूमिका है। अतः नारीवादी सापेक्ष चिंतन से जुड़ी समकालीन समाजोन्मुखी पत्रकारिता और महिला साहित्यिक लेखन इस दौर की प्रथम आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची

1. भारतीय स्त्री-सांस्कृतिक संदर्भ, सं.-प्रतिभा जैन, संगीता शर्मा, रावत पब्लिकेशन जयपुर एवं नई दिल्ली
2. उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री, संपादक-डॉ. शशिकला त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
3. सुनो मालिक सुनो-मैत्रेयी पुष्पा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. खुली खिड़कियाँ-मैत्रेयी पुष्पा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
5. रचना पत्रिका म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी बानगंगा भोपाल
6. संवेद -डॉ. शुकदेव सिंह, नवलपुर वाराणसी
7. आजकल-बलदेव सिंह मदान, पटियाला हाउस, नई दिल्ली।



भाषा के संदर्भ में मीडिया की दशा और दिशा

डॉ० पुष्पा शाक्य

सहा. प्राध्यापक

माता जीजाबाई शा.कन्या महाविद्यालय

मोती तबेला, इंदौर (म.प्र.)

डॉ० चन्दा जैन

प्राध्यापक

माता जीजाबाई शा.कन्या महाविद्यालय

मोती तबेला, इंदौर (म.प्र.)

सूचनाओं का संचार अथवा आदान-प्रदान त्वरित गति से, दूरस्थ समाजों में, विभिन्न तरह की साधनों तथा संसाधनों के माध्यम से सफलतापूर्वक पहुंचाकर मीडिया ने दुनिया को “विश्वग्राम” बना दिया है। शताब्दी की यह क्रांतिकारी घटना है किन्तु सूचना क्रांति की चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। आज जीवन के पर्याय कहे जाने वाले संचार माध्यम, संचार क्रांति ‘मीडिया युग’ हैं। प्रत्येक मनुष्य आज अपनी जागृत अवस्था का अधिकतम हिस्सा संचार करने में लगाता है। जनसंचार आज मौखिक, लिखित, मुद्रण, दूरसंचार, टेलिग्राम, वायरलेस से आगे हम अगले चरण में अत्याधुनिक संचार माध्यमों के द्वारा “पारस्परिक क्रियात्मक संचार प्रणाली पर विशेष बल दिया जा रहा है”।

मीडिया में बदलते अंग्रेजी के वर्चस्व, कम्प्यूटर एवं अन्य माध्यमों से बढ़ा किन्तु इसमें उसकी अपनी शब्दावली बहुत कम है, यह स्थिति हिन्दी सहित विश्व की सभी भाषाओं के लिए एक कड़ी चुनौती है। सर्वाधिक आबादी भाषी चीनी, उन्नत देश जापानी भी इस चुनौती से जूझ रही हैं। संचार माध्यम आज एक ओर हमारे प्रहरी का कार्य कर रहे हैं दूसरी ओर जनमत का निर्धारण भी कर रहे हैं। जन का मूड तैयार कर रहे हैं संचार माध्यम और समाज एक दूसरे के पूरक बन गये हैं।

जनसंचार एक व्यापक और सामूहिक प्रक्रिया है, अपनी बात व्यापक जन-समुदाय तक पहुँचाने एवं अन्यो की प्रतिक्रियाएँ, सहअस्तित्व की प्रक्रिया विभिन्न विकास चरणों से गुजरती हुई उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर है जिसने आधुनिक से अत्याधुनिक सूचना माध्यम, सूचना प्रौद्योगिकी की, नव इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का रूप धारण किया है। अतः अभिव्यक्ति और प्रस्तुति का प्रभावशाली माध्यम मीडिया है। मीडिया का स्वरूप व्यापक है और वह आज के जीवन के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है।

मीडिया का लिखित रूप प्रभावशाली तो था ही, आज दृश्य मीडिया भी सशक्त होता जा रहा है। आज हिन्दी अपने निखरे हुए रूप में सामने आने लगी है, यह अलग है कि वह संक्रमण की प्रक्रिया से गुजर रही है, सही अर्थों में भाषा वही होती है जिस रूप में वह लिखी जाती है और लिखी हुई भाषा के साथ हम बहुत दिनों तक, बहुत दूरी तक लापरवाही नहीं बरत सकते और न कोई प्रयोग जारी रख सकते हैं। सुप्रसिद्ध दार्शनिक कन्फ्यूसियस की एक बात की ओर ध्यान दिलाना चाहूंगी। एक बार किसी ने कन्फ्यूसियस से पूछा, “सबसे पहले आप क्या ठीक करेंगे?” उसने उत्तर दिया “भाषा” “क्यों” पूछने पर उसका उत्तर था, “यदि भाषा ठीक नहीं होगी तो हम अपने भाव व्यक्त नहीं कर सकेंगे, जब भाषा ही समझ में नहीं आएगी तो हम न्याय नहीं कर सकेंगे, जब न्याय नहीं कर सकेंगे तो असंतोष होगा, जब असंतोष होगा तो बगावत फैलेगी और जब बगावत फैलेगी तो राज कहा रहेगा”। अतः भाषिक सुचिता के लिए यह कथन चाहे हमारी समझ में देर से आए किन्तु सत्य है। सम्प्रति तो हिन्दी का उदाहरण है उसकी सबको अपने में समाहित करने की सुनम्यता और विषय को भी पचाकर जीवित बने रहने की “शिवशक्ति” इस आधुनिक भारतीय भाषा को विश्व भाषा के स्तर पर ले ही आई है।

सूचना संचार क्रांति युग में हिन्दी भाषा अपनी जगह बनाने की ओर अग्रसर हैं। सूचना क्रांति के इस युग में कोई भी भाषा “विश्व भाषा” उसी स्थिति में बन सकती है जब वह नित नई प्रौद्योगिकी के साथ चल सके, तकनीकी और पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण कर सकें, नई शब्दावली को ग्रहण कर उसका प्रयोग बेहिचक कर सकें। इतनी लचीली हो कि तमाम तरह के संरचनात्मक एवं अर्थों के दबाव को झेल सकें एवं इतनी सामर्थ्यवान हो कि दुनियाभर के परिवर्तनों से टूट-बिखरे और मरे नहीं जीवंत बनी रहकर उन परिवर्तनों को आत्मसात कर सकें। मशीन और मनुष्य के बीच सहजतापूर्वक संबंध स्थापित कर सके, विश्व की बड़ी आबादी द्वारा प्रयोग में लाई जा सके और हिन्दी भाषा में यह सब है इसलिये वह संचार माध्यम की हमसफर हैं।

जिस पत्रकारिता ने चेतना का संचार किया, आज वही चेतना के हनन का निर्द्वंद्व माध्यम बन चुकी है। चटपटी खबरो, मारकाट, अपहरण आदि फलतः जीवन और समाज के अन्तःसूत्रों को जोड़ने के स्थान पर तोड़ने का कार्य कर रहे हैं, साधन बनी मीडिया का स्वरूप अर्थ एवं व्यक्ति केन्द्रित मुख्य और समाज गौण! मीडिया और समाज परस्पर एक दूसरे पर अवलंबित हैं। मीडिया की एक सामाजिक भूमिका है जिसका निर्वाह उसे पूरी जिम्मेदारी और सकारात्मकता के साथ करना चाहिए किन्तु आज विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा सामाजिक मान्यताओं तथा परम्पराओं की धज्जियाँ उड़ाते नजर आते हैं और हमें यह सोचने पर मजबूर कर देते हैं कि आखिरकार क्या उद्देश्य है। अतएव मीडिया को अपने उद्देश्यों से सामाजिक मूल्यों को कायम रखना होगा। मीडिया का प्रयोग सही ढंग से सामाजिक कल्याण के लिए ही किया जाना चाहिये।

मीडियाकर्मी नैतिकता, सत्यता, ईमानदारी, मनुष्यता के सिद्धांत अपनाकर समाज को सम्पन्न बना सकते हैं आज मीडिया को अपनी जिम्मेदारी का एहसास करते हुए सत्यता की कसौटी पर खरा उतरना ही होगा ताकि समाज में दुर्भावना फैलानी वाली प्रवृत्तियों से सख्ती से निपटा जा सके।

मीडिया का मुख्य कार्य, उसके उत्तरदायित्व से समाज में जागरण, सामाजिक शिक्षा एवं सशक्त समाज का निर्माण हो सकता है, भारतीय प्रिंट मीडिया, भारतीय प्रेस परिषद् ने समय-समय पर मीडिया के न्यूनतम आदर्शों को रेखांकित किया है एवं पत्रकारों के लिए नैतिक नियम बनाये हैं। इसी प्रकार की आचार संहिता अब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के लिए भी बनानी अतिआवश्यक है।

अतः अब समय आ गया है जब हमें मीडिया पर पहरा लगाना होगा ताकि मीडिया लोक कल्याण के लिए कार्य कर सशक्त और सकारात्मक समाज के लिए निर्माण में अपना सहयोग दे। मीडिया और समाज की इसी अन्तःसंबंध को गहराई से समझकर उसे नई एवं सही दिशा देने की आवश्यकता है ताकि “लोकतंत्र का चौथा स्तंभ” कहे जाने वाला मीडिया मजबूत रहे क्योंकि मीडिया, जनता, समाज, राष्ट्र और विश्व का सजग प्रहरी है। मीडिया का पूरा संसार मानव जीवन पर छाया हुआ है।

संदर्भ सूची

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी—डॉ० पृथ्वीनाथ पांडे
2. हिन्दी के गतिमान क्षितिज—डॉ. जोगेन्द्र सिंह
3. सूचना क्रांति और विश्व भाषा हिन्दी—प्रो० हरि मोहन
4. प्रयोजनमूलक हिन्दी—म. प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी
5. कृतिका पत्रिका, डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव
6. वीणा पत्रिका
7. वाग्धारा पत्रिका



विनाश को आमंत्रित करता अत्यधिक प्राकृतिक सम्पदा का दोहन

डॉ० योगेश ज्ञानी

प्रवक्ता—मनोविज्ञान

राजकीय इण्टर कालेज, हमीरपुर

डॉ० धीरज कुमार गुप्ता

परामर्शदाता (यौन रोग)

जिला चिकित्सालय, हमीरपुर

प्राकृतिक आपदा बनाम मानवीय प्रबंधन इस बात को साबित करती है कि हम कहीं न कहीं होने वाली प्राकृतिक आपदाओं से चिन्तित हैं। अगर हम प्राकृतिक आपदाओं को लेकर चिन्तित हैं तो हमें यह होने वाली आपदाओं के कारण जानने होंगे और कारण है हम और हमारा समाज और दिन व दिन बढ़ती अमीर होने की लालसा।

आपदा जैसा कि नाम स्पष्ट होता है मुसीबत, संकट, विपत्ति, आपत्ति, कष्ट, कठिनाई और भी कई नाम हैं इसके प्राकृतिक आपदा, अर्थात् प्रकृति के कारण प्राप्त होने वाला मुसीबत, कष्ट, संकट जोकि मानव जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। आपदा घटने के उपरान्त सर्वत्र विनाश, दुर्दशा तथा संत्रास का दृश्य उत्पन्न हो जाता है। हर विवर्तनिक घटना के कारण भूकम्प तथा ज्वालामुखी का उत्पन्न होना, दीर्घ अवधि तक सूखे की स्थिति उत्पन्न होना, बाढ़, भूकम्प, वायुमण्डलीय तूफान, हरिकेन, टारनेडो, टाइफून आदि। इससे मानव जीवन पर अतिरिक्त प्रभाव भी जैसे भूकम्प के कारण नदी का मार्ग अवरुद्ध होकर बाढ़ की स्थिति उत्पन्न होना, सन् 1950 ई. में असम में भूकम्प के कारण ब्रह्मपुत्र नदी में बाढ़ आयी थी, तटवर्ती तथा चक्रवर्तीय तूफानों का फैलना।

प्राकृतिक प्रकोप उन चरम घटनाओं को कहते हैं जो प्राकृतिक परिस्थितिक तंत्र के जैविकी और अजैविकी संघटकों की सहन सीमा पर प्रभाव डालते हैं और प्रलयकारी स्थिति उत्पन्न होती है, अपूर्णनीय क्षति होती है। डा० डी० के० गुप्ता “आपदा जो विध्वंसकारी घटना अचानक घटती है, अत्याधिक भौतिक क्षति होती है, जानमाल की हानि के साथ संकट की स्थिति उत्पन्न होती है।

ज्यादातर लोग आपदा व प्रकोप को एक ही समझते हैं लेकिन दोनों में अन्तर है। प्रकोप संकट किसी भौतिक घटना से होने वाला संकट या खतरा है जोकि विशिष्ट स्थान पर होता है। जिससे एक निश्चित नुकसान पहुँचाने की क्षमता होती है। (ज्वालामुखी उद्गार) लेकिन आपदा घने बसे हुये क्षेत्र में भौतिक व मानवीय सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाना है। 26 जनवरी 2001 को गुजरात में पहले लोग दैनिक क्रियाकलाप और कार्य करने में मग्न थे लेकिन बाद में लाशों को उठाने में लग गये आपदा की परिस्थिति उत्पन्न होने के कारण।

प्राकृतिक आपदाओं के कारण – प्राकृतिक और मानवीकृत आपदाओं में अन्तर करना कठिन कार्य है। क्योंकि अनेक बार मानव के कारण ही प्राकृतिक आपदाएँ होती हैं जैसे ओजोन परत का क्षय होना, जिसके कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है और हिम राशि पिघल रही है। परिणामस्वरूप समुद्र तल में परिवर्तन हो रहा है, 1984 में ड्राप्सी महामारी, तीव्र वनोन्मूलन से वन्य जीवों की समाप्ति, जल संकट,

विभिन्न प्रकार के प्रदूषण उत्पन्न हुए।

पृथ्वी द्वारा आपदापन्न घटनाओं में भूकम्प, ज्वालामुखी, वृहतस्तर पर उत्पन्न भूस्खलन तथा हिम स्खलन, यह आपदाएँ पृथ्वी के अन्तर्जात वालों द्वारा आन्तरिक तापीय दशाओं के उपरान्त उत्पन्न होती है। इनसे अधिकांश प्राकृतिक आपदाओं की उत्पत्ति महाद्वीपीय एवं महासागरीय प्लेटों के संचालन के कारण यथा 26 जनवरी सन् 2001 ई. को गुजरात का भूकम्प अरेवियन प्लेट तथा इण्डियन प्लेट के संचालन के उपरान्त हुआ। प्लेटों का संचालन पृथ्वी के आन्तरिक भागों में तापीय दशाओं से उत्पन्न संवहनीय तरंगों के परिणामस्वरूप होता है। भूकम्प, ज्वालामुखी, हिम स्खलन, भूस्खलन, चक्रवात, बाढ़। उत्तरी आस्ट्रेलिया में डार्विन नगर में सन् 1974 में ट्रेसी चक्रवात के कारण 49 व्यक्ति मारे गये, टाइफून में सन् 1881 में 3 लाख लोग मारे गये, हरिकेन उत्तरी अटलांटिक महासागर विशेषतः कैरिबियन सागर एवं दक्षिणी संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रभावशाली, टाइफून उत्तरी प्रशान्त महासागर विशेषतः चीन सागर, चीन के पूर्वी तथा दक्षिणी तटीय सागर, जापान तथा फिलीपीन्स में, बांग्लादेश, भारत का पूर्वीतट एवं अरब सागर में चक्रवात तथा आस्ट्रेलिया में विली-विली प्रभावशाली है।

यू0एस0ए0 के अल्बर्टा प्रान्त स्थिति टर्टल पर्वत में 1903 में आये भूस्खलन से 3 मिलियन क्यूबिक गज आकार में चूना पत्थर का जमाव हुआ जिसमें फेक कस्बा मलवा में दवा और 70 लोग मारे गये इसी प्रकार 1959 में मोण्टाना के परिणामस्वरूप 27 लोग मारे गये और एक झील का निर्माण हुआ। 1911 में पामीर क्षेत्र में 7-8 टन का प्रस्तर प्रखण्ड नदी में जा पहुँचा और सुरेज झील का निर्माण हुआ यह झील 80 किमी0 लम्बी है। नैनीताल में 1880 में 150 लोग मारे गये। कहीं जल के अभाव में भीषण सूखा तो कहीं इतना जल की बाढ़ जैसे पश्चिमी भारत में भीषण सूखा और पूर्वोत्तर भारत में बाढ़ की स्थिति। गुजरात के भूकम्प के कारण कि राजस्थान में विभिन्न भागों को नलकूप लगाकर दोहन किया गया।

पर्यावरण की उपेक्षा समस्त प्राणियों के लिये संकट व विनाश का कारण बनती जा रही है। कृषि में कीटनाशकों के प्रयोग से कीटों के साथ-2 अन्य जीव जन्तु भी नष्ट होते थे। मध्दाजल के साथ जलाशयों में पहुँचकर समस्त जीवों को प्रभावित करते हैं। मछलियों को भोजन के रूप में प्रयुक्त होने पर मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी तरह जलवायू तथा मिटटी के द्वारा प्रदूषण परिस्थितिकी को प्रभावित करता है। किसी भी चीज की न्यूनता या अधिकता विनाश का कारण बन सकती है। वनों का अत्याधिक कटान, सूखा व बाढ़ व मरुस्थलीकरण की समस्या को बढ़ायेगा।

प्राकृतिक व ऊर्जा संसाधनों का जीवन पर पड़ रहे प्रभाव को इस तरह समझा जा सकता है :-

1. औद्योगिक विकास में तेजी :- मुख्यतया औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का असीमित दोहन किया गया बल्कि जल, वायु, व मृदा को प्रदूषित किया गया जिसके कारण 2 से 3 दशकों में सम्पूर्ण विश्व में करीब 2 अरब हेक्टेयर क्षेत्र से मिटटी की ऊपरी उपजाऊ परत नष्ट हो गयी। यह क्षेत्रफल समस्त कृषि योग्य भूमि से काफी अधिक है। बढ़ते उपयोग के कारण 10 अरब टन विभिन्न अयस्क, ईंधन व इमारती पत्थर खनन करके निकाले जाते हैं, 5 करोड़ टन से अधिक उत्पादित पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं लगभग 50 करोड़ टन खनिज उर्वरकों का उपयोग होता है। 40 लाख टन रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग होता है।

समस्त संसार का औद्योगिक संयंत्र प्रतिशत 30 अरब घन मीटर प्रदूषित जल 25 करोड़ टन, 7 करोड़ टन जहरीली गैसों का उत्सर्जन व निष्कासित करती है। आकड़ों से भविष्य आपको अपने आप

दिख जायेगा कुछ बताना अब जरूरी नहीं है।

2. तेजी से बढ़ती जनसंख्या भी इसका कारण है क्योंकि उपयोग और निष्कासन भी बढ़ रहा है।
3. तकनीकीकरण भी इसका कारण है।
4. मरुस्थलीयकरण की प्रक्रिया के दौरान उपजाऊ भूमि उपयोगी नहीं रहती है। नदियों का जल स्तर गिरता जाने के कारण वनस्पति कम पैदा हो रही है।
5. असीमित खनन का उपयोग होना जिसके कारण सीमावर्ती पर्यावरणीय दशाओं पर पड़ता है।
6. देश की विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत नदी घाटी परियोजनाओं का कार्य प्रारंभ किया गया लेकिन इस नदी घाटी परियोजनाओं के भूगर्भीक सामाजिक सांस्कृतिक वनस्पति, वन्य जीव तथा अन्य परिस्थितिकी पक्ष का विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया।
7. मृदा से हम बढ़ती जरूरतों, तेजी से बढ़ती जनसंख्या, प्राकृतिक संसाधनों का अनियोजित ढंग से उपयोग, शहरीकरण, वनों का विनाश, नई कृषि भूमि योग्य का निर्माण, रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों के अधिकाधिक उपयोग के कारण मृदा का स्वाभाविक स्वरूप नष्ट हो गया है और हम 5 घण्टों में मृदा का अपरदन कर देते हैं जबकि 500 वर्ष में वहीं स्वाभाविक रूप वापिस आता है।
8. ऊर्जा संकट : कोयला, तेल, लकड़ी का उपयोग जिससे वनों का उन्मूलन हो रहा है।

प्रदूषण के मानविकी श्रोत में औद्योगिकीकरण श्राव, घरेलू वाहि: श्राव, बाहित मल, कृषि बहि:श्राव, तेलीय श्रोत, तापीय श्रोत, रेडियोधर्मी अपशिष्ट दहन क्रिया, नगर पालिका अपशिष्ट, खनन अपशिष्ट, परिवहन के साधन, मनोरंजन के साधन, सामाजिक क्रिया कलाप आदि।

अभी तक ऊपर बताया गया आपदाओं और प्रदूषण पर प्रभाव डालता है वह तो मात्र बानगी पर है। इसमें बताये गये शब्द कुछ ही प्राकृतिक आपदाओं के बारे में बतलाये गये शब्द कुछ ही प्राकृतिक आपदाओं के बारे में बतलाते हैं। अभी तक इतनी आपदा आ चुकी है कि अगर सभी बतायें तो शायद में लिख न पाऊँ और पढ़ने वाला पढ़ न पाये क्योंकि इतनी त्रासदी हो चुकी है कि हम उन त्रासदी को दुबारा नहीं महसूस कर सकते हैं। हमें जागना होगा और अगर हम जाग गये तो कुछ हद तक काबू भी पा सकेंगे।

अब आगे आप इसके लिये चलने वाले प्रोग्रामों के बारे में सूक्ष्म जानकारी – आपदा रोकथाम में वे सभी कार्य शामिल हैं जो प्राकृतिक प्रकोप से होने वाली धन, जन, की हानि को खत्म कर सकेगा कम कर सके जैसे 29 अक्टूबर 1999 को उड़ीसा में आये तूफान की भविष्यवाणी बायरलेस व आकाशवाणी से 25 अक्टूबर को ही दे दी गयी थी।

आपदा के प्रभाव को कम करने में उन सभी उपायों को सम्मिलित किया जाता है जो लोगों को आपदा से यथासंभव बचाने में मदद मिलती है। प्रभाव कम करने में आधारभूत नीतियों में भूमि को नियंत्रित करना, भवन निर्माण संबंधी उपर्युक्त संहिता एवं भवनों के वास्तुशिल्प संबंधी डिजाइन तैयार करना तथा चट्टानों का गिरने से रोकने के लिये अवरोधक लगाना आदि। 4000 भारतीय निगरानी केन्द्रों द्वारा मौसम विभाग, सूखा, वर्षा, चक्रवात तथा फसलों के बारे में अनुमान, अंतरिक्ष विभाग इनसे टी0बी0 के द्वारा सूखा बाढ़ तथा बदलते मौसम पर निगरानी रखता है। आपदा पर अध्ययन के लिये भारतीय

लोक प्रशासन संस्थान, इग्नू, यशवंत राय चौहान विकास प्रशासन अकादमी, रुड़की विश्वविद्यालय, इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ इकोलोजी एण्ड एन्वायमेन्ट आदि।

पूरा विश्व इस प्राकृतिक आपदा से निपटने के लिये संयुक्त कार्यक्रम चला रहा है। डब्लूएचओ, यूनीसेफ आदि कई अरब डालर खर्च करके पूरे विश्व को बचाने की मुहिम में लगी हुयी है। अतः ओजोनक्षरण, अम्लवर्षा, आदि से समस्त विश्व को खतरा है। पूरा विश्व चाहता है कि इसको कम किया जा सके लेकिन क्या हम इसको कम कर रहे हैं या इसको बढ़ा रहे रोजाना हो रहे आणविक परीक्षण, औद्योगिक उत्पादन में निकलने वाले बहुत से अपशिष्ट पदार्थ एवं गैस जोकि मानव जीवन को खतरे में डाल रही हैं अतः इस मुहिम में सबसे बड़ी बात है कि हम कितना सहयोग दे रहे हैं। पालीथीन का प्रयोग हम जहाँ भी चाहते हैं फेंक देते हैं लेकिन कभी न सड़ने और गलने वाली पालिथीन एवं मोबाइल का निकलने वाला ई कचरा को मानव कम कैसे करें अगर मानव अभी भी इसके प्रति जागरूक नहीं होता है तो समझिये कि हम व हमारी सृष्टि विनाश की ओर है और अगर इसी तरह प्राकृतिक चीजों का दोहन होता रहा तो 2012 न सही लेकिन आगे आने वाले कई वर्षों बाद ऐसी प्राकृतिक आपदा आयेगी कि उस आपदा से की जाने वाली सारी भविष्यवाणियाँ असत्य करते हुये पृथ्वी को महाविनाश की ओर ले जायेगा फैसला आपको लेना है विनाश करना है कि बचाना है। जागो और आगे बढ़ो इस विश्व को खतरे से अभी भी बचाया जा सकता है। बस जागरूक होकर इस कार्य में सहयोग देने की जरूरत है।



पर्यावरणीय दृष्टि से उत्तर प्रदेश अत्यन्त संवेदनशील

डॉ संतोष कुमार
प्रौढ़ सतत् एवं प्रसार शिक्षा विभाग,
महात्मा ज्योतिबा फुले विश्वविद्यालय रुहेलखण्ड, बरेली

भारत देश के उत्तर-पूर्व में स्थित राज्य उत्तर प्रदेश है जिसकी राजधानी लखनऊ शहर है यह शहर उत्तर प्रदेश राज्य में जनसंख्या की दृष्टि से अग्रणी है। यह गोमती नदी के किनारे सन् 1775 ई. में स्थापित हुआ था।

लखनऊ 26.52' उत्तर, 80.86' पूर्व देशान्तर व समुद्र तल से 120 मीटर ऊँचाई पर है। पश्चिमी पूर्वी क्षेत्र में शहरीकरण के मामले में तेजी से विकसित हो रहा है। लगभग 528 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल 31 मार्च, 2011 को भारत की 15वीं जनगणना के प्रारम्भिक आंकड़ों के अनुसार कुल जनसंख्या 121.02 करोड़ है। जिसमें उत्तर प्रदेश की जनसंख्या 20 करोड़ के साथ ब्राजील देश की आबादी के बराबर (योजना, जुलाई, 2011 पृष्ठ संख्या 33) है। एवं सर्वाधिक जनघनत्व में उत्तर प्रदेश चौथे स्थान पर 828 व्यक्ति/वर्ग किलोमीटर (समसामयिक घटना चक्र, अतिरिक्तांक, 2011 पृष्ठ सं0 11) हैं। जनगणना 2011 की आंकड़ों पर उत्तर प्रदेश का कुल क्षेत्रफल 240,928.00 वर्ग किलोमीटर, जनसंख्या 199,581,477 एवं जनघनत्व 828 (समसामयिक घटना चक्र/अतिरिक्तांक, 2011, पृष्ठ सं0 17) है। पर्यावरणीय दृष्टि से लखनऊ शहर अत्यन्त संवेदनशील है। दिन-प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या इसका प्रमुख पर्यावरणीय कारण है। उत्तर प्रदेश सरकार ने जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने के लिये चिन्हित आठ मिशनों के लिये विशेषज्ञों की मदद से अलग-अलग एक्शन प्लान बनाने का आश्वासन दिया है, लेकिन उत्तर प्रदेश में पर्यावरण की रक्षा के लिये जिस तरह न्यूनतम प्रयास भी नहीं किया जा रहा है। उससे लगता है कि एक्शन प्लान बनाने की यह औपचारिक घोषणा मात्र है। वैश्विक तापमान की चुनौतियों से मुकाबला करने के लिये दीर्घकालीन योजनाएँ बनाना आवश्यक है लेकिन उसके साथ ही यह भी जरूरी है कि कुल तत्कालिक उपाय भी किये जाएँ। पर्यावरण की रक्षा के लिये केवल एक्शन प्लान बना लेना ही पर्याप्त नहीं बल्कि शासन-प्रशासन को उस पर यथाशीघ्र अमल भी सुनिश्चित करना होगा। समस्या यह है कि पर्यावरण की रक्षा के लिये जो कुछ आवश्यक है उसकी अनदेखी ही अधिक की जा रही है। इसका प्रमाण यह है कि हर तरफ का प्रदूषण बढ़ता जा रहा है और उस पर नियन्त्रण के सन्दर्भ में शासन-प्रशासन की ओर से जो दावे किये जाते हैं वे कुल मिलाकर खोखले ही सिद्ध होते जा रहे हैं। जिसके परिणाम स्वरूप ग्रीन हाउस गैसों का प्रतिशत हमारे वायुमण्डल में दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

जब तक पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित सभी क्षेत्रों में सुधार के उपाय एक साथ नहीं किये जायेंगे तब तक जलवायु परिवर्तन की चुनौती का सामना करना कठिन है। शहरीकरण की चकाचौंध से राजधानी लखनऊ प्राकृतिक सौन्दर्य से दूर होती जा रही है। बागों के शहर लखनऊ में अब बागों का स्तर नगण्य हो गया है। जमीन पर कंक्रीट की परतें चढ़ती जा रही है। तालाब- पोखर, झील का कलरव भी पहले जैसा नहीं रहा। गोमती नदी का जल स्तर घट रहा है व प्रदूषण की मार से अस्तित्व खतरे में पड़ा है।

लखनऊ की हवा स्वास्थ्य के लिहाज से अब ठीक नहीं रही। हवा में सूक्ष्मकण आर.एस.पी.एम. (स्पाइरेबल सस्पेंडेड पार्किलेट मैटर) की मानक से दस गुणा पार कर चुकी है तीन सालों में बढ़कर पांच गुणा प्रदूषण का स्तर बढ़ चुका है। यह केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड (सी.पी.सी.बी) की रिपोर्टनुसार हवा में आर.एस.पी.एम. का स्तर अनियंत्रित हो गया है, ये आकार में दस माइक्रोन से छोटे, हवा में घुलनशील तथा कार्बनिक और अकार्बनिक तत्व का मिश्रण होता है। सांस के साथ फेफड़े तक पहुंचकर शरीर को भारी नुकसान पहुंचाते हैं। राजधानी के सबसे अभिजात्य इलाका गोमती नगर (चिनहट विकास खण्ड) की स्थिति खतरनाक है सी.पी.सी.बी. के आंकड़ों के मुताबिक अप्रैल 08 में आर.एस.पी.एम. का स्तर 135 माइक्रोग्राम प्रतिघन मीटर था। यह अप्रैल 2010 में पांच गुना बढ़कर 660 माइक्रोग्राम प्रतिघन मीटर हो गया। “सी.पी.सी.बी. के अनुसार स्वास्थ्य के लिये आर.एस.पी.एम. का स्तर 60 माइक्रोग्राम से ज्यादा नहीं होना चाहिये।” दूसरी तरफ उत्तर प्रदेश के अन्य शहरों में भी स्थिति ज्यादा अच्छी नहीं है आगरा, इलाहाबाद, वाराणसी, मेरठ, गाजियाबाद, नोयडा, कानपुर, फिरोजाबाद सहित प्रमुख शहरों में हवा में नन्हें श्वसनीय कणों का प्रदूषण चरम पर है। इन शहरों के विभिन्न क्षेत्रों की हवा में निलम्बित श्वसनीय कण (आर.एस.पी.एम. व एस.पी.एम.) के चलते सड़कों पर सांस लेना दूभर एवं श्वास सम्बन्धी बीमारियों से ग्रस्त है।

वायु प्रदूषण का स्तर

शहर	श्वसनीय कण (आर.एस.पी.एम.) माइक्रोग्राम प्रतिघन मीटर	नहे धूल के कण (एस.पी.एम.) माइक्रोग्राम प्रतिघन मीटर
लखनऊ	220	456.00
कानपुर	216	502.00
आगरा	209	344.00
नोयडा	185	348.00
वाराणसी	164	312.00
मानक	150	200.00

स्रोत : उ0प्र0 प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड, लखनऊ

लखनऊ के कई इलाकों की हवा में तेजी से बढ़ती लेड की मात्रा घातक स्तर के करीब पहुँच गई है। यह जहर अमौसी, हुसैनगंज, अमीनाबाद, चौक, गोमतीनगर (चिनहट विकास खण्ड) में सबसे ज्यादा है। जिसके दुष्प्रभाव से कैंसर, मस्तिष्क और रक्त सम्बन्धी बीमारियों का खतरा बढ़ रहा है। खासकर बच्चों को ज्यादा नुकसानदेय है। उक्त रिपोर्ट भारतीय विष विज्ञान अनुसंधान संस्थान (आई. आई. टी. आर) ने दी है।

लखनऊ शहर के विभिन्न क्षेत्रों में लेड की मात्रा (हवा)

(चिनहट विकास खण्ड)	लेड (नैनोग्राम प्रतिघन मीटर)
गोमतीनगर	486.45
विकासनगर	117.50
अलीगंज	78.80
इन्दिरा नगर	72.63

औद्योगिक स्थान

अमौसी	989.00
वाणिज्य स्थान	
अमीनाबाद	878.78
चौक	686.39
हुसैनगंज	336.20
चारबाग	258.05
आलमबाग	60.39

स्रोत : अमर उजाला (माई सिटी-IV) 23 जून, 2010

आई.आई.टी.आर. रिपोर्टानुसार राजधानी लखनऊ के कई इलाकों की हवा में लेड की मात्रा मिली लेकिन यह राष्ट्रीय मानव 1000 नैनोग्राम प्रतिघन मीटर से थोड़ा कम थी। स्वास्थ्य की दृष्टि से चिन्ताजनक है। अमेरिकी एन्वायरमेंटल प्रोटेक्शन एजेंसी के मानक के अनुसार 150 नैनोग्राम घनमीटर से लेड की मात्रा बहुत हानिकारक है। वाहनों की दिन प्रतिदिन बढ़ती संख्या से लखनऊ शहर में स्थिति प्रदूषण (ग्रीन हाउस गैस – कार्बनडाई-आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड) का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है। जिसके फलस्वरूप साँस लेना दुश्वार होता जा रहा है।

ध्वनि प्रदूषण के मामले में व्यावसायिक और आवासीय इलाकों में लगभग एक जैसी स्थिति है। दिन में जितना प्रदूषण होता है रात को भी उसमें ज्यादा कमी नहीं आती। रिहायसी इलाकों में सबसे अधिक एस.पी.एम., आर.एस.पी.एम. सल्फर डाई आक्साइड व नाइट्रोजन डाई-आक्साइड पाया जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप अनेक बीमारियाँ अस्थमा, ब्रांकाइटिस एण्ड रिप्रोडेक्टिव डेवलपमेंट, त्वचा रोगों की अधिकता हो रही है।

वायु प्रदूषण की स्थिति

क्षेत्र	ए.पी.एम.	आर.एस.पी.एम.	सल्फर डाई आक्साइड	नाइट्रोजन आक्साइड
अलीगंज	334.3	144.5	22.2	37.5
विकासनगर	330.8	159.5	25.7	35.5
इन्दिरानगर	368.5	170.7	30.1	39.4
गोमतीनगर	356.3	151.3	25.7	36.7
हुसैनगंज	368.5	163.5	27.7	40.8
चारबाग	406.8	171.8	29.2	40.5
आलमबाग	400.0	201.5	32.4	47.1
चौक	392.5	174.5	26.1	41.6

स्रोत : संख्या माइक्रोग्राम/घनमीटर में है और भारतीय विष विज्ञान अनुसंधान संस्थान द्वारा जारी की गई है। हिन्दुस्तान पृष्ठ संख्या, दिनांक 5 जून, 2009

दिन हो या रात, लखनऊ शहर में शोर अनियंत्रित हो गया है। प्रत्येक इलाके में ध्वनि प्रदूषण स्तर को पार कर गया है। जिससे आमजन में बहरापन, तनाव, कॉलेस्ट्रॉल का स्तर बढ़ रहा है। सड़क दुर्घनाएँ बढ़ रही है शहर के आलमबाग क्षेत्र में ज्यादा शोर (ध्वनि प्रदूषण) 75 डेसीबल दर्ज दिया गया।

केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड एवं भारतीय विष विज्ञान शोध संस्थान की रिपोर्टनुसार शोर का खतरनाक स्तर ट्रैफिक और निर्माण कार्यों के वजह, एयरकंडीशनरों से भी शोर बढ़ा है। वायु और जल प्रदूषण का असर सीधा दिखता है लेकिन ध्वनि प्रदूषण का असर दुष्प्रभाव का पता चलने तक स्थिति बिगड़ चुकी होती है। ध्वनि प्रदूषण पर नियन्त्रण का अधिकार ट्रैफिक पुलिस और प्रशासन के पास है। मानकों को तोड़ते हुये वाहनों का शोर लगातार बढ़ता जा रहा है, लेकिन हमारा भी दायित्व बनता है कि वायु प्रदूषण को कम करने की कोशिश करें।

बीमारियाँ : ध्वनि प्रदूषण का स्तर बढ़ने से बहरापन, दिल की धड़कने बढ़ना, ध्यान केन्द्रित न होना, याददाश्त में कमी, दूर दृष्टि में कमी, शारीरिक व मानसिक आलस्य, नींद में परेशानी, झगड़ालू प्रवृत्ति, उच्च रक्तचाप, मानसिक तनाव इत्यादि।

लखनऊ शहर में ध्वनि प्रदूषण

क्षेत्र	दिन	रात	मानक
आलमबाग	75	67	65
हुसैनगंज	85	62	65
हजरतगंज	69	68	65
गोमतीनगर	64	68	55
इन्दिरानगर	68	62	55
अलीगंज	58	55	55
विकासनगर	69	59	55

स्रोत : हिन्दुस्तान पृष्ठ संख्या-4

सामान्यतः 25 डेसीबल ध्वनि को खामोशी 45 को सामान्य, 65 से अधिक को शोर कहा जाता है। यदि 70 डेसीबल से अधिक शोर वाले स्थान पर अधिक समय तक रहना पड़े तो सुनने की क्षमता कम होने लगती है।

औद्योगिक क्षेत्र में अन्तर्गत चिनहट क्षेत्र में सबसे अधिक ध्वनि प्रदूषण है। यहाँ सामान्य से 75 डेसीबल की तुलना में 85.45 डेसीबल दर्ज किया गया है। जबकि ऐशबाग 83.28, नादरगंज में 84.17, तालकटोरा में 82.25, अमौसी 80.73 और ऐशबाग में 78.63 डेसीबल दर्ज किया गया। शांत क्षेत्र के तहत सिविल अस्पताल के पास ध्वनि प्रदूषण सामान्य के 50 की तुलना में 75.14 डेसीबल पाया गया। लखनऊ शहर के तीन चौथाई अस्पताल पर्यावरण अधिनियम का पालन न करके अपना जैव चिकित्सीय कचरा (बायो-मेडिकल कचरा) खुली सड़कों पर फेंक रहे हैं।

उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड द्वारा सूबे में 4246 अस्पताल, नर्सिंगहोम है। जिसमें से 1181 अस्पताल व नर्सिंगहोम में से 78 प्रतिशत अस्पताली कचरा के नियमानुसार इनसेनरेटर में भेजने की बात सिर्फ दिखावा है। उत्तर प्रदेश के मुख्य शहरों में विगत पांच वर्षों में वायु प्रदूषण में कमी दर्ज की गयी है। उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड के मुताबिक सी.एन.जी. और यूरो-2 यूरो-3 वाहनों के प्रचलन में आने के बाद वायु प्रदूषण में कमी दर्ज की गयी है। लेकिन श्वास की बीमारी पैदा करने वाले सहायक संस्पेंडेड और रिस्पायरबल पार्टिकुलर मैटर्स (एस.पी.एम. और आर.पी.एम) मानक से अधिक पाये गये हैं। बोर्ड की ताजा रिपोर्टनुसार लखनऊ, कानपुर, नोयडा, आगरा, गाजियाबाद, वाराणसी, फिरोजाबाद के 26

स्थानों पर वायु प्रदूषण को मापक मतों से भाषा इसमें कमी दर्ज की गयी। (स्रोत : हिन्दुस्तान पृष्ठ संख्या-16, दिनांक 6 जून, 2009) आगरा में बदोला और नुनहाई में प्रदूषण स्तर जहाँ वर्ष 2002 में 415 और 431 एस.पी.एम. भी वहीं 2008 में 335, 397 दर्ज किया गया।

आगरा की स्थिति (मात्रा माइक्रोग्राम प्रति घन मी.)

स्थान	2004	2009
बदोला		
एस.पी.एम.	363	342.1
आर.एस.पी.एम.	182	180.8
सल्फर डाई आक्साइड	8	9.4
नुनहाई		
एस.पी.एम.	441	399.7
आर.एस.पी.एम.	184	214.1
सल्फर डाई आक्साइड	7	9.9
मानक	आर.एस.पी.एम.	नाईट्रोजन के आक्साइड
(संवेदनशील)	50	15

स्रोत : उ०प्र० प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड, 2010

औद्योगिक नगरी कानपुर का मिजाज अन्य शहरों से कुछ जुदा है सुबे में ज्यादातर बड़े शहरों में सबसे अधिक प्रदूषण औद्योगिक क्षेत्र में जहर उगलती चिमनियों से है।

कानपुर में वायु प्रदूषण

क्षेत्र		2003	2008
डिप्टी का पड़ाव	ए.बी.एम.	397	477
	आर.एस.पी.एम.	175	215
किदवईनगर	एस.पी.एम.	410	455
	आर.एस.पी.एम.	174	198
शारदानगर	एस.पी.एम.	367	464
	आर.एस.पी.एम.	188	208
फैजलगंज	एस.पी.एम.	439	496
	आर.एस.पी.एम.	192	225

★ मात्रा माइक्रो ग्राम प्रति घन मीटर।

	मानक		
	आवासीय	व्यवसायिक	औद्योगिक
एस.पी.एम.	140	140	360
आर.एस.पी.एम.	60	60	120

वाराणसी के शिवपुर, जवाहरनगर (आवासीय क्षेत्र) के अन्तर्गत वर्ष 2005 में 267, 344 ए.पी.एम. से वर्ष 2008 में 312.6, 353.6 और आर.एस.पी.एम. 103, 103 वर्ष 2005 से वर्ष 2008 में 114.2 व 102.8 हो गया।

वाराणसी			
क्षेत्र		2005	2009
	एस.पी.एम.	344	388.4
	आर.एस.पी.एम.	103	121.8
जवाहरनगर	सल्फरडाई आक्साइड	16	15.90
	नाइट्रोजन डाई आक्साइड	13	19.40
	एस.पी.एम.	267	401.3
	आर.एस.पी.एम.	103	126.3
सिंगरा	सल्फरडाई आक्साइड	16	17.2
	नाइट्रोजन डाई आक्साइड	18	19.90

(स्रोत : केन्द्रीय व राज्य प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड, मानवीय वन सर्वेक्षण)

भारत में शीर्ष प्रदूषित 25 सर्वाधिक शहरों में लुधियाना शीर्ष स्थान पर है लेकिन आश्चर्यजनक है कि देहरादून, गुवाहाटी के हालात भी ठीक नहीं हैं। लेकिन मुम्बई इस सूची से बाहर है। हाँलाकि प्रदूषण व्यापक शब्द है लेकिन इस सूची के लिये इस्तेमाल मानको में हवा में मौजूद उन सूक्ष्म प्रदूषणकारी सूक्ष्म कणों (आर.एस.पी.एम.) को आधार बनाया गया है। शीर्ष दस में उत्तर प्रदेश के खुर्जा तीसरे, कानपुर चौथे, लखनऊ सातवें, आगरा आठवें, नोयडा दसवें स्थान पर है।

उत्तराखण्ड राज्य की स्थापना के बाद से वन बाहुल्य क्षेत्र के अलग होने से प्रदेश में जंगल की कमी चिन्ता का विषय बनी है। विगत डेढ़ दशक में प्रदेश का वनावरण में दो ढाई प्रतिशत ही इजाफा हुआ है। भारतीय वन सर्वेक्षण की रिपोर्ट के मुताबिक विगत दस वर्ष में सूबे में घने जंगलों का क्षेत्रफल कम हो गया है। प्रदेश के कुल वनक्षेत्र 14118 वर्ग किमी में से (40 प्रतिशत से अधिक) घनत्व वाले सघन वन अब 5996 वर्ग किमी क्षेत्र में ही बचे हैं। वहीं (10 से 40 प्रतिशत) घनत्व वाले खुले वन 8122 वर्ग किमी हैं। कुल वन क्षेत्र 14118 वर्ग किमी, सघन वन 5996 वर्ग किमी, खुला वन 8122 वर्ग किमी है।

लखनऊ शहर की लाइफलाइन गोमती नदी को साफ सुथरा बनाने के लिये सरकारी महकमें व जन — जागरण द्वारा गोमती को स्वच्छता के लिये अथक प्रयास करने होंगे। प्रदूषण कन्ट्रोल बोर्ड के आंकड़ों की माने तो नदी का पानी पीने योग्य तो दूर उसमें जल चर प्राणी भी सुरक्षित नहीं है। वहीं पर्यावरणविदों की मानें तो तापमान में थोड़ी भी बढ़ोत्तरी गोमती के पानी में आक्सीजन के स्तर को कम कर देगी जो

पानी में रहने वाले जीव-जन्तुओं के लिये मौत का कारण बन सकती है। पीने के पानी में घुलित आक्सीजन का मानक 6.0 मिलीग्राम प्रतिलीटर वर्तमान स्थिति 6.0 मिलीग्राम प्रति लीटर पीएच मानक 6.5 से 8.5 तक वर्तमान स्थिति 8.08 बैराज पर पानी की स्थिति जिसे खेती में प्रयोग किया जाता है। मानक 4.0 मिलीग्राम प्रतिलीटर वर्तमान स्थिति 1.5 मिलीग्राम प्रतिलीटर है।

सुझाव

प्रदूषण रूपी दैत्य से निपटने के लिये ग्रीन हाउस गैसों को समस्त विश्व में एक समय सीमा के साथ कम करने की बाध्यता हो, सभी देशों को आगे आना होगा। कोई भी देश अपना पल्ला नहीं झाड़ सकते हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति से बचना होगा तभी संभव है कि हमारी जीवन शैली और दर्शन में बदलाव आयेगा। मनुष्य के अनैतिक आचरण से जहां पर्यावरण सहित लगभग सभी क्षेत्रों में पतन हुआ है। वहीं अच्छे आचरण और सामाजिक स्वीकृति से किये जाने वाले व्यवहारिक क्रिया-कलापों से उत्थान की आशा भी बनी है। मनुष्य ने इस परिवर्तन से अपनी व्यक्तिगत छवि ही नहीं बनाई है बल्कि समाज को प्रेरित कर पूरे देश को ऊपर उठने का अवसर भी दिया है। पर्यावरण के क्षेत्र में इस नैतिक से प्रभावित होने वाले कार्यकलापों में मनुष्य की भूमिका को निम्न प्रकार समेकित करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन की उपयोगिता को बनाये रखने हेतु प्रस्तुत अध्ययन के सम्बन्ध में किये गये विश्लेषणों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर कुछ सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं जो कि अग्रलिखित हैं—

1. जीवाश्म ईंधन के अधिक प्रयोग से कार्बन उत्सर्जन में वृद्धि हुई है तथा इसके फलस्वरूप वायुमण्डल में कार्बनडाई-आक्साइड गैस की मात्रा बढ़ी है। ग्रीन हाउस प्रभाव का मुख्य कारण इसी गैस की वृद्धि है। इसे मनुष्य रोकने हेतु वैकल्पिक ईंधन का प्रयोग कर सकता है।
2. मनुष्य ने अपने शौक तथा धन प्राप्ति के लालच से वन्य जीवों का शिकार इस सीमा तक किया है कि अनेक प्रजातियाँ ही लुप्त प्रायः हो चली हैं जिससे पर्यावरणीय स्थिति असन्तुलित हो जायेगी।
3. यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक विकास किसी विनाश से ही सम्बन्धित है। देश के पर्यावरण को सन्तुलित बनाये रखने के लिये मनुष्य को उन तकनीकों का उपयोग करना चाहिये जो विनाश रहित विकास पर आधारित हो। ऐसी स्थिति में यदि उत्पादन कम भी होता हो तो उसे स्वीकार करना चाहिये।
4. अधिक आबादी की अन्न और आवास की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु देश के घने जंगलों को भारी मात्रा में काट दिया गया है। इससे पर्यावरण ह्रास हुआ है। वन्य जीवों की संख्या में कमी, जलवायु में परिवर्तन, वर्षा की कमी और रेगिस्तानी क्षेत्रों में वृद्धि इसके दुखद परिणाम हैं। मनुष्य को जनसंख्या वृद्धि को रोकने में सहयोग करना चाहिये।
5. ग्रीन हाउस/वैश्विक तापवृद्धि/प्रदूषण/पर्यावरण संरक्षण के विषय में ज्ञान अर्जित कर दूसरों को भी प्रेरित करें। विद्यालयों एवं कालोनियों में इनवॉयरमेन्ट क्लब का गठन करके अच्छी पहल की जा सकती है।
6. इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के उपयोग के बाद उनके प्लग हटा दें। अक्सर कम्प्यूटर खुले रहते हैं इससे कम्प्यूटर पर कोई असर नहीं होता है लेकिन ऊर्जा तो खर्च होती है हमेशा अपने कम्प्यूटर,

प्रिन्टर, टी.वी., रेडियो आदि को बन्द करें।

7. बर्तन व कपड़े धोने की मशीनें तभी चलायें जब वह पूरी तरह भरी हो। ऐसे बिजली के उपकरणों को खरीदें जिस पर एनर्जी स्टार के पांच स्टार (अधिकतम ऊर्जा कुशल इस प्रकार सर्वाधिक बचत) वाला ही खरीदें।
8. बोतल बन्द पानी, फास्ट फूड का प्रयोग न करें क्योंकि इसकी पैकिंग व प्रयोग में इस्तेमाल प्लास्टिक प्रयोग से ज्यादा ऊर्जा खर्च होती है जिसके फलस्वरूप वातावरण प्रदूषित होता है।
9. विद्युत संयन्त्र एयरकंडीशनर का प्रयोग करते समय 24 डिग्री सेल्सियस रखें क्यों कि 24 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा हरेक डिग्री सेल्सियस पर बिजली की खपत (5 प्रतिशत) से ज्यादा होती है तथा फ्रिज या फ्रीजर को कभी खाली न रखें एवं तापमान भी बहुत कम न करें फ्रिज का तापमान 18 से 15 डिग्री और फ्रीजर का तापमान 3 से 5 डिग्री सेल्सियस के मध्य में रखें।
10. जन यातायात कार्बन्स के वातावरण में उत्सर्जन को रोकने का सबसे बड़ा साधन है। इसलिये अपने रोजमर्रा के आवागमन के लिये बसों या मेट्रो का इस्तेमाल करें और पर्यावरण संरक्षण में सहयोग दें।
11. खेतों या बगीचों में प्राकृतिक उत्पादों से बनाई गई खाद का इस्तेमाल करके। यहाँ तक कि बगीचे में पेड़-पौधे की फल व पत्तियों, फलों के छिलके आदि को एक साथ कुछ समय के लिये जमीन में दबाकर रखने से बनाई गयी, घरेलू खाद का भी प्रयोग करें कृत्रिम खाद का प्रयोग न करें।

सन्दर्भ सूची

- ◆ कुमार संतोष, ए.एन. सिंह, ग्लोबल वार्मिंग एण्ड क्लाइमेट चेन्ज वाइस-ए-वर्षा, एग्रीकल्चर प्रोजेक्टविटी क्वाटरनी, जियोलॉजिकल प्रासेस : नेचुरल हार्जट्स एण्ड क्लाइमेट चेन्ज :25-26 फरवरी, 2009
- ◆ कुमार, अरविन्द, डिजास्टर इकोलॉजी एण्ड इन्वायरमेन्ट, दया पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली : 2007
- ◆ सिंह, सी.पी., इन्वायरमेन्टल लॉ, लखनऊ संस्करण 5वाँ : 2008
- ◆ आईलैण्ड, इको सी.वॉन, इन्वायरमेन्टल एण्ड डेवलपमेन्ट, इकोनामिक्स, वॉल्यूम-13 पार्ट अक्टूबर : 2008
- ◆ स्वर्णकार जी.पी., पर्यावरण एवं जनसंख्या, पोइन्टर पब्लिसर्स जयपुर, प्रथम संस्करण : 1998
- ◆ शर्मा, एच.एल., पर्यावरण के समसामयिक आयाम, एप्पल प्रिन्ट एण्ड आर्ट्स, जयपुर, प्र. सं. : 2003
- ◆ पावटी, हंस पीटर्स विकर्ड, इन्वायरमेन्टल एण्ड नेचुरल रिसोर्स अस-इन्ट्रोडक्सन टू द स्पेशल, इसू : 2006
- ◆ सक्सेना, एच.एम., इन्वायरमेन्टल जियोग्राफी, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण : 2004
- ◆ बरनार्ड, जूलियन, वर्ड आफ साइन्स, पैरागॉन पब्लिकेशन, यू.के. : 1999
- ◆ वालदिया, के.एस., इन्वायरमेन्टल जियोलॉजी इंडियन कान्टेस्ट्स, टाटा मैक्सग्रो, हिल पब्लिशिंग कम्पनी लि0, नई दिल्ली : 1987
- ◆ मुस्तफा, मलिक कासिम, क्लाइमेट चेन्ज नो लान्गर डिस्टेन्स रियाल्टी, स्टेटिग्राफिक, स्टडीज वाल्यूम-XX VII : नवम्बर, 03, 2007
- ◆ सुक्टान, फिलिप्स डब्ल्यू, नेचर इन्वायरमेन्ट एण्ड सोसाइटी, ब्रिटिश सोसियोलॉजिकल एसोशियेशन, चीन : 2004
- ◆ विलियमयी, पी. मैनी ऑन, यू. कम्प्यूनिंग, प्रिन्सिपल आफ इन्वायरमेन्टल साइन्स इन्व्वायरी, कम्प्यूनिंग एण्ड एप्लीकेशन, तृतीय संस्करण : 2006
- ◆ सिंह प्रवीन, ए टेस्ट बुक ऑफ इंजीनियरिंग एण्ड जनरल जियोलॉजी, कठारिया एण्ड सन्स, नई दिल्ली- छठा संस्करण : 2001
- ◆ डोयल, टिमायोथ, इन्वायरमेन्टल एण्ड पॉलिटिक्स रोडियोएज, लन्दन, यू.एस.ए., प्रथम संस्करण : 1998

समाचार पत्र :

- ◆ अमर उजाला, दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान, टाइम्स द टाइम्स आफ इण्डिया ।



जनपद जालौन के स्नातक स्तरीय महाविद्यालयों के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की व्यवसायिक सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

दयाशंकर

प्रवक्ता—बी० एड० विभाग, बंशीधर महाविद्यालय, उरई

शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास की जननी है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन होता है और मानव सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनता है। शिक्षा एक विशिष्ट कार्य है और यह विशिष्ट कार्य समाज के जिन व्यक्तियों द्वारा किया जाता है उन्हें शिक्षक कहा जाता है। शिक्षक शिक्षा प्रक्रिया का एक प्रमुख उपयोगी हिस्सा है। शिक्षक ही विद्यालय तथा शिक्षा पद्धति की वास्तविक गत्यात्मक शक्ति है। शिक्षक ही वह शक्ति है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आने वाली सन्ततियों पर अपना प्रभाव डालती है। शिक्षक ही राष्ट्रीय एवं भौगोलिक सीमाओं को लांघकर विश्व व्यवस्था तथा मानव जाति को उन्नति के पथ पर अग्रसर करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि मानव समाज एवं देश की उन्नति उत्तम शिक्षकों पर निर्भर है।

प्राचीन काल में शिक्षक का समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। शिक्षक को बालक का बौद्धिक एवं आध्यात्मिक पिता माना जाता था। शिक्षक बालक को पाठ्यवस्तु की मुख्य बातें कंठस्थ करवाता था और बालक को इतना योग्य बना देता था कि वह अपना जीवन निर्वाह कर सके। किन्तु आज समाज के परिवर्तित स्वरूप के कारण शिक्षक के उत्तरदायित्व एवं शिक्षा के उद्देश्य दोनों व्यापक हो गये हैं। आज की शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास कर उसे समाज एवं राष्ट्र का उपयोगी एवं योग्य नागरिक बनाना है।

प्राचीनकाल में शिक्षण कार्य अपनी इच्छा एवं रुचि से किया जाता था शिक्षण कार्य मात्र जीविकोपार्जन का साधन नहीं था बल्कि इसे एक पवित्र कार्य माना जाता था। शिक्षण एक व्यवसाय न होकर आध्यात्मिक कार्य था, उस समय शिक्षक अपने व्यवसाय से पूर्ण सन्तुष्ट था किन्तु वर्तमान में शिक्षण कार्य जीविकोपार्जन का साधन बन गया है। आज शिक्षक का शिक्षण के प्रति रुझान हो या न हो किन्तु वह इसे अपनी जीविका के रूप में चुन लेता है। शिक्षक की इस व्यवसाय के प्रति रुचि है या नहीं, वे अपने शिक्षण कार्य के प्रति सन्तुष्ट हैं या नहीं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर हम यह सोचने को विवश हैं कि आज शिक्षक की क्या स्थिति है? वर्तमान में शिक्षक आलोचना का विषय क्यों है? क्या शिक्षक अपने सभी उत्तरदायित्वों का निर्वहन ईमानदारी से कर रहा है। वह अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन तभी कर सकता है जब उसकी व्यवसाय के प्रति रुचि होगी। अतः शिक्षक को अपने व्यवसाय के प्रति सन्तुष्टि है या नहीं बस इसी तथ्य का पता लगाने हेतु यह शोध कार्य किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन :-

पंजाब यूनीवर्सिटी के एक छात्र एस0आर0 पानू द्वारा किये गये अध्ययन में यह पाया गया कि अध्यापकों की व्यवसायिक सन्तुष्टि इनमें रुचि के अनुकूल विषयों को पढ़ाने उनके योग्यतानुसार सम्मान एवं वेतन की मात्रा पदोन्नति की विधियों एवं अध्यापकों के प्रति लोगों के दृष्टिकोण पर निर्भर है। इस अध्ययन में यह भी पाया गया कि व्यवसायिक सन्तुष्टि एवं आयु लिंग योग्यता एवं वैवाहिक स्थिति में अर्थपूर्ण सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार पंजाब यूनीवर्सिटी (चण्डीगढ़) के ही जे0एस0 साध ने उत्तर भारत के चार महाविद्यालयों के अध्यापक "एकेडमिक स्वतंत्रता का अध्ययन व्यवसायिक सन्तुष्टि के संदर्भ" में किया। जिनमें 8 प्रोफेसर, 12 रीडर, 40 लेक्चरर थे। इस अध्ययन में विभिन्न स्तरों के अध्यापकों में स्वीकारात्मक एवं अपूर्ण सम्बन्ध पाया गया जैसा कि निम्न सारिणी से स्पष्ट है।

अध्यापक श्रेणी	सह सम्बन्ध
1. प्रोफेसर	63
2. रीडर	45
3. लेक्चरर	37

सभी प्रोफेसरों ने प्रतिवेदन किया कि एकेडमिक स्वतंत्रता बातों से विशेष सन्तुष्ट हैं। 37.5 प्रतिशत प्रोफेसरों में 75 प्रतिशत संतोष था। अध्ययन में यह भी पाया गया कि प्रोफेसरों में रीडर एवं लेक्चरर की अपेक्षा एकेडमिक स्वतंत्रता की सन्तुष्टि अधिक है।

अध्ययन की आवश्यकता :-

शिक्षक समाज का अत्यंत महत्वपूर्ण व्यक्ति है जो समाज को नई दिशा प्रदान करता है किन्तु प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान समय तक का अवलोकन करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षक की स्थिति में लगातार गिरावटी आती जा रही है। आज शिक्षक के मूल्य गिरते जा रहे हैं। उसे समाज में अपमान की दृष्टि से देखा जाता है। वर्तमान में शिक्षक आलोचना का विषय है जबकि शिक्षक राष्ट्र का भाग्य निर्माता होता है। एक राष्ट्र की उन्नति उत्तम शिक्षक पर ही निर्भर करती है। आज सरकार ने शिक्षकों (विशेषकर महाविद्यालयी शिक्षकों) को अन्य कर्मचारियों से अधिक आकर्षक वेतन एवं सुविधायें प्रदान की हैं। किन्तु फिर भी शिक्षक अपने व्यवसाय के प्रति सन्तुष्टि का अनुभव नहीं करते हैं। इसके क्या कारण हैं ? यह जानना अत्यंत आवश्यक है।

उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध कार्य के लिये निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं।

1. स्नातक स्तरीय महाविद्यालयों के अध्यापकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि का अध्ययन करना।
2. स्नातक स्तरीय महाविद्यालयों के अध्यापिकाओं की व्यावसायिक सन्तुष्टि का अध्ययन करना।
3. स्नातक स्तरीय महाविद्यालयों के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की व्यावसायिक सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना :-

स्नातक स्तरीय महाविद्यालयों में अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की व्यावसायिक सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि :-

प्रस्तुत अध्ययन हेतु वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन को पूर्ण करने के लिये निम्न शोध अभिकल्प का निर्धारण किया गया है :

शोध विधि

अनुसंधान कार्य हेतु वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श :-

न्यादर्श के रूप में जालौन जनपद में स्नातक स्तरीय महाविद्यालय के 50 अध्यापक एवं 50 अध्यापिकाओं को अन्तिम रूप से चयनित किया गया है। न्यादर्श के चयन के लिये यादृच्छिक विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की विद्यालयीवार तालिका

तालिका-प्रथम

क्रमांक	महाविद्यालय का नाम	अध्यापक	अध्यापिकायें
1	डी0वी0 कालेज उरई (वित्त पोषित)	10	10
2	गांधी महाविद्यालय उरई (वित्त पोषित)	10	10
3	श्रीमती अमृतकुंवर महाविद्यालय, अटराकलां (स्ववित्त पोषित)	10	10
4	कालपी कालेज कालपी (वित्त पोषित)	10	10
5	स्व0 गफूर खां महाविद्यालय, कदौरा (स्ववित्त पोषित)	10	10
	योग :-	50	50

शोध उपकरण : प्रस्तुत अध्ययन में व्यावसायिक सन्तुष्टि के मापन हेतु आर0एस0 मिश्र, प्रवक्ता शिक्षा विभाग, आगरा, श्रीमती मनोरमा तिवारी और डी0एन0 पाण्डेय, मेडिकल कालेज गोरखपुर द्वारा निर्मित एवं प्रमाणीकृत प्रश्नावली प्रपत्र का प्रयोग किया गया है इसमें प्रश्नों की संख्या 41 है जो 11 विभिन्न क्षेत्रों में विभक्त हैं।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या :- प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु शोधकर्ता ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रत्येक प्रश्न का विश्लेषण किया है। उत्तर प्रतिशत द्वारा निकाला गया है।

क्षेत्रवार परिणामों की व्याख्या -

प्रथम क्षेत्र- 'सुरक्षा' : सुरक्षा के सम्बन्धित प्रश्नों को देखने से पता चलता है कि अध्यापक एवं अध्यापिकायें दोनों ही अपनी नौकरी को सुरक्षित समझते हैं और उन्हें इस बात की कोई चिन्ता नहीं है कि उनकी नौकरी खतरे में है। यद्यपि अध्यापिकाओं का नौकरी के प्रति सुरक्षा का प्रतिशत अधिक है। इसका कारण उनमें कार्य के प्रति सजगता, लगन, आत्मविश्वास है जबकि अध्यापकों को प्रतिशत कम होने का कारण आपसी तनाव व दूषित राजनीति हो सकता है।

द्वितीय क्षेत्र- 'वेतन' : वेतन से सम्बन्धित प्रश्नों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि अध्यापक एवं अध्यापिकायें दोनों ही अधिक वेतन चाहते हैं। अध्यापिकायें इस बात को मानती हैं कि उन्हें उनकी योग्यतानुसार वेतन मिल रहा है। अध्यापकों का प्रतिशत कम है। इसका कारण है कि अध्यापक को घर

का मुखिया होने के नाते सम्पूर्ण खर्च वहन करना पड़ता है।

तृतीय क्षेत्र— 'सेवा शर्तें' : सेवा शर्तों से सम्बन्धित प्रश्नों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि अध्यापक एवं अध्यापिकायें लगभग सामान्य रूप से सहमत हैं। दोनों अपने कार्य में रुचि प्रकट करते हैं। कुछ लोग असहमत हैं वे शायद दूर दराज से आने में कठिनाई महसूस करते हैं, उन्हें अधिक असुविधा होती है।

चतुर्थ क्षेत्र— 'भविष्य' : नौकरी में उन्नति के अच्छे अवसरों से सम्बन्धित प्रश्नों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि दोनों यह मानते हैं कि उनकी नौकरी में उन्नति के अच्छे अवसर नहीं हैं लेकिन अध्यापिकाओं का प्रतिशत इस बात में अधिक है वे यह मानती हैं कि इस नौकरी में उन्नति के अवसर नहीं हैं।

पंचम क्षेत्र— 'अच्छे कार्य' : अच्छे कार्यों से सम्बन्धित प्रश्नों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि अध्यापक एवं अध्यापिकायें दोनों सहमत हैं कि उनके कार्यों की मान्यता प्राप्त होती है। वैसे अध्यापकों की अपेक्षा अध्यापिकायें इस बात को अधिक मानती हैं।

षष्ठ क्षेत्र— 'सामाजिक प्रतिष्ठा' : सामाजिक प्रतिष्ठा से सम्बन्धित प्रश्नों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि अध्यापक एवं अध्यापिकायें दोनों सहमत हैं कि उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त है।

सप्तम क्षेत्र— 'कार्य की दशायें' : कार्य दशाओं से सम्बन्धित प्रश्नों के विश्लेषण से पता चलता है कि अध्यापक एवं अध्यापिकायें लगभग समान रूप से सहमत हैं कि हम अधिक व्यस्त रहते हैं अपने कार्य को आकर्षक समझते हैं।

अष्टम क्षेत्र 'नौकरी' : नौकरी से सम्बन्धित प्रश्नों में नौकरी के प्रति अपनी रुचि के विषय में दोनों पूर्ण रूप से सहमत हैं।

नवम क्षेत्र— 'निरीक्षण' : निरीक्षण सम्बन्धित प्रश्नों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि अध्यापक एवं अध्यापिकायें दोनों ही इसके विरोध में अपना मत प्रकट करते हैं।

दशम क्षेत्र— 'आवासीय व्यवस्था' : आवासीय व्यवस्था से सम्बन्धित प्रश्नों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि अध्यापकों की अपेक्षा अध्यापिकायें आवासीय व्यवस्था से सन्तुष्ट हैं।

ग्यारहवां क्षेत्र— 'अवकाश' : अवकाश सम्बन्धी प्रश्नों का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि अध्यापक एवं अध्यापिकायें दोनों इस बात से असहमत हैं कि मेरा कार्य ऐसा है कि अवकाश का समय नहीं मिलता थोड़े बहुत प्रतिशत में अन्तर अवश्य है। फिर भी दोनों सहमत हैं कि अवकाश का समय मिलता है।

अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं के मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक निष्पत्ति को दर्शाने वाली तालिका—

तालिका—द्वितीय			
वर्ग	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रान्तिक निष्पत्ति (Cr or t)
अध्यापक	137.3	13.75	
अध्यापिकायें	146.7	13.57	3.48

प्रस्तुत तालिका से ज्ञात होता है कि अध्यापकों के समूह का मध्यमान 137.5 है जबकि अध्यापिकाओं

के समूह का मध्यमान 146.7 है। क्रान्तिक निष्पत्ति 3.48 है।

T का मान 5 प्रतिशत तथा 1 प्रतिशत स्तर पर सार्थक होने के लिये 1.96 तथा 2.58 या इससे अधिक होना चाहिये। चूंकि यहां T का आंकलित मान 3.48 है जो कि सारिणी मान से बहुत अधिक है।

यहां 5 प्रतिशत तथा 1 प्रतिशत पर मान सार्थक हुआ। अतः शोध कार्य में मानी गयी परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। अतः हम कह सकते हैं कि अध्यापक एवं अध्यापिकाओं के मध्यमानों में अन्तर है। अर्थात् जो अन्तर दिखाई पड़ रहा है वह वास्तविक अन्तर है। अतः अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की व्यावसायिक सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर है।

निष्कर्ष :-

1. अध्यापक एवं अध्यापिकायें अपनी सुरक्षा एवं नौकरी के प्रति सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं। किन्तु अध्यापिकायें अपनी नौकरी को अधिक सुरक्षित समझती हैं।
2. अध्यापक एवं अध्यापिकायें दोनों वर्तमान में मिल रहे वेतन से असन्तुष्ट हैं।
3. महाविद्यालय के अध्यापक एवं अध्यापिकायें दोनों ही सेवा शर्तों से सन्तुष्ट हैं।
4. अध्यापक एवं अध्यापिकायें इस बात से असहमत हैं कि भविष्य में उन्नति के अच्छे अवसर हैं।
5. महाविद्यालय के अध्यापक एवं अध्यापिकायें दोनों का सुझाव यह है कि उन्हें प्रतिष्ठा मिलती है। अतः वे प्रतिष्ठा की दृष्टि से व्यवसाय को श्रेष्ठ मानते हैं।
6. कार्य समय आदि की दृष्टि से महाविद्यालय के अध्यापक एवं अध्यापिकायें सन्तुष्ट हैं।
7. आवासीय व्यवस्था से सम्बन्धित प्रश्नों का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि अध्यापकों की अपेक्षा अध्यापिकायें आवासीय व्यवस्था से अधिक सन्तुष्ट हैं।
8. अध्यापक एवं अध्यापिकाओं दोनों का यह मानना है कि अवकाश के लिये पर्याप्त समय मिल जाता है।
9. महाविद्यालय के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की व्यवसायिक सन्तुष्टि में अन्तर है।
10. व्यवसाय के प्रति रुचि दोनों में समान रूप से पाई जाती है।

सुझाव :-

अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं को अपने व्यवसाय के प्रति और अधिक सन्तुष्टि का अनुभव हो सके, इसके लिये प्रमुख सुझाव निम्न है :-

1. महाविद्यालय के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं को उनकी योग्यतानुसार अन्य व्यवसाय में लगे लोगों के समान स्तर एवं वेतन दिया जाये एवं अधिक से अधिक सुविधायें प्रदान की जायें।
2. जो अध्यापक प्रशंसनीय कार्य करे, चाहे वे वित्तपोषित महाविद्यालय के हों या स्ववित्तपोषित महाविद्यालय के, उन्हें अग्रिम इन्क्रीमेन्ट, वार्षिक वेतनवृद्धि आदि सुविधायें दी जायें।
3. महाविद्यालय के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की समस्या के निवारण हेतु यू0जी0सी0 द्वारा एक संस्था का निर्माण किया जाये तो इन शिक्षकों की कठिनाइयों का निवारण करे।
4. पुरस्कृत अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं को प्रथम श्रेणी का यात्रा व्यय, जो राजपत्रित अधिकारी के स्तर के बराबर हो, दिया जाना चाहिये।

5. सरकार द्वारा अध्यापक एवं अध्यापिकाओं को महाविद्यालयी प्रशासनिक कार्यों में सदस्यता प्रदान करनी चाहिये।
6. अध्यापक एवं अध्यापिकाओं को उनके पारिवारिक एवं अन्य समस्याओं के समाधान के लिये हर संभव प्रयास किये जायें, जिससे वे किसी प्रकार के तनाव में न रहें और शिक्षण कार्य सुचारु रूप से कर सकें।
7. इसके अतिरिक्त अध्यापक एवं अध्यापिकाओं को भी इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वे अपने उत्तरदायित्वों का पालन भलीभांति एवं ईमानदारी से करें।
8. स्थानान्तरण के समय अध्यापक एवं अध्यापिकाओं को यात्रा भत्ता (T.A.) दिया जाना चाहिये।
9. महाविद्यालय के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं के लिये महाविद्यालय परिसर के पास आवासीय भवनों की व्यवस्था की जाये जिससे शिक्षक आज की आवासीय कठिनाइयों से मुक्त हो सकें।

संदर्भ सूची

1. कपिल एच0के0 : सांख्यिकी के मूल तत्व, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर, 1975
2. कपिल एच0के0 : अनुसंधान विधियाँ, आगरा, हर प्रसाद भार्गव
3. सुखिया, एस0पी0 एवं मेहरोत्रा, आर0एन0 : शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर
4. गैरिट, एच0ई0 : स्टेटिस्टिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन
5. राय, पी0एन0 : अनुसंधान परिचय, आगरा, शिक्षा प्रकाशन
6. लाल, रमनबिहारी : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त मेरठ, रस्तोगी पब्लिकेशन
7. भार्गव, महेश : आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, आगरा, हर प्रसाद भार्गव
8. अग्रवाल, वाई0पी0 : सैम्पलिंग टैक्नीक, दिल्ली, विकास पब्लिकेशन
9. शर्मा, आर0ए0 : शिक्षा अनुसंधान
10. शुक्ला, आर0एस0 : टीचर एजुकेशन इन इंडिया दिल्ली, विकास पब्लिकेशन



सहायता प्राप्त एवं स्ववित्त पोषित शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० राजेश बाबू

प्राचार्य, सर्वधर्म महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

किसी भी देश की उन्नति, विकास तथा भविष्य उसके अच्छे नागरिकों पर निर्भर करता है। अच्छे नागरिकों का सामान्य उद्गम उसके अच्छे विद्यालय हैं। अच्छे विद्यालय विकसित होते हैं अच्छे शिक्षकों से, अच्छे शिक्षकों का निर्माण होता है अच्छे शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों से। शिक्षकों की बढ़ती माँग के कारण अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों की देश में विशेष कर उत्तर प्रदेश में बाढ़ आ गई है। पहले से चले आ रहे महाविद्यालयों को सरकार से अनुदान प्राप्त होता है परन्तु नये महाविद्यालयों को कोई सरकारी अनुदान प्राप्त नहीं होता है अतः इन्हें स्ववित्त पोषित महाविद्यालय कहा जाता है, इनका लक्ष्य मूलतः धन कमाना है अतः इनके शैक्षिक स्तर पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है।

आज के शिक्षक को बाल कृष्ण जोशी का परामर्श है – शिक्षक को अपने को केवल श्रमजीवी नहीं समझना चाहिये जिसका कार्य 10.00 बजे प्रारम्भ होकर सांय 4.00 बजे समाप्त हो जाता है, जब वह अपने पैरों की धूल झाड़कर, जीविका प्रदान करने वाली विद्यालय रूपी फैक्ट्री से बाहर जा सकता है।

प्रकृति की सर्वोत्तम कृति शिशु को परिष्कृत कर मानव बनाने का कार्य शिक्षक का होता है, इंजीनियर की कृति दीवार में छिप जाती है और डाक्टर की त्रुटि कब्र में दफन हो जाती है। यदि अध्यापक की कृति बिगड़ जाये तो उसका परिणाम सारे समाज व राष्ट्र को भोगना पड़ता है। अच्छे अध्यापक के बिना सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली भी असफल हो जाती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि समाज में शिक्षा का स्तर अध्यापक के गुणों पर निर्भर करता है और अध्यापक के गुण उसके प्रशिक्षण पर निर्भर करते हैं।

समस्या : “मेरठ क्षेत्र के सहायता प्राप्त एवं स्ववित्त पोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि का तुलनात्मक अध्ययन।”

समस्या का औचित्य : सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षकों की शिक्षण अभिरुचि का अध्ययन किया गया है। इसके साथ-साथ शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत प्राथमिक शिक्षकों एवं महाविद्यालयी शिक्षकों की शिक्षण अभिरुचि का भी अध्ययन किया गया है। किन्तु स्ववित्त पोषित एवं अनुदान प्राप्त शिक्षकों की शिक्षण अभिरुचि में अन्तर को जानने का प्रयास नहीं किया गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि स्ववित्तपोषित महाविद्यालय कुछ वर्ष पूर्व में ही अस्तित्व में आये हैं, अतः इस विषय पर अध्ययन करना औचित्यपूर्ण है।

प्रस्तुत अध्ययन के परिणाम न केवल शिक्षक-प्रशिक्षकों के अध्ययन में सहायक होंगे अपितु शैक्षिक प्रक्रिया को भी प्रभावित करेंगे। अच्छे शिक्षक-प्रशिक्षक, अच्छे शिक्षक तथा अच्छी शिक्षण प्रक्रिया। कहा

जाता है कि अच्छे शिक्षक बनाये नहीं जाते अपितु वे जन्मजात होते हैं परन्तु आज शिक्षा प्रौद्योगिकी ने यह सिद्ध कर दिया है कि शिक्षण एक विज्ञान है अर्थात् उचित प्रशिक्षण के द्वारा कुछ कौशलों का विकास करके प्रभावी एवं दक्ष शिक्षक बनाये जा सकते हैं। परन्तु क्या वर्तमान समय में शिक्षक प्रशिक्षकों की शिक्षण व्यवसाय में अभिरुचि है? इस तथ्य की ओर अभी तक किसी भी शोधकर्ता का ध्यान नहीं गया है। अतः इस दिशा में अध्ययन करना औचित्यपूर्ण है।

अध्ययन के उद्देश्य :

- स्ववित्त पोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक—प्रशिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि का अध्ययन करना।
- सहायता प्राप्त शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक—प्रशिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि का अध्ययन करना।
- स्ववित्त पोषित तथा सहायता प्राप्त शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक—प्रशिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनायें :

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित शून्य परिकल्पना विकसित की गयी है—

“अनुदान प्राप्त शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों तथा स्ववित्त पोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक—प्रशिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।”

अध्ययन का क्षेत्र : प्रस्तुत अध्ययन को उत्तर प्रदेश के मेरठ क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले स्ववित्त पोषित तथा सहायता प्राप्त शिक्षक—प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक—प्रशिक्षकों तक सीमित किया गया है।

अध्ययन की विधि : प्रस्तुत शोधकार्य सर्वेक्षण विधि तथा ऑकड़ों पर आधारित अध्ययन है। इस अध्ययन में 500 शिक्षक—प्रशिक्षकों का समूह ही सम्पूर्ण न्यादर्श है जिसमें से 55 शिक्षक—प्रशिक्षक सहायता प्राप्त तथा 426 शिक्षक—प्रशिक्षक स्ववित्त पोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत हैं।

शिक्षक—प्रशिक्षकों की अभिरुचि का आंकलन करने के लिए शोधकर्ता ने डॉ० एस० पी० कुलश्रेष्ठ द्वारा निर्मित शिक्षण अभिरुचि मापनी का प्रयोग किया है। इस मापनी में व्यावसायिक परीक्षण को तीन भागों में बाँटा गया है— 1. सामान्य अभिरुचि परीक्षण, 2. व्यावसायिक अभिरुचि परीक्षण, 3. शैक्षिक अभिरुचि परीक्षण। प्रस्तुत परीक्षण में विभिन्न व्यावसायिक रुचियों से सम्बन्धित 200 व्यवसाय हैं। इस प्रपत्र में प्रत्येक व्यावसायिक क्षेत्र के अन्तर्गत अधिकतम 20 तथा न्यूनतम 0 (शून्य) प्राप्तांक हैं। फलांकन हेतु प्रत्येक सही चिह्न हेतु 1 अंक तथा गलत चिह्न हेतु 0 अंक प्रदान किया गया है। मापनी की विष्वसनीयता 0.69 तथा वैधता 0.83 पाई गई है। इसका मूल्यांकन प्रपत्र में दिये गये निर्देशों के आधार पर किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियाँ

प्रस्तुत अध्ययन के प्रदत्तों के चित्रण, विश्लेषण एवं विवेचन के लिए मध्यमान, माध्यिका, मानक विचलन, विषमता गुणांक, ककुदता तथा टी-टेस्ट आदि सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है—

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

तालिका संख्या 1

शैक्षिक अभिरुचि के प्राप्तांकों का मध्यमान, माध्यिका, मानक विचलन विषमता गुणांक तथा ककुदता

समूह	संख्या	मध्यमान	माध्यिका	मानक विचलन	विषमता	ककुदता
सम्पूर्ण न्यादर्श	481	93.72	94.72	26.191	— 0.1145	0.211

तालिका संख्या 2

स्ववित्त पोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय तथा सहायता प्राप्त शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के शिक्षक-प्रशिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि के मध्यमान, मानक विचलन तथा "टी" का मान

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	स्वतंत्रता का अंश	"टी" का मान
सहायता प्राप्त शिक्षा महाविद्यालय के शिक्षक प्रशिक्षक	55	102.78	32.98	479	1.52
स्ववित्त पोषित शिक्षा महाविद्यालयों के शिक्षक प्रशिक्षक	426	92.55	34.76		

स्वतंत्रता के अंश 479 पर टी टेस्ट का .05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.98

परिणाम : सहायता प्राप्त शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों एवं स्ववित्त पोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के शिक्षक प्रशिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है। उक्त परिकल्पना अस्वीकृत हुई क्योंकि सहायता प्राप्त शिक्षक-प्रशिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि $M = 102.78$ सार्थक रूप से स्ववित्त पोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक प्रशिक्षकों की अभिरुचि $M = 92.55$ से अधिक है। अतः सहायता प्राप्त शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि स्ववित्त पोषित शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों की शैक्षिक अभिरुचि से वास्तविक रूप से अधिक है और हम निष्कर्ष निकालते हैं कि स्ववित्त पोषित शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों की शिक्षण में अभिरुचि संतृप्त न होकर अन्य उद्दीपकों की ओर उन्मुख होती जा रही है अर्थात् स्ववित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों की साहित्य अध्ययन रुचियाँ बदल रहीं हैं। स्ववित्त पोषित शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक प्रशिक्षकों की बदलती व्यावसायिक प्राथमिकताएं और व्यक्तिगत अभिलाषाएं एवं शिक्षण व्यवसाय से असम्बन्धित व्यक्तियों के साथ पसन्दगी तथा विद्यालयी विषयों से विमोह आदि बिन्दुओं के पीछे शायद यह कारण हो सकता है कि शिक्षक भी वैश्वीकरण एवं अर्थव्यवस्था के मायाजाल में फँसकर अन्य कार्यों (उद्दीपकों) के प्रति रुचि रखने लगे हैं।

निष्कर्ष :

- ♦ प्रस्तुत अध्ययन सहायता प्राप्त एवं स्ववित्त पोषित शिक्षा महाविद्यालयों के शिक्षक प्रशिक्षकों को

शैक्षिक अभिरुचि के सम्बन्धों में निष्कर्ष के आधार पर विभिन्न सूचनाएं देगा, जिससे उन्हें शिक्षक व्यवहार के सिद्धान्त एवं शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम से जोड़कर उपादेय बनाया जा सके।

- ◆ अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष प्रशिक्षण कार्यक्रम में सुधार लाने का प्रयास करेंगे।
- ◆ अध्ययन के परिणामों को दृष्टिगत रखते हुए प्रशिक्षण महाविद्यालय स्कूली आवश्यकताओं के अनुरूप प्रवेश प्रक्रिया में सुधार ला सकते हैं।
- ◆ अध्ययन निष्कर्षों के आधार पर प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित शिक्षकों को उनके कार्य निष्पादन के आधार पर जाना जा सकता है और उनके व्यवहार में परिवर्तन किया जा सकता है।
- ◆ शिक्षक अभिरुचि के सन्दर्भ में स्ववित्त एवं सहायता प्राप्त शिक्षा महाविद्यालयों के शिक्षक-प्रशिक्षकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। ऐसा परिणाम न तो आशानुरूप है और न ही वांछनीय है।
- ◆ शिक्षक-प्रशिक्षकों को अधिक गुणवत्तापरक बनाने के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद को वृहद स्तर पर सतत एवं सघन निरीक्षण कार्यक्रम चलाने चाहिए।
- ◆ विद्यालय को देखकर प्राचार्य का तथा प्राचार्य को देखकर विद्यालय का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। प्राचार्य शिक्षा के विविध सोपानों के मध्य समन्वय स्थापित करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सार्थक भूमिका का निर्वहन करते हैं। अतः प्राचार्य भी प्रस्तुत शोध सम्बन्धी निष्कर्षों से अवगत होकर अपनी कार्य प्रणाली से शिक्षकों के हृदय परिवर्तन के साथ-साथ उन्हें रचनात्मक व्यवहार की ओर उत्प्रेरित कर सकते हैं।
- ◆ महाविद्यालय के प्रशासक उक्त शोध के निष्कर्षों से शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थिति का अध्ययन करने की दृष्टि से यह समझ पायेंगे कि प्रदेश में इन शिक्षा महाविद्यालयों का क्रमिक विकास किस प्रकार हुआ है। इनमें प्रबन्ध सम्बन्धी कौन-कौन सी कमियाँ हैं।
- ◆ इस अध्ययन से शिक्षक-प्रशिक्षकों की समस्याओं व आवश्यकताओं का पता लगाकर उनकी समय समय पर मदद करने का गंभीर एवं सार्थक प्रयास किया जा सकता है।
- ◆ प्रस्तुत अध्ययन योग्य एवं प्रतिभाशाली व्यक्तियों का चुनाव किस प्रकार किया जाये? के अध्ययन में भी सहायक सिद्ध होगा।
- ◆ प्रस्तुत अध्ययन शिक्षक-प्रशिक्षकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए सहायक सिद्ध होगा।
- ◆ प्रस्तुत अध्ययन के परिणाम स्ववित्तपोषित शिक्षा महाविद्यालयों में सुधार लाने के लिए एवं उन्हें दिशा निर्देश देने में सहायक सिद्ध होंगे।

सन्दर्भ सूची

- ◆ कपिल एच० के०-सांख्यिकीय के मूल तत्व, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशन कचहरी घाट, आगरा।
- ◆ गुप्ता एस० पी० एवं गुप्ता अलका-स्टैटिस्टिकल मैथड इन विहेवियरल साइंस शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- ◆ भटनागर सुरेश-शिक्षा मनोविज्ञान, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
- ◆ मौ० सुलेमान-शिक्षा अनुसंधान की विधियाँ, पटना प्रकाशन लि०, मेरठ।
- ◆ शर्मा आर० ए०-शिक्षा अनुसंधान, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ।
- ◆ बुच एम० बी० -सिक्सथ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन 1993-2000, एन०सी०ई०आर०टी०, नई दिल्ली।



उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्तर के छात्र/छात्राओं की अन्तर्मुखी बहिर्मुखी प्रतिभा का अध्ययन विकासखण्ड जौरा जिला मुरैना के संदर्भ में

अरविंद सिंह तोमर

शोधार्थी

एम.ए. एम.फिल.—शिक्षा शास्त्र

डॉ. रामयश द्विवेदी

रीडर, शिक्षा विभाग

सवधर्म महाविद्यालय, ग्वालियर

मानव समस्त विषयों में जिज्ञासाओं का केन्द्र है मानव जीवन से जुड़े हुए समस्त पहलुओं में तथा मानव जीवन में जो महत्वपूर्ण कारक हैं उनमें से सबसे महत्वपूर्ण चरित्र है। मूल प्रवृत्तियों तथा स्थाई भावों का संगठन आत्म गौरव के स्थाई भाव के रूप को ही चरित्र कहा जाता है। चरित्र निर्माण में व्यक्तियों का एक विशेष प्रभाव पड़ता है एवं शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य व्यक्तित्व का सर्वांग विकास करना होता है साधारणतः व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप से लगाया जाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्यक्तित्व न तो बाह्य आवरण ही है और न आंतरिक तत्त्व, बल्कि दोनों ही हैं।

व्यक्तित्व कोई स्थिर अवस्था न होकर एक गतिशील समष्टि है जो पर्यावरण के प्रभाव से बराबर बदलती रहती है यह व्यक्तित्व व्यक्ति के आचार, विचार, व्यवहार क्रियाओं गतिविधियों सभी बातों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

प्रायः हम व्यक्तित्व शब्द का व्यक्ति के चरित्र या नैतिकता के पर्यायवाची शब्द के रूप में भी प्रयोग करते हैं। चरित्र सम्बन्धी कुछ गुणों से मुक्त होने पर व्यक्ति को, अच्छे व्यक्तित्व वाला और कुछ अवगुणों या सामाजिक बुराईयों से ग्रस्त होने पर बुरे व्यक्तित्व वाला कहा जाता है। व्यक्तित्व शब्द का यह प्रयोग भी अपूर्ण और अनुचित है चरित्र सभी प्रकार से केवल नैतिकता और आचार संहिता से अपना सम्बन्ध रखता है जबकि व्यक्तित्व में मानव को सम्पूर्ण बनाने से संबंधित सभी पक्ष समाहित होते हैं।

मनोवैज्ञानिक भाषा में व्यक्ति अपने आप में जो कुछ भी है वही उसका व्यक्तित्व है अपने प्रति और दूसरों के प्रति किये जाने वाले व्यवहार का यह एक समग्र चित्र है। इसप्रकार से निश्चित रूप से “व्यक्तित्व” शब्द बाह्य रूप से आकृति और व्यवहार से अधिक गूढ़ अर्थ सजोय हुए है जिसे निश्चित शब्दों में परिभाषित करना कठिन कार्य है।

आलपोर्ट के अनुसार : “व्यक्तित्व व्यक्ति से निहित उन मनोवैज्ञानिक व्यवस्थाओं का गतिशील संगठन है जो कि वातावरण के साथ उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करती है।”

आइज़ैक के अनुसार : “व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव, बुद्धि और शारीरिक बनावट का थोड़ा बहुत ऐसा स्थायी और स्थिर संगठन है जो वातावरण के साथ उसके अपूर्ण समायोजन को निर्धारण करता है।”

व्यक्तित्व अपूर्ण और विशिष्ट होता है हम सबका व्यक्तित्व अपने ही ढंग का होता है कोई भी दो व्यक्ति चाहे वह समरूप यमज (Identical Twins) ही क्यों न हो किसी भी समय बिल्कुल एक जैसा

व्यवहार नहीं करते हैं। हम में से प्रत्येक अपने ढंग से अपना समायोजन करता है और इस तरह हर एक व्यक्ति का व्यक्तित्व अपने आप में एक अद्भुत और अनूठी वस्तु होती है।

जब व्यक्ति में आत्म चेतना जैसी वस्तु घर करने लगती है तभी से उसके व्यक्तित्व का अस्तित्व प्रकाश में आता है। इस संदर्भ में भाटिया साहिब (H.R. Bhatia) ने लिखा है – “हम कुत्ते को व्यक्तित्व से विभूषित नहीं करते और यहां तक कि एक छोटे बच्चे में भी आत्म चेतना या व्यक्तित्व परिचय का भाव उदय न होने पर व्यक्तित्व जैसी वस्तु नहीं होती है। व्यक्तित्व में व्यक्ति के बारे में सब कुछ निहित होता है यह सब कुछ है जो एक व्यक्ति अपने पास रखता है इसमें व्यवहार के तीनों पक्ष – ज्ञानात्मक, क्रियात्मक और भावात्मक सम्मिलित है तथा इनका क्षेत्र केवल चेतन अवस्था में किये गये व्यवहार तक ही नहीं बल्कि अर्ध चेतन और अचेतन व्यवहार तक फैला हुआ है।

व्यक्तित्व वंशानुक्रम और वातावरण की संयुक्त उपज है। बच्चे के व्यक्तित्व का समुचित विकास करने में दोनों ही अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व एक और अनूठी विशेषता रखता है कि वह किन्हीं विशेष लक्ष्यों की पूर्ति के लिए संघर्षरत रहता है इस दृष्टिकोण को एडलर (Adler) महोदय ने अपनी पुस्तक में खुलकर चर्चा की है उनके अनुसार एक व्यक्ति जिस तरह अपनी समस्याओं को सुलझाता है और जीवन के जो भी उद्देश्य उसने निर्धारित किये हैं उनका भलीभांति अध्ययन करके ही उसके व्यक्तित्व के बारे में कुछ कहा जा सकता है। इस प्रकार व्यक्तित्व को व्यक्ति के जीने के ढंग (Life style of Individual) नाम देकर उन्होंने उसको बहुत ही सारगर्भित अर्थ देने की चेष्टा की है। उसके द्वारा व्यक्तित्व को समग्रता का पूरा चित्र सामने आ जाता है। इसका अर्थ व्यक्ति द्वारा अपने साथ और दूसरों के साथ किये जाने वाले व्यवहार के सभी प्रकार के ढंगों से लगाया जा सकता है। इसके द्वारा किसी एक परिस्थिति में व्यक्ति कैसा व्यवहार करेगा इसका अनुमान लगाने के साथ-साथ बदलती हुई परिस्थिति में उसकी समायोजन करने की क्षमता का भी पता चल सकता है।

व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ हैं। प्रायः सुनते हैं कि किसका व्यक्तित्व सुन्दर है आकर्षक है, प्रभावी है कुछ व्यक्ति और व्यक्तित्व को पर्यायवाची मानते हैं और एक का प्रयोग दूसरे के लिए करते हैं। कोई व्यक्ति जैसा व्यवहार करता है वैसा ही उसका व्यवहार प्रकट होता है व्यक्तित्व को मुख्य रूप से शरीर ग्रन्थि रचना, पर्यावरण और सीखना जैसा कारक ही प्रभावित करते हैं।

व्यक्तित्व तीन प्रकार के होते हैं –

(1) बाहिर्मुखी (2) अन्तर्मुखी (3) उभयमुखी

(1) बाहिर्मुखी :- बाहिर्मुखी उस तथ्य से संबंधित है कि व्यक्ति का बाह्य वातावरण पर प्रभावशीलता क्या है। बाहिर्मुखता व्यक्ति के अन्तर सम्बन्धों से संबंधित रहती है यह व्यक्ति का उत्साहित, बातूनी, मुखर बनाती है इस प्रकार के व्यक्तियों को सामाजिक कार्य में भाग लेने, सामाजिक कार्य करने, व्यवसाय, राजनीति तथा शिक्षा आदि कार्यक्षेत्रों में अधिक से अधिक समय व्यतीत करते हैं। ये समूह में समय बिताना पसंद करते हैं।

(2) अन्तर्मुखी :- अन्तर्मुखता से तात्पर्य व्यक्ति के अपने आप में अकेले रहने में रुचि होने से है। इस सम्बन्ध में आधुनिक अवधारणा यह है कि अन्तर्मुखी व्यक्ति अकेले समय बिताने जैसे – किताब पढ़ने, कम्प्यूटर पर कार्य करने, लेखन, मूर्तिकार, अनुसंधान, चित्रकला, संगीत आदि कार्यों में समय बिताना

पसंद करते हैं। उन्हें भीड़भाड़ में समय बिताना पसंद नहीं है।

(3) उभयमुखता : अन्तर्मुखता तथा बहिर्मुखता आज तक व्यक्ति के केवल इन्हीं दोनों आयामों पर चर्चा होती आयी है लेकिन कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो न तो अन्तर्मुखी श्रेणी में रखे जा सकते हैं और न ही बहिर्मुखी श्रेणी में इस प्रकार व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को उभयमुखी कहते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति आरामदायक जिंदगी जीते हैं तथा समयानुसार सामाजिक कार्यों का आनन्द लेते हैं और आवष्क होने पर एकांत में रहना पसन्द करते हैं।

इसप्रकार शोधार्थी द्वारा इस शोध प्रपत्र में विभिन्न छात्रों के व्यक्तित्व की अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा को उजागर करने की चेष्टा की है।

शोध की आवश्यकता एवं महत्व :

वर्तमान परिवेश में प्रभावशाली व्यक्तित्व के नागरिकों की समाज में कमी होती जा रही है। जिसका उद्गम स्थान मुख्य रूप से किशोरावस्था छात्र/छात्रायें हैं जो परिवार, समाज एवं देश की राष्ट्रीय एकता भावना को प्रेरित कर देश की अखण्डता को एक सूत्र में बांधे रखने में सहयोगी होते हैं ताकि देश में नैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से विकासशील देशों की गिनती में आ सकें।

ज्यादातर किशोरावस्था के छात्र/छात्रायें अपने आप को हजार की भीड़ में सबसे अलग, सबसे ऊँचा और सबसे प्रिय बनाना चाहते हैं। परन्तु अपने भीतर छिपे गुणों को पहचाने और उन्हें सम्हालने की कोशिश नहीं करते ताकि व्यक्ति आकर्षक और प्रभावशाली बन सके।

शोध के उद्देश्य :

1. शहरी क्षेत्र में शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं की अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा का अध्ययन करना।
2. शहरी क्षेत्र में अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं की अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा का अध्ययन करना।
3. ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं की अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा का अध्ययन करना।
4. ग्रामीण क्षेत्र के अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं की अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा का अध्ययन करना।
5. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं की अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा का अध्ययन करना।
6. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं की अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनायें :

1. शहरी क्षेत्र के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं की अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. शहरी क्षेत्र के अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं की अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
3. ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं की अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

4. ग्रामीण क्षेत्र के अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं की अंतर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
5. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं की अंतर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
6. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं की अंतर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध का सीमांकन :

शोधकर्ता ने समयसीमा को दृष्टिगत रखते हुए म.प्र. राज्य के सीमान्तर्गत मुरैना जिले के विकासखण्ड जौरा के शासकीय एवं अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं तक सीमांकित किया है।

अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी प्रतिभा के अध्ययन के लिये मानकीकृत प्रश्नावली का प्रशासन कुल 240 छात्रों पर किया गया है।

न्यादर्श का चयन :

प्रस्तुत शोध कार्य म.प्र. राज्य के मुरैना जिले के अन्तर्गत आने वाले विकासखण्ड जौरा के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के 4 शासकीय तथा 4 अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय का चयन किया है। प्रत्येक विद्यालयों से 30 छात्र/छात्राओं का शोध कार्य हेतु चयन किया गया है।

प्रयुक्त उपकरण :

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु शोधार्थी ने शोध समस्या से संबंधित सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी योग्यता परीक्षण (प्रमाणीकरण डॉ. आर.ए. सिंह) का उपयोग किया है।

शोध विधि :

प्रस्तुत शोध कार्य में सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया है।

शोध कार्य में प्रस्तुत सांख्यिकी :

1. मध्यमान (Mean)
2. मानक विचलन (Standard Deviation)
3. टी परीक्षण (t test)
4. क्रान्तिक अनुपात परीक्षण

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं सत्यापन

तालिका क्रमांक-1

शहरी क्षेत्र के छात्र-छात्राओं के अंतर्मुखी बहिर्मुखी व्यक्तित्व की तुलना

क्र.	क्षेत्र	विद्यालय	छात्र संख्या	M	SD	टी का मान	सार्थकता
1.	शहरी	शासकीय	30	186.5	42.46	0.33	0.05
2.	शहरी	शासकीय	30	190.3	43.26		

पुष्टीकरण : सारणी के अनुसार का t मान 0.33 है जो सार्थकता स्तर 0.05 के मान 2.04 से कम

है अतः परिकल्पना 0.05 स्तर पर स्वीकृत की जाती है अर्थात् शहरी क्षेत्र के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं के अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी व्यक्तित्व में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका क्रमांक-2

ग्रामीण क्षेत्र के छात्र-छात्राओं के अंतर्मुखी बहिर्मुखी व्यक्तित्व की तुलना

क्र.	क्षेत्र	विद्यालय	छात्र संख्या	M	SD	टी का मान	सार्थकता
1.	ग्रामीण	शासकीय	30	170.2	27.03	2.72	0.01
2.	ग्रामीण	शासकीय	30	196.9	44.9		

पुष्टीकरण : सारणी के अनुसार का ज मान 2.72 है जो सार्थकता स्तर 0.01 के मान 2.66 से अधिक है अतः परिकल्पना 0.01 स्तर पर अस्वीकृत की जाती है अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं के अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर है।

तालिका क्रमांक-3

शहरी क्षेत्र के छात्र-छात्राओं के अंतर्मुखी बहिर्मुखी व्यक्तित्व की तुलना

क्र.	क्षेत्र	विद्यालय	छात्र संख्या	M	SD	टी का मान	सार्थकता
1.	शहरी	अशासकीय	30	178.9	47.17	1.33	0.05
2.	शहरी	अशासकीय	30	192.6	44.67		

पुष्टीकरण : सारणी के अनुसार का t मान 1.33 है जो सार्थकता स्तर 0.05 के मान 2.04 से कम है अतः परिकल्पना 0.05 स्तर पर स्वीकृत की जाती है अर्थात् शहरी क्षेत्र के अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं के अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी व्यक्तित्व में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका क्रमांक-4

ग्रामीण क्षेत्र के छात्र-छात्राओं के अंतर्मुखी बहिर्मुखी व्यक्तित्व की तुलना

क्र.	क्षेत्र	विद्यालय	छात्र संख्या	M	SD	टी का मान	सार्थकता
1.	ग्रामीण	अशासकीय	30	164.3	25.47	1.5	0.05
2.	ग्रामीण	अशासकीय	30	175.6	31.57		

पुष्टीकरण : सारणी के अनुसार का t मान 1.5 है जो सार्थकता स्तर 0.05 के मान 2.04 से कम है अतः परिकल्पना 0.05 स्तर पर स्वीकृत की जाती है अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र के अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं के अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी व्यक्तित्व में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

निष्कर्ष :

शोध की प्रक्रिया के दौरान प्रदत्तों के संकलन, प्रदत्तों के विश्लेषण तथा परिकल्पनाओं के सत्यापन एवं परिणामों की व्याख्या के पश्चात् शोधकर्ता निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचा है।

1. शहरी क्षेत्र के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के अंतर्मुखी बहिर्मुखी व्यक्तित्व में समानता है।
2. ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के अंतर्मुखी बहिर्मुखी व्यक्तित्व में समानता का अभाव है।
3. शहरी क्षेत्र के अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के अंतर्मुखी बहिर्मुखी व्यक्तित्व में समानता है।
4. ग्रामीण क्षेत्र के अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के अंतर्मुखी बहिर्मुखी व्यक्तित्व में समानता है।

सुझाव :

1. शासन को सुझाव –

- अ. उच्च. माध्यमिक स्तर की कक्षाओं में शासन को व्यक्तित्व विकास को एक विषय के रूप में रखना चाहिए।
- ब. इस विषय को अनिवार्यता प्रदान की जानी चाहिए।
- स. समय-समय पर इस विषय के पाठ्यक्रम को नवीनता प्रदान की जानी चाहिए।
- द. राज्य स्तर पर प्रतियोगिता आयोजित की जानी चाहिए।
- य. उच्च व्यक्तित्व वाले छात्र-छात्राओं को शासन स्तर पर पुरस्कृत किया जाना चाहिए।

2. शिक्षकों को सुझाव –

- अ. अध्यापन के दौरान शिक्षक छात्रों की समस्याओं का समाधान व्यक्तित्व के बारे में जानकारी देते हुए करें ताकि छात्रों में अच्छे व्यक्तित्व निर्माण करने में रुचि पैदा हो।
- ब. छात्रों से ऐसे प्रश्न पूछे जायें जिनका वे समाधान व्यक्तित्व को प्रदर्शित करत हुए कर सकें।
- स. प्रत्येक सप्ताह में एक दिन छात्रों के मध्य कक्षा स्तर पर प्रतियोगिताएँ आयोजित की जानी चाहिए।
- द. प्रत्येक माह में एक बार छात्रों के व्यक्तित्व प्रतिभा का मूल्यांकन किया जाये और इनके द्वारा प्राप्त अंकों का समावेश उनके प्रगति पत्रक में आवश्यक रूप से किया जाना चाहिए।

3. अभिभावकों को सुझाव –

- अ. अभिभावकों को अपने बालकों से व्यक्तित्व निर्माण के बारे में वार्तालाप करना चाहिए।
- ब. बालकों को इस प्रकार के खेल सामग्री उपलब्ध करानी चाहिए जिससे वे अपने अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण कर सकें।
- स. बालकों में उत्पन्न जिज्ञासा का व्यक्ति निर्माण के सामान्य नियमों के द्वारा समझाना चाहिए।
- द. समय-समय पर बच्चों को भ्रमण पर ले जाना चाहिए जिससे वह प्रकृति की गोद में व्यक्तित्व निर्माण का चिन्तन कर सकें।
- य. बच्चों को इस प्रकार का बाल साहित्य पढ़ने को दिया जाये जिससे वे अपने अच्छे व्यक्तित्व निर्माण पर सोच सकें।

4. छात्र-छात्राओं को सुझाव –

- अ. छात्र-छात्राओं को सदैव अपने प्रत्येक विषय की समस्या को अपने अच्छे व्यक्तित्व के ध्यान में रखते हुए करना चाहिए।
- ब. यदि छात्रों की समस्या का समाधान वह स्वयं नहीं कर पाते तो उसके समाधान के लिए अच्छे व्यक्तित्व वाले शिक्षकों का सहयोग लेना चाहिए।
- स. छात्रों को अपनी कक्षा के छात्रों के साथ गुप बनाकर प्रत्येक समस्या का अच्छे व्यक्तित्व का तुलनात्मक विवरण देकर हल खोजना चाहिए।
- द. अंतर्मुखी बहिर्मुखी छात्रों का वर्गीकरण कर उन्हें अपने गुप के विचारों से सहम कराना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. सिंह डॉ. रामपाल : अधिगम का मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
2. राय पारसनाथ : अनुसंधान परिचय, लक्ष्मीनारायण पुस्तक मंदिर, आगरा
3. शर्मा डॉ. आर.ए. : मानसिक मापन एवं मूल्यांकन, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ।
4. अस्थाना डा. विपिन, अस्थाना डॉ. श्वेता : मनोविज्ञान और शिक्षा के मापन एवं मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
5. पाठक डॉ. पी.डी. : शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
6. कपिल डॉ. एच.के. : सांख्यिकी के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
7. भटनागर डॉ. मीनाक्षी : भटनागर डॉ. आर.पी. शिक्षा अनुसंधान, लावण्य प्रकाशन, मेरठ
8. कपिल डॉ. एच.के. : शैक्षिक एवं सामाजिक अनुसंधान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
9. श्रीवास्तव डॉ. डी.एन. : व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
10. वर्मा डॉ. प्रीति : मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकी, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा



उरई नगर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों की विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

इसरार अहमद

प्रवक्ता, बी०एड०, बंशीधर महाविद्यालय, उरई, जालौन, उ०प्र०

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति को प्रत्यक्ष लाभ पहुँचा कर राष्ट्र एवं समाज को अप्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुँचाती है। वर्तमान समय में शिक्षा का महत्व और भी बढ़ता ही जा रहा है। यही कारण है कि आज साक्षरता आन्दोलन को बढ़ावा दिया जा रहा है। भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ आर्थिक सामाजिक ढाँचा तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है, वहाँ शिक्षा को तत्कालिक दशाओं के अनुसार बनाकर उसकी उपयोगिता को बढ़ाने के लिये शैक्षिक अनुसंधान की आवश्यकता को आज अधिक अनुभव किया जा रहा है।

फ़ोबिल के अनुसार, “शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियाँ और गुण प्रकट होते हैं।”

शिक्षा के क्षेत्र में अनेकों समस्याएँ हैं और नई पैदा भी हो रही हैं। देश में बढ़ रहे नित नवीन शिक्षा के क्षेत्रों के कारण विद्यार्थियों द्वारा सही शिक्षा के क्षेत्रों का चुनाव करना एक समस्या का प्रश्न बन जाता है। शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक बालक का अपनी वैयक्तिक भिन्नताओं के अनुसार अधिकतम विकास कराना है। एक कक्षा के विद्यार्थियों में अधिगम तथा विकास के स्तर के दृष्टिकोण से बहुत अधिक अन्तर पाया जाता है। यह इस कारण होता है कि सभी बच्चे आनुवांशिकता की दृष्टि से दूसरे बच्चों से भिन्न होते हैं। मूलरूप से एक शिक्षक की सफलता मुख्यतः इस बात पर निर्भर करती है कि वह छात्र से वैसा ही व्यवहार करने लग जाये जैसा कि वे उनसे अपेक्षा करते हैं। वह छात्रों को वही अध्ययन कराए जो कि छात्र उनसे उम्मीद करते हैं। एक शिक्षक के रूप में बहुत से कार्य सम्पादित करने होते हैं। अतः आपको छात्र के विकास की प्रवृत्ति तथा उसके कारणों के बारे में जानकारी होनी चाहिए, जिससे आप आश्वस्त हो सकें कि प्रत्येक छात्र अपनी उन अभिरुचियों, अभिवृत्तियों मूल्यों, आत्मप्रत्यय तथा अभिप्रेरणा का विकास कर रहा है जो कि उसके व्यक्तित्व के लिये उपयुक्त है।

मानव विकास के इतिहास का सूक्ष्म अवलोकन करने से यह ज्ञात हो जाता है कि मानव विकास का मूल कारण उसका ज्ञान है। ज्ञान के अभाव में मानव, मानव नहीं पशु तुल्य प्राणी कहा जाता है। “विद्या विहीनः पशुः” इस सूक्ति में अतिशयोक्ति नहीं है। ज्ञान मानव की वह श्रेष्ठतम धरोहर है, जिसकी सहायता से वह उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर द्रुत गति से अग्रसर है। मानव की इस धरोहर को यदि उससे अलग कर दिया जाये, तो उसके पास कुछ अवशिष्ट नहीं रहता है। वह पशु तुल्य प्राणी मात्र ही हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार— “मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।”

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मनुष्य के अनुभवों को विभिन्न श्रेणियों में विभक्त करके विषय सामग्री को सीमित-निश्चित एवं अनुस्तरित करके तथा छात्र की आयु एवं योग्यता की जांच करके,

उसके अनुसार ही पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है। यह कार्य प्रत्येक व्यक्ति द्वारा सम्पादित करना सम्भव नहीं होता। इसके लिये पृथक रूप से समाज के कुछ अनुभवी व्यक्तियों का चयन कर उनके हाथों में छात्रों का भविष्य सौंपना पड़ता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :- भारत जैसे विशाल देश में जन-जन को शिक्षित करने एवं उन तक आर्थिक, सामाजिक एवं जन कल्याण का सन्देश पहुंचाने के लिये विद्यालयी शिक्षा का पर्याप्त योगदान रहा है। वर्तमान समय में विद्यालयी शिक्षा जनतांत्रिक मान्यताओं को पूरा नहीं कर पा रही है। मुख्यतः उत्तर प्रदेश में जहाँ पर अधिकांश विद्यालयी शिक्षा एवं विद्यालय निजी समितियों द्वारा संचालित किये जा रहे हैं। शिक्षा के स्तर का निरन्तर पतन हो रहा है तथा बालकों की शैक्षिक उपलब्धि का निरन्तर पतन हो रहा है, यह पतन विशेष रूप से उन विद्यालयों में देखने को मिलता है जो विद्यालय सरकारी अनुदान प्राप्त करते हैं। इनकी तुलना में माध्यमिक स्तर के राजकीय विद्यालयों में शैक्षिक स्तर का पतन कम प्रतीत होता है।

अतएव प्रस्तुत शोध समस्या के द्वारा माध्यमिक स्तर के शासकीय अशासकीय विद्यालयों के छात्रों के प्राथमिक ज्ञान का परीक्षण करते हुये दोनों प्रकार के विद्यालयों में शिक्षित विद्यार्थियों में तुलना का प्रयास किया गया है। बालक की शिक्षा में किस प्रकार के विद्यालयों का विशेष योगदान है, जिससे बालकों के शैक्षिक स्तर को सुधारने के लिये दूसरे प्रकार के विद्यालयों को उसी स्तर पर लाया जा सके, प्रस्तुत समस्या का यही महत्व है।

प्रस्तुत समस्या का बालकों के बहुमुखी विकास के साथ ही उनकी उपलब्धि, व्यक्तित्व तथा राष्ट्रीय उन्नयन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आधुनिक युग में व्यक्तिवादी राज्यों का युग समाप्त हो चला है। अब कल्याणारी राज्यों का उदय विश्व विकास के रंगमंच पर हुआ। जिनका उद्देश्य नागरिकों के भविष्य का निर्माण करना है। नागरिकों का भविष्य उनकी शिक्षा पर निर्भर है। अतएव राज्य को उनकी शिक्षा की केवल संकुचित व्यवस्था ही नहीं करनी, अपितु उसके निर्माण में आने वाली प्रत्येक समस्या का समुचित निवारण किया जाये तभी राष्ट्र, समाज एवं जाति का कल्याण सम्भव है। ऐसी परिस्थितियों में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोध कार्य का शैक्षिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान है तथा शिक्षा जगत की ऐसी ही समस्याओं के समाधान की आवश्यकता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य :- प्रस्तुत शोध अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की हिन्दी विषय की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अंग्रेजी विषय की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की गणित विषय की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की हिन्दी, अंग्रेजी तथा गणित तीनों विषयों की संयुक्त शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनायें :- प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रमुख परिकल्पनायें निम्नलिखित हैं—

1. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की हिन्दी विषय की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता।
2. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अंग्रेजी विषय की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
3. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की गणित विषय की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
4. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की हिन्दी, अंग्रेजी तथा गणित तीनों विषयों की संयुक्त शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

शोध अध्ययन से सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण :— मानव ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित करने एवं सुरक्षित रखने का केवल एक ही प्रभाव पूर्ण साधन है—साहित्य। साहित्य समाज का दर्पण होता है। अतः किसी भी क्षेत्र में शोध कार्य आरम्भ करने हेतु आवश्यक है कि उस क्षेत्र से सम्बन्धित साहित्य का पूर्ण विश्लेषण किया जाये जिससे सही निष्कर्ष सरलता पूर्वक प्राप्त हो सके।

चयनित शोध विषय पर इस समय किये अध्ययनों समीक्षात्मक अनुशीलन समस्या पर नवीनता को लाने के लिये भी आवश्यक होता है और इसके माध्यम से हम प्राचीनताओं से अवगत हो जाते हैं।

शोध विषय पर उससे पूर्व किया गया सम्पूर्ण अध्ययन सम्बन्धित साहित्य कहलाता है। इसका तात्पर्य पुस्तकों, ज्ञानकोषों प्रकाशित एवं अप्रकाशित पुस्तकों से है। जिनसे समस्या चयन अध्ययन की रूप रेखा तैयार करने, उसे आगे बढ़ाने तथा परिलपना निर्माण में सहायता मिलती है। यह शोध के लिये आवश्यक सैद्धान्तिक पक्ष तैयार करता है।

इसी महत्व को स्पष्ट करते हुये गुड, वार एवं स्कट ने कहा है कि “जिस प्रकार एक कुशल चिकित्सक के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने क्षेत्र में हो रही औषधि सम्बन्धी नवीनतम खोजों से परिचित होता रहे। उसी प्रकार जिज्ञासु छात्र के लिये उस क्षेत्र से सम्बन्धित सूचनाओं तथा खोजों से परिचित होना आवश्यक है।

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से यह पता चलता है कि समस्या के किस पक्ष का अध्ययन किया जा चुका है और किस पक्ष का नहीं। कभी-कभी उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य का सर्वेक्षण कर लेने पर भी संयोगवश प्रत्यक्ष सम्बन्धित साहित्य प्राप्त न हो तो उसकी अनुपलब्धि में तत्सम्बन्धी अप्रत्यक्ष साधनों का अन्वेषण करके विषय का अध्ययन किया जाता है।

प्रस्तुत समस्या जनपद जालौन के उरई नगर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन है, शोध कर्ता को इस दिशा में कोई प्रत्यक्ष साहित्य प्राप्त नहीं हो सका है, किन्तु उसका अध्ययन अप्रत्यक्ष साहित्य पर निर्भर है।

इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य 1970 में श्री के०बी० देशाई गुजरात विश्व विद्यालय से पी०एच०डी० की उपाधि के लिये—

“Comparison of level of achievement in academic subject and development..... of Primary school pupils who have attended kinder garten school for two years before joining Primary school with there who have not.”

अनुसंधान विधि :- प्रस्तुत शोध कार्य को करने के लिए शोधकर्ता ने विषय वस्तु तथा प्रकृति को देखते हुए सर्वेक्षण विधि का चयन किया है।

अध्ययन का न्यादर्श :- प्रस्तुत शोध कार्य को करने के लिए शोधकर्ता ने उरई नगर के 50-50 छात्र-छात्राओं का चयन शासकीय तथा अशासकीय विद्यालयों से किया।

प्रयुक्त उपकरण :- प्रस्तुत अध्ययन में तुलनात्मक अध्ययन के लिए शोधकर्ता ने चयन किये गये छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि ज्ञात करने के लिए कक्षा-7 के छात्रों की हिन्दी, अंग्रेजी तथा गणित की परीक्षा स्वर्निमित परीक्षण द्वारा ली। इस प्रकार छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के रूप में परीक्षा के प्राप्तांकों को ही लिया गया है।

अध्ययन का न्यादर्शन :- प्रस्तुत शोध कार्य में प्राप्त आंकड़ों का विप्लेशन करने के लिये शोधकर्ता ने निम्नलिखित सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया है -

1. मध्यमान
2. मानक विचलन
3. टी परीक्षण

परिकल्पनाओं का परीक्षण एवं विश्लेषण :-

प्रथम परिकल्पना का परीक्षण : शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों की कक्षा 7 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की "हिन्दी" विषय की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान, प्रमाणिक विचलन तथा "टी" फलांक -

सारणी 1

विद्यालय का नाम	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	मानक भेद त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात	स्वतंत्रता अंक	'टी' मूल्य
शासकीय विद्यालय	50	25	9.66	1.84	.10	98	0.05 (1.98)
अशासकीय विद्यालय	50	24.8	8.72				0.01 (2.63)

उपरोक्त सामग्री का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि 98 स्वतंत्रता अंक के लिये 0.05 विश्वास के स्तर पर "टी" मूल्य 1.98 तथा 0.01 विश्वास के स्तर पर "टी" मूल्य 2.63 है। गणना करने से प्राप्त क्रान्तिक अनुपात का मान .10 है जो कि "टी" मूल्यों से बहुत कम है। यह स्पष्ट करता है शासकीय विद्यालय के विद्यार्थियों एवं अशासकीय विद्यालय के विद्यार्थियों की "हिन्दी" विषय की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

द्वितीय परिकल्पना का परीक्षण :- शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों की कक्षा 7 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की "अंग्रेजी" विषय की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान, प्रमाणिक विचलन तथा "टी" फलांक -

वर्ष : 6, अंक 11-12, जनवरी-दिसम्बर 2013	(291)	कृतिका अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

सारणी 2

विद्यालय का नाम	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	मानक भेद त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात	स्वतंत्रता अंक	'टी' मूल्य
शासकीय विद्यालय	50	28.1	10.01	2.034	3.63	98	0.05
							(1.98)
अशासकीय विद्यालय	50	20.7	10.33				0.01
							(2.63)

सारणी संख्या द्वितीय का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि 98 स्वतंत्रता के अंक के लिये 0.05 विश्वास के स्तर पर "टी" मूल्य 2.63 है। गणना द्वारा प्राप्त क्रान्तिक अनुपात का मान 3.68 है, जो 1.98 तथा 2.63 के मानों से अधिक है। अतः यहाँ दोनों ही विश्वास के स्तर पर परिकल्पना अस्वीकृत है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों की कक्षा 7 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की अंग्रेजी विषय की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर होता है।

तृतीय परिकल्पना का परीक्षण — शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों की कक्षा 7 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की "गणित" विषय की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान, प्रमाणिक विचलन तथा "टी" फलांक —

सारणी 3

विद्यालय का नाम	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	मानक भेद त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात	स्वतंत्रता अंक	'टी' मूल्य
शासकीय विद्यालय	50	32.6	11.43	2.385	2.76	98	0.0
							(1.9)
अशासकीय विद्यालय	50	26	12.40				0.0
							(2.6)

सारणी संख्या-3 का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि 98 स्वतंत्रता के अंक के लिये 0.05 विश्वास के स्तर पर "टी" मूल्य 1.98 तथा 0.01 विश्वास के स्तर पर "टी" मूल्य 2.63 है। गणना द्वारा प्राप्त क्रान्तिक अनुपात का मान 2.76 है, जो 1.98 तथा 2.63 के मानों से अधिक है। अतः यहाँ दोनों ही विश्वास के स्तर पर परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

चतुर्थ परिकल्पना का परीक्षण :— शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों की कक्षा 7 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की हिन्दी, अंग्रेजी एवं गणित तीनों विषयों की शैक्षिक उपलब्धि का संयुक्त मध्यमान, प्रमाणिक विचलन तथा "टी" फलांक —

सारणी 4

विद्यालय का नाम	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	मानक भेद त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात	स्वतंत्रता अंक	'टी' मूल्य
शासकीय विद्यालय	50	83.7	26.96	5.79	1.96	98	0.0 (1.9)
अशासकीय विद्यालय	50	72.3	30.9				0.0 (2.6)

उपरोक्त सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 98 स्वतंत्रता के अंक के लिये 0.05 विश्वास के स्तर पर "टी" मूल्य 1.98 तथा 0.05 पर 2.63 है। गणना द्वारा प्राप्त क्रान्तिक अनुपात का मान 1.96 है। जो कि उपरोक्त दोनों ही "टी" मूल्य से कम है। अतः यह कह सकते हैं कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

अध्ययन के निष्कर्ष :

1. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की हिन्दी विषय की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अंग्रेजी विषय की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर होता है।
3. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की गणित विषय की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर होता है।
4. शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की हिन्दी, अंग्रेजी तथा गणित तीनों विषयों की संयुक्त शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

सन्दर्भ सूची

- ♦ पाठक, पी0डी0 (2008) "शिक्षा मनोविज्ञान", अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
- ♦ सारस्वत मालती (2005) "शिक्षा सिद्धान्त", आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद।
- ♦ पाण्डेय, रामशकल (2011) "शिक्षा मनोविज्ञान", आर० लाल बुक डिपो, मेरठ।
- ♦ गुप्ता, एस० पी० तथा गुप्ता, अलका (2002) "उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान", शारदा पुस्तक भण्डार, इलाहाबाद।
- ♦ राय, पारसनाथ तथा राय, सी० पी० (2010) "अनुसंधान परिचय", लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- ♦ भाटिया, तारेण (2003) "आधुनिक मनोवैज्ञानिक सांख्यिकी", लावण्य प्रकाशक, उरई।
- ♦ सिंह, अरुण (2007) "मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ", नरेन्द्र प्रकाश जैन एवं मोतीलाल बनारसी दास, 1992, दिल्ली।
- ♦ माथुर, एस० एस० (2007) "शिक्षा मनोविज्ञान", अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
- ♦ गुप्ता, एस० पी० (2005) "सांख्यिकीय विधियाँ", शारदा पुस्तक भण्डार, इलाहाबाद।
- ♦ सिंह, ए० के० (2008) "मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ", मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।



इक्कीसवीं शताब्दी में भारत के समक्ष यक्ष चुनौतियाँ

(वैश्विक समाज, पर्यावरण एवं पावन शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ० शम्स आलम

असि० प्रोफेसर—अध्यक्ष हिन्दी विभाग

बी०वी०एम० पी०जी० कॉलेज, बाह, आगरा

इक्कीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही सामाजिक संरचना के सोच में आये परिवर्तन को भारत वर्ष के प्रमुख आध्यात्मिक नगरी जहाँ के कण-कण से आध्यात्मिकता की सुगन्ध आती है। जहाँ की मिट्टी से उपजे महामानव ने अपने जीवन को सामाजिक प्रमाणिकता के बतौर सिद्ध करते हुए अपने संदेश में गीता एवं महाभारत के रूप में देकर मानवता की रक्षा की एवं समाज का पथ प्रदर्शन किया, वहीं 21वीं सदी में आये परिवर्तन ने उसी महामानव के संकेतक रूप को वंशी के स्थान पर मोबाइल एवं पीताम्बर के स्थान पर जीन्स एवं स्कर्ट पहनाकर अभिव्यक्त किया। इतना ही नहीं भारत के प्रमुख धाम, बद्रीधाम के द्वार, हरिद्वार जो विश्व की धर्म नगरी है जहाँ अमृत के बूँद को गंगा में समाहित होने, जहाँ के स्नान से मनुष्य के मन मस्तिक को ताजगी के साथ-साथ शान्ति एवं मुक्ति मिलती है। वहीं भारत के आध्यात्मिक एवं पावन पर्व दशहरा के अवसर पर आयोजित रामलीला में नर्तकियों द्वारा अर्द्ध नग्न रूप से पूरे समाज के सम्मुख रावण के जंघे पर बैठना, खुले आम चुम्बन एवं काम के वासनातीत व्यवहारों से ओतप्रोत नृत्य एवं व्यवहार को देखकर साधू समाज तक के ऊपर कोई सिकन नहीं, बल्कि आनन्दविभोर होने के दृश्य दूरदर्शन पर प्रसारित किये गये। जिससे समाज में आये परिवर्तन की पुष्टि होती है। जबकि भारतीय वैश्विक सामाजिक संरचना की झलक को ऋग्वेद में भी स्पष्ट किया गया है।

“परम पूर्ण पिता आकाश एवं जगत जननी पालन कर्त्री सर्व धात्री माता पृथ्वी के गोद में पलने वाले सभी जीव-जन्तु, चर-अचर, भाई-बहन हैं। अर्थात् आकाश एवं पृथ्वी के बीच के सभी जड़ चेतन भाई-बहन हैं अर्थात् एक-दूसरे से रिश्ता अगाध एवं अटूट है।” इस प्रकार यह पूर्ण वैश्विक संरचना ही हमारा समाज है और इस समाज की देख-रेख इनका पालन-पोषण, संरक्षण ही मानवता है और यही मानवता पर्यावरण है जिसकी झलक विज्ञान में दिखाई पड़ती है। विज्ञान की महत्ता इस पंक्ति से स्पष्ट है —

“क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा। पंच शक्ति यह, अधम, शरीराः।।”

अर्थात् पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश रूप तत्वों से ही हमारी यह काया निर्मित है, यह केवल मानव का ही नहीं बल्कि सभी जीव-जन्तु, पेड़-पौधे या यह कहें कि सभी चेतन इन्हीं महा पंचतत्वों से निर्मित है। इसीलिए इनमें एक रिश्ता है, जो अभेद्य एवं अटूट है जबकि आज का विज्ञान एक ही नहीं, सैकड़ों तत्वों की शोध कर चुकी है। लेकिन यदि उन्हें श्रेणीबद्ध किया जाय तो इन्हीं महापंच तत्वों में ही मिलेंगे फिर भी आज विज्ञान एक नहीं हजारों विषयों में विभाजित हो रहा है एवं उसी गति से भ्रामकता की स्थिति बढ़ती जा रही है।

बीच का तत्व मूल तत्व की ओर विमुख होती जा रही है। जिसका कारण है कि वर्तमान समाज विकास के नाम पर अविवेकशील एवं प्रदूषित होता जा रहा है। फैशन के नाम पर पशुवत होता जा रहा

है। संस्कृति के स्थान पर वीभत्स मनोरंजन एवं समाज के नाम पर स्वयं को ठगा पा रहा है। इसी सामाजिक विघटन के कारण मानवता का ह्रास एवं पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। यह प्रदूषण केवल भौतिक (वायु, जल, मृदा प्रदूषण) ही नहीं बल्कि व्यक्ति के आन्तरिक प्रकृति, सोच, विचार को प्रदर्शित करते हुये उसमें मानसिक प्रदूषण, सामाजिक प्रदूषण, राजनीतिक प्रदूषण, आर्थिक प्रदूषण, सांस्कृतिक प्रदूषण एवं शिक्षा प्रदूषण को बढ़ाता जा रहा है। जिसके विस्फोट के रूप में प्रकृति, भूकम्प, सुनामी, बाढ़, सूखा एवं तमाम अन्य संकेतों से सचेत एवं आगाह करती जा रही है। इन सब का प्रभाव वर्तमान सामाजिक संरचना पर स्पष्ट देखा जा सकता है। व्यक्ति आज की औद्योगिक विकास की होड़ में मनी और मैटर के चकाचौंध में उलझ कर सामाजिक सम्बन्धों, रिश्तों को भूलकर यन्त्रवत् हो चुका है।

उपरोक्त समस्या को ध्यान में रखते हुये समाज सुधारकों, विचारकों, चिन्तकों, वैज्ञानिकों, साहित्यकारों, शिक्षाविदों का ध्यान आकृष्ट होना स्वभाविक है। जिसके निदानात्मक परिणामस्वरूप राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय एवं वैश्विक संगोष्ठियाँ उनके परिणाम, सुझाव भी समय-समय पर आते रहते हैं। यहाँ पर पर्यावरण संरक्षण हेतु मुख्य रूप से पर्यावरण सम्मेलनों जैसे स्टॉकहोम पर्यावरण तथा विकास सम्मेलन 1972 जो कि संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में स्वीडन के स्टॉकहोम 3 जून से 16 जून 1972 में सम्पन्न हुआ जिसमें मुख्य रूप से 26 सुझाव पर्यावरण संरक्षण एवं सामाजिक विकास हेतु दिये गये। इसके बाद ओजोन सतह के संरक्षण से सम्बन्धित वियना सन्धि 1985 का नाम आता है जो पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित है जिसके द्वारा मानव की गतिविधियों से ओजोन सतह पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाने से लिया गया। मान्द्रियल सन्धि 1987 द्वारा ओजोन क्षरण रसायनों के उपयोग पर प्रतिबन्ध की बात की गयी जिसे 2000 तक बन्द करने को कहा गया। पुनः पृथ्वी शिखर सम्मेलन 1992 जिसमें पृथ्वी को पर्यावरणीय त्रासदी से बचाने के लिए विश्व के 178 देशों के प्रति-निधियों ने 3 से 14 जून 1992 में रियो-डी-जेनेरियो में एक पर्यावरण सम्मेलन में भाग लिया जिसमें मुख्य पाँच मुद्दे सम्मिलित किये गये। ये मुद्दे थे – 1. भूमण्डलीय तापन को रोकना, 2. जैवविविधता संरक्षण, 3. ओजोन परत का संरक्षण, 4. अन्तर्राष्ट्रीय जल संसाधनों में प्रदूषण नियन्त्रण, 5. रियो घोषणा पत्र। जो कि 1991 में ही कर ली गयी थी जो रियो सम्मेलन 1992 द्वारा मान्यता दी गयी। क्योटो प्रोटोकाल 1997 जिसके द्वारा मुख्य रूप से ग्रीन हाउस एवं ओजोन परत सम्बन्धित 6 गैसों के प्रयोग को 1990 के स्तर पर लाने हेतु दबाव बनाने की बात स्वीकार की गयी। पृथ्वी सम्मेलन 2002 संयुक्त राष्ट्र द्वारा “टिकाऊ विकास” पर विश्व सम्मेलन शीर्षक के साथ दक्षिण अफ्रीका के शहर जोहान्सबर्ग में 26 अगस्त से 4 सितम्बर 2002 तक चला। जिसमें 10 हजार गैर सरकारी संगठनों, व्यापारिक संगठनों समेत लगभग 200 देशों एवं 103 राष्ट्राध्यक्षों ने भाग लिया। जिसमें पर्यावरण संरक्षण एवं मानव समाज के स्थाई एवं संतुलित विकास से सम्बन्धित अनेकों निर्णय लिये गये। इनके अलावा भी अनेक सामाजिक एवं स्वयं सेवी संस्थाएँ राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ प्रयासरत हैं, परन्तु स्थिति उन्मुखता की ओर है।

उपरोक्त का कारण मुख्य रूप से जनसंख्या वृद्धि को ठहराया जा रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि जनसंख्या वृद्धि एक कारण अवश्य है परन्तु इसके पीछे जो मुख्य कारण है वह है पर्यावरण प्रदूषण। जितना अधिक पर्यावरण प्रदूषित होगा उतना ही अधिक व्यक्ति एवं समाज के अन्दर प्रदूषण बढ़ेगा। परिणामतः जनसंख्या विस्फोट होगा। यह जनसंख्या वृद्धि केवल मनुष्य तक ही नहीं वरन् सूक्ष्म जीवाणुओं, बैक्टीरिया, पीलिया, एड्स, वाइरस, डेंगू, मलेरिया इत्यादि के रूप में भी है। जबकि यह प्रकृति

का नियम है कि वह साम्यता या बराबर की स्थिति बनाये रखने में सक्षम है।

इन सबके मूल कारणों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि समस्या की जड़ वर्तमान शैक्षिक परिवेश भी है। महाभारत एवं रामायण काल के सामाजिक संरचना का अध्ययन करे तो ज्ञात होता है कि महाभारत में कई अक्षौणी सेनाओं का वध हुआ था। जब इतनी बड़ी सेनायें थी तो समाज कितना बड़ा रहा होगा। फिर भी सामाजिक संरचना में सबको न्याय, धर्म, समानता एवं स्वंत्रता थी। उस समय की शिक्षा को देखा जाये तो वह शिक्षा पावन शिक्षा ही थी। जबकि वर्तमान शिक्षा में पाश्चात्यवादी विचारकों का प्रभाव है। मुख्य रूप से वर्तमान समाज में शिक्षा के स्वरूप में अमेरिका के प्रसिद्ध विचारक जॉन डी0वी0 के प्रयोजनवाद एवं प्रयोगिक यन्त्रवाद का पुट है। जिसके अनुसार सत्य नहीं है जो प्रयोग के आधार पर सत्य एवं खरा उतरे एवं मनुष्य के लिए उपयोगी हो। धर्म, ईश्वर, प्रकृति, आस्था, मूल्य, आध्यात्मिकता सब समयानुसार बदलते रहते हैं। इस दर्शन के कारण नई शिक्षा पद्धति का जन्म हुआ जिसे नई शिक्षा कहा गया। जिसके कारण भौतिकता एवं प्रकृति का दोहन इस प्रकार बढ़ा दी गयी कि मनुष्य स्वविकास में मानवता एवं समाज से अपने को अलग कर लिया। निःसंदेह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का ज्ञान इतना बढ़ा कि मनुष्य भौतिकता एवं विलासिता के चकाचौंध में सामाजिक विघटन मानवता या पर्यावरण प्रदूषण का ध्यान दिये बिना प्रकृति का इतना दोहन किया कि स्थिति अत्यन्त भयावह एवं विस्फोटक हो चुकी है। व्यक्ति, धरती ही नहीं ब्रह्माण्ड के अन्य ग्रहों पर भी अतिक्रमण कर रहा है। इसके विपरीत वैदिक विचारकों के अनुसार – सत्य एक ही है, विद्वान उसकी आख्या अलग-अलग करते हैं। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् ही शिक्षा का आधार है। जो मानवता के कल्याण हेतु है। वही सत्य है, ध्यान रहे पर्यावरण संरक्षण ही सामाजिक मानवता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सत्य की प्रमाणिकता हेतु वर्तमान सूचनाओं के निरीक्षण, आंकड़ों का संग्रह विश्लेषण एवं परिणाम पर निर्भर होता है जबकि सूचना का संग्रह ही प्रदूषित हो तो परिणाम स्वतः प्रदूषित होगा। इस प्रकार यदि देखें तो मनुष्य जिन तत्वों से निर्मित है उन्हीं महातत्वों में प्रदूषण घोल रहा है जिसकी वजह से सूचनायें प्रदूषित हो रही हैं और परिणाम प्रदूषित हो रहा है जबकि पावन शिक्षा में इसे अविद्या ही कहा गया है। पावन शिक्षा के मुख्य चार पद हैं— 1. सूचना 2. ज्ञान, 3. विवेक, 4. दृष्टिकोण।

इस प्रकार वर्तमान शिक्षा प्रणाली केवल अविद्या सूचना एवं ज्ञान तक ही पहुँच पाती है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विवेक एवं दृष्टिकोण का कोई स्थान नहीं है जबकि मनुष्य इस धरा के अन्य प्राणियों से उत्कृष्ट इसीलिए माना जाता है कि उसके पास विवेक, सोच, विचार एवं दृष्टिकोण है, बिना इसके प्रयोग से वह निरापशु है।

अर्थात् वर्तमान शिक्षा में जब तक विवेक एवं दृष्टिकोण का पूर्ण प्रयोग नहीं किया जाता तब तक वैश्विक समाज की कल्पना, कोरी कल्पना ही रह जाएगी। वर्तमान में नैतिक शिक्षा, पर्यावरणीय, जनसंख्या शिक्षा को पाठ्यक्रम में समाहित करने की पुरजोर कोशिशें जारी हैं। परन्तु इन सबका लाभ तभी सम्भव है जब व्यक्ति एवं समाज के दृष्टिकोण, सोच, विचार में परिवर्तन लाया जाए और यह तभी सम्भव है जब पावन शिक्षा की प्रक्रिया को शिक्षा में अपनाया जाये।



निर्वाचन और लोकतन्त्र

डॉ. भावना यादव

सहायक प्राध्यापक—राजनीति विज्ञान विभाग

शासकीय स्वशासी कन्या स्नाताकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय सागर (म.प्र.)

हम भारतीयों को विश्व की सबसे बड़ी लोकतन्त्रीय व्यवस्था का अंग होने का गौरव प्राप्त है। हम 63 वर्षों में 15 लोक सभा चुनावों को देख चुके हैं। स्वतन्त्रता उपरान्त भारत में संसदीय लोक तन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया। लोकतन्त्र की विचारधारा में समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, एकता, अखंडता, सामाजिक, आर्थिक समानता, सद्भावना और जनकल्याण की भावना समाहित होती है। जिसकी अभिव्यक्ति 'जनता के शासन' में होती है। इसे सम्भव करने हेतु जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा शासन किया जाता है। लोकतन्त्र में जनआकांक्षाओं की अभिव्यक्ति हेतु निश्चित समय के पश्चात् निर्वाचन द्वारा प्रतिनिधित्व को परिवर्तित करने की व्यवस्था सुनिश्चित होती है। लोकतन्त्र जनता द्वारा राज्य स्थापित करने की एक गणतन्त्रात्मक पद्धति है। लोकतन्त्र का आशय सरकार की शक्ति का जनता में निहित होना है। यही कारण है कि निर्वाचन और लोकतन्त्र एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

भारतीय लोकतन्त्र का स्वरूप राजनैतिक और सामाजिक है। संविधान सभा ने संविधान के जिस उद्देश्य प्रस्ताव को अंगीकार किया उसकी अन्तर आत्मा न्याय, समानता, अधिकार और बन्धुत्व से परिपूर्ण है। इसके साथ ही सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय और समानता वर्तमान लोकतन्त्रात्मक व्यावस्था की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। लोकतन्त्र में राजनीति समाज का एक अपरिहार्य अंग बन जाती है। उसके विकास और संगठित स्वरूप को प्रत्येक मतदाता से जीवन मिलता है क्योंकि सार्वभौम सत्ता जनता के अन्तर्मन में निहित रहती है। जहाँ इस सार्वभौमिक सत्ता को प्रतिबंधित या अवरोधित किया जाता है लोकतन्त्र शक्तिहीन होने लगता है। वास्तव में नागरिकों की संप्रभुता का आधार प्रजातन्त्र है जो शासन करने का एक सशक्त माध्यम है।

भारत की बुनियाद लोकतांत्रिक मान-मर्यादाओं और मूल्यों पर रखी गयी है और लोकतन्त्र का आधार है 'चुनाव'। जो समय-समय पर सम्पन्न होते हैं। सुदृढ़, आदर्श, सफल और स्वच्छ लोकतन्त्र के लिये आवश्यक है पारदर्शी चुनाव प्रणाली जिसके द्वारा निष्पक्ष चुनाव सम्भव हो। जब चुनावी व्यवस्था पारदर्शी होगी तो सही व्यक्ति का चयन होगा। स्वाभाविक है कि इस निष्पक्षता व पारदर्शिता से चयनित नागरिक अवसर पाकर लोकतांत्रिक स्वरूप को और सशक्त, प्रभावी और जवाबदेह बनाने का कार्य करेगा। यह कार्य करता है निर्वाचन आयोग जिसे लोकतन्त्र का प्रहरी बनाने के साथ ही वे अधिकार और कर्तव्य भी सौंपे गये हैं। जिनके द्वारा निर्वाचन आयोग संवैधानिक सीमाओं में रहकर लोकतन्त्र को सुदृढ़ता प्रदान कर सके। लोकतन्त्र की विशेषता उसकी विशिष्ट निर्वाचन प्रणाली भी है। जिसमें चुनाव एक माध्यम का कार्य करते हैं शासन और सत्ता में जनता की भागीदारी का।

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। यहाँ चुनाव जनता के हाथ में एक ऐसा शस्त्र है, जिससे वह अपनी अपेक्षाओं की अभिव्यक्ति करती है। इन चुनावों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में

देश की लगभग दो तिहाई जनसंख्या भाग लेती है यही कारण है कि चुनाव हमारे लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गये और स्वतः ही हमारा ध्यान 'चुनाव' और 'चुनाव प्रक्रिया' की ओर जाने लगा। स्वतंत्रता के बाद प्रथम तीन आम चुनावों तक तो ऐसा लगता था मानों भारत में लोकतन्त्र गहरी जड़ें जमा चुका है। किन्तु 1967 के बाद के निर्वाचनों से आये परिवर्तन ने इस धारणा का खण्डन किया और इसके बाद क्रमशः भारतीय राजनीति में नैतिक एवं चारित्रिक पतन स्पष्ट दिखायी देने लगा। विगत दशकों का सूक्ष्मता से अध्ययन करे तो यह कभी तानाशाही, कभी राजनीतिक शून्यता, कभी जातिवाद, कभी सामाजिक-आर्थिक विषमता की ओर उन्मुख होता दिखायी देता है।

यही कारण है कि वर्तमान में चुनावों को संदेह की नजर से देखा जाने लगा है। चुनाव अब जनता के लिये न होकर नेताओं तक सीमित होते जा रहे हैं। फलस्वरूप चुनाव जनता से दूर और जनता के लिये नहीं रह गये हैं। इसकी अभिव्यक्ति चुनाव में मात्र कुछ प्रतिशत मतदान के रूप में हमारे सामने आती है। इस सन्दर्भ में राजनैतिक जीवन में कुछ मूल्यों और चुनाव सुधार पर आधारित सलाहकार समिति ने स्पष्ट किया कि "मुद्रा शक्ति माफिया शक्ति और मांसल शक्ति के प्रयोग से अपराधिकरण, भ्रष्टाचार, सम्प्रदायवाद और जातिवाद को बढ़ावा मिला है। जिससे भारतीय चुनाव में निष्पक्षता और संदेह दूर होने के स्थान पर बढ़ रहे हैं।" निर्वाचन प्रक्रिया लोकतन्त्र की नींव है और चुनाव लोकतन्त्र की अभिव्यक्ति है। हमारे शोध पत्र का उद्देश्य सशक्त लोकतन्त्र की स्थापना में निर्वाचन की भूमिका की समीक्षा करना है।

निर्वाचन लोकतन्त्र का प्रमुख और आवश्यक अंग है क्योंकि लोकतांत्रिक प्रणाली में निर्वाचन ही बहुमत की शक्ति व स्वरूप को तय करता है। जो आगे चलकर राष्ट्रहित के निर्धारण में सहायक होता है। चुनाव की अनिवार्यता के कारण भारत में चुनावी राजनीति का विकास हुआ और राजनेताओं से सामाजिक परिवर्तन का विकास का माध्यम बनने की अपेक्षा की गयी। परन्तु नेतागण सामाजिक परिवर्तन और विकास का माध्यम बनने की बजाय राजनीतिक तालमेल एवं उठापटक के माध्यम बन गये हैं। राजनीतिक चरित्र का ह्रास होने लगा और सत्ता में जनता के प्रतिनिधि के स्थान पर व्यक्तिगत प्रभाव को अधिक महत्व दिया जाने लगा। परिणामस्वरूप राजनीति की सैद्धांतिक आस्था में कमी आयी। इस प्रवृत्ति का क्रमिक विकास होता गया और भारतीय राजनीति में अस्तव्यस्तता, अराजकता और अस्थिरता बढ़ती गयी।

स्वतन्त्रता उपरान्त संविधान निर्माताओं ने संसदीय लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया तो उसके पीछे उद्देश्य था विविधताओं, विषमताओं से भरे समाज में हर खास और आम को शासन की प्रक्रिया में शामिल कर हर वर्ग की अपेक्षाओं को पूरा करना। इसका माध्यम थे चुनाव। भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण जनसंख्या वाले देश में चुनाव करवाना तो कठिन कार्य है ही साथ ही इससे कठिन है पारदर्शी चुनाव प्रणाली को अपनाते हुये निष्पक्ष चुनाव करवाना। क्योंकि चुनावों द्वारा ही आम जनता की इच्छा अभिव्यक्त हो पाती है। चुनाव जनता और शासन को एक-दूसरे से तो जोड़ते ही हैं साथ ही इनके माध्यम से आम जनता राज्य कार्यों में सक्रिय रूप से भाग ले पाती है वास्तव में निर्वाचन को लोकतन्त्र का केन्द्र माना जाता है यही कारण है कि लोकतन्त्र की सफलता और निष्पक्षता 'चुनाव' पर निर्भर करती है? और चुनाव निर्वाचन प्रणाली पर निर्भर करते हैं। "भारत जैसे बड़े लोकतान्त्रिक देश में चुनाव की महत्ता को देखते हुये संविधान में एक पृथक एवं स्वतन्त्र निर्वाचन आयोग का प्रावधान किया गया है। देश में निर्वाचन आयोग को केन्द्र एवं राज्य सरकारों के नियंत्रण से बाहर रखा गया है।" ⁽¹⁾ इससे विदित

होता है कि संविधान निर्माता चुनावों के महत्व से भलीभांति परिचित थे। जिसके लिये उन्होंने एक ऐसे संवैधानिक आयोग को स्थापित किया जो देश में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, लोकसभा, राज्यसभा तथा राज्य विधान मण्डलों के सदस्यों का निष्पक्ष निर्वाचन सम्पन्न कराये। इसी संवैधानिक आयोग को चुनाव आयोग के रूप में जाना जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 324 से अनु. 329 में निर्वाचन संबंधित समस्त विषयों का उल्लेख किया गया है। “संविधान के अनुच्छेद 324 के द्वारा समस्त केन्द्रीय तथा राज्यों की व्यवस्थापिकाओं के निर्वाचनों तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचन के संचालन का दायित्व निर्वाचन आयोग को सौंपा गया है।”⁽²⁾ निर्वाचन आयोग उक्त समस्त निर्वाचनों हेतु निर्वाचक नामावली तैयार करता है तथा सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण करने का कार्य करता है। निर्वाचन आयोग की स्थापना 25 जनवरी 1950 को गणतंत्र लागू होने से एक दिन पहले की गयी थी। इसी कारण वर्ष 2011 से प्रत्येक वर्ष 25 जनवरी को राष्ट्रीय मतदाता दिवस के रूप में घोषित किया गया है।

निर्वाचन आयोग द्वारा निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन, चुनाव पूर्व मतदाता सूची तैयार करना, राजनैतिक दलों को मान्यता प्रदान करना, राजनीतिक दलों को चुनाव चिह्न आवंटित करना, चुनाव आचार संहिता तैयार करना तथा राजनीतिक दलों व प्रत्याशियों द्वारा उनका अनुपालन सुनिश्चित करना, संसद सदस्यों और राज्य विधान मंडल के सदस्यों की अयोग्यता संबंधी मामलों में (अनु. 103 व अनु. 192) क्रमशः राष्ट्रपति या राज्यपाल को परामर्श देना, विभिन्न राजनीतिक दलों को रेडियो व टेलीविजन पर चुनाव प्रचार के लिये समय आवंटित करना, चुनाव में उम्मीदवार के खर्च की सीमा का अनुपालन सुनिश्चित करना तथा मतदाताओं को राजनीतिक प्रशिक्षण प्रदान करना आदि कार्यों को किया जाता है। वास्तव में उक्त कार्यों के द्वारा निर्वाचन आयोग लोकतंत्र के सशक्त और वफादार प्रहरी की भूमिका में रहता है। “निर्वाचन आयोग लोकतांत्रिक व्यवस्था का प्राण है। प्रत्येक शासन व्यवस्था में किसी न किसी चुनाव प्रक्रिया के महत्व को स्वीकार किया जाता है परंतु निर्वाचन प्रक्रिया एवं उस प्रक्रिया का संचालन करने वाली मशीनरी लोकतांत्रिक व्यवस्था का बुनियादी आधार है क्योंकि लोकतांत्रिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण यह नहीं कि चुनाव होते हैं महत्वपूर्ण यह कि चुनाव कितने स्वतंत्र एवं निष्पक्ष तरीके से सम्पन्न होते हैं और आम मतदाता का निर्वाचन व्यवस्था का संचालन करने वाले अभिकरण की निष्पक्षता और ईमानदारी पर कितना विश्वास होता है।”⁽³⁾

स्वतंत्रता के बाद भारत की सबसे बड़ी उपलब्धि राजनीतिक जनतंत्र और नागरिक स्वतंत्रता की जड़ों का दृढ़ता से जमना है। आज नागरिक राजनीति में भाग लेकर चुनावों के जरिए सरकारें बदलने में समर्थ है। इसके बाद भी राजनीतिक स्थिरता बनी हुई है जो भारतीय राजनीतिक प्रणाली की विशेषता है। बीच के दौर में सरकारें तेजी से बदली परन्तु विभिन्न राजनीतिक शक्तियों ने संविधान की सीमाओं में रहकर ही राजनीतिक लड़ाइयां लड़ी। सरकारों में परिवर्तन संवैधानिक और जनतांत्रिक नियमों के अनुसार ही हुए हैं। सत्ता से बाहर जाने वाली पार्टियों ने इन परिवर्तनों को सौहार्द पूर्ण तरीके से स्वीकार किया है। परन्तु अधिकांश चुनावों में व्यक्ति के महत्व से अधिक धन का प्रभाव प्रदर्शित हुआ है जिससे अपवित्र राजनीति का जन्म हुआ। लोकतांत्रिक प्रणाली में निर्वाचन ही विभिन्न दलों की शक्ति व स्वरूप को तय करता है जो आगे चलकर राष्ट्रहित के निर्धारण में सहायक होता है परन्तु भारतीय निर्वाचन पद्धति में अराजनैतिक, असामाजिक तथा असंवैधानिक तत्वों का प्रभाव बढ़ा है और निर्वाचन की पूरी

प्रक्रिया कालेधन के प्रभाव में आ चुकी है। “हमारी चुनाव प्रक्रिया इतनी गड़बड़ है कि आज तक देश में एक भी सरकार ऐसी नहीं बनी, जिसे कुल मतदाताओं के 50 प्रतिशत वोट भी मिले हों। 120 करोड़ के इस देश में राज कर रही वर्तमान सरकार को 12 करोड़ वोट भी नहीं मिले हैं। पी वी नरसिंहराव के आलावा एक भी प्रधानमंत्री ऐसा नहीं हुआ, जो अपने चुनाव क्षेत्र में स्पष्ट बहुमत से जीता हो। अब तक बनी सभी संसदों में ऐसे दर्जन भर सांसद भी खोजना मुश्किल है, जो अपने कुल मतदाताओं के बहुमत से जीतकर आए हो। हमारी संसद प्रभावशाली तभी बनेगी, जब उसमें आने वाले सांसद अपने – अपने क्षेत्र से स्पष्ट बहुमत से जीतकर आए हों। यह तभी संभव है, जब चुनाव प्रक्रिया में बुनियादी सुधार हो।”

63 वर्ष बीत जाने के बाद भी हमारा लोकतन्त्र अनेकों गंभीर चुनौतियों से जूझ रहा है। इन्हे दूर करने में मतदाताओं अर्थात् चुनावों की भूमिका महत्वपूर्ण है इसलिये वर्तमान में चुनाव आयोग को और सशक्त बनाने के साथ चुनाव प्रणाली में आमूलचूल बदलाव की आवश्यकता है।” जाने माने सामाजिक चिंतक गोविन्दाचार्य कहते हैं, “शासन व्यवस्था में न्यूनतम दोषपूर्ण पद्धति लोकतन्त्र है। जिस तरह से शीशा साफ नहीं होने पर तस्वीर स्पष्ट नहीं आती है, उसी तरह से चुनाव व्यवस्था दोषपूर्ण होने पर चयन सही नहीं हो पाता है और दुर्दांत अपराधी भी सांसद बन जाते हैं। आगे वे कहते हैं भारतीय लोकतन्त्र के पहले 15 साल में मूल्यों का ज्ञान रहा लेकिन 1965 से 1980 के बीच ‘आया राम गया राम’ का दौर शुरू हुआ और सत्ता में बदलाव आया। इसी तरह वर्ष 1980 से 1995 के बीच बाहुबलियों की संख्या बढ़ी। 1995 से 2010 तक करेला नीम चढ़ा की तर्ज पर धनबल का प्रभाव पड़ा। जनतंत्र को अभिव्यक्त करने वाल लोकतन्त्र सत्ताबल, धनबल की बीमारियों का शिकार बन गया जिसमें गंभीर राजनीतिक सुधार की जरूरत है। इसी तरह संसदीय जनतंत्र में दलों की कार्यशैली को पारदर्शी और जवाबदेह बनाना होगा। आज सभी दल अपराध, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, दल बदल और वंशवाद के शिकार हो गये हैं इसी कारण जनतंत्रात्मक साधनों की बजाय मुद्दों और मूल्यों की राजनीति सड़क और चौराहों पर हो रही है।”⁽⁴⁾

दलीय शासन, लोकतंत्रीय शासन का पर्याय माने जाते हैं परन्तु आज दल अपनी विसंगतियों की वजह से अपनी पहचान और जनमत दोनों खोते जा रहे हैं। जो स्वस्थ लोकतन्त्र के लिये अच्छा संकेत नहीं है क्योंकि राजनीतिक दलों के अभाव में लोकतंत्र की परिकल्पना सम्भव नहीं है। दल शासन व्यवस्था के अंग होते हैं। यही कारण है कि लोकतंत्र के लिये दलीय व्यवस्था अनिवार्य है। दलीय व्यवस्था के महत्व के विषय में फाइनर के इस कथन पर गौर करना होगा “राजनीतिक दल अमूर्त मतदाताओं को मूर्तरूप देते हैं दलों के बिना मतदाता या तो नपुंसक हो जायेंगे या विनाशकारी, जो ऐसी असंभव नीतियों का अनुगमन करेंगे, जिससे राजनीतिक यंत्र ध्वस्त हो जाएंगे।”⁽⁵⁾ फाइनर का यह कथन सही है। दल प्रतिनिधित्व लोकतंत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन करते हैं। मैकाइवर के अनुसार “राजनीतिक दलों के अभाव में न तो उचित सिद्धांतों की संगति अभिव्यक्त हो सकती है और न नीतियों का समुचित विकास ही और नियंत्रित रूप से संसदीय चुनाव के वैधानिक उपायों और मान्य संस्थाओं का सहारा ही लिया जा सकता है, जिसके द्वारा राजनीति यानी शक्ति को बनाये रखने तथा प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार लोकतन्त्र को व्यावहारिक और सशक्त बनाने के लिये राजनीतिक दलों का अस्तित्व अत्यंत अनिवार्य है।”⁽⁶⁾ वास्तव में शासन के सुचारु संचालन के लिये दलों की अपरिहार्यता है। ये नियंत्रण को व्यावहारिक रूप तो देते ही हैं साथ ही सरकार व जनता के बीच समन्वय बनाने का काम भी करते हैं। परन्तु जैसे-जैसे राजनैतिक दलों और प्रत्याशियों का स्वरूप दूषित होता गया, चुनाव

और चुनाव प्रणाली अपने आप ही कमियों और विकृतियों से भरती चली गयी। यही कारण है कि आज का राजनैतिक परिदृश्य अंधकारमय हो चुका और आम मतदाता राजनीति को लेकर एक उकताहट से भर गया है। नब्बे के दशक में “गठबंधन” शब्द आया। जिसका सामान्य प्रचलित अर्थ है किसी दल का सत्ता प्राप्ति हेतु अन्दर से या बाहर से समर्थन करना। गठबंधन ने चुनावी राजनीति के अर्थ को ही बदल दिया। यह सत्य है कि विभिन्न विचारों से भरे देश में किसी एक दल का पूर्ण बहुमत प्राप्त करना वर्तमान में असम्भव सा होता जा रहा है ऐसे में गठबन्ध की आवश्यकता है। परन्तु इसका जिस प्रकार दुरुपयोग हुआ अर्थात् इस प्रकार के समर्थन की न तो कोई सैद्धान्तिक निश्चितता स्पष्ट है और न ही उसका कोई मान्य स्वरूप, केवल सत्ता प्राप्त ही इसका उद्देश्य हो गया।

राजनीति में अस्थिरता और बार-बार होने वाले चुनावों का कारण चुनाव प्रणाली की कमियां ही हैं जो क्रमशः बढ़ती जा रही हैं। इसका एक कारण राजनीति के स्वरूप का पेशेवराना होना है जिससे राजनीति में स्वार्थी तत्वों का इजाफा हुआ और चुनावी नियम – कायदों की धजियां उड़ाने लगी। चुनाव केवल नोट बोट और सपोर्ट तक तक ही सीमित गये। फलस्वरूप चुनावी प्रत्याषियों का चयन उनके धनबल, उनकी जाति और क्षेत्र पर प्रभाव और असीमित सत्ता की चाह से होने लगा। अर्थात् मेन मंसल और मनी ही प्रत्याशी चयन का आधार होता जा रहा है। जिसके कारण भ्रष्टाचारियों, बाहुबलियों का दखल राजनीति में बढ़ा है। जहाँ पहले लोकतन्त्रीय राजनीति का उद्देश्य आम जनता के हितों को ध्यान में रखना था वहीं अब राजनीति केवल स्वार्थसिद्धि रह गयी है।

समस्त चुनाव प्रक्रिया में आज एक नहीं अनेक कमियां और विकृतियां हैं जो निरंतर बढ़ती जा रही हैं। चुनावों से जुड़ी विकृतियां, समस्याएँ इस प्रकार हैं :-

- चुनावों में धन का प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है।
- बाहुबली आज राजनैतिक नेतृत्व की भूमिका में हैं।
- माफिया का प्रभाव – अर्थात् बैलेट पर बुलेट भारी पड़ रहा है। जिसे हम बूथ कैचरिंग के नाम से जानते हैं।
- प्रत्याषियों के चयन का आधार उनकी योग्यता और विचारधारा न होकर जाति, क्षेत्र पर उनका प्रभाव या उनकी आर्थिक सुदृढ़ता है।
- राजनैतिक अस्थिरता।
- दलों की आन्तरिक राजनीति (कलह)।
- सरकारी अमले का पक्षपातपूर्ण अपारदर्शी व्यवहार, सरकारी तंत्र का दुरुपयोग तथा अधिकारियों पर राजनैतिक दबाव।
- राजनीति में अपराधियों का प्रवेश।
- राजनीति में जाति, धर्म, क्षेत्र का बढ़ता प्रभाव।
- प्रत्याषियों द्वारा एक से अधिक स्थानों से नामांकन भरना।
- मतदान में अरुचि तथा जाली मतदान।
- गठबन्धन का दुरुपयोग।

→ निर्दलीय उम्मीदवारों की अधिक संख्या

→ निर्वाचन याचिकाओं पर निर्णय में अत्यधिक बिलंब।

यहां महत्वपूर्ण बात यह है कि समाज का प्रभाव शासन और राजनीति पर पड़ता है उपरोक्त सभी विकृतियां और समस्यायें समाज में है जो समाज में होगा। उसकी ही अभिव्यक्ति शासन सत्ता और संस्थाओं में होगी। “चुनाव का सारा मटमैलापन उस समाज से ही आता है जिसके बीच चुनाव सम्पन्न होता है। यदि समाज में गुन्डे बढ़ गये हैं तो चुनाव भी लड़ेंगे। यदि समाज में व्यापक भ्रष्टाचार है तो चुनाव प्रक्रिया भी अभ्रष्ट नहीं रह सकती। यदि समाज के बहुत सारे फैसले मांसपेशियों के बल पर होते हैं तो कुछ चुनावों का फैसला भी जोर जबरदस्ती से होगा। चुनाव उतने ही लोकतांत्रिक या अलोकतांत्रिक होंगे जितना लोकतांत्रिक या अलोकतांत्रिक समाज होगा। खारे कुएँ से मीठा पानी निकालने का कोई तरीका नहीं है। चुनाव लोकतन्त्र का सिर्फ एक पाया है जब तक सभी समाजिक संबंध लोकतांत्रिक नहीं होंगे तब तक चुनाव सिर्फ वह संभावना है जिसका इस्तेमाल कर पूर्ण लोकतन्त्रीकरण की ओर बढ़ा जा सकता है।”⁽⁶⁾

कुल मिलाकर वर्तमान चुनाव प्रणाली खामियों से भरी पड़ी है। इसमें अनेकों किस्म की विकृतियां हैं। जिनके बारे में बौद्धिक वर्ग सभी का ध्यान आकर्षित करता रहा है। परिणाम स्वरूप सुधार के प्रयत्न भी हुये। इसके लिये कानून भी है। संविधान के अनुच्छेद 324 से अनु. 329 में इस बारे में व्यवस्था दी गयी है। भारतीय दंड संहिता (IPC) की धारा 171 (क) से 171 (झ) में उन अपराधों के लिये दंड की व्यवस्था है, जो चुनाव से जुड़े हैं। सुधारों के लिये ही 1972 में संयुक्त संसदीय समिति, 1975 में तारकुण्डे समिति तथा सन् 1990 में गोस्वामी समिति का गठन किया गया। इन समितियों की तरफ से कुछ अच्छे सुझाव भी आए, जो व्यवहार में न लाए जाने के कारण व्यर्थ साबित हुए।

आज स्थिति यह है कि “लाख चिंताये जताये जाने के बावजूद राजनीति और अपराधियों की नाते – रिश्तेदारी बढ़ रही है। कई मामलों में तो यह फर्क करना ही मुश्किल हो गया है कि राजनीतिक कौन है अपराधी कौन? दलील यही कि दोषी साबित हुये बगैर कोई अपराधी कैसे सिद्ध हो सकता है? प्रभुनाथ सहाबुद्धीन, सूरजभान, पप्पू यादव और सोरेन अलग-अलग पार्टियों और अलग-अलग सामाजिक पृष्ठभूमि के हैं। मगर उनमें एक बात साफ है कि वे सभी ऐसे सांसद हैं जिनके खिलाफ अपराधिक मामले दर्ज हैं। ये सभी कानून की शपथ ले चुके हैं और कानून यहाँ तक संविधान की रक्षा की उम्मीद की जाती है। लेकिन विडंबना है कि ये कानून की घोर अवमानना करते हैं, न्याय का मखौल उड़ाते हैं शान से कानून तोड़ते हैं और बच भी निकलते हैं।”⁽⁶⁾ आम जनता जब चुनावों में ऐसे प्रत्याशियों को देखती है तो सुनिश्चित तौर पर वोट करने के प्रति हतोत्साहित होती है और ऐसे उम्मीदवारों के चयन से “राजनीति” एक बुराई के रूप में उनके समक्ष आती है।

“वास्तव में यह केवल प्रशासनिक कदम और संहिता का नहीं, हमारे लोकतंत्र के स्वरूप और समाज के आचरण का प्रश्न है। हमारा लोकतंत्र व्यवहार में निर्वाचित प्रतिनिधि को एक साथ इतनी वैधानिक शक्ति देता है, जिससे उनका नाम और प्रभाव दोनों फैलता है। इसका लाभ वे हर प्रकार से शक्ति अर्जित करने में सफलतापूर्वक कर सकते हैं और करते भी हैं। अतः ऐसी जगह, जहाँ नाम और प्रभाव, दोनों मिलें, जहाँ से हर प्रकार की शक्ति पाई जा सकती है, पहुँचने की चाहत स्वाभाविक ही बढ़ी

है। आम मानसिकता यह है कि बस चुनाव जीतना है, भले ही कोई भी तरीका इस्तेमाल करना पड़े।⁽¹⁰⁾ चुनाव जीतने की इस इच्छा ने चुनावों को पैसे का खेल बना दिया। चुनावों में पैसे का दुरुपयोग अब कोई रहस्य नहीं है। परन्तु समस्या यह है कि कोई भी इस कुप्रथा का विरोध व्यवहारिक आधार पर नहीं करना चाहता। इस प्रकार धन खर्च करके जीता उम्मीदवार जनता की समस्याओं के प्रति सजग नहीं रहता वरन् चुनाव में उसने जो इन्वेस्ट किया था सर्वप्रथम ऐनकेन प्रकारेण उसे प्राप्त करना चाहता है फिर अगले चुनाव के लिये पैसे कमाना। इस कारण “मंहगे चुनाव लड़ने के लिये जिन घरानों से धन लिया जाता है, उनके हित साधन का प्रयास जीतकर आए उम्मीदवार करते हैं अर्थात् वे आवाम के हित के बदले औद्योगिक घरानों के लिये काम करते हैं।” परिणाम बढ़ता भ्रष्टाचार और खण्डित होती लोकतंत्र की मान्यतायें।⁽¹¹⁾

यहाँ एक और तथ्य यह है कि चुनाव आयोग ने चुनावों में पैसा खर्च करने की एक सीमा तय कर दी है परन्तु इस तय सीमा और व्यावहारिक खर्च में कई गुना पैसों का अंतर है। यही कारण है कि कई बार अच्छे उम्मीदवार पैसों की कमी के कारण चुनावों में भाग नहीं लेते और यदि भाग ले भी ले तो काले धन की चपेट में आ जाते हैं जो व्यापार, अपराध, भ्रष्टाचार और न जाने किन-किन स्रोतों से आता है। वर्तमान में चुनावों में नया प्रयोग हुआ है अब बड़े व्यवसायिक घराने जिनके पास धन तो है पर जनमत नहीं है वे स्वयं चुनाव में खड़े न होकर उन उम्मीदवारों को पैसा देते हैं जिनके पास जनमत होता है परन्तु चुनाव लड़ने के लिये पैसा नहीं।

“वास्तव में हमारा चुनाव धन के प्रभाव में इतना आ चुका है कि उसमें प्रशासनिक कार्रवाई से उबरना संभव नहीं। मुख्य चुनाव आयुक्त की यह बात सही है कि बाहुबल के प्रभाव से चुनाव काफी हद तक बाहर हुआ। पर अब धन की ताकत उसके स्थान पर उससे कई गुना ज्यादा विस्तार के साथ विराजमान हो गई है। पिछले लोकसभा चुनाव के बाद नेशनल इलेक्शन वाच ने विजित और पराजित प्रत्याशियों की घोषित संपत्ति के आधार पर जो आकलन किया, उसके निष्कर्ष चौकाने वाले थे। इसके अनुसार, अगर आपके पास पांच करोड़ रुपये हैं, तो आपके जीतने की संभावना एक करोड़ रुपये वाले से 75 गुना ज्यादा है। सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज का निष्कर्ष था कि करीब 20 हजार करोड़ रुपये अवैध तरीके से मतदाताओं को खरीदने पर खर्च किये गये। धन खर्च करने वाले ऐसा व्यवहार करते हैं कि आप उन्हें पूर्व के बाहुबलियों की तरह अपराधी भी नहीं मान सकते।”⁽¹²⁾

चुनावों में पैसे का दुरुपयोग कोई छुपी बात नहीं है। हमारे देश में विभिन्न स्तरों पर कई चुनाव होते हैं और सभी तरह के चुनावों में धन का बोलबाला दिखाई देता है। परन्तु यह भी सच है कि कोई भी राजनैतिक दल इस सच्चाई को न स्वीकार करता है न इसे समाप्त करने के प्रति सचेत है। जो उम्मीदवार पैसे के बल पर चुनाव जीत कर आते हैं राजनीति उनके लिये समाज सेवा या जन समस्याओं के प्रति उत्तरदायित्व का भाव पैदा नहीं करती वरन् राजनीति उनके लिये एक व्यवसाय बन गयी है। इसका सीधा प्रभाव लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं पर पड़ता है। लोकतन्त्र आम जनता के लिये न होकर उन गिने-चुने लोगों के हितों की पूर्ति करता नजर आता है जो चुनावों में निवेश करते हैं। यह सही है कि जनता को यह सब दिखाई देता है वह इसे समझती है इससे क्षुब्ध भी है परन्तु प्रतिरोध की शक्ति चुनावों में अपने “मत की शक्ति” से अनभिज्ञ है। इसके साथ ही जनता के सामने सीमित विकल्प होते हैं जिनमें से उसे चयन करना होता है।

अपने 'मत की शक्ति' के प्रति जागरूकता हेतु जनता को समय-समय पर लोकतन्त्र के लिये प्रशिक्षित किया जाना अनिवार्य होता है जो हमारे देश में हमें दिखाई नहीं देता। लोकतन्त्र का स्वरूप नेतृत्व से प्रभावित होता है। हमारे देश में "राजनीति" और "नेतागिरी" दोनों ही शब्दों और विषयों को व्यंग्यात्मक स्वरूप में देखा जाता है और प्रायः अच्छे लोग इन दोनों प्रक्रियाओं से दूर ही रहते हैं कई बार उनकी दूरी इतनी अधिक होती है कि वे मतदान में भी भाग नहीं लेते। जिसका परिणाम अच्छे नेतृत्व का सदैव अभाव रहता है। केवल उच्च स्तर पर परिवारवाद के चलते लोग राजनीति को व्यवसाय/परम्परा के रूप में अपनाते रहे और निम्न स्तर पर ऐसा नेतृत्व तैयार करते रहे जो उन्हें शीर्ष पर बनाये रख सके। यही कारण है कि "उम्मीदवारों के चयन का कोई निश्चित मानदंड नहीं है। लोकसभा के लिये तो फिर भी यह देखा जाता है कि जनता उसे चुनेगी या नहीं, लेकिन राज्यसभा की सदस्यता तो जेबी रुमाल की तरह है। यदि पार्टियों में आंतरिक लोकतन्त्र हो, हर पद के बाकायदा चुनाव हो और इन पार्टी चुनावों में केवल उन्हीं उम्मीदवारों को चुना जाए, जिन्हें उनके पार्टी सदस्यों का बहुमत मिला हो तो संसद में पहुंचने पर ये सदस्य अपने पैरों पर खड़े हो सकेंगे। अपने अंतःकरण की आवाज सुनेंगे। आज तो वे बंधुआ मजदूरों की तरह हैं। वे संसद में बैठकर जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं, वे अपने पार्टी नेताओं की नौकरी बजाते हैं। यह संसद और लोकतन्त्र, दोनों का मजाक है।"⁽¹³⁾ वर्तमान में देशहित और जनसमस्याओं को छोड़ जनप्रतिनिधियों ने राजनीति को व्यवसाय और सत्ता को समृद्धि के साधन के रूप में जिस प्रकार अपनाया है वह शर्मनाक है इससे लोकतन्त्र शर्मसार हो रहा है।

जवाहर लाल विश्वविद्यालय में अंतर्राष्ट्रीय मामलों के जानकार प्रोफेसर तुलसीराम का मानना है कि अन्य देशों के मुकाबले अगर देखे तो भारत का लोकतन्त्र परिपक्व है लेकिन भारत में तीन विचारधाराओं जातिगत, संप्रदाय और क्षेत्र के नाम पर वोटों का ध्रुवीकरण हो रहा है। इससे असली मुद्दे गायब हो गये हैं। वे कहते हैं कि "आज भारतीय जनतांत्रिक प्रणाली जातीय जनतंत्र में बदल गयी है। इसमें बदलाव की सख्त जरूरत है।"

वास्तव में यदि हमें सशक्त लोकतन्त्र का निर्माण करना है तो सशक्त और निष्पक्ष जनता की अधिकतम भागीदारी वाली चुनाव प्रक्रिया से सशक्त नेतृत्व प्राप्त करना होगा। परन्तु आम मानसिकता यह है कि बस चुनाव जीतना है, भले ही कोई भी तरीका इस्तेमाल करना पड़े। जब तक यह सोच नहीं बदलेगी धनबल का प्रभाव नहीं रुक सकता। वैसे, अगर कोई अपना मत न बेचे यानी मतदाता रुपये या समान ले ही नहीं, तो चुनाव से धन का असर यूँ ही समाप्त हो जाएगा, पर अब ऐसे नैतिक मानक निःशेष हो रहे हैं। हाँ, कोई धन लेकर भी मत न दे, यह तो होता है, पर धन लेने से इंकार करने वालों की संख्या घट नहीं रही है। इस व्यवहार को चुनाव आयोग के कदम दूर नहीं कर सकते। समाज के चरित्र में बदलाव तथा तंत्र में आमूल सुधार ही इसका निदान हो सकता है।"⁽¹⁴⁾

प्रो. लास्की ने लिखा है "सतत् जागरूकता ही स्वतंत्रता की कीमत है" हम भारतीय जागरूक रहेंगे तो लोकतन्त्र लाभदायी होगा वरना लोकतंत्र को भ्रमतंत्र में बदलते समय नहीं लगेगा।

इसके लिये चुनाव और चुनाव प्रक्रिया में व्यवहारिक सुधार तो आवश्यक होंगे साथ ही उन सुधारों को क्रियान्वित करना भी उतना ही आवश्यक होगा। वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु चुनाव सम्बन्धित निम्न सुधारों की विनम्र आवश्यकता मुझे दिखाई देती है—

→ शासन को जनता को लोकतन्त्र के प्रति जागरूक करने हेतु सतत् प्रशिक्षण कार्यक्रम हर स्तर पर

चलाने होंगे।

- मतदान की अनिवार्यता सुनिश्चित करनी होगी।
- उम्मीदवारों का शिक्षित होना।
- चुनाव में पैसे के दुरुपयोग पर नियन्त्रण हो।
- व्यवसायिक घरानों, अपराधियों, बाहुबलियों पर पूर्ण प्रतिबन्ध हो।
- गरीब उम्मीदवार के लिये शासकीय सहायता हो।
- उम्मीदवारों की संख्या पर नियन्त्रण हो।
- उम्मीदवारों को वापिस बुलाने का प्रावधान हो।
- उम्मीदवारों का वार्षिक रिपोर्ट कार्ड सार्वजनिक हो।
- परिवारवाद पर नियन्त्रण हो।
- सामाजिक समस्याओं को राजनैतिक न होने देना, (ताकि वोटो का ध्रुवणीकरण क्षेत्र, जाति, भाषा, लिंग, धर्म के नाम पर न हो सके)।
- नेतृत्व चुनाव में जीते उम्मीदवारों में से हो जो वरिष्ठता / परिवारवाद के स्थान पर योग्यता और प्रभावशीलता से निर्धारित हो।
- एक व्यक्ति एक स्थान से ही चुनाव लड़े।
- सत्ताधारी दल के हारे प्रत्याशियों को लाभ के पद से वंचित रखा जाये।
- जीते प्रत्याशियों की सम्पत्ति का पूर्ण लेखा हर वर्ष सार्वजनिक हो।
- राजनैतिक दलों की सम्पत्ति व चुनाव में खर्च धन का सार्वजनिक विवरण दिया जाये।
- राजनीति एवं सत्ता को व्यवसाय की तरह नहीं बल्कि समाज सेवा व जन कल्याण की तरह प्रोत्साहित किया जाये।
- गठबन्धन का उचित उपयोग सुनिश्चित हो।
- दल बदलने वालों को मंत्रीपद से अनिवार्यतः वंचित रखा जाये।
- मतदान को कर्तव्य के रूप में प्रोत्साहित किया जाये।
- चुनावी घोषणाओं की व्यवहारिकता का मूल्यांकन कर उसे सार्वजनिक किया जाये।
- राजनैतिक जागरूकता हेतु स्कूल शिक्षा में प्रावधान हो।
- मीडिया की सतत् सकारात्मक भूमिका हो।
- नैतिक मूल्यों को प्रोत्साहित किया जाये।

ये सभी सुधार जनता की जागरूकता, राजनैतिक इच्छाशक्ति और प्रशासनिक जिम्मेदारी व वचन बद्धता से ही व्यवहारिक रूप ले पायेंगे। इन सभी चुनाव सुधारों से हमारी उम्मीद है कि बुराई हाशिए पर आती जायेगी, भ्रष्टाचार पर अंकुश लगेगा, चुनावों में पैसे के दुरुपयोग को नियन्त्रित किया जा सकेगा, सामाजिक समस्याओं से वोटो का ध्रुवीकरण तो रोक ही पायेंगे। अच्छे शिक्षित सामान्य नागरिकों

को राजनीति की ओर आकर्षित भी कर पायेंगे। जिससे जन कल्याण और जनता की समस्याओं के समाधान का जरिया राजनीति और सत्ता बनेगी और राष्ट्र विकास की दिशा में अग्रसर होगा। अर्थात् चुनाव प्रक्रिया के द्वारा राजनीति को उचित स्थान और सम्मान मिले सकेगा। ताकि अच्छे लोग राजनीति में सदैव सक्रिय योगदान दे सकें। तभी लोकतन्त्र मजबूत होगा।

संदर्भ सूची

1. अशोक कुमार—राजनीति विज्ञान, पृ. 378
2. भारत का संविधान खण्ड, पृ. 90
3. भारतीय लोकतन्त्र की खंडित होती गरिमा और उठते सवाल, डॉ. सर्वेश्वर उपाध्याय, पृ. 114
4. राज एक्सप्रेस 2011
5. भारतीय सरकार एवं राजनीति—त्रिवेदी राय
6. भारतीय सरकार एवं राजनीति—त्रिवेदी राय
7. दैनिक भास्कर 16/5/12—वेद प्रताप वैदिक
8. राजकिशोर (1992) लोकतंत्र का शार्टकट नहीं होता, नवभारत टाइम्स।
9. इंडिया टुडे 9/8/04
10. राज एक्सप्रेस 12/1/12
11. दैनिक भास्कर, जय प्रकाश चौकसे, 19/12/11
12. राज एक्सप्रेस 12/12/12
13. दैनिक भास्कर—वेदप्रताप वैदिक—चुनावी सुधारों की दरकार 16/5/12
14. राज एक्सप्रेस—अवधेश कुमार 12/1/12



बिहार में सिंचाई और कृषि उत्पादन की झलक

डॉ० प्रभा कुमारी

व्याख्याता-सह-अध्यक्षा-अर्थशास्त्र विभाग

मुरारका कॉलेज, सुलतानगंज, ति.माँ. भागलपुर वि.वि., भागलपुर (बिहार)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के सामने पेट की समस्या थी, क्योंकि कृषि वर्षा के भरोसे थी। सिंचाई की व्यवस्था कुँआ, तालाब तथा वर्षा जल संग्रह पर आधारित थी। यह व्यवस्था भी कहीं-कहीं थी। और खासकर बिहार के कई भागों में ऐसी व्यवस्था पायी जाती थी। कृषि पर सिंचाई की इस अनिश्चितता को देखते हुए सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में छोटी, मध्यम एवं बड़ी सिंचाई परियोजनाओं की रूपरेखा तैयार करवायी थी।

भारत में नियोजित विकास की शुरुआत से ही सिंचाई को हमेशा प्राथमिक सूची में रखा गया है। बड़ी, मध्यम और छोटी सिंचाई परियोजनाओं के जरिये सिंचाई के बुनियादी ढांचा तैयार करने के लिये सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में व्यापक निवेश हुआ है। इसके परिणामस्वरूप कुल सिंचाई क्षमता में व्यापक वृद्धि हुई है। 1950-51 ई. में योजना से पहले इसका स्तर जहाँ 2.26 करोड़ हेक्टेयर था अब यह 8.9 करोड़ हेक्टेयर से कुछ अधिक हो गया है। लेकिन, सभी स्रोतों के जरिये देश की कुल सिंचाई क्षमता जिसका पहले 11.35 करोड़ हेक्टेयर होने का अनुमान लगाया गया था, अब पुनः 13.99 मिलियन हेक्टेयर आंकी गई है। अभी तक हम इस क्षमता का करीब 64 प्रतिशत ही लाभ उठा पाये हैं।

सिंचाई की व्यवस्था कई गुणों में वर्गीकृत किया गया है—

पहला गुप— 35 प्रतिशत सिंचाई वाले क्षेत्र जैसे — मेघालय, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश है।

दूसरा गुप— 35 प्रतिशत से 50 प्रतिशत सिंचाई वाले क्षेत्र जैसे त्रिपुरा, कर्नाटक, तमिलनाडु, नागालैण्ड और संघीय राज्य।

तीसरा गुप में 50 से 65 प्रतिशत सिंचाई वाले क्षेत्र जैसे— आंध्र प्रदेश, मणिपुर, उड़ीसा, प. बंगाल और हरियाणा।

चौथा गुप में 65 प्रतिशत और इससे ऊपर वाले सिंचाई क्षेत्र जैसे असम, जम्मू-कश्मीर, केरल, बिहार, पंजाब और उत्तर प्रदेश है।

इस तरह से भारत में चौथे गुप वाले राज्यों में कृषि उत्पादन अच्छा है। इस गुप में बिहार भी शामिल है।

तालिका 1

राज्यों	छोटे सिंचाई क्षमता 000 हेक्टेयर	1977-78 द्वारा सृजित क्षमता	1977-78 सृजित का प्रतिशत	सृजित क्षमता (प्रतिशत में)
आंध्र प्रदेश	4200	1740	41.43	58.57

बिहार	5500	2100	35.59	64.41
गुजरात	1750	1340	96.57	23.43
हरियाणा	1450	1162	80.14	19.86
कर्नाटक	2100	925	44.05	55.95
मध्य प्रदेश	4200	1350	34.65	65.36
महाराष्ट्र	320	1455	34.65	54.35
उड़ीसा	2350	560	45.47	75.65
पंजाब	3350	2818	24.45	15.88
राजस्थान	2400	1760	84.12	26.67
तमिलनाडु	2400	1820	73.33	24.76
उत्तर प्रदेश	115	32	75.84	72.13
प. बंगाल	3800	1300	27.87	65.79
भारत का औसत	54635	27302	49.94	50.03

स्रोत : ऑल इंडिया कंफ्रेंस छोटे-सिंचाई और कमाण्ड क्षेत्र विकास 1978, कृषि-सिंचाई मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 15

बिहार में सतही पानी, भूमिगत पानी की भरमार है, जल-संग्रह करने की जरूरत है। लेकिन 35 प्रतिशत जल का ही उपयोग हो पाता है और 65 प्रतिशत जल का उपयोग सिंचाई के काम में अभी तक नहीं लाया जा सका है।

तालिका - 2

राज्य	बड़े और मध्यम सिंचाई क्षमता	छोटे सिंचाई क्षमता	कुल
प. बंगाल	23.1	38.0	61.1
उड़ीसा	36.0	23.0	59.0
बिहार	65	59.0	124.0
पूर्वी भारत	50	59.4	109.4
भारत का औसत साधन	174	179.4	353.8

इस तालिका को देखने से पता चलता है कि बड़ा और मध्यम सिंचाई के साधन सबसे ज्यादा बिहार में हैं। जबकि सिंचाई के अंतर्गत बिहार, उत्तर प्रदेश और उड़ीसा में 30 प्रतिशत क्षेत्र और प. बंगाल में 40 प्रतिशत क्षेत्र सिंचाई के अंतर्गत 1980-81 में आये थे।

कृषि उत्पादन में सिंचाई का महत्व काफी है। देश में सृजित क्षमता का बहुत कम लाभ उठा पाने की वजह से वास्तविक सिंचित क्षेत्र केवल 5.5 करोड़ हेक्टेयर 2000-01 में था जो कुल जोताई क्षेत्र का करीब 40 प्रतिशत है। इस प्रकार 60 प्रतिशत क्षेत्र की फसलें अब भी वर्षा पर निर्भर करती हैं, जिससे कुल उत्पादन में अनिश्चितता बनी रहती है। इसके अलावे उपलब्ध सिंचाई जल की भी पूरी क्षमता के

अनुरूप काम नहीं हो रहा है। खेतों में फसलों की सिंचाई हेतु देश-व्यापी जल प्रयोग क्षमता 49.5 प्रतिशत है, पर बिहार में 36 प्रतिशत है। इन दिनों छिड़काव और डिप सिंचाई जैसी नई जल-उपयोग-पद्धति की दक्षता क्रमशः 80 प्रतिशत और 95 प्रतिशत है। लेकिन यह परियोजना बिहार में बहुत कम है जो चिंता का विषय है। इस सिंचाई प्रणालियों में काफी खर्च होता है, जिसके कारण बिहार बहुत पीछे चल रहा है।

बिहार में कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिये इस प्रकार की व्यवस्था लागू करने पर काफी उपज बढ़ सकती है। इस तरह की परियोजनाओं के लिये मुख्यतः व्यावसायिक दृष्टिकोण के साथ काम आरंभ किया गया जो काफी लाभप्रद साबित हुई है।

स्वतंत्रता प्राप्ति तक सिंचाई क्षेत्र सरकार के लिए राजस्व जुटाने का एक प्रमुख स्रोत था। क्योंकि ब्रिटिश सरकार के लिये यह क्षेत्र आय प्राप्त करने का मुख्य स्रोत था।

अंग्रेजी शासनकाल में कई छोटी बड़ी परियोजनाओं के रूप में काम शुरू किया गया था, जहाँ ब्रिटिश सरकार की मंशा थी कि सिंचाई व्यवस्था से मुख्य रूप से आय प्राप्त करना जैसे बेतवा नहर, गोकाक नहर, खासवाड टैंक, रुसी कुलिया, लेफ्ट बैंक निरा इत्यादि जैसी परियोजनाओं के लिये फसल सुरक्षा सिंचाई परियोजनाओं के रूप में काम प्रारंभ किया गया था।

लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सिंचाई-परियोजनाएँ सिर्फ आय प्राप्त करने के स्रोत नहीं थीं, बल्कि विभिन्न परियोजनाओं का लाभकारी प्रयोग किया जाना था। जल संसाधनों का प्रयोग सिंचाई के साथ-साथ बाढ़ नियंत्रण, पनबिजली उत्पादन, पेयजल औद्योगिक आपूर्ति तथा भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिये प्रयोग किए जाते रहे। बाद में चलकर इन बाँधों, बैराजों से पनबिजली परियोजनाओं नहरों के नेटवर्क आदि से जुड़ी विभिन्न प्रकार की ढाँचागत सुविधाओं का विकास हुआ जिससे 200 अरब क्यूबिक मी. स्टोरेज क्षमता हो गई।

दरअसल आज बहुउद्देश्य और सिंचाई परियोजना सहित बड़ी संख्या में नदी घाटी परियोजनाएँ इनके क्रियान्वयन के लिए जिम्मेदार राज्य सरकारों द्वारा मुख्यतः पर्याप्त धनराशि के आवंटन के अभाव में एक योजना से दूसरी योजना में खिसकती चली जा रही है।

मध्यम एवं बड़ी सिंचाई परियोजनाओं को संचालित करने में बड़ी-बड़ी बाधाएँ आती रही हैं। कृषि के लक्ष्यों की प्राप्ति में असफलता से सिंचाई परियोजनाओं के पूर्ण होने में काफी देरी होने की वजह से लागत भी काफी बढ़ जाती है। बिहार में भी बड़ी, मध्यम सिंचाई परियोजनाएँ बनते-बनते रुक गई हैं। इतनी ही बड़ी एवं मध्यम आकार वाली परियोजनाओं की मरम्मत नहीं होते रहने के कारण बंद होने लगी हैं या फिर अपनी क्षमता के अनुकूल काम नहीं कर रही हैं जिससे कृषि क्षेत्रों में लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो पा रही है।

इसके लिये राज्य सरकार की लापरवाही माना जाना सही है जिसके चलते समय पर पर्याप्त धनराशि का आवंटन के अभाव में नदी-घाटी परियोजनाओं का रखरखाव नहीं हो पाता है।

वर्ष 2004-05 के बजट में तालाबों और अन्य जलस्रोतों की मरम्मत, नवीकरण और जीर्णोद्धार हेतु एक व्यापक कार्यक्रम शुरू किया गया जिसमें 30 करोड़ रुपये की अनुमानित लागत के साथ जनवरी 2005 में 10वीं योजना में इन सब परियोजनाओं के लिए प्रयोग के तौर पर एक योजना को स्वीकृति मिली थी, जिसमें केन्द्र और राज्य के धन का अनुपात 75:25 खर्च किये जाने की सहमति प्रदान की गई थी।

अप्रैल सन् 2006 ई. तक जल संसाधन मंत्रालय द्वारा 262.80 करोड़ रुपये की कुल लागत के साथ 13 राज्यों के 24 जिलों हेतु परियोजना को मंजूरी दी गई थी जिसमें वे राज्य थे जैसे छत्तीसगढ़, जम्मू कश्मीर, उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, राजस्थान, मध्य प्रदेश, झारखंड, गुजरात, प. बंगाल इत्यादि।

1950-51 में भारत में खाद्यान्न का उत्पादन 4 करोड़ 50 लाख टन था जो बाद में 20 करोड़ टन तक पहुँच गया था और 1961-62 में 1700 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर का उत्पादन बढ़ा था। 1951-52 में सिंचाई व्यवस्था 2 करोड़ 10 लाख हेक्टेयर में थी, जबकि अब 6 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई होने लगी है। कुल सिंचित क्षेत्र के रकवे में भी 300 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। सिंचित क्षेत्र के विस्तार में भू-जल, सिंचाई की अग्रणी भूमिका रही है। यह औद्योगिक प्रगति के कारण ही संभव हो सका है।

इतनी प्रगति के बावजूद भी हमारी स्वाधीनता जयंती वर्ष के दौरान कृषि के क्षेत्र में दुर्भाग्य का वातावरण बना हुआ है। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 20 प्रतिशत से कम हो गया है, जिसके कारण जनसंख्या का दो तिहाई हिस्सा अभी भी रोजी-रोटी के लिये खेती पर निर्भर है। कृषि पर निर्भरता जनसंख्या का लगभग छोटे एवं मध्यम किसानों (छोटी जोत) 70 प्रतिशत है जिसका 62 प्रतिशत क्षेत्र अब भी वर्षा पर निर्भर करता है।

अगर फसल की उत्पादकता प्रति हेक्टेयर कि.ग्रा. में दूसरे देशों से तुलना करने पर जो डाटा प्राप्त होगा वह काफी चौकाने वाला होगा।

तालिका — 3

फसल उत्पादकता कि.ग्राम/हेक्टेयर

फसल	अमेरिका	चीन	भारत
मक्का	8900	4900	2100
धान	7500	6000	3000
सोयाबीन	2250	1740	1050
कपास बीज	2060	3500	750
टमाटर	6250	2400	1430

अमेरिका और चीन की तुलना में भारत में प्रति हेक्टेयर फसल उत्पादकता कम है, मक्का, धान, कपास, सोयाबीन, टमाटर, इत्यादि की तुलना में। हो सकता है इन क्षेत्रों में सिंचाई की व्यवस्था ज्यादा हो। बिहार में जिला स्तर पर कृषि उत्पादन को तालिका द्वारा दिखलाया जा सकता है।

तालिका — 4

कृषि उत्पादन और विकास जिला स्तर पर (बिहार)

जिला	वार्षिक वृद्धि दर	क्षेत्र	प्राप्ति	क्रॉपिंग पैटर्न
भागलपुर	2.87	9.03	67.88	-1.92
चंपारण	3.19	61.69	27.41	-2.18
सारण	3.65	3.32	71.00	-3.08
साहाबाद	0.90	23.12	98.85	-27.89

कटिहार	-0.27	-66.78	-73.90	-36.43
मुजफ्फरपुर	0.90	100.81	102.00	-24.81
पटना	0.92	23.12	73.90	-54.80
पूर्णियाँ	-2.85	-5.74	-225.30	-27.18
मुंगेर	-0.39	-52.26	-83.01	-159.22
गया	-0.85	-183.7	0.93	17.15

स्रोत : जी.एस. भाला और वाई. के अलघ, भारतीय कृषि का परफॉरमेन्स (जिला स्तर पर अध्ययन) स्टर्लिंग प्रा.लि. नई दिल्ली, फर्स्ट इंगलिष संस्करण, पृ. 44-52.

इस तालिका में जिला स्तर पर कृषि उत्पादन और विकास संतोषजनक नहीं मालूम पड़ता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के उद्देश्य से ही कृषि विकास पर विशेष ध्यान दिया गया था ताकि दूसरे देश से आयातीत खाद्यान्नों पर निर्भरता घटकर शून्य हो जाये, और निर्यात बढ़ाने के लिये सिंचाई परियोजनाओं का विस्तार किया जाये लेकिन उसकी मरम्मत और रख-रखाव नहीं होने के कारण कितनी सिंचाई परियोजनाएँ बंद हो चुकी हैं और कुछ बंद होने के कगार पर हैं। और उन्नत बीज, रासायनिक खाद और सिंचाई की सुविधाओं का विकास करना मुख्य लक्ष्य रहा था प्रथम योजना में। फोर्ड फाउण्डेशन के कृषि विशेषज्ञों का दल भारत भ्रमण पर 1959 ई. में आया था कृषि समस्या को सुलझाने, जिसमें संतोषजनक सुझाव दिया गया था। लेकिन द्वितीय योजना काल में कृषि उत्पादन था। लेकिन तृतीय योजना काल में प्राकृतिक आपदा के कारण कृषि का उत्पादन में कमी हुई थी। लेकिन 1964-66 के समय भयानक सूखे के पश्चात् कृषि में नई विकास विधि का सफल प्रयोग किया गया था। 1966-67 में 74 मिलियन टन से बढ़कर कृषि उत्पादन 99.5 मिलियन टन हुआ था। दालों की उपज भी काफी बढ़ी थी।

चौथी पंचवर्षीय योजना में कृषि सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण पर 3674 करोड़ रुपये व्यय किये गये थे।

छठी और सातवीं पंचवर्षीय योजना में सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण पर 26 प्रतिशत और 22 प्रतिशत कुल योजना पर किये गये व्यय का था जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई थी। सातवीं पंचवर्षीय योजना में सिंचाई की व्यापकता पर ध्यान दिया गया था। और तेलहन की उपज बढ़ाने का प्रभाव किया गया था। आठवीं, नौवीं और दसवीं योजना में कृषि का कार्यकलाप और सिंचाई पर काफी खर्च किया गया था। लेकिन आठवीं पंचवर्षीय योजना में दलहन की उपज में काफी कमी आयी थी। कृषि क्षेत्र में हुई प्रगति का विश्लेषण किया जाये तो यह स्पष्ट होता है कि देश में खाद्यान्न का उत्पादन सूचकांक 1990-91 में (1981-82=100) 147.7 था जो 2008 में 188.2 होने की उम्मीद थी। 1990 में भारतीय कृषि का उत्पादन कम हुआ कृषि की उपेक्षा के कारण।

तालिका - 5

कृषि क्षेत्र की वार्षिक औसत वृद्धि दर

पंचवर्षीय योजना

वार्षिक औसत वृद्धि दर (प्रतिशत)

1985-90

3.2

1990—92	1.3
1992—97	4.7
1997—02	2.1
2002—07	2.3

कृषि उत्पादन में लगभग 4 प्रतिशत लक्ष्य प्राप्त करना था जिससे विकास की गति तीव्र हो सके। लेकिन सिंचाई साधन की अपर्याप्तता, बाजार की कमी, मिट्टी की जाँच नहीं के बराबर होने के कारण लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकी।

- ⇒ भारत में कृषि के लिये कल्याणकारी नियोजित विकास की आवश्यकता पर बल।
- ⇒ पिछड़े राज्यों में सिंचाई की भरपूर व्यवस्था।
- ⇒ किसानों की आत्महत्या रोकने के लिए फसल बीमा।
- ⇒ सिंचाई व्यवस्था पर ज्यादा ध्यान देना।
- ⇒ कृषि पर दिया गया ऋण पर कम सूद
- ⇒ प्राकृतिक आपदाओं से निबटने के लिए केन्द्र, राज्य सरकारों का जोखिम निधि की स्थापना।
- ⇒ सिंचाई और जल संग्रह पर अधिक ध्यान देना।

इस तरह से इतना काम करने पर ही कृषि के लक्ष्य की प्राप्ति होगी। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि बिहार में सिंचाई की व्यवस्था पूर्ण रूप से कर देने पर देश के अग्रगणी राज्यों में बिहार रहेगा कृषि के उत्पादन में। बिहार में सतही, भूमिगत जल की क्षमता बहुत ज्यादा है, जिसका अवशोषण नहीं हो पा रहा है। लगभग 35 प्रतिशत का ही अवशोषित किया जाना दुःखद बात है। कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए 65 प्रतिशत जल बिहार में ऐसे ही पड़ा रह जाता है।

संदर्भ सूची

1. योजना, वर्ष 50, अंक 5, अगस्त 2006, प्र.सं.—अनुराग मिश्रा, नई दिल्ली, पृ. 39.
2. वही, पृ. 40—41.
3. योजना, वर्ष 41, अंक 5, अगस्त 2007, प्र. संपादक— अनुराग मिश्रा, नई दिल्ली, पृ. 59.
4. वही, पृ. 60—61.
5. भारत में क्षेत्रीय विषमताएँ कृषि आय और उत्पादकता में, प्रभा कुमारी, प्रथम अंग्रेजी संस्करण—2008, एम.पी.एस. प्रकाशन, दिल्ली—2, पृ. 129.
6. वही, पृ. 130—131.



झारखण्ड में पर्यटन विकास की सम्भावनाएँ

डॉ० प्रेम प्रकाश राजपूत

वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग

तिलक महाविद्यालय, औरैया, 206122 (उ० प्र०)

ओम जी

एम०फिल० छात्र

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, (म.प्र.)

भारत विविधताओं का देश है। जहाँ तरह-तरह के पर्यटन आकर्षण की सुविधाएं उपलब्ध हैं। यह देश धार्मिक रीति-रिवाज से धनी है और यहाँ का महत्त्व तीर्थ यात्रा को 'मुक्ति' का मार्ग माना गया है। पर्यटन सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का महत्वपूर्ण माध्यम है। यह राष्ट्रों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध विकसित करने में सक्षम है। यह पिछड़े क्षेत्रों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पर्यटन से इतना ही नहीं बल्कि क्षेत्रीय विकास की छवि को नवीन स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। इसी सन्दर्भ में लेखक ने अध्ययन हेतु झारखण्ड राज्य को चुना है जबकि यह राज्य अपने अन्दर पर्यटन विकास की अनन्त सम्भावनाएँ संजोए हुये हैं, परन्तु यह सत्य है कि पर्यटन विभाग द्वारा इस पिछड़े राज्य के पर्यटन स्थलों का समुचित विकास नहीं किया गया है जिसके कारण भारत के मानचित्र में उभर कर नहीं आ सका है। फिर भी झारखण्ड प्राकृतिक प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, पुरातात्विक एवं गौरवशाली इतिहास के कारण देश में विशिष्ट स्थान बनाये हुये हैं। यह प्राकृतिक-भूदृश्य एवं पर्यटन के दृष्टिकोण से न सिर्फ आन्तरिक पर्यटकों को बल्कि विदेशी सैलानियों के मध्य अवलोकनार्थ प्रिय है क्योंकि यहाँ वर्तमान में ही नहीं बल्कि प्राचीन काल से विदेशी यात्री फाह्यान (चीन), ह्वेनसांग (चीन), अब्दुल लती (ईरानी), मुल्ला बहबहानी (ईरानी धर्माचार्य) आदि आते रहे हैं।^१

अध्ययन क्षेत्र— झारखण्ड 15 नवम्बर 2000 को संघ के 28वें राज्य के रूप में अस्तित्व में आया जो आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र है जहाँ 2011 जनगणनानुसार 32966238 व्यक्ति निवास करते हैं। झारखण्ड के कुछ उत्तरी-पूर्वी भाग को छोड़कर शेष भाग प्राकृतिक दृष्टिकोण से उत्तम भौगोलिक विशिष्टता रखता है। इस राज्य की जलवायु उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी है जहाँ ग्रीष्म का तापमान 27° से 37° सेग्रे० तक एवं शीत का 6° से 23° सेग्रे० तक रहता है। राज्य की प्रमुख नदियों दामोदर एवं स्वर्ण रेखा हैं। यहाँ का अद्यतन वन क्षेत्रफल 29.6 प्रतिशत है। यह गोण्डवाना काल की चट्टानों से निर्मित लाल व लैटराइट मिट्टी वाला क्षेत्र है। खनिजों में झारखण्ड का छोटा नागपुर पठार भारत का खजाना है जहाँ झरिया एवं रानीगंज कोयले की विश्व प्रसिद्ध खानें हैं।

अध्ययन की दृष्टि से पारिस्थितिकी पर्यटन, ऐतिहासिक, धार्मिक, पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक पर्यटन पर अलग-अलग विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जो इस प्रकार हैं :-

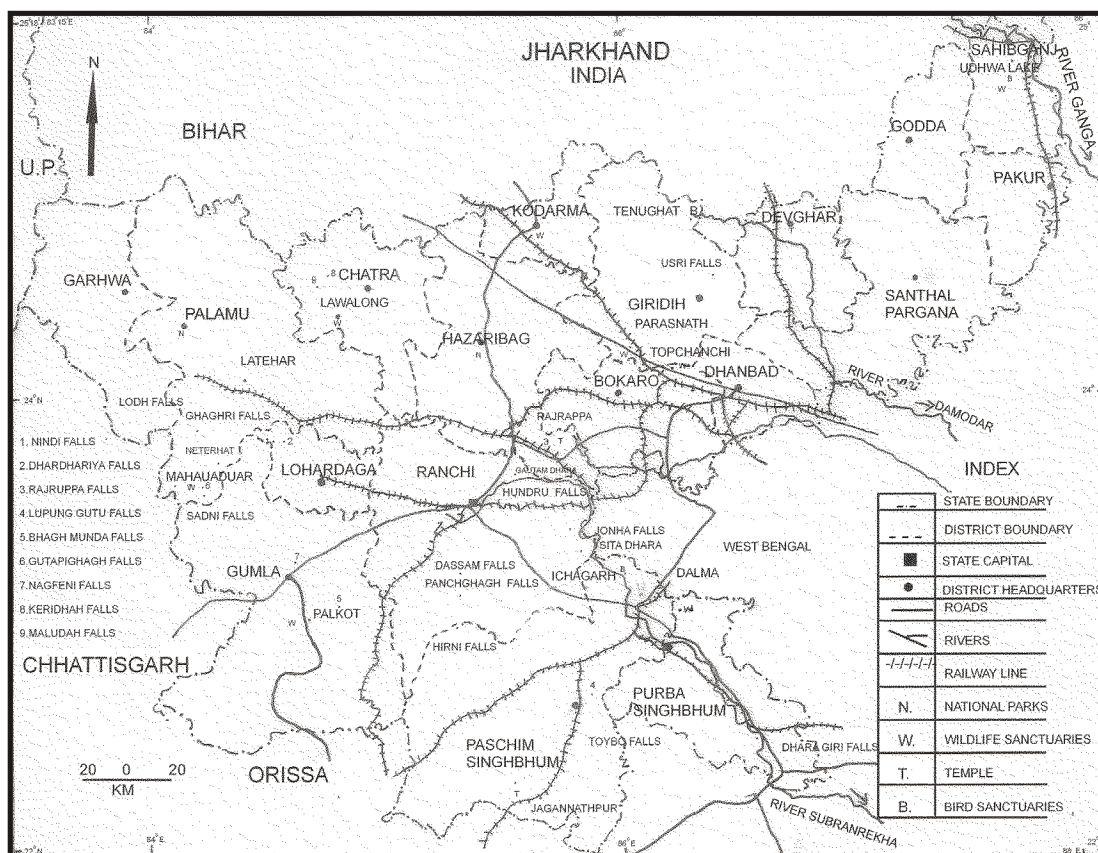
पारिस्थितिकी पर्यटन :- पर्यटकों की पर्यटक स्थलों पर बढ़ती भीड़ के दृष्टिकोण से पारिस्थितिकी असन्तुलन की सम्भावना के बढ़ने के कारण पर्यटन के व्यावसायिक स्वरूप को परिवर्तित कर इसे एक भव्य स्वरूप प्रदान किया जाये। परिवर्तन में पर्यटन की ये नवीन अवधारणा पारिस्थितिकी पर्यटन के रूप में विख्यात हो रही है। पारिस्थितिकी असन्तुलन की समस्या के फलस्वरूप भविष्य में पर्यटन संवर्द्धन हेतु उपयुक्त विकल्प पारिस्थितिकी पर्यटन हो सकता है। पारिस्थितिकी पर्यटन को बढ़ाने के लिये राज्य

सरकार वन क्षेत्रों में कई प्रकार की सुविधायें प्रदान कर रही है क्योंकि इससे न केवल वन्य पशुओं और पादपों का संरक्षण होगा अपितु राज्य सरकार को विशेष आय भी प्राप्त होगी। इसी परिप्रेक्ष्य में झारखण्ड के अन्दर पारिस्थितिकी पर्यटन की अपार सम्भावनायें विद्यमान हैं क्योंकि झारखण्ड पर्वतीय एवं पठारी है। कई तेज बहने वाली नदियाँ, टर्सेरी युग में और सम्बलन के कारण वृद्धावस्था से युवावस्था में आ जाने के कारण जल प्रपातों का निर्माण की हैं। इस क्षेत्र में आर्द्र मानसूनी वन हैं और जिनमें विभिन्न प्रकृति के वन्य जीव-जन्तु हैं। इनका परिरक्षण किया जाना आवश्यक है। इन सबके संरक्षण हेतु जो राष्ट्रीय उद्यान एवं अभ्यारण बनाये गये हैं जो पर्यटकों को आकर्षित करने की अपार सम्भावनायें रखते हैं।

यद्यपि झारखण्ड राज्य में पारिस्थितिकी पर्यटन के कुछ ही ऐसे स्थल हैं जो विकसित हो सके हैं परन्तु ऐसे कई स्थल हैं जो विकसित नहीं किये जा सके हैं। इन सबका विवरण लेखक ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

राष्ट्रीय उद्यान :- वर्तमान में राष्ट्रीय उद्यान एक प्रमुख पर्यटक स्थलों के रूप में जाने जाते हैं क्योंकि मानव अपनी मनोरंजन की आवश्यकताओं की पूर्ति इन्हीं प्राकृतिक पर्यटक स्थलों में आकर करते हैं।³ वर्तमान में यहाँ दो, 'बेतला राष्ट्रीय उद्यान' (पलामू) एवं हजारीबाग हैं जो क्रमशः 1026 एवं 186.25 वर्ग किमी⁰ में फैले हैं। (मानचित्र 01) पलामू विश्व का प्रथम ऐसा उद्यान है जहाँ 'रायल बंगाल टाइगर' की पहली गणना (1932) में की गयी थी। ये उद्यान 250 वर्ग किमी⁰ क्षेत्रफल में फैला हुआ है।⁴ पलामू जिले का ये उद्यान वर्ष भर हरे भरे वृक्षों से आच्छादित रहता है जिसमें साल एवं बेम्बू के वृक्ष प्रमुख रूप से मिलते हैं। इसके उत्तरी भाग में 'कोयल नदी' बहती है। यहाँ 47 प्रकार के स्तनपायी प्राणी एवं 174 प्रकार के पक्षी मिलते हैं।⁵ ये उद्यान हाथियों के लिये प्रसिद्ध है। इनको मानसूनी ऋतु में स्वच्छन्द विचरण करते हुये देखा जा सकता है। हाथियों के अतिरिक्त इस उद्यान में जंगली पशुओं में चीता, जंगली सुअर, सांभर, चीतल, सियार, तेंदुआ, नील गाय, नेवला, काकड़, छोटी पूँछ वाले बन्दर एवं लकड़बग्घा मिलते हैं। उद्यान में नाना प्रकार के पक्षी भी मिलते हैं जिनमें लाल मुर्गियाँ प्रमुख हैं। ये उद्यान सड़क मार्ग द्वारा जुड़ा हुआ है फिर भी यहाँ आने वाले पर्यटकों की संख्या कम है। इसलिये भविष्य में पर्यटन विकास हेतु अपार सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। दूसरा राष्ट्रीय पार्क हजारीबाग है जिसका शाब्दिक अर्थ 'हजार बाघ'। इस उद्यान में हाथी, बाघ, तेंदुआ, सांभर, भेड़िया, हिरन, जंगली कुत्ते एवं पक्षियों के झुण्ड विचरण करते हुये आसानी से देखने को मिल जाते हैं।⁶ ये दोनों उद्यान सड़क मार्ग से जुड़े हैं फिर भी आने वाले पर्यटकों की संख्या कम है। इसलिये भविष्य में पर्यटन विकास हेतु अपार सम्भावनाएँ हैं।

वन्य जीव अभ्यारण्य :- झारखण्ड जैव विविधता की दृष्टिकोण से धनी है। इसलिये वन एवं वन्य जीव इसके प्रत्येक क्षेत्र में देखने को मिलते हैं। वन एवं वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु इन अभ्यारण्यों को पर्यटन विभाग द्वारा भी महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिल सका है जिससे ये पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करने में पूर्णतः सक्षम नहीं हो सके हैं जबकि इस राज्य कई (डालमा-193.22 वर्ग किमी⁰, पलकोट-183.18 वर्ग किमी⁰, बिरसा हिरन अभ्यारण, पारसनाथ-43.33 वर्ग किमी⁰, तोपचांची-8.75 वर्ग किमी⁰, कोहरमा-177.35 वर्ग किमी⁰, लवालोंग-207 वर्ग किमी⁰, महुआडाँड़- 63.25 वर्ग किमी⁰) वन्य जीव अभ्यारण्य हैं।⁷ सांभर, चितकबरे हिरन, खरगोश, भेड़िया, भालू एवं तेंदुआ मिलते हैं जहाँ अपार प्राकृतिक सुषमा फैली है। इन क्षेत्रों में जब पलास के फूल खिलते हैं तो लगता है मानो साक्षात् स्वर्ग यहीं है। डालमा अभ्यारण्य हाथियों की शरणस्थली है। इसके अतिरिक्त बार्किंग डीअर, स्लाथ बीयर, तेंदुए, चीते



एवं लाल गिलहारियाँ मिलती हैं। यहाँ चार (इचागढ़, उद्धव, चन्द्रपुर एवं तेनुघाट) प्रमुख पक्षी विहार हैं जहाँ बहुतायत से पक्षी मिलते हैं।⁹

इनमें एक 'उद्धव पक्षी अभ्यारण्य' है जो अपने आपमें अनूठा स्थल है जहाँ प्रत्येक वर्ष यूरोपीयन एवं साईबेरियन पक्षी शीत ऋतु में बसेरा डालने हेतु आते हैं।¹⁰ फिर भी पर्यटक बहुत कम आते हैं जबकि इनमें विकास की असीम सम्भावनायें निहित हैं।

जलप्रपात एवं प्राकृतिक पर्यटक स्थल :- पर्यटकों हेतु झारखण्ड 'भारत का स्वीटजरलैण्ड' से कम नहीं है क्योंकि यहाँ अनेकों पर्यटक स्थल प्रकृति की गोद में स्थित हैं जैसे—झारखण्ड का शिमला (राँची), छोटा नागपुर की रानी (नेतरहाट), सात सौ पहाड़ियों का क्षेत्र (सारण्डा—सिंहभूमि) एवं हजार उद्यानों का शहर (हजारीबाग) आदि। शैलनगरी नेतरहाट का सूर्योदय¹⁰ एवं सूर्यास्त देखने का अपने आप में अनोखा स्थल है। अगर राज्य को प्रपातों का राज्य कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि अनेकों जल प्रपात (हुन्दरू, टूटी, दासम, सदनी, गुतापी घाघ, जोन्हा, लौध, केरीदह, मालूदह, नागफेनी, बघमुंडा, सुखदारी, गुमला—घाघरा, हिरनी, उसरी, पड़ेवा, सप्तवाहिनी, राजरप्पा, गौतमधारा, दिमना, मोतीझरा, तोयबो कांटी, गुरुसेन्धु, लुयुंगगुटू, निंदी, धड़धाड़िया) हैं।¹¹ हुन्दरू जो राँची के निकट स्वर्णरेखा पर सबसे ऊँचा (320 फीट)¹² जल प्रपात है जो वास्तव में प्रकृति के अनुपम एवं अनूठे पर्यटन स्थल हैं परन्तु पर्यटकों को पर्याप्त जानकारी के अभाव में कम आना होता है। राजमहल की पहाड़ियों पर 'जीवाश्म अभ्यारण' है जो

भूविज्ञानियों एवं भूगोल वेत्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करने की पर्याप्त क्षमता रखता है।¹³

झारखण्ड के जलकुण्डों में हजारीबाग के सूरज कुण्ड, पिंडार कुण्ड, छुआरी, कावा, केशवडीह, बेलकापी, लुरगाथा, पलामू का ततहा, धनवाद का तेतुलिया तथा संथाल परगना जिसमें सिंहपुर, झरियानी, तंतेश्वरी, बाइमाइसा, रामपुर तथा नूनविला आदि प्रमुख सुरजकुण्ड (190° फारेनहाइट) हैं। इनमें से हजारीबाग का जलकुण्ड सबसे अधिक गर्म जल कुण्ड है।¹⁴

ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक पर्यटन :- हजारीबाग में प्रागैतिहासिक काल की सीताभेंगा एवं शिवभेंगा गुफाएं हैं जो 4000–7000 B.C. तक की मानी जाती हैं। यहाँ अनेक गुफाएँ हैं जिनमें 15000 B.C. काल के, पलामू जिले में भवनाथपुर के निकट के दुर्लभ शैल चित्र एवं गुफाएं भी हैं जिन पर शिकार करने से सम्बन्धित चित्र अंकित हैं। इसमें पशुओं (हिरन, भैंसा आदि) के चित्र हैं।¹⁵ इसके अतिरिक्त हजारीबाग में प्रचार पहाड़ पर मुचकुंद ऋषि की विशाल गुफा है जो अति प्राचीन है।¹⁶

झारखण्ड के सिंहभूमि, रांची, हजारीबाग एवं संथाल परगना में उत्खनन से पूर्व प्रस्तर युग (100000 ई0 पूर्व) की कुल्हाड़ियाँ, खुरपी, चाकू के रूप में प्रयुक्त होने वाले पत्थर के टुकड़े प्राप्त हुये हैं। ऐसे ही पलामू जिले के वीरवंध, रंकाकलां, दुर्गावती पुल, नामगढ़ पहाड़ी आदि स्थलों से पूर्व, मध्य एवं उत्तर पाषाण युग के अलावा नवपाषाण युग के औजार प्राप्त हुये हैं। रांची, गुमला एवं लोहरदगा में ऐतिहासिक महत्व वाले प्राचीन भवन एवं प्राचीन पोखर भी विद्यमान हैं। इनकी पर्यटकों को जानकारी न होने के कारण पर्यटक ऐसे पुरातात्विक स्थलों को देखने से वंचित रह जाते हैं।

बराकर नदी के तट पर रघुनाथपुर में जैनों के भग्नावशेष विद्यमान हैं। राजरप्पा में माता 'छिन्नमाशिका' काली का मंदिर अत्यन्त प्राचीन काल का है। रांची के निकट जगन्नाथपुर में 17वीं शताब्दी का नागवंशी राजा द्वारा निर्मित जगन्नाथ मंदिर है एवं इसी काल का कांके प्रखण्ड के अन्तर्गत नागवंशी राजा द्वारा निर्मित मंदिर है जिसमें राम-लक्ष्मण एवं सीता की मूर्तियाँ हैं। 16वीं शताब्दी का पलामू जिले में चेरों किला भी है लेकिन पर्यटकों को इनकी पर्याप्त जानकारी नहीं है।

धार्मिक पर्यटन :- इस राज्य में धार्मिक पर्यटन के अनेकों केन्द्र हैं जिनमें हिन्दू धर्मावलम्बियों का प्रमुख स्थल वैद्यनाथ धाम (देवघर) है जो जसीडीह रेलवे के निकट है। देवघर को 'मंदिरों का शहर' कहा जाता है और वैद्यनाथ धाम को 'झारखण्ड धाम' से जाना जाता है। यह भारत के बारह ज्योतिरलिंगों में से एक है। यहाँ श्रावण मास में मेला लगता है। राजरप्पा के निकट 'अनुच्च पहाड़ी' पर एक मंदिर है जो भारत की 51 शक्ति-पीठों में से एक शक्ति पीठ है। झारखण्ड में एक गाँव मलूटी है जिसे मंदिरों का गाँव कहते हैं। मलूटी का पुरातन नाम 'गुप्त काशी' भी है।¹⁷

जैन तीर्थ स्थली पारसनाथ 4480 फीट की ऊँचाई पर है। यह जैन आराधना का पूर्वी केन्द्र है। पारसनाथ पर्वत पर तेईसवें जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ का निर्वाण हुआ था। पारसनाथ मंदिर के अतिरिक्त 23 और मंदिर हैं। सिंहभूमि जिले में जैन तीर्थंकरों के दो मूर्तियाँ हैं जो 7वीं एवं 8वीं शताब्दी की बनी हुई हैं।

सांस्कृतिक पर्यटन:- वर्तमान में पर्यटन हेतु जिन क्षेत्रों पर विशेष तौर से ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है वह हैं वहाँ की सांस्कृतिक विरासत। झारखण्ड आदिवासी (38.14 प्रतिशत) बाहुल्य राज्य है। झारखण्ड में आदिवासियों की सांस्कृतिक झलक-रीति-रिवाजों, चित्रकला, शिल्पकला एवं सामाजिक मान्यताओं में दृष्टिगोचर होती है। इन आदिवासियों के युवा गष्ट होते हैं जैसे- मोरिया आदिवासियों के

गोटुल, मुण्डा एवं हो के 'गोइतिओरा', उराँव, के 'घुमकुड़िया' या जोनकेटपा एवं भुईया के 'घाघरावासा' हैं। ये युवा गृह युवक-युवतियों के मिलन स्थल होते हैं। यहाँ रहकर ये जीवन बिताने के सबक सीखते हैं। ये यहाँ नाचते एवं गाते हैं।

आदिवासी वैवाहिक जीवन को प्रदर्शित करने वाला नाटक 'जट-जाटिन' का मंचन, प्रत्येक वर्ष सावन से कार्तिक माह तक करते हैं।¹⁸ इस नाट्य मंचन में अविवाहित ही भाग लेते हैं। इस राज्य में 'हिजला मेला' (दुमका जिला) मयूराक्षी नदी के तट पर सन्थाल जनजाति द्वारा आयोजित होता है जो एक अनूठा मेला होता है। इसके अतिरिक्त दशहरे में 'चतरा' में पतराही मेला, छोटा नागपुर क्षेत्र में 'तुशुमेला' लगता है। इन मेलों में आदिवासी बहुतायत से भाग लेते हैं लेकिन इनकी जानकारी पर्यटकों को कम ही है जिससे इनके विकास की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं।

संभावनाएँ :- पर्यटन वास्तव में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का माध्यम है और वर्तमान में तो यह आर्थिक विकास में भी सहायक है।¹⁹ विकास के साथ बाधाएँ भी हैं जिनमें भूमि, संचार, यातायात-सड़क, हवाई, विद्युत एवं पूँजी आदि। फिर भी झारखण्ड सरकार को उन सभी विभागों के मध्य समन्वय स्थापित करने हेतु कारगर समितियाँ बनानी चाहिये जो पर्यटन विकास की सम्भावनाएँ एक उद्देश्य बनाकर तलाश सकें तभी सफलता मिल सकेगी। लेखक ने इस हेतु जो रणनीति प्रस्तुत की है जो इस प्रकार है -

1. सर्वप्रथम राज्य सरकार को प्रचार-प्रसार हेतु प्राकृतिक, ऐतिहासिक, पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक पर्यटक स्थलों की आकर्षित फिल्में तैयार कराकर देश तथा विदेश में आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा पर्यटक आकर्षण का प्रदर्शन किया जाये। इससे न केवल पर्यटकों के आने का मार्ग प्रशस्त होगा बल्कि विश्व के मानचित्र पर इस राज्य को उचित स्थान मिल सकेगा।
2. भारत एवं राज्य सरकार को पर्यटन के क्षेत्र में पर्यटकों को आकर्षित करने हेतु राष्ट्रीय प्राथमिकता क्षेत्र घोषित किया जाये और पर्यटन विकास की नीति पर बल देकर इस राज्य के पर्यटक स्थलों का विकास किया जाये।
3. राष्ट्रीय उद्यानों (पलामू) के समीप झारखण्ड सरकार को प्राथमिकता देकर सस्ते होटल एवं लॉज की व्यवस्था करना आवश्यक है जिससे पर्यटक रात्रि विश्राम कर सकें। इससे भविष्य में पर्यटकों की संख्या बढ़ेगी।
4. वन्य जीव अभ्यारण्यों (हजारीबाग एवं दालमा) के विषय में पर्यटकों को उचित जानकारी का अभाव है जबकि दोनों अभ्यारण्यों के पहुँच मार्ग आसान हैं। इनके विषय में पर्याप्त जानकारी की व्यवस्था सरकार द्वारा सर्वसुलभ करानी चाहिये।
5. पलामू उद्यान के दक्षिण में 'नेतरहट' प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न स्थल है। यह ऐसा स्थल है जहाँ उड़ने वाली छिपकलियाँ पायी जाती हैं। यहाँ पहुँचना आसान नहीं है क्योंकि सड़क मार्ग बहुत संकरा है। यहाँ पहुँचने हेतु चौड़ा सम्पर्क मार्ग एवं सस्ते होटल आदि की व्यवस्था राज्य पर्यटन विभाग को करनी चाहिए जिससे पर्यटकों की संख्या में वृद्धि हो सके।
6. राष्ट्रीय उद्यान एवं वन्य जीव अभ्यारण्य- पलामू एवं हजारीबाग में हवाईपट्टी बनाई जाये। इससे विदेशी पर्यटकों के आने का मार्ग सुगम होगा और सैलानियों की संख्या में आशातीत वृद्धि होगी।
7. पर्यटकों हेतु पर्यटक स्थलों पर लोक नाट्य, लोक नृत्य एवं स्थानीय बोली में कार्यक्रम आयोजित

- करना चाहिए जिससे पर्यटकों का मनोरंजन भी होगा और उनका समय भी आसानी से बीत सके।
8. समय-समय पर झारखण्ड सरकार को 'टूर पैकेज' बनाना चाहिये जिससे पर्यटकों को एक समयबद्ध पर्यटन की सुविधा प्राप्त होगी। यह पर्यटकों के आने की सम्भावनाओं को तलाशने का अच्छा उपाय साबित होगा।
 9. राज्य सरकार को पर्यटकों हेतु सुरक्षा के व्यापक प्रबन्ध करना आवश्यक है क्योंकि असुरक्षावश पर्यटक झारखण्ड में जाने में रुचि नहीं लेते हैं। सुरक्षा की उचित व्यवस्था होने पर सैलानियों की संख्या में वृद्धि की संभावनायें निहित हैं।
 10. झारखण्ड राज्य पर्यटन विभाग को भारतीय पर्यटन विभाग से तालमेल कर प्रतिवर्ष "झारखण्ड महोत्सव" मनाना चाहिये और देशी तथा विदेशी सैलानियों हेतु विशेष सुविधाएं उपलब्ध करानी चाहिये।

अन्ततः झारखण्ड राज्य में पर्यटन विकास की असीम सम्भावनाएं विद्यमान हैं। सरकारों (राज्य एवं केन्द्रीय) यदि उद्देश्य बनाकर उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर एक दीर्घकालिक रणनीति, पर्यटन स्थलों के विकास हेतु क्रियान्वित करें तो इस दिशा में टिकाऊ सकारात्मक उपलब्धता मिलेगी।

सन्दर्भ सूची

1. पद्माभाराव, ए0, 1999, पर्यटन : सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का माध्यम, योजना, वर्ष 43, अंक 5, पृष्ठ 43.
2. महतो, बी0 के0, 2004, झारखण्ड, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पेज 8.
3. मिश्रा, एस0 और गुप्ता, जे0 पी0 1998, प्राकृतिक संसाधनों के रूप में बुन्देलखण्ड क्षेत्र के प्राकृतिक स्थलों का विकास, प्रबन्धन एवं संरक्षण, उ0 प्र0 ज्योग्रफिकल जनरल, कानपुर, अंक 3, पृष्ठ 34.
4. The Palamau Tiger Reserve, in SANCTURY, Asia, Vol.VIII, No.20 1998.
5. Getting wild in JHARKHAND, India Today Travel Plus, Jan. 2007, Page-62.
6. Sahgal, Bittu 2006 JHARKHAND-Land of Thousand Tigers, India Today Travel Plus, Page-193-194.
7. www.incredibleindia.org/outlook Traveller Maps-National Parks & Wild Life Sanctuaries.
8. भारत 2010, झारखण्ड, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ-1200.
9. Getway of the India Track, in Discover India, March 2004, Vol.17, No.03 Page-73.
10. जोशी, आनन्द 2010- भारत के राज्य झारखण्ड, पत्रिका इअर बुक, राजस्थान पत्रिका प्रा0 लिमि0, जयपुर, पृ0 376.
11. शर्मा एवं विक्रम 1997, छोटा नागपुर का भूगोल, राजेश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-02, पृ0 151.
12. Deptt. of Tourism (India) East India Resorts, Publication Division 1959, Delhi, P-75.
13. तिवारी, रामकुमार 2003, झारखण्ड का भूगोल, राजेश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-02, पृ0 79.
14. जागरण वार्षिकी 2010 पेज 326.
15. वही, सन्दर्भ सं0 2 पेज 7.
16. वही, सन्दर्भ सं0 2 पेज 8.
17. वही, सन्दर्भ सं0 2 पेज 127.
18. वही, सन्दर्भ सं0 2 पेज 114.
19. अग्रवाल, ए0 2001, मध्यप्रदेश में पर्यटन विकास की सम्भावनाएँ, योजना, वर्ष, 45, अंक 3 पृष्ठ 32.



जनजातीय महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति तथा मानवाधिकार

अनीता रानी

एफ0 सी0 ए0-सी0, 973 एस0 जी0 एम0 सेक्टर, 48 फरीदाबाद, हरियाणा, 121001

भारत में भिन्न-भिन्न जाति के लोग रहते हैं तथा उनमें जनजाति भी एक जाति है। इनकी एक सभ्यता तथा संस्कृति होती है तथा एक अलग पहचान। यह पर्वतों, जगलों, पठारों तथा गिरी जंगलों में रहते हैं तथा यह विशिष्ट सामाजिक, धार्मिक व्यतीत करते हैं। जनजाति समाज की महिलाओं की स्थिति गैर जनजातीय समाज की महिलाओं से थोड़ी भिन्न हैं जिस प्रकार जनजातीय समाज के जीवन में भिन्नता देखने को मिलती है। उसी प्रकार यहाँ की महिलाओं की स्थिति भी अच्छा अलग-अलग होती है। आज आधुनिक युग में जनजातीय महिलाओं तथा गैर जनजातीय सभी महिलाओं का समाज में महत्वपूर्ण योगदान है। परन्तु जनजाति समाज की महिलाएँ गैर जनजाति महिलाओं की अपेक्षा अधिक परिश्रमी होती हैं। वह सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सभी क्षेत्रों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। परन्तु उनकी स्थिति कमजोर होने का जो सबसे महत्वपूर्ण कारण है। वह अशिक्षा। आदिवासी महिलाएँ पारिवारिक खर्चों की पूर्ति के लिए बराबर का सहयोग देती है। इसलिए पारिवारिक आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने में उनका महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसलिए हम जनजातीय समाज में महिलाओं की भूमिका सहयोग तथा योगदान को नकार नहीं सकते हैं। जनजातीय समाज तथा जनजातीय महिलाओं की स्थिति पर अनेक विद्वानों ने अपने मत प्रकट किए हैं तथा अध्ययन किए हैं। तथा अध्ययन पश्चात् उनके सामने जो समस्याएँ और चुनौतियाँ सामने आई हैं उनका समाधान भी सुझाया है तथा सरकार भी जनजातीय समाज के उत्थान के लिए भरसक प्रयास कर रही हैं।

जनजातीय समाज में जनजातीय महिलाओं के लिए अति आवश्यक है वस्तुतः महिला के बिना किसी भी समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अर्थात् महिला को समाज के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान है तथा हमेशा से महत्वपूर्ण रहा है तथा रहेगा। महिलाओं की भूमिका को समझते हुए कहा जाता है कि यदि आप घर के लड़के को पढ़ाते हैं तो केवल उस लड़के को ही पढ़ाते हैं परन्तु यदि आप एक लड़की को पढ़ाते हैं तो पूरे परिवार पूरे समाज को पढ़ाते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले महिलाओं की स्थिति बहुत दयनीय थी चाहे वह महिला जनजातीय समाज की हो या गैर जनजातीय समाज की। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित बहुत अध्ययन किए गए तथा आधी आबादी कही जाने वाली महिलाओं के सशक्तिकरण की आवश्यकता महसूस की गई तथा महिलाओं को सशक्त करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रयास किए गए महिला आरक्षण उस मार्ग में एक महत्वपूर्ण राष्ट्र संघ द्वारा सन् 1971 में महिलाओं की स्थिति पर किया गया अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि इसमें महिलाओं की स्थिति की प्रत्येक पक्ष का बहुत गहन अध्ययन किया गया था। इस प्रकार के बहुत अध्ययन किए गए और अध्ययन पश्चात् यह समाने आया कि सामान्य भारतीय नारी की स्थिति बहुत दयनीय है तो जनजातीय समाज की नारी की स्थिति

तो और भी दयनीय होगी।

जनजातीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति

किसी भी समाज की बिना महिलाओं के कोई आस्तित्व नहीं होता है प्रत्येक समाज में महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है तथा किसी भी समाज की नींव बिना महिला सहयोग के सोची भी नहीं जा सकती है। अर्थात् जिस समाज में महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ होगी वह समाज उतना सृदृढ़ तथा सुन्दर होगा क्योंकि महिलाएँ स्वयं को नहीं बल्कि पूरे समाज को एक बेटी, एक पत्नी, एक माँ के रूप में सजा तथा संजो कर रखती हैं। जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति में विभिन्नता के होते हुए भी उनका स्तर गैर जनजातीय समाज स्तर से ऊँचा है तथा इस तथ्य को नेहरू जी ने भी माना है। तथा जनजातीय समाज के बारे में उन्होंने कहा है कि “हम आदिवासी क्षेत्रों के मामले को दिशाहीन भटकाव की स्थिति में नहीं रहने दे सकते हैं आज की दुनिया में न यह सम्भव है न यह वांछनीय ही है परन्तु इसके साथ ही हमें इन क्षेत्रों को अति शासन के जोखिम से भी बचाना होगा हमें इन दो सीमान्तों के बीच एक मध्य मार्ग बनाकर काम करना होगा।”

जनजाति समाज में धार्मिक स्तर पर महिलाओं की स्थिति पुरुषों से निम्न होती है पुरुष ही सभी धार्मिक कार्यों को पूरा करते हैं परन्तु महिलाएँ पूर्ण स्वतन्त्रता से नृत्य, सर्गीत, मनोरंजन उत्सव में भाग लेती हैं।

जनजातीय समाज में परम्परागत पंचायतों को बहुत महत्व दिया जाता है तथा इन पंचायतों में पूर्णता से केवल पुरुषों को भाग लेने का अधिकार होता है और महिलाओं को इन पंचायतों में भाग लेने या बैठकों में जाने की कोई स्वतन्त्रता नहीं होती है। परन्तु महिलाओं को पंचायतों की बैठकों के सामने अपनी समस्याओं तथा अपने तर्क देने का समाज है। तथा जो समाज पितृसत्तात्मक होता है उनमें पिता के गौत्र में ही विवाह करने पर निषेध है परन्तु माँ के गोत्र में कुछ पीढ़ी तक विवाह ना करने पर जोर दिया जाता है इस समाज में शाली विवाह, विधवा विवाह, देवर विवाह का प्रचलन आज भी देखा जा सकता है।

जनजातीय समाज में महिलाएँ कई संस्कारों में भाग लेती हैं जैसे महिलाओं को शमशान में जाने तथा मृतक संस्कारों में समालित होने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। जबकि सामान्य समाज में महिलाओं को शमशान में जाने पर भी निषेध होता है। जनजातीय महिलाएँ बहुत मेहनती होती हैं वह केवल घर को ही नहीं सम्भालती हैं बल्कि खेतों के बोने से लेकर फसल काटने तक अपना पूर्व सहयोग करती हैं तथा वह घर की आमदनी को बढ़ाने के लिए बाहर राज्यों में जा कर भट्टों खदानों, गृह निर्माण कार्यों तथा रेजा आदि कार्य भी करती हैं परन्तु वह अशिक्षित होने के कारण कम वेतन पर अकुशल और दयनीय श्रमिक के तौर पर कार्य करती हैं। जनजातीय समाज में आज भी निर्धनता देखने को मिलती है जिसका मुख्य तथा कठोर कारण है इस समाज में शिक्षा की कमी इस समाज में महिलाएँ इतनी स्वतन्त्र तथा मेहनती होती हैं। परन्तु सिर्फ अशिक्षा के कारण उनकी हालत बहुत कमजोर तथा दयनीय है।

जनजातीय समाज में आज वर्तमान में भी धर्म का बहुत महत्व है। प्रत्येक समुदाय का अपना एक अलग विशिष्ट धर्म होता है। तथा उस धर्म पर उनका अटूट विश्वास होता है। आज भी वहा जादू टोना, बली जैसे अन्धविश्वासों में पूर्ण आस्था से विश्वास करते हैं और यह केवल और केवल शिक्षा की कमी के कारण ही है। तथा प्रत्येक आदिवासी समुदाय का एक विशेष कुल देवता होता है जिसके प्रकोप से

बचने के लिए वह बहुत से अंधविश्वासों को मानकर कई जादू टोना आदि का आज भी सहारा लेते हैं। परन्तु जैसे समय तरक्की कर रहा है जनजातीय समाज में भी परिवर्तन देखने को मिल रहा है आज थोड़ा-थोड़ा ही सही परन्तु आदिवासी समाज धीरे-धीरे शिक्षा के महत्व को समझ रहे हैं। तथा अपने बच्चों को शिक्षा दिला रहे हैं। आज बहुत से जनजातीय समाज के लोग कई उच्च पदों पर हैं तथा उनमें महिलाओं की कमी है पर महिला बिल्कुल नहीं हो ऐसा नहीं है।

जनजातीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति

जनजातीय महिलाओं की आर्थिक स्थिति प्रत्येक समाज प्रत्येक व्यक्ति हमेशा आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में जीवन भर प्रयत्न करता रहता है समाज में भौतिक तथा आर्थिक संगठनों के माध्यम से अपनी सामान्य आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है एक सफल अर्थव्यवस्था के सहारे ही व्यक्ति अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। मानव को जीवन को जीने के लिए तथा सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए जो भी करना पड़ता है वह अर्थव्यवस्था अर्थात् आर्थिक संगठन के अन्तर्गत ही आता है। यह कहना गलत नहीं होगा की आर्थिक कार्यों को मानव जीवन के किसी भी पक्ष से पृथक् करके नहीं देखा जा सकता ना ही कल्पना की जा सकती है। जनजातीय लोगों के समुदाय के अधिकतर आर्थिक प्रयत्न केवल भोजन के लिए होते हैं इसलिए उनकी अर्थव्यवस्था से भिन्न होती है इनकी अर्थव्यवस्था भौगोलिक वातावरण पर तथा प्रकृति से संघर्ष करना पड़ती है। जनजातीय समाज में पुरुष का अवसर दिया जाता है कुछ कार्य पुरुषों द्वारा किए जाते हैं तो कुछ कार्य महिलाओं द्वारा किए जाते हैं। जनजाति समाज में पुरुष शिकार करते हैं तथा मछली पकड़ते हैं अर्थात् अधिक परिश्रम के सभी कार्य पुरुष को दिए जाते हैं। तथा सरल और कम मेहनत के सभी कार्य महिलाओं द्वारा किए जाते हैं। महिलाएँ घर के समस्त कार्य को करती हैं परन्तु इस समाज में जनजातीय महिलाओं को शिकार करना भी सिखाया जाता है जनजातीय महिलाएँ बहुत परिश्रमी होती हैं। इसलिए वह केवल घर के कार्यों को ही नहीं पूरा करती बल्कि स्वयं तरह-तरह की सामग्री बनाकर हाट (बाजार) में उन्हें बेचने जाती हैं आज भी जनजातीय महिलाएँ कई कार्यों को पूरा करती हैं यहाँ तक की लड़कियाँ पढ़ने भी जाती हैं तथा बाद में पशुओं को चराने भी जाती हैं तथा माँ के कार्यों में भी सहायता करती हैं। चाहे आज भी अधिकांशतः महिला द्वारा किए गए कार्यों का अनार्थिक माना जाता है। क्योंकि आधी आबादी कही जाने वाली महिलाएँ जिनके बिना परिवार अधूरा है समाज अधूरा है पूरा देश अधूरा है उन्हें आज भी अर्थशास्त्र की परिभाषा में बहुत कम जगह सम्मिलित किया जाता है। परन्तु स्त्रियाँ इतना महान और परिश्रमी होती हैं कि बिना लाभ के भी वह अपने कार्यों को तथा उत्तरदायित्वों का पूरी मेहनत से अपनी पूर्ण भूमिका निभा रही हैं। बावजूद इसके कि उन्हें इस मार्ग पर चलते हुए बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है परन्तु वह हार नहीं मानती और अपने दायित्व को निभा रही हैं। इसलिए कह सकते हैं कि महिलाओं का अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है।

जनजातीय महिलाओं की राजनीतिक स्थिति

महिलाओं का प्रत्येक देश की राजनीति में एक अलग स्थान होता है महिलाएँ राजनीति में प्राचीन समय से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। इसलिए इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता कि प्राचीन समय में महिलाओं की राजनीति में जितनी भागीदारी थी उतनी कभी नहीं रही वेशक राजनीति में चाणक्य, जैसे महान राजनीतिक जैसी कोई महिला सामने ना आई हो परन्तु बहुत सी महिलाओं ने

राजनीति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के बहुत से उदाहरण दिए हैं। वैदिक युग में भी मैत्री, अपाला घोषा आदि महिलाओं ने इस क्षेत्र में ही नहीं बल्कि भिन्न-भिन्न क्षेत्र में ही नहीं बल्कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी भूमिका का प्रदर्शन किया है। तथा आज भी कर रही है जनजातीय महिला में ऐसे नाम बहुत कम हैं परन्तु बिल्कुल नहीं है ऐसा नहीं है। परन्तु एक सत्य यह भी है कि इतने उदाहरणों के होते हुए भी आज भी महिलाओं में राजनीतिक चेतना का अभाव है परन्तु जनजातीय समाज में जो समुदाय मातृसत्तात्मक है वहाँ महिलाओं की राजनीति में भागीदारी देखने को मिलती है। यदि देखा जाए तो सामान्य समाज में भी महिलाओं की राजनीति में भागीदारी बहुत कम है तो जनजातीय महिलाओं की क्या होगी। परन्तु राजनीति में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाने के लिए सरकार समय-समय पर उनके लिए योजनाएँ आरम्भ कर रही है। तथा यह एक सफल प्रयास है तथा इसमें महिलाओं का राजनीति में 33% को आरक्षण एक महत्वपूर्ण कदम है परन्तु सरकार द्वारा चलाई गई योजनाएँ तथा आरक्षण के द्वारा ही महिलाओं की राजनीति में भागीदारी नहीं बढ़ेगी इसके लिए उन्हें स्वयं आगे आना पड़ेगा तथा अपने अधिकारों को समझना होगा शिक्षा प्राप्त करना चाहे वह सामान्य बारी हो या जनजातीय महिला तभी राजनीति में उनकी भागीदारी सुनिश्चित हो पाएगी।

जनजातीय समाज में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता पहले ना के बराबर थी तथा कहीं-कहीं तो बिल्कुल नहीं थी परन्तु स्वतन्त्रता के बाद लोकतन्त्र आया तो जनजातीय महिलाओं में भी राजनीतिक चेतना आई तथा जिसके परिणामस्वरूप जनजातीय महिलाओं ने भी राजनीति में भाग लेना आरम्भ कर दिया पहले परम्परागत पंचायतों में महिलाओं के लिए कोई स्थान नहीं था तथा पुरुषों का ही नहीं पंचायतों में वर्चस्व होता था परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लोकतन्त्र का विकास हुआ तो अब जनजातीय समाज में भी परिवर्तन हुआ है। तथा अब परम्परागत पंचायतें भी अपने पुराने रीति रिवाजों को त्याग के नए ढंग से पंचायतों में सदस्यों का चुनाव नए ढंग से करती हैं। जिनमें महिलाओं को भी राजनीति में प्रवेश करने का पूरा अवसर दिया जाता है। और आज जनजातीय समाज में भी महिलाएँ अपनी सक्रिय तथा महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं परन्तु जनजातीय महिलाओं की राजनीति में बहुत कम गिनती है क्योंकि उनमें शिक्षा का अभाव है जो राजनीति में उनके पिछड़े होने का मुख्य कारण है। परन्तु वह अब धीरे-धीरे शिक्षा ग्रहण कर रही है तथा महिला सशक्तिकरण की ओर बढ़ रही है।

जनजातीय महिला हो या सामान्य वर्ग की महिला अभी भी वह राजनीतिक रूप से पूर्ण सशक्त नहीं हुई है क्योंकि अभी महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए उन्हें बहुत प्रयास करने हैं तथा वह प्रयास भी कर रही हैं। तथा वह दिन दूर नहीं जिस दिन वह प्रत्येक क्षेत्र सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों में अपनी विजय का परचम लहरा देगी। जब आधी आबादी यानि महिलाओं को कमजोर नहीं बल्कि पुरुषों के समक्ष खड़े होने का पूर्ण अधिकार होगा तथा वह पूर्णरूप से सशक्त हो जाएगी।

जनजातीय महिलाएँ तथा मानवाधिकार

भारत में महिला स्थिति बहुत दयनीय है चाहे वह सामान्य वर्ग की महिला हो या जनजातीय महिला हो। तथा सरकार की हमेशा यह कोशिश रहती है कि कैसे उन्हें सशक्त बनाया जाए जिसके लिए सरकार ने बहुत से प्रयास किए हैं तथा कर रही है। ऐसा मानव अधिकार एक ऐसा अधिकार है जिसके द्वारा प्रत्येक मानव को उसके अधिकार मिलते हैं। मानव अधिकार में प्रत्येक व्यक्ति को समान समझा जाता है। उसके साथ लिंग, जाति आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। तथा मानव

संरक्षण के लिए योजनाओं, कानूनों को लागू करने में सहायता करता है। तथा 10 दिसम्बर 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अधिकार घोषणा पत्र मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए बहुत महत्वपूर्ण कदम है।

संविधान में स्त्री पुरुष सबको समान दर्जा दिया गया है। तथा संविधान के अनुच्छेद 5 और अनुच्छेद 16, 19, 164, 243, 244, 275, 330, 332, 334, 335, 338, 339, 340, तथा 342 में जनजातियों के संरक्षण के उपलब्ध में योजनाएँ तथा कानूनी संरक्षण के बारे में बताया गया है। तथा 73वें संविधानिक संशोधन तो महिलाओं चाहे वह सामान्य हो या जनजातीय सभी के लिए वरदान के रूप में सामने आया है। मानव अधिकारों के कारण आज प्रत्येक मनुष्य की संरक्षण हेतु नीति, कानून, योजनाएँ हैं परन्तु यह एक तथ्य है कि महिला वर्ग के उत्थान में मानव अधिकारों का महत्वपूर्ण योगदान है। अब बस आवश्यकता है। कि महिलाएँ स्वयं आगे आकर खुद को सशक्त बनाएँ तथा जनजातीय समाज की महिलाएँ भी अब शिक्षा प्राप्त कर रही हैं तथा अब उनकी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति में सुधार हो रहा है। तथा मानव अधिकारों के द्वारा प्रत्येक महिला को आगे आने के सुअवसर मिल रहे हैं और आज वह खुद को सुरक्षित कर रही है तथा शोषण के विरुद्ध आवाज उठा रही है।

सहायक ग्रन्थ

1. अंजु दुआ जैमिनी, हक गढ़ती औरत, कल्याणा शिक्षा परिषद्, 2011
2. डा चन्द्रभान बोयर, निर्मिक, महात्मा फूले प्रतिभा संशोधन अनादमी, 2013
3. आदिवासी महिलाओं का शैक्षणिक एवम् सामाजिक, आर्थिक अध्ययन, क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी, 2007
4. रेशमा खतखो, जनजातीय महिलाएँ—सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक सांस्कृतिक पर्यावरण के सन्दर्भ में, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, 2006
5. सुधारानी श्री वास्तव—श्रीमती आशा श्रीवास्तव, महिला शोषण और मानवाधिकार, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, 2004

पत्रिकाएँ—पत्र :

- ◆ पत्रिका
- ◆ योजना
- ◆ कुरुक्षेत्र
- ◆ पंचायत संदेश
- ◆ चाणाक्य
- ◆ समाचार पत्र
- ◆ हिन्दुस्तान, हिन्दू नव भारत टाइम, दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर



असहयोग आन्दोलन एवं खिलाफत आन्दोलन के दौर में जनपद—जालौन

डॉ० रणविजय सिंह
पटेल नगर, उरई, जालौन

टर्की का खलीफा⁽¹⁾ समूचे विश्व के 'सुन्नी' मुसलमानों का धर्मगुरु माना जाता था। इस्लामी जगत में खलीफा की प्रतिष्ठा पैगम्बर के बाद सबसे अधिक थी। इसलिए भारतीय मुसलमान भी भावनात्मक और धार्मिक बन्धनों से उसके साथ जुड़े हुए थे। टर्की प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ रहा था, जिससे भारतीय मुसलमान अजीब दुविधा की स्थिति में पड़ गये थे कि वे युद्ध में अंग्रेजों की सहायता करें या टर्की की। युद्ध आरम्भ होने तक मुस्लिम-संप्रदाय ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वफादार था। परन्तु उन्हें यह आशंका थी कि यदि टर्की हार गया, तो उसके टुकड़े-टुकड़े कर खलीफा की सारी शक्तियाँ नष्ट कर दी जायेगी। लेकिन ब्रिटिश प्रधानमंत्री के विश्वास दिलाने पर भारतीय मुसलमानों ने युद्ध में अंग्रेजी सरकार की हर तरह सहायता की।

प्रथम विश्व युद्ध में विजयी होने के पश्चात इंग्लैण्ड का रूस ऑटोमन-साम्राज्य और टर्की के खिलाफ बदल गया। ब्रिटेन और फ्रांस ने अन्य विजित शक्तियों के साथ मिलकर साम्राज्य का बँटवारा कर लिया। इतना ही नहीं, ब्रिटेन के उकसावे पर अरबों ने भी खलीफा के विरुद्ध बगावत कर दी। इस्लाम की पवित्र भूमि अरब प्रदेश पर अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने अपना अधिकार कर लिया। इन घटनाओं ने भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति क्रोध की भावना भड़का दी। वे टर्की के खलीफा की शक्ति व प्रतिष्ठा की पुनः स्थापना के लिए संघर्ष को कटिबद्ध हो गए।

खिलाफत-आन्दोलन का उद्देश्य खलीफा की सर्वोच्चता और उसकी शक्ति को पुनःस्थापित करना था। इसका आरम्भ एक प्रतिक्रियावादी आन्दोलन के रूप में हुआ, लेकिन शीघ्र ही यह साम्राज्य विरोधी और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का एक अंग बन गया। खलीफा के साथ किये गये दुर्यवहार के विरोध में आन्दोलन आरम्भ कर दिया गया। जगह-जगह 'खिलाफत-कमेटियाँ' बनाई गईं जिनका उद्देश्य तुर्की साम्राज्य के बँटवारे के विरुद्ध और खलीफा के पक्ष में जनमत तैयार करना एवं सशक्त आन्दोलन चलाना था। दिसम्बर सन् 1918 में काँग्रेस और लीग की बैठकें एक साथ हुईं। डॉ०एम०ए० अंसारी ने अरब प्रदेश को खलीफा को लौटाने की मांग की। काँग्रेस की ओर से हकीम अजमल खाँ ने इसका समर्थन किया। खिलाफत के प्रश्न पर काँग्रेस और लीग को और अधिक निकट ला दिया एवं हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना को और अधिक सुदृढ़ किया। सभी राष्ट्रवादी मुसलमान नेता-अबुल कलाम आजाद, शौकत अली, मुहम्मद अली और हकीम अजमल इस आन्दोलन में शरीक हुए। लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी ने इस आन्दोलन को हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए सुनहरा अवसर समझा। अतः उन्होंने खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमानों से पूर्ण सहानुभूति दिखाई और 24 नवम्बर सन् 1919 को दिल्ली में महात्मा गाँधी की अध्यक्षता में 'इंडिया खिलाफत सम्मेलन' बुलाया गया।⁽²⁾

महात्मा गाँधी की सलाह से डॉ०अन्सारी के नेतृत्व में जनवरी 1920 को हिन्दुओं और मुसलमानों

का एक प्रतिनिधि मंडल वायसराय से मिला और अपनी माँगों उनके सामने रखीं, परन्तु परिणाम निराशाजनक निकला। इसके बाद मार्च सन् 1920 में मुहम्मद अली और शौकत अली ने लन्दन में जाकर ब्रिटिश प्रधानमंत्री से मुलाकात की परन्तु युद्ध में विजय से उत्साहित अंग्रेजी सरकार ने इनकी एक न सुनी। इसलिए जून सन् 1920 में खिलाफत कमेटी ने इलाहाबाद में असहयोग का निर्णय लिया। इसके अनुसार सरकारी उपाधियों और सम्मानों को लौटाने, नागरिक, पुलिस और सैनिक सेवा से त्याग पत्र देने एवं कर नहीं देने का निर्णय किया गया। जुलाई में सिंध में खिलाफत सम्मेलन में बोलते हुए गाँधी जी ने सरकार के साथ असहयोग करने का सुझाव दिया।

असहयोग और खिलाफत आन्दोलन साथ-साथ, परन्तु असहयोग आन्दोलन के बढ़ते प्रभाव में खिलाफत आन्दोलन उसमें घुल-मिल सा गया। खिलाफत के नेताओं को भी असहयोगियों के ही समान सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। उनकी संस्था गैरकानूनी करार दी गई एवं प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिए गये। टर्की के सुल्तान की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। इतना ही नहीं टर्की में मुस्तफा कमाल पाशा द्वारा खलीफा के पद को समाप्त करने के साथ ही सन् 1924 तक खिलाफत आन्दोलन का प्रश्न लगभग समाप्त हो गया।

अनेक आलोचकों ने खिलाफत-आन्दोलन को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने के गाँधी जी के प्रयासों को एक राजनीतिक भूल मानी है, परन्तु खिलाफत आन्दोलन ने थोड़े समय के लिए ही सही, हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना को सुदृढ़ किया। खिलाफत आन्दोलन में उदार राष्ट्रवादी मुसलमानों को भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में शरीक होने का मौका दिया, यह इसकी बहुत बड़ी उपलब्धि है।

खिलाफत आन्दोलन की जनपद-जालौन में गतिविधियाँ— भारतीय मुसलमानों ने भी प्रथम विश्व युद्ध में अंग्रेजी हुकूमत का साथ दिया था पर युद्ध की समाप्ति पर गोरी सरकार अपने किये गये वादों से मुकरते हुए टर्की साम्राज्य को सचमुच टुकड़ों में ही बाँट दिया एवं खलीफा की शक्ति को क्षीण कर दिया था। ब्रिटिश शासन की इन्हीं बदलती कटुतापूर्ण नीतियों के खिलाफ भारतीय मुसलमानों ने खिलाफत आन्दोलन की शुरुआत कर दी। तत्कालीन समय में कांग्रेस पर गाँधी जी का प्रभुत्व कायम हो चुका था अतः उन्होंने अपनी राजनीतिक चातुर्यता का परिचय देते हुए कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में खिलाफत आन्दोलन को कांग्रेस के एजेण्डा में शामिल कर मुस्लिमों को भी असहयोग आन्दोलन में जोड़ने का प्रयास किया। सारे देश की भाँति जनपद-जालौन में भी असहयोग आन्दोलन के साथ खिलाफत आन्दोलन की गतिविधियाँ सक्रिय हो गयी। इस समय में जनपद में मुस्लिमों की आबादी काफी थी परन्तु आन्दोलन में यह निष्क्रियता की स्थिति में रही थी।

पूरे बुन्देलखण्ड क्षेत्र में इस समय केवल कदौरा-बावनी स्टेट में मुस्लिम शासकों का शासन अभी भी कायम था। सन् 1912 में इस स्टेट के नये नवाब मुस्तकाउल हसन खाँ बहादुर घोषित किये गये। जिससे इनकी हुकूमत अंग्रेजों की मदद से ही कायम थी। जनपद में मुस्लिमों के इस समय दो गुट थे। इनमें से एक अंग्रेज परस्त नबावों का तथा दूसरा अत्यन्त निम्नवर्ग निर्धन लोगों का था जिन्हें अपने आजीविका के लिए ही संघर्ष करना पड़ता था। अतः इन्हें स्वतन्त्रता आन्दोलन की गतिविधियों से कोई ज्यादा लेना-देना नहीं था। इस कारण असहयोग आन्दोलन में खिलाफत आन्दोलन को शामिल किये जाने से जनपद में मुस्लिमों की भूमिका में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। खिलाफत आन्दोलन के समय जनपद में मुस्लिमों के सन्दर्भ में एक जनश्रुति प्रचलित हुई जिसके आधार पर कहा जाता था “मुल्ला जी,

हो गये पीर, फकीर और जो बचे हो गये गोरों के बजीर”।

इस प्रकार गाँधी जी ने मुस्लिम को असहयोग आन्दोलन में शामिल कर हिन्दू-मुस्लिम एकता को कायम करने प्रयास किया, उसके चलते जनपद-जालौन में हिन्दू-मुस्लिमों के बीच सौहार्द बनाने के लिए जनपद के कांग्रेसी नेताओं ने एकता सम्मेलन, मुशायरा व कवि सम्मेलन आदि का आयोजन किया, जिससे आपस में मेल-मिलाप हो सके। इस सन्दर्भ में जनपद के प्रमुख नेताओं, मन्नीलाल पाण्डेय, हरगोविन्द दयाल नशतर, कालपी में लाला मंगली प्रसाद व लाला भगवानदास, कोंच में सेठ अमरचन्द्र महेश्वरी व कौव-कौव जी, जालौन के सेठ द्वारिका दास आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस खिलाफत आन्दोलन के दौर में जनपद में मुस्लिमों को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने का प्रयास किया उसमें ज्यादा कोई सफलता नहीं मिली क्योंकि इस समय तक कोई मुस्लिम नेता खुलकर जनपदीय क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय नहीं हुआ। अर्थात् जनपद में नवाबों द्वारा अभी भी अंग्रेजी हुकूमत का साथ कायम रखा।

जलियाँवाला काण्ड एवं उसका जनपद-जालौन पर प्रभाव

अंग्रेज सरकार ने मिस्टर माण्टेग्यू की आज्ञा से मि० रौलट की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्ति की थी जिसने भारत में क्रान्तिकारियों की गतिविधियों और उनसे सम्बन्धित अपराधों के बारे में अपनी रिपोर्ट दी। इस रिपोर्ट के आधार पर भारत सरकार ने केन्द्रीय विधानमण्डल में फरवरी सन् 1919 ई० में दो बिल रखे जिनको ‘रौलट बिल’ या ‘काला कानून’ कहा जाता था। इन कानूनों के अनुसार सरकार जिसे चाहे गिरफ्तार कर उसे जेल में डाल सकती थी और उसे बिना मुकदमा चलाये चाहे जितने समय तक जेल में रख सकती थी। राष्ट्रवादी डरते थे कि इन कानूनों के अधीन सरकार किसी भी व्यक्ति को असीमित काल के लिए जेलों में बन्द कर देगी और ये राष्ट्रवाद की बढ़ती हुई लहरों को रोकने और जनता पर मनमाना अत्याचार करने के लिए प्रयोग किये जायेंगे। महात्मा गाँधी ने रौलट एक्ट के खिलाफ विरोध की घोषणा की। सारे देश में हड़ताल मनाई गई और कानूनों का विरोध करने के लिए जुलूस निकाले गये। ‘दिल्ली में इस जुलूस का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्द ने किया। कुछ यूरोपियन सिपाहियों ने स्वामी श्रद्धानन्द पर गोली चलाने की धमकी दी। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी नंगी छाती उनके सामने कर दी, दिल्ली के रेलवे स्टेशन के पास जुलूस पर गोली चलाई गयी जिससे 5 व्यक्तियों की मौत हुई तथा कुछ व्यक्तियों को गहरी चोटें आयीं।’⁽³⁾

अंग्रेजी सरकार ने पंजाब में बढ़ रही क्रान्तिकारी गतिविधियों के कारण गाँधी जी तथा अन्य नेताओं के पंजाब में प्रवेश पर रोक लगा दी। आशंका के बावजूद 9 अप्रैल का दिन पंजाब में शान्ति से गुजरा। 10 अप्रैल सन् 1919 की सुबह अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर ने बिना किसी कारण के पंजाब के दो प्रसिद्ध नेता डॉ० सत्यपाल व डॉ० किचलू को गिरफ्तार कर किसी अज्ञात स्थान पर भेज दिया गया। लोगों ने इसके विरोध में हड़ताल शुरू कर दी और जुलूस बनाकर अपने नेताओं की रिहाई की मांग करने के लिए डिप्टी कमिश्नर के मकान की ओर बढ़े। जुलूस की संख्या ने निरन्तर वृद्धि हो रही थी परन्तु यह बिल्कुल शान्त था। स्वयं हण्टर कमेटी के अनुसार “भीड़ के पास लाठियाँ अथवा लड़ने की कोई अन्य चीज नहीं थी तथा उन्होंने रास्ते में यूरोपियनों के साथ छेड़-छाड़ नहीं की।”⁽⁴⁾ सैनिक अधिकारियों ने भीड़ पर गोली चला दी जिसमें कई लोगों की जाने गयीं। लोगों ने उन मरे हुए शहीदों को अपने कंधों पर रखकर जुलूस निकाला। रास्ते में भीड़ ने नेशनल बैंक के भवन को आग लगा दी और उसके यूरोपियन मैनेजर

को मार डाला।⁽⁶⁾ भीड़ ने कुल मिलाकर पांच अंग्रेजों को मारा तथा सार्वजनिक इमारतों में आग लगा दी।⁽⁶⁾ अमृतसर में बढ़ती हिंसक घटनाओं के कारण 11 अप्रैल को जनरल डायर की सेना को शहर की सुरक्षा सुपुर्द कर दिया गया।

12 अप्रैल को अनेक गिरफ्तारियाँ कर जनरल डायर ने सभी सभाओं तथा लोगों के एक स्थान पर एकत्रित होने से प्रतिबन्ध लगा दिया गया, परन्तु ऐसा कोई आदेश/सूचना जनता को प्रेषित नहीं की गयी। स्वयं हण्डर कमेटी के अनुसार “यह प्रकट नहीं होता कि उस घोषणा के प्रकाशन की क्या व्यवस्था की गयी जिन स्थानों पर घोषणा पढ़ी गयी, उसका नक्सा देखने से प्रत्यक्ष है कि शहर के बहुत बड़े भागों में घोषणा नहीं पढ़ी गयी।”⁽⁷⁾

13 अप्रैल सन् 1919 ई. को बैशाखी के दिन शाम को 4:30 बजे जनता ने शहर के बीच में स्थिति एक खुले मैदान जलियाँवाला बाग में सार्वजनिक सभा करने की घोषणा की। जनरल डायर ने सभी को रोकने का प्रारम्भ में कोई प्रयास नहीं किया। जब लगभग 20,000 लोग एकत्रित हो गये और हंसराज नामक एक सज्जन ने सभा में बोलना शुरू किया, तभी जनरल डायर 50 अंग्रेज और 100 भारतीय सैनिकों को लेकर बाग को चारों तरफ से घेर लिया। जनरल डायर ने लोगों को चेतावनी दिये बिना ही गोली चलाना शुरू कर दिया और उस समय तक गोली चलती रही जबकि गोलियाँ खत्म नहीं हो गयीं।⁽⁸⁾ “चूहेदानी में फँसे चूहों की तरह, उबलते हुए इस मानव समूह पर 1650 गोलियाँ चलाई गयीं। वे लोग निकलने के संकरे रास्ते की ओर निश्फल दौड़ते या गोलियों की वर्षा से बचने के लिए पेट के बल लेट जाते। जनरल डायर ने खुद अपने निर्देश से ऐसी जगह पर गोली वर्षा करायी जहाँ भीड़ सबसे ज्यादा थी।”⁽⁹⁾ हण्डर कमेटी के अनुसार इस काण्ड में 379 लोग मारे गये और 1200 व्यक्ति घायल हुए।

काँग्रेस द्वारा नियुक्त जांच कमेटी की रिपोर्ट जो प्रत्यक्षदर्शी गवाहियों पर आधारित थी, के अनुसार कम से कम 1000 व्यक्ति मारे गये। डायर के आदेश पर घायलों को रातभर बाग में ही रोते-कराहते पड़े रहने दिया गया। अंग्रेजी शासन के ये अत्याचार अमृतसर नगर तक ही सीमित नहीं थे। डॉ० पट्टाभि सीतारामैया के अनुसार “लाहौर, गुजराँवाला, कसूर तथा अन्य स्थानों पर भी कर्नल जानसन, बोसवर्थ, स्मिथ, कर्नल ओ०, ब्राउन तथा अन्य सैनिक और असैनिक अधिकारियों ने भी ऐसे अत्याचार किए कि वे खून को जमाने वाले हैं।”⁽¹⁰⁾

जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड की घटना का समस्त भारतीय जनता के मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद के भारतीय सदस्य शंकरन नायर ने लगातार मार्शल कानून लगाये रखने के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए कार्यकारिणी परिषद की सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया। कवि रविन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी ‘सर’ की उपाधि त्याग दी। उन्होंने लिखा—“समय आ गया जब सम्मान के ये चिह्न राष्ट्रीय अपमान के सन्दर्भ में हमारी लज्जा को बढ़ाते हैं। और जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है इस विशेष सम्मान को छोड़कर अपने देशवासियों के साथ खड़ा होना चाहता हूँ।”⁽¹¹⁾

गाँधी जी ने जिस उत्साह से अंग्रेजों को प्रथम विश्वयुद्ध में साथ देने के लिए भारतीयों से रंगरूटों के रूप में भर्ती होने का आवाहन किया था उसी के अनुरूप जनपद जालौन में दो रिक्लूटमेंट अफसर मन्नीलाल पाण्डेय व बेनीमाधव तिवारी नियुक्त किये गये थे। जनपद ने गाँधी जी के आशानुरूप सहयोगी भी प्रदान किया परन्तु युद्ध में विजय से उत्साहित अंग्रेज सरकार अपने किये गये वादों से मुकर गयी। अंग्रेजी हुकूमत ने पुनः अपनी दमन नीति के चलते रौलट बिल (काले कानून) पास कर दिये। जिसका

समस्त देश की भाँति जनपद में भी काले कानूनों का विरोध किया। इसी रौलट एक्ट के विरोध के दौरान अमृतसर में हुए जलियाँवाले बाग हत्याकाण्ड की खबर सारे देश में जंगल में आग की भाँति फैल गयी इस घटना से गाँधी जी के विचारों में भी अमूल-चूर परिवर्तन हुआ। एक अहिंसावादी का इस भीषण नर संहार से अंग्रेजी की न्यायप्रियता से विश्वास उठ गया। गाँधी जी के आवाहन पर सारे देश में हड़ताल होने शुरू हो गयी, और जगह-जगह लोगों ने अंग्रेजी सरकार का विरोध प्रारम्भ कर दिया। इसी काण्ड के विरोध में कोच में एक सभा आयोजित की गयी, जिसमें इस काण्ड से जनता को अवगत कराया गया व शराब के ठेकों पर धरना देने की अपील की गयी।⁽¹²⁾

असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ एवं जनपद-जालौन

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी गाँधी जी का भारतीय में प्रवेश और काँग्रेस नेतृत्व पर उनका अधिकार। उनके नेतृत्व में काँग्रेस ने एक नया स्वरूप और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नई दिशा प्राप्त हुई। प्रारम्भ में उन्होंने ब्रिटिश शासन का समर्थन किया एवं प्रथम विश्व युद्ध के उनके आहावन पर अनेक भारतीय सैनिकों ने सेना में भर्ती होकर उनके समर्थन में बचनबद्धता दिखलाई। सन् 1916 में उन्होंने अहमदाबाद में साबरमती आश्रम की स्थापना की जो उनकी गतिविधियों का मुख्य केन्द्र बन गया। उन्होंने अपना सारा चित भारत के गरीब और कमजोर लोगों की अवस्था सुधारने की तरफ लगा दिया। सन् 1917 ई० में उन्होंने चम्पारण के किसानों को निलहों के अत्याचारों से मुक्ति दिलाने के लिए सफल सत्याग्रह किया। चम्पारण के बाद गाँधी का ध्यान गुजरात के खेड़ा की तरफ मुड़ा। जहाँ सन् 1918 ई० में वर्षा के अभाव में फसल बर्बाद हो गयी थी, लेकिन सरकारी अधिकारी लगान की वसूली के लिए किसानों पर अत्याचार कर रहे थे। अतः गाँधी जी ने किसानों को संगठित कर अत्याचारों के विरुद्ध लगान देना बन्द कर दिया। बाध्य होकर सरकार को किसानों से समझौता करना पड़ा।

सन् 1918 ई० में उन्होंने अहमदाबाद के मिल मालिकों और मजदूरों के बीच समझौता कराने के लिए अनशन आरम्भ किया जिससे मजदूरों के वेतन में वृद्धि हो सकी। सत्याग्रह के इन सफल प्रयोगों ने गाँधी में राष्ट्रीय आन्दोलन की तरफ रुझान उत्पन्न किया। कूपलैण्ड ने गाँधी जी के सन्दर्भ में कहा “गाँधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक क्रान्तिकारी रूप दिया। उन्होंने उसे स्वतन्त्रता के ध्येय की ओर बढ़ना सिखाया। यह कार्य सरकार पर वैधानिक दबाव डालकर अथवा वाद-विवाद या समझौते द्वारा नहीं हुआ, बल्कि अहिंसा की शक्ति द्वारा।”⁽¹³⁾

इस प्रकार गाँधी जी ने भारतीय राजनीति में प्रवेश अहिंसा की आधारशिला पर किया परन्तु इसी समय कुछ ऐसी घटनाएँ घटी जिन्होंने गाँधी को असहयोग आन्दोलन की प्रेरणा दी। गाँधी जी के शब्दों में—“ब्रिटिश सरकार ने खिलाफत के बारे में दिये गये अपने वचनों का पालन नहीं किया और न केवल पंजाब के निर्दोष लोगों की अत्याचारी अधिकारियों से रक्षा की, बल्कि बर्बरतापूर्ण कार्यवाहियों को क्षमा भी कर दिया। भविष्य में ऐसी गलतियों की पुनरावृत्ति को रोकने तथा राष्ट्रीय सम्मान को प्रदर्शित करने के लिए सबसे प्रभावशाली तरीका केवल यह है कि स्वराज्य की स्थापना के लिए प्रयत्न किये जायें।”⁽¹⁴⁾

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान एक तरफ तो सरकार मांटैग्यू घोषणा द्वारा भारतीयों को राजनीतिक अधिकार दे रही थी तो दूसरी तरफ क्रान्तिकारियों का कठोरतापूर्वक दमन कर रही थी। इस दिशा में ब्रिटिश सरकार ने क्रान्तिकारी गतिविधियों पर रोक लगाने के लिए न्यायधीश सिडनी रॉलेट की अध्यक्षता

में एक समिति का गठन किया। समिति ने कठोर नियमों का सुझाव दिया, जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को सन्देह आधार पर गिरफ्तार कर मुकदमा चलाने का प्रावधान किया गया। इस प्रावधान का भारतीयों द्वारा कड़ा विरोध किया गया। इस सम्बन्ध में श्री सी०आई० चिन्तामणि ने लिखा है कि “परिषद के गैर-सरकारी भारतीय सदस्यों, निर्वाचित सदस्यों और मनोनित सदस्यों सबने विधेयक का समान रूप से विरोध किया, परन्तु सरकार अपनी बात पर अड़ी रही और तनिक भी नहीं झुकी।”⁽¹⁵⁾ समिति ने अपनी रिपोर्ट अप्रैल सन् 1918 में पेश की तथा 18 मार्च 1919 को रौलट एक्ट पास कर दिया गया। मोतीलाल नेहरू ने इस कानून की अपने शब्दों में व्याख्या करते हुए कहा “अपील, वकील और दलील की व्यवस्था का अन्त कर दिया गया।” श्री सी०आर० दास ने इस एक्ट के सम्बन्ध में लिखा कि “इसने भारतीय शासन को किसी भी राजनीतिक आन्दोलन या सरकार विरोधी कार्य का दमन करने की असाधारण शक्तियाँ प्रदान कर दी।”⁽¹⁶⁾ इस कानून के विरोध में जिन्न, मदनमोहन मालवीय और मजहरुल हक ने केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा से इस्तीफा दे दिया। गाँधी के सुझाव पर कांग्रेस ने पूरे देश में कानून का विरोध करने के लिए हड़ताल का आवाहन किया।

खिलाफत के प्रश्न पर सन् 1920 ई० सितम्बर माह में कांग्रेस के एक विशेष अधिवेशन में गाँधी जी ने बहिष्कार और असहयोग की नीति का ऐलान करते हुए कहा “अंग्रेजी सरकार शैतान है जिसके साथ सहयोग सम्भव नहीं है” दिसम्बर सन् 1920 में नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन के प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी गयी। वस्तुतः स्वराज्य का लक्ष्य घोषित करते हुए कांग्रेस ने आन्दोलन का नेतृत्व महात्मा गाँधी को सौंप दिया। गाँधी जी ने आन्दोलन का सूत्रपात ‘केसर-ए-हिन्द’ की सरकारी उपाधि को लौटा कर किया। उनकी इस गतिविधि से अनेक प्रभावशाली नेता आन्दोलन में शामिल हो गये। कविवर रविन्द्रनाथ ठाकुर सहित अनेक व्यक्तियों ने अपनी सरकारी उपाधियाँ लौटा दीं। मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास, राजेन्द्र प्रसाद जैसे प्रसिद्ध वकीलों ने वकालत छोड़ दी। हजारों छात्रों ने स्कूल-कालेजों से अपना नाता तोड़ दिया। व्यापक स्तर विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार शुरू हो गया एवं विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गयी, घर-घर में चर्खे की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी।⁽¹⁷⁾ अनेक राष्ट्रीय विद्यालय-काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, महाराष्ट्र विद्यापीठ, बनारस विद्यापीठ, बंगाल नेशनल विद्यापीठ, नेशनल मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, दिल्ली का जामियामिलिया, नेशनल कालेज, लाहौर इत्यादि की स्थापना हुई। लाखों की संख्या में स्वयं सेवक तैयार हुए और शीघ्र ही ‘तिलक कोष’ में वांछित राशि जमा हो गई। जगह-जगह प्रदर्शन और हड़तालें हुई।

सन् 1921 ई० तक असहयोग आन्दोलन अपने पूर्ण व्यापक रूप में चल रहा था। सन् 1921 में ही युवराज प्रिन्स ऑफ वेल्स बम्बई आये। इनके आगमन के विरोध में जुलूस निकाले गये, प्रदर्शन किए गये और हड़ताल रखी गई। इसे दबाने के लिए पुलिस द्वारा गोली-बारी में 52 लोग मारे गये और सैकड़ों लोग घायल हुए। इस घटना के प्रायश्चित में गाँधी जी ने पाँच दिन का उपवास रखा। लेकिन सरकार ने अपना दमनचक्र जारी रखा। कांग्रेस गैर-कानूनी संस्था घोषित कर दी गयी। दिसम्बर सन् 1921 तक गाँधी जी के अतिरिक्त कांग्रेस के सभी प्रमुख शीर्षनेता गिरफ्तार कर लिये गये। इस समय तक लगभग 60 हजार लोगों को गिरफ्तार किया जा चुका था लेकिन जनता में उत्साह कम होने का नाम ही नहीं ले रहा था। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद लिखते हैं—“जब से भारत का ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध स्थापित हुआ था, इसके इतिहास में जनता का क्षोभ और उत्साह इस सीमा तक पहले कभी न पहुँचा था।” जनता के

उत्साह एवं आन्दोलन की प्रगति के सन्दर्भ में पं० नेहरू लिखते हैं—“किशोर और नवयुवक पुलिस की गाड़ियों में जा बैठते और उतरने से इन्कार कर देते। पुलिस और जेल अधिकारी इन असाधारण घटनाओं से चकित और किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे”।⁽¹⁸⁾

1 फरवरी सन् 1922 ई० को गाँधी जी ने वायसराय को पत्र लिखकर चेतावनी दी कि अगर सरकार अपना दमनचक्र बन्द नहीं करेगी तो बाध्य होकर उन्हें बारदोली (गुजरात) में अपना नया आन्दोलन (सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन) प्रारम्भ करना पड़ेगा। लेकिन 5 फरवरी को ऐसी घटना घटित हुई जिसने सम्पूर्ण असहयोग आन्दोलन की स्थिति को परिवर्तित कर दिया।

गाँधी जी द्वारा दी गयी चेतावनी का समय अभी पूरा भी नहीं हुआ था कि गोरखपुर के चौरी-चौरा नामक पर ऐसी घटना हुई जिसने सम्पूर्ण आन्दोलन की स्थिति को बदल दिया। 5 फरवरी सन् 1922 को चौरी-चौरा नामक ग्राम में काँग्रेस के एक जुलूस निकाला गया। पुलिस द्वारा गोली चलाये जाने पर जनता (जुलूस) ने उत्तेजित होकर एक दरोगा सहित 21 सिपाहियों को थाने में बन्द कर आग लगा दी। इस हिंसात्मक घटना से दुखित हो गाँधी जी ने तत्काल प्रभाव से असहयोग आन्दोलन को स्थगित करने की घोषणा कर दी। उनके इस निर्णय से सर्वत्र निराशा और क्षोभ व्याप्त हो गया। जवाहरलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास उनके इस निर्णय से स्तम्भ रह गये। मोतीलाल नेहरू और लाजपत राय ने जेल से पत्र लिखे जिसमें उन्होंने गाँधी जी को “किसी एक स्थान के पाप के कारण सारे देश को दण्ड देने के लिए आड़े हाथों लिया।”⁽¹⁹⁾

सुभाषचन्द्र बोस ने सामान्य भावना को व्यक्त करते हुए कहा—“ठीक उस समय जब कि जनता का उत्साह चरमोत्कर्ष पर था, वापस लौटने का आदेश दे देना राष्ट्रीय दुर्भाग्य से कम न था।”⁽²⁰⁾ लेकिन गाँधी जी ने आन्दोलन को स्थगित करने के सन्दर्भ में अपने विचारों में कहा कि सभी नेताओं के जेल चले जाने से जनता दिशाहीन एवं हिंसक हो गयी थी। हिंसा के द्वारा सरकार का मुकाबला नहीं किया जा सकता था अतः उन्होंने आन्दोलन को बन्द कर देना ही उचित समझा था।

अपने घोषित उद्देश्यों में असहयोग आन्दोलन आंशिक रूप से सफल रहा। विधान सभाओं के बहिष्कार में यह असफल रहा। कांग्रेसी सदस्यों ने चुनाव में भाग नहीं लिया परन्तु वे मतदान एवं निर्वाचन बन्द नहीं करवा सके। पंचायत की प्रणाली का भी न्यायिक व्यवस्था पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। सरकारी उपाधियाँ लौटाई गईं लेकिन सरकारी सेवकों की संख्या में कमी नहीं आयी। अपने रचनात्मक कार्यों में इसे अपार सफलता अवश्य मिली। असहयोग आन्दोलन की सफलता सबसे ज्यादा इस बात में निहित है कि इसने कांग्रेस को नई दिशा प्रदान की, साम्राज्यवाद पर आघात किया एवं पूरे देश में राष्ट्रप्रेम और देशप्रेम के प्रति बलिदान की भावना को बलवती मिली। इसके बावजूद आन्दोलन के स्थगन ने गाँधी जी की लोकप्रियता घटा दी। इस प्रकार से गाँधी का राजनीतिक निर्वासन हो गया। शीघ्र ही 10 मार्च सन् 1922 को गांधी को गिरफ्तार कर उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और उन्हें 6 वर्षों के जेल की सजा दी गई। काँग्रेस के अन्दर विद्रोह की भावना बलवती हो गई जिसने ‘स्वराजियों’ का उदय संभव बना दिया।

असहयोग आन्दोलन में जनपद-जालौन – 6 अप्रैल सन् 1919 ई० के रौलट एक्ट के विरोध में हुए प्रदर्शन ने बतला दिया कि देश प्रथम महायुद्ध के बाद कहाँ चला गया है। आत्मग्लानि और प्रतिरोध की भावना देश में इतनी उग्र हो गयी थी कि यदि कोई विश्वास पात्र नेता आगे बढ़ता, तो जनता उसका

साथ देने के लिए तैयार थी। दक्षिण अफ्रीका के आन्दोलन के बारे में सुनकर गाँधी जी को भारत की शिक्षित जनता जानती थी। चम्पारन और खेड़ा के आन्दोलनों ने उन्हें भारत की साधारण जनता में प्रसिद्धि और सर्वप्रियता प्रदान की। रौलट एक्ट के विरोध को लेकर गाँधी जी आगे आना ठीक समय पर हुआ। जनता विशेषकर किसान और निम्न मध्यम शिक्षित वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करने का तरीका गाँधी जी अपने समय के भारतीय नेताओं से अधिक जानते थे। अमृतसर (1920), कलकत्ता (1921), नागपुर (1921) के कांग्रेस अधिवेशनों में गाँधी जी का सितारा ऊपर उठता ही गया। गाँधी जी द्वारा रौलट एक्ट का विरोध दिवस मनाने की योजना पूरे भारत में एक साथ की गयी। रौलट एक्ट के विरुद्ध जो भारी विद्रोह की भावना पैदा हुई थी, उसने बहुत से मुद्दों में रुह डाल दी थी।⁽²¹⁾

बुन्देलखण्ड में असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात सन् 1916 में झाँसी में हुए एक 'संयुक्त प्रान्त राजनैतिक कांग्रेस' के आयोजन से माना जाता है। इस राजनैतिक कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष सी०बाई० चिन्तामणि बनाये गये थे। इसमें बुन्देलखण्ड के सभी जिलों के कांग्रेस की विचारधारा वाले लोग एकत्रित हुए थे।⁽²²⁾

इसी आयोजन ने जनपद में भी असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि में महती भूमिका निभाई। गाँधी जी द्वारा असहयोग आन्दोलन के शुरुवात करने की घोषणा से ही देश भर में लाखों की तादाद में लोग इस आन्दोलन में शामिल होने लगे। सारे देश में आन्दोलन की सरगर्मियाँ गरमाने लगी तो भला जनपद जालौन इसका अपवाद कैसे रह सकता था। अतः जनपद के राजनैतिक वातावरण में आन्दोलनकारी गतिविधियाँ पुनः तेज हो गयी। जनपद के प्रमुख नगरों व कस्बों में हड़तालों तथा जनसभाओं का दौरा शुरू हो गया और अब इसकी सुमगुनाहट छोटे-बड़े गाँवों तक में पहुँच गयी। जनपद के प्रमुख कांग्रेसी नेता सक्रिय हो गये। कोंच के बेनी प्रसाद चोपड़ा, कालपी के चन्द्रभान विद्यार्थी व मोतीचन्द्र वर्मा, उरई के मन्नीलाल पाण्डेय, बेनीमाधव तिवारी, चतुर्भुज शर्मा, और पिंडारी के धनराज पालीवाल आदि ने जनसभाओं को संबोधित किया था।⁽²³⁾ इस जनसभाओं के माध्यम से जनपदीय नेताओं ने अंग्रेजी शासन की अन्यायपूर्ण नीतियों तथा दमन चक्र की निंदा की एवं स्वशासन की माँग से जनता को परिचित कराते हुए इसकी जोरदार वकालत की। जनता से विदेशी सामानों का बहिष्कार करने व स्वहस्तनिर्मित स्वदेशी वस्तुओं का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करने की अपील की। स्वदेशी आन्दोलन में हाथ से निर्मित वस्त्रों की खोई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना व, छूआछूत का उन्मूलन व ब्रिटिश शासन के दमनकारी कार्यों का विरोध आदि प्रमुखता से शामिल किये गये। जनपदीय जनता में स्वदेशी आन्दोलन की बयार ऐसी चली की जगह-जगह विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गयी।⁽²⁴⁾

कालपी में खादी के प्रयोग का ऐसा रंग चढ़ा कि मुन्नालाल गुप्त ने खादी को एक वस्त्र न मानकर वरन् इसे एक संस्कृति के रूप में ऐसा अपनाया की वे जीवन पर्यन्त इसी खादी संस्कृति के लिए जिस और अन्त में इसी के साथ विलीन हो गये। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के मूलमंत्र स्वदेशी को अपने जीवन का आधार बनाया व गाँव-गाँव जाकर व्यापक स्तर पर इसको प्रयोग के लिए जबरदस्त प्रचार किया। इसी तरह कई कांग्रेसी लोगों ने जनपद में व्याप्त छुआछूतवादी कुप्रथाओं को समाप्त करने के लिए अछूतोंद्वारा कार्यक्रम को सफल बनाने का कार्यक्रम आटा में बेनीमाधव तिवारी के नेतृत्व में शुरू किया गया। इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए तिवारी जी ने मलिन व भंगी बस्तियों में प्रीतिभोजों का आयोजन प्रारम्भ किया। और आगे चलकर नगर के मंदिर में अछूतों को भी दर्शन की सुविधा दिलाना

व बाल्मीकि मन्दिरों में स्वयं जाकर प्रार्थना सभाओं का आयोजन आदि कार्य तिवारी जी के दैनिक जीवन के प्रमुख अंग बन गये। हरिजनों के प्रति तिवारी जी की सेवायें अद्वितीय थीं। अतः उन्होंने असहयोग के दौर में अछूतों के उद्धार पर स्वरचित कविताओं द्वारा राष्ट्रीय नेताओं व जागरूक नागरिकों में सौहार्द बढ़ाने के “छूत का भूत” नामक कविता की रचना की। एक कविता में वह कहते हैं।

“हमने खिलाये उसे चाख-चाख मीठे बेर,
गंगा मैय्या पार नैय्या लेकर उतारा है।
विदुर हमी थे जहाँ खाया सानुराग साग,
हमी ने कन्हैया उसे कह कर पुकारा है।
तुम ने तो एक बात पर ही उसे मारी लात,
अब भक्त बनने का ठोंग क्यों पसारा है।
ऐ हो द्विज राज खोलो मन्दिर के पट आज,
आपका नहीं यह देवता हमारा है।”

इस प्रकार अपनी लेखन कला द्वारा जनपद में असहयोग आन्दोलन की गतिविधियों में तीव्रता लाने का जो प्रयास तिवारी जी द्वारा किया गया वह वाकई जनपदीय आन्दोलन का एक अनूठा कारगर प्रयास था।

गाँधी जी द्वारा खिलाफत आन्दोलन को असहयोग आन्दोलन में जोड़ने के परिणामस्वरूप हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करने का प्रयास किया गया। जनपद में भी हिन्दू एवं मुसलमानों के बीच सौहार्द कायम करने के लिए एकता सम्मेलन, कवि सम्मेलन व मुशायरों के मिले-जुले कार्यक्रम आयोजित किये गये। इस दिशा में उरई के मन्नीलाल पाण्डेय, हरगोविन्द दयाल नशतर, कोंच के सेठ अमरचन्द्र महेश्वरी, कालपी के लाला मंगली प्रसाद, लाला भगवान दास तथा जालौन के सैठ द्वारिका दास ने बहुत ही सराहनीय प्रयास किये। गाँधी जी द्वारा खादी के ज्यादा से ज्यादा प्रयोग के लिए की गयी अपील के चलते उस समय जनपद में एक गीत “खादी के रेशे-रेशे में अपनेपन का अभिमान भरा” ने जनता में खादी के प्रति असीम प्रेम पैदा कर दिया। जनपद में जनता से जोरदार अपील की गई कि वे शराब पीना छोड़ दे, बहुत से लोगों ने सरकारी नौकरी छोड़ दी, कस्बों व शहरों की शराब की दुकानों व ठेकों पर धरना प्रदर्शन प्रारम्भ हो गये। न्यायालयों का बहिष्कार किया गया तथा लोगों ने अंग्रेजी स्कूल तथा सरकारी स्कूलों में अपने बच्चों को हटाकर राष्ट्रीय विद्यालयों एवं आर्यसमाज द्वारा संचालित स्कूलों व पाठशालाओं में भेजना प्रारम्भ कर दिया। इस घोषणा से उत्साहित हो उरई में चतुर्भुज शर्मा, कालीचरण निगम व उनके अन्य सहपाठियों ने व कालपी के मूलचन्द्र आदि ने सरकारी स्कूल से अपना नाता तोड़ दिया था।⁽²⁵⁾

यद्यपि जनपद में असहयोग आन्दोलन के अधिकांश कार्यक्रम बड़े ही उत्साह पूर्ण ढंग से चलाये जा रहे थे, पर आन्दोलन का कस्बों तथा गाँवों तक पहुँचना एक चमत्कार के समान था। शहरों में सभी दुकानों की बन्दी करा ऐतिहासिक हड़ताल की गयी तथा गाँवों में भी छोटे-छोटे जुलूस निकाले जाने लगे। उरई में जहाँ मन्नीलाल पाण्डेय, बेनीमाधव तिवारी, चतुर्भुज शर्मा, कोंच में गौरीशंकर मिश्र, रामनारायण अग्रवाल⁽²⁶⁾ तथा जालौन में नारायण मेमने व डॉ० आनन्द ने तिलक स्वराज्य कोष के लिए चन्दा एकत्रित किया वही कालपी में मन्नीलाल अग्रवाल, चन्द्रभानु विद्यार्थी, मोतीचन्द्र वर्मा, बद्रीप्रसाद

पुरवार, नारायण स्वामी व मुन्नालाल खद्दरी ने आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। उरई में रमाशंकर सक्सेना, गोपालदास शर्मा, रामस्वरूप, चतुर्भुज शर्मा, बाबू बनवारी लाल ने, कालपी में डॉ० गोकुल तिवारी व श्री प्रकाश जेतली, कोंच में सेठ अमरचन्द्र व बेनीमाधव तिवारी ने देशी स्कूल व आर्य समाज द्वारा पाठशालाएँ खोलने में उत्साहपूर्ण तत्परता दिखाई थी।

सन् 1921 ई० के जून महीना तक असहयोग आन्दोलन कार्यरूप में परिणत हो, गया था। कितने ही वकील, बैरिस्टर अपनी प्रैक्टिस बन्द कर चुके थे। हजारों हजार विद्यार्थी सरकारी व अंग्रेजी स्कूल छोड़कर देशी व आर्यसमाजी पाठशालाओं में दाखिला ले चुके थे। पन्नालाल पहारिया का परिवार महेशपुरा छोड़कर कोंच में रहने के लिए आ गया था। कोंच के चौराहे पर एक राजनैतिक व्याख्यानमाला शुरू हुई जो तीन या चार रातों तक चलती रही।⁽²⁷⁾ जनपद में 'तिलक स्वराज फंड' के संग्रह का काम समाप्त हो गया था। अब चर्खा-खद्दर और मादक द्रव्य निषेध पर जोर था, शराब-गांजे की दुकान पर धरना-प्रदर्शन चल रहा था।

इलाहाबाद में नेहरू परिवार का निवास स्थान आनन्द भवन, बी०आर० नंदा के अनुसार अब इलाहाबाद के चुने हुए लोगों के कल्ब की बजाय खादीधारी साधारण से दिखने वाले लोगों के ठहरने की सराय हो गया था। 3 दिसम्बर सन् 1921 ई० को असहयोग आन्दोलन की व्यवस्थित कर योजना के अनुरूप अवध प्रान्त में आन्दोलन को तीव्रता प्रदान करने व प्रिन्स ऑफ बेल्स का बहिष्कार करने के लिए इलाहाबाद स्थित आनन्द भवन में सभी जिलों के लगभग 54 सक्रिय प्रान्तीय कांग्रेसी नेताओं का एक सम्मेलन आयोजित किया जाना था। इस बैठक में जनपद जालौन का प्रतिनिधित्व मन्नी लाल पाण्डेय कर रहे थे। यह अखिल भारतीय कांग्रेस का सम्मेलन था जिसमें सभी जनपदीय नेताओं को आन्दोलन के बारे में दिशा निर्देश दिये जाने थे और निर्देशों को अपने-अपने ग्रह जनपद जाकर कार्यरूप में परिणित किया जाना था। सम्मेलन प्रारम्भ होने से पूर्व ही 3 दिसम्बर को मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, मन्नीलाल पाण्डेय आदि उपस्थित सभी कांग्रेस जनों को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया।⁽²⁸⁾ जेल में ही सभी पर मुकदमा चलाया गया जिसमें सभी को 6-6 माह की सजा तथा 500-500 रुपये का जुर्माना लगाया गया। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौर में जनपद-जालौन के किसी व्यक्ति की यह प्रथम गिरफ्तारी थी। जुर्माना जमा न किये जाने के कारण पाण्डेय जी गिरफ्तारी एक माह और बढ़ा दी गयी।⁽²⁹⁾ स्वाधीनता की इस लड़ाई में प्रान्तीय स्तर पर सहभागिता दर्ज कराने का यह प्रथम दौर था।

इस गिरफ्तारी के विरोध में जनपद-जालौन में सभायें आयोजित की जाने लगी तथा विदेशी वस्त्रों की होली जलाई जाने लगी। उरई में जो कांग्रेसी जन इलाहाबाद की बैठक में नहीं गये थे उन्होंने सभाओं का आयोजन शुरू कर दिया। पं० बेनीमाधव तिवारी के नेतृत्व में एक झण्डा फेरी उरई में निकाली गयी। संध्याकाल के समय कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने एकत्रित हो माहिल तालाब के किनारे विदेशी कपड़ों को इकट्ठा कर होली जलाई गयी। तथा सभा को आयोजित कर विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के लिए भाषण दिये गये। इससे जनपद में देशभक्ति व अंग्रेजी शासन के विरुद्ध क्रोध की एक लहर सी दौड़ गई। इस विदेशी वस्त्रों की होलिका दहन में लोग अपने-अपने घर से विदेशी कपड़े ला-ला कर उत्साहपूर्वक जला रहे थे। इसमें युवा छात्र चतुर्भुज शर्मा ने सक्रियतापूर्वक अपनी टोपी को जलाकर अपनी उपस्थिति दर्ज की। कांग्रेस समर्थक कार्यकर्ताओं बेनीमाधव चोपड़ा, घनाराम पालीवाल, रामनारायण अग्रवाल व गौरीशंकर शुक्ला ने स्कूलों का बहिष्कार, रचनात्मक कार्यों तथा हरिजन उन्मूलन के कार्यक्रमों

में गरिमापूर्ण उपस्थिति दर्ज की।⁽³⁰⁾

सन् 1921 ई० के अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में कोंच के बाबूराम गुप्त अपने द्वारा रचित क्रान्तिकारी साहित्य का पूरा पुलंदा लेकर गये थे। इसमें उनके साथ जनपद के प्रमुख कांग्रेसी नेता बेनीमाधव तिवारी, मन्नीलाल पाण्डेय, बैजनाथ शर्मा आदि भी शामिल थे। झाँसी स्टेशन पर बाबूराम गुप्त की वृद्धावस्था तथा कुली न मिलने पर जनपदीय नेताओं के साथ में हमीरपुर के क्रान्तिकारी नेता शत्रुघ्न सिंह ने भी उनकी साहित्य सामग्री को ट्रेन में चढ़ाने में मदद की। अधिवेशन में सम्मिलित होने के पश्चात बुन्देली मेल-मिलाप का एक कार्यक्रम आयोजित किया गया। जिसमें सभी बुन्देलखण्ड के कांग्रेसी कार्यकर्ताओं का एक दूसरे से परिचय कराया गया। इसके पश्चात ये सभी लोग गाँधी जी से जाकर मिले। गाँधी जी ने सभी को अपने-अपने जनपद में आन्दोलन को तेज करने तथा ज्यादा से ज्यादा लोगों को जोड़ने के लिए कहा गया। जिससे उत्साहित हो जनपद-जालौन व उसके आस-पास के क्षेत्रों में अनेक राजनैतिक सम्मेलन आयोजित किये गये। जुलाई सन् 1921 में जनपद से लगे कस्बा राठ में एक राजनैतिक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें जिले के मान्य कांग्रेसी नेताओं बेनीमाधव तिवारी व मन्नी लाल पाण्डेय ने अपनी ओजस्वी एवं देशभक्ति पूर्ण भाषणों से जनता में देशभक्ति का जोश भर दिया।⁽³¹⁾

सन् 1922 का वर्ष आते-आते जनपद में असहयोग आन्दोलन अपने पूरे उफान पर आ चुका था। जिले में राष्ट्रीयता की लहरें जोर-शोर से उठने लगी थी जिससे जगह-जगह जनसभाएँ आयोजित की जा रही थी, जुलूस निकाले जा रहे थे एवं तिरंगा झण्डा ले लोग अंग्रेजी शासन के खिलाफ पूरे जनपद में प्रभात फेरियाँ निकाली जा रही थी। 22 जनवरी को कालपी में विषाल जनसभा का आयोजन किया गया।⁽³²⁾ जिसमें तिलक स्वराज फंड में चन्दा एकत्रित करने एवं स्वराज के झंडे को लेकर नगर में घुमाने आदि के महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये। इसमें कालपी की जनता का उत्साह देखते ही बनता था। कांग्रेस कार्यकर्ता तथा आमजन, विदेशी सामान का बहिष्कार, सरकारी दुकानों पर धरना व सरकार के खिलाफ प्रचार ऐसे कर रहे थे मानो उनके मन से अंग्रेजी शासन का भय निकल चुका हो।

इसी प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन 27 जनवरी सन् 1922 ई० में कोंच में भी शुरू हो गये। यहाँ भी एक जनसभा का आयोजन किया गया जिसमें जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड की घटना को विस्तारपूर्वक जनता को बताया गया। जिसके विरोध में जनता से अपील की गयी कि वह शराब की दुकानों व ठेकों पर धरना दे तथा विदेशी वस्तुओं का पूर्णतया बहिष्कार करें। कोंच में फरवरी माह में एक स्वदेशी वस्त्रों की बिक्री के लिए स्टोर खोला गया।⁽³³⁾ जनता ने शराब के ठेकों पर उग्रप्रदर्शन शुरू कर दिया। जिससे कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने स्थानीय कपड़ा व्यापारियों एवं फेरी लगाकर कपड़ा बेचने वाले लोगों को सेवासमिति की ओर से 'स्वदेशी' मुहर लगवा कर कपड़ा बेचने के लिए प्रेरित किया गया था।

13 व 14 फरवरी सन् 1922 ई० का दिन जनपद क्या समस्त प्रान्त के लिए अनूठा था क्योंकि इस दिन एक पत्र के सम्पादक पर देशद्रोह का मुकदमा चलाया जा रहा था। उरई के न्यायालय में सुबह से भारी भीड़ एकत्रित हो गयी थी क्योंकि जनपद के इतिहास में यह पहला दिन था जब 'देहाती' पत्र के प्रकाशन पं० बेनीमाधव तिवारी को उनके अग्रलेख 'खून की स्याही' पर राजद्रोह का मुकदमा चलना था।⁽³⁴⁾ तिवारी जी इस समय तक कांग्रेस के मान्य नेता एवं प्रसिद्ध वकील की ख्याति प्राप्त कर चुके थे। अतः इस खबर से एकत्रित भीड़ उनकी गिरफ्तारी के विरोध में नारे लगा रही थी तथा अपने लोकप्रिय

नेता को छुड़ाने की मांग कर रही थी। जनता के लाख विरोध के बाद भी तिवारी जी को तीन वर्ष की सजा सुनायी गयी। यह जनपद जालौन के लिए पहला अनुभव था जब किसी पत्र के लेख पर किसी सम्पादक पर विधिवत् राजद्रोह का मुकदमा चला हो सजा भी मिली हो। बंगाल के क्रान्तिकारी गोपीनाथ साहा ने एक अत्याचारी अंग्रेज पुलिस अधिकारी टेगर्ट को मारने के चक्कर में धोखे से एक अंग्रेज व्यापारी की हत्या कर दी थी। साहा को फाँसी की सजा मिली, जिससे प्रेरित हो तिवारी जी ने लाल स्याही से लिखा था कि “गोपीनाथ साहा को फाँसी न देकर ब्रिटेन के उन राजनीतिज्ञों की बुद्धि को फाँसी दी जाती तो अच्छा होता, जिसके कारण भारतवर्ष की मौजूदा शासन प्रणाली में मौजूद है।”⁽³⁵⁾ पं० बेनीमाधव तिवारी ने सजा भोगकर निर्भीकता व पत्रकारिता की श्रेष्ठ भारतीय परम्परा को जीवित रखा था।

उस समय कांग्रेस का जिला कार्यालय कोंच में था अतः नगर भी असहयोग आन्दोलन की गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र हो गया था, 15 फरवरी सन् 1922 ई० में जालौन नगर में एक राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना हो गयी थी।⁽³⁶⁾ अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन (1921) में साहित्य का पुलंदा ले जाने वाले बाबूराम वैश्य ने वापस आते ही अपने प्रबंधन में कोंच कांग्रेस कमेटी के सहयोग से एक प्रेस की स्थापना की तथा ‘निर्भय’ नामक अखबार छापना प्रारम्भ कर दिया।⁽³⁷⁾ धीरे-धीरे कोंच प्रेस एवं समाचार पत्रों की मांद बन गया। जिससे आन्दोलन की सरगर्मियाँ तेजी से बढ़ी और 1922 के अन्त में 17 व 18 दिसम्बर को जनपद का जिला राजनैतिक सम्मेलन यहाँ आयोजित किया गया।⁽³⁸⁾ जिसमें जनपद के साथ आस-पास के इलाके के लगभग एक हजार कार्यकर्त्ताओं ने भाग लिया। यह सम्मेलन जनपदीय आन्दोलन का चरमोत्कर्ष था जिसमें कांग्रेस की नीतियाँ पर अमल करने तथा स्वतन्त्रता को वेग गति से चलाने का निर्णय लिया गया था। इस दौर में स्वतन्त्रता आन्दोलन तूफानी वेग से चल रहा था और जनपद के लोग लगातार अंग्रेजी सरकार के नियमों की धज्जियाँ उड़ा रहे थे। लोगों ने सभी तरह कर एवं लगान देने बन्द कर दिये थे तथा अंग्रेजी शासन को ‘रावण का शासन’ की संज्ञा दी थी।⁽³⁹⁾

इस प्रकार पूरे देश की भाँति जनपद जालौन में भी असहयोग आन्दोलन भरपूर उत्साह एवं लगन के साथ चलाया जा रहा था। लोग अंग्रेजी सरकार द्वारा प्रदत्त उपाधियाँ त्याग रहे थे, वकील न्यायालयों का बहिष्कार कर रहे थे, छात्र सरकारी एवं अंग्रेजी विद्यालयों से अपना नाता तोड़कर देशी तथा आर्यसमाजी विद्यालयों में दाखिला ले रहे थे, शराब की दुकानों व ठेकों पर धरना एवं विदेशी वस्त्रों की होली जलाना जैसे कृत्य तो लग रहे थे कि लोगों के लिए राष्ट्रीय खेल हो गया है। जब यह आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष पर चल रहा था तो जनता का हिंसक होना स्वाभाविक था, जिसकी ही परिणति ‘चौरी-चौरा काण्ड’ के रूप में हुई। बम्बई, मद्रास व अन्य स्थानों में भी आन्दोलन धीरे-धीरे हिंसक होने लगा था। इन हिंसक घटनाओं की सूचना लगातार गाँधी जी के पास पहुँच रही थी। अतः हिंसक घटनाओं से द्रवित हो गाँधी जी ने आन्दोलन को स्थगित करने की घोषणा कर दी।

गाँधी जी के इस निर्णय की समूचे देश में आलोचना की गयी। वापिस की घोषणा के बाबजूद 13 मार्च सन् 1922 ई० को गाँधी जी को अहमदाबाद में गिरफ्तार कर लिया गया। उन्होंने मुकदमों की सुनवाई के दौरान सभी हिंसक घटनाओं की नैतिक जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। जिससे उन्हें 6 साल की सजा सुनाई गयी।⁽⁴⁰⁾ इस प्रकार भारतीय जनता में स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रति उमड़ा देशभक्ति का गुबार कुछ समय के लिए थम सा गया।

असहयोग आन्दोलन के प्रमुख क्षेत्रीय नेता एवं उनका योगदान :-

असहयोग आन्दोलन के दौर में भारतीय जनमानस में जो देशभक्ति का प्रेम जागा शायद उसी का परिणाम था कि अंग्रेजी शासन के दमनात्मक पूर्ण अमानवीय हिंसक घटनाओं को लगातार सहने वाले भारतीय जनता अब खुद हिंसक घटनाओं को करने में उतारु हो चली थी। इस दौर में कांग्रेस के प्रमुख नेता भी प्रत्यक्ष कार्यवाहियों पर विश्वास कायम करने लगे थे। जिससे आम जनता जाग्रत हो अब यह समझ चुकी थी कि यदि ब्रिटिश हुकूमत से मुक्ति पानी है तो हिंसा का मार्ग भी अख्तियार करना पड़ेगा। जिसकी शुरुआत असहयोग आन्दोलन के माध्यम से शुरू हो चुकी थी। असहयोग आन्दोलन में जहाँ राष्ट्रीय स्तर पर महात्मा गाँधी का नेतृत्व सर्वोच्चता पर पहुँचा था वहीं प्रान्तीय एवं जनपदीय स्तर के नेताओं ने भी अपनी अहम भूमिका का निर्वहन किया था। जनपद-जालौन में असहयोग आन्दोलन के समय प्रमुख नेता मुन्नालाल गुप्त, मन्नीलाल पाण्डेय, चन्द्रभानु विद्यार्थी, पं० बेनीमाधव तिवारी, मोतीचन्द्र वर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चौरसिया आदि ने बड़ी ही तन्मयता से देश पर मर मिटने वाली प्रेरणा के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज की।

कालपी के गाँधी मुन्नालाल गुप्त (1904-1994)⁴¹ जगन्नाथ प्रसाद गुप्त की दत्तक सन्तान के रूप में सन् 1904 ई० में कालपी के रावगंज मुहल्ले में आपका जन्म हुआ था। दत्तक पुत्र होने से पिता प्यार से आपको मुन्ना कहकर पुकारते थे। प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने के पश्चात् वे अपने पिता के व्यवसाय में हाथ बटाने लगे।

आपने प्रारम्भिक स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौर में अपनी सक्रियता दर्ज कर ली थी परन्तु सन् 1929 ई० में जनपद में गाँधी के आगमन से आपके जीवन ने ऐसा मोड़ लिया कि फिर सम्पूर्ण जीवन उन्हीं के अनुयायी रहे। गाँधी जी का खादी के प्रति अगाध प्रेम देख आपके मन में ऐसी प्रेरणा जागृत हुई कि उन्होंने खादी को अपनी संस्कृति ही नहीं समझा वरन् अपना शेष सम्पूर्ण जीवन इसी को समर्पित कर दिया। जिससे लोगों के बीच में 'कालपी के गाँधी' तथा 'खद्दरी जी' की स्थानीय उपाधियों से प्रसिद्ध हुए। आपके खादी प्रेम तथा जनपद में चरखे बनाकर वितरित किये जाने के सराहनीय कार्य को स्वयं गाँधी जी द्वारा लिखकर आपके मिशनरी कार्यों की प्रशंसा की गयी। खद्दरी जी ने खादी भावना के वशीभूत होकर ही सन् 1931 में सूत कताई मिशन प्रारम्भ कर सूती कपड़े बनाकर उन्हें वितरित करने की व्यवस्था की। उनका विचार था कि "हाथ से कते सूत का कपड़ा न पहनना भारतीयों के लिए पाप है।"

उनके प्रयास से सन् 1938 ई० में भारतीय हस्तनिर्मित कागज विद्यालय की स्थापना कालपी में हुई, जिसने शिक्षा को रोजगार परक बनाने तथा व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। आपने असहयोग आन्दोलन के समय नगर में घर-घर जाकर गाँधी जी के सिद्धान्तों से अवगत कराया, जनता को आन्दोलन के लिए प्रेरित किया तथा खद्दरी जी ने कालपी में स्वदेशी साहित्य व गाँधी साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए नंद किशोर पुस्तकालय की स्थापना की थी। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौर में तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी आप यहाँ से कई पत्रक प्रकाशित करवाते रहे। आपने 25 जुलाई सन् 1947 ई० को गौ-रक्षक जूतों के लिए, 27 फरवरी सन् 1947 ई० चर्खा व तेलधानी के लिए, 25 अप्रैल सन् 1963 ई० को महंगाई संकट के समाधान के लिए तथा 9 अक्टूबर सन् 1964 ई० को त्रिसूत्री कालपी योजना प्रकाशित कर क्षेत्र में वितरित कराया था।

आज यदि कालपी अपनी हस्त निर्मित कागज, हाथ से बुने ऊन के स्वेटर, भेड़ के ऊन के कंबल, तथा टेरीकाट व खादी के लिए लगभग सारे देश में प्रसिद्ध है तो इसका अधिकांश श्रेय खददरी जी को ही जाता है। वह मिठाईलाल कागजी व रामसहाय कागजी के साथ मिलकर लोगों को कागज बनाने का हुनर सिखाते थे, जिसे हजारों बेकार महिलाओं और नवयुवकों को रोजगार के अवसर प्रदान कराए। कालपी को कुटीर उद्योग की प्रयोगशाला बना लोगों को आत्मनिर्भर बनाने का जो प्रयास 'कालपी के गाँधी' ने किया वह आज भी लोगों के मन में जीवित है।

निष्ठावान आर्यसमाजी व समाजसेवी रमाशंकर सक्सेना (1880—1957)⁴²

सर पर सदैव खादी की सफेद टोपी, खादी के बन्द कोट से ढके रहने वाले रमाशंकर सक्सेना का जन्म उरई में सन् 1880 ई0 में एक आर्यसमाजी परिवार में हुआ था। बचपन से ही घर में चलती आर्यसमाजी गतिविधियों ने उनके जीवन को अपने आगोश में ले लिया था। एक निष्ठावान, आत्मसमर्पित आर्यसमाजी की तरह उनका अधिकांश समय दयानंद एंग्लोवैदिक स्कूल व आर्यकन्या विद्यालय के प्रबन्धन व नियमित संचालन में बीतता था। उनके दिन की शुरुवात मिशनरी स्कूल के नियमित घंटा बजाने से होती, स्वयं प्रबन्धन के साथ-साथ नियमित रूप से कक्षाएं लेते थे, तथा स्वयं को हमेशा बी0ए0 फेल बताते थे क्योंकि वे लगातार सात साल में प्रयास के बावजूद कभी पूरे विषयों में पास न हो सके थे। इसलिए उन्होंने अन्त में स्नातक पास करने का इरादा ही छोड़ दिया।

आप नगर की आर्यसमाजी क्रियाकलापों के सूत्रधार थे। चाहे वह आर्यसमाजी भवन की स्थापना, उसमें नियमित हवन का संचालन, प्रतिवर्ष तीन दिवसीय आर्यसमाजी महोत्सव का आयोजन हो अथवा आर्यसमाजी द्वारा निर्मित शिक्षण संस्थाओं स्थापना, उनका व्यवस्थित संचालन, प्रसिद्ध आर्यसमाजी विद्वानों के प्रवचन का प्रबन्ध आदि गतिविधियों में बाबूजी हमेशा सक्रिय रहते और यहीं कृत्य उनके प्रिय शौक हो गये थे। आर्यसमाजी गतिविधियों में संलिप्तता के साथ वे कांग्रेस के कुशल कार्यकर्ता भी थे, जिनकी स्वतन्त्रता आन्दोलन में उदारवादी गतिविधियों में भी सहभागिता रहती थी। समस्त उदारवादी नेताओं की भाँति आप भी धीरे-धीरे प्रत्यक्ष कार्यवाही व पूर्ण स्वराज्य की गतिविधियों से जुड़ गये। असहयोग आन्दोलन में आपने अपने ओजस्वी भाषणों से अनेक जनसभाओं को सुशोभित किया और सन् 1940—41 के आन्दोलन में अपनी धर्मपत्नी प्रेममयी देवी के साथ जेल की भी यात्रा की।

सुबह एक आर्यसमाजी की भाँति उठता यह खददरधारी संध्याकाल में एक कुशल होम्योपैथ की भाँति गरीब जनता का मुफ्त में इलाज भी करता था बशर्ते एक बात निश्चित रहती थी कि मरीज घर से स्वयं एक साफ खाली काँच की शीशी दवा लेने के लिए अवश्य लाये। शीशी न लाने पर ऐसी चुनिंदा गालियाँ देते की लोगों के होश उड़ जाते थे। इसलिए आपके सम्बंध में यह प्रसिद्ध हो गया था कि दवा से ज्यादा गालियाँ ही लोगों को ठीक करती हैं। स्वयं साफ सुथरे रहते तथा मरीजों को भी हमेशा साफ-सफाई की नसीहत देना कभी नहीं भूलते थे। आप सहकारिता आन्दोलन, नगर की सामाजिक क्रियाकलापों तथा नगरपालिका के चुनाव के समय एक कुशल राजनेता की भाँति लोगों में जागृति पैदा करते। सन् 1936—37 ई0 में रामनगर के ताजिया का स्थान आपके घर के सामने ही था। अतः ताजिया उठाने के सम्बन्ध में उठे नागाओं व मुस्लिमों के विवाद को सुलझाकर अपनी सौहार्दपूर्ण चातुर्यकला का एक अनूठा नमूना पेश किया। इस खददरधारी मानव ने अपनी अन्तिम साँस सन् 1957 ई0 में ली। जिससे जनपद में आर्यसमाजियों ने जो क्षति महसूस की उसकी पूर्ति फिर कभी न हो सकी।

गाँधी जी के अनुयायी जगन्नाथ प्रसाद चौरसिया (1882–1995)⁴³

सांवला रंग, चेहरे पर भारी भरकम मूँछे, चेहरे की शोभा को द्रवित करती अल्प खुली आँख, सर पर सफेद गाँधीवादी टोपी तथा इकहरी काया में सदा सफेद खद्दर का कुर्ता धारण करने वाले जगन्नाथ प्रसाद जी कालपी शहर की गलियों में सदा भ्रमण करते तथा अपनी पान की दुकान के संचालन के कारण जनता के प्रियजन थे। पुत्तूलाल चौरसिया के घर सन् 1882 में जन्मे जगन्नाथ चौरसिया ने प्राइमरी व मिडिल क्लास की शिक्षा कालपी में ही ग्रहण की। आपके पिता का जाति की भाँति पान का व्यवसाय था जिससे शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात आप ने पान की दुकान पर बैठना प्रारम्भ कर दिया।

आदर्शवादी स्वभाव तथा गाँधी जी विचारधारा के पक्षधर चौरसिया जी दैनिकचर्या दुकान से शुरू होती और शाम ढलने तक आप दिनभर लोगों से घिरे रहते तथा हंसी के हिठकोलों के साथ लोगों को पान खिलाया करते थे। पूरे नगर की समस्त गतिविधियों की जानकारी ने ही आपको स्वतन्त्रता आन्दोलन की ओर उन्मुख कर दिया। आप दिनभर दुकान से सभी गतिविधियों की जानकारी रखते तथा दिन ढलते ही चन्द्रभानु विद्यार्थी, मोतीचन्द्र वर्मा के साथ मिलकर स्वतन्त्रता की गतिविधियों की रणनीति बनाते थे।

आपने अपने देशभक्ति जीवन की शुरुआत असहयोग आन्दोलन के समय से शुरू की फिर यह कारवां ऐसा चला कि चाहे वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन हो, व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा या भारत छोड़ो आन्दोलन हर एक में आपने अपनी विशेष भूमिका निर्वहन की। आपने सन् 1930 ई० के आन्दोलन में छे मास की जेल यात्रा भी की। अपने को जीवन भर पान की दुकान से जोड़े रहने वाले इस असाधारण व्यक्तित्व ने 30 अक्टूबर सन् 1995 ई० को इस दुनिया में अंतिम सांस ली।

हिन्दी भवन के निर्माणकर्ता चन्द्रभानु विद्यार्थी (1908–1996)⁴⁴

रमाबाई नगर के ग्राम कुरवाखुर्द में बृजमोहन लाल अग्निहोत्री के घर सन् 1908 ई० में जन्मे चन्द्रभानु विद्यार्थी जी अपनी शिक्षा-दीक्षा के लिए अपने मामा के घर कालपी में आकर रहने लगे। प्राइमरी एवं मैट्रिक कक्षा पास करने के दौर में इनकी मुलाकात मोती चन्द्र वर्मा से हुई। आपने हिन्दू-उर्दू की शिक्षा ग्रहण कर तुलसीराम भट्ट के प्रेम पुस्तकालय में बैठकर अपनी साहित्य पिपासा बुझाने लगे। यही आपका मिलन मन्नीलाल पाण्डेय, बेनीमाधव तिवारी, गणेश शंकर विद्यार्थी व श्री नारायण चतुर्वेदी जैसे देशभक्त क्रान्तिकारियों से हुआ और आप इन्हीं सज्जनों से प्रेरित हो विद्यार्थी जीवन में ही स्वतंत्रता आन्दोलन में शामिल हो गये। आपके मामा द्वारा क्रान्तिकारियों की संगत का पता चलने पर घर से निकाल दिया गया तो वे मथुरा प्रसाद निगम 'लंकेश' के संरक्षण में रहने लगे।

छात्र जीवन के दौर में ही असहयोग आन्दोलन में आपने सक्रिय भागीदारी देकर स्वतन्त्रता कारियों में अपनी दृढ़ स्थिति बना ली थी तथा आन्दोलन में सक्रियता के कारण नमक सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा, लगान बंद व भारत छोड़ो आन्दोलन आदि में कई बार जेल की यात्राएं की। रचनात्मक कार्यों के प्रति जागृत अभिरुचि तथा समाजसेवा के भाव से मोतीचन्द्र वर्मा के सहयोग से हिन्दी भवन पुस्तकालय, ठक्कर बापा इंटर कालेज, व्यास स्मारक ट्रस्ट, 'लोकसेवा' साप्ताहिक, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान आदि जैसे अनन्य आधार संस्थाओं की स्थापना की। राजनैतिक क्षेत्र में आपने जिला कांग्रेस कमेटी के महामंत्री, मद्य निषेध संघ उ०प्र० के अध्यक्ष आदि पदों को सुशोभित करते हुए दैनिक जागरण के प्रकाशन के प्रेरक स्रोत बने।

कालपी में स्वतन्त्रता आन्दोलकारी गतिविधियों के कर्ताधर्ता मोतीचन्द्र वर्मा⁴⁵

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा कालपी से शुरू हुई तथा उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कालेज में प्रवेश लिया। स्नातक की परीक्षा पास करने के पश्चात कलकत्ता दैनिक विश्वमित्र पत्र के सह सम्पादक के रूप में अपने राजनैतिक गतिविधियाँ प्रारम्भ की। लाल बहादुर शास्त्री एवं पुरुषोत्तम दास टंडन को अपना गुरु स्वीकार करते हुए भारत सेवक समाज की स्थापना की। अपने समाजसेवी स्वभाव तथा दलितों के उद्धार के लिए जमीन दान कर मोती नगर नामक (1960) गाँव बसाया था। कालपी कालेज, कालपी, ठक्कर बापा इंटर कालेज, एम0एस0वी0 इंटर कालेज, सी0पी0एल0 कालेज मूसानगर, आर्यकन्या, संस्कृत विद्यालय और हिन्दी भवन आदि के आप संस्थापक सदस्य थे। फरवरी सन् 1927 ई0 में हिन्दी भवन से साप्ताहिक 'लोक सेवा' पत्र की विधिवत् सम्पादन कार्य प्रारम्भ किया।

असहयोग आन्दोलन में जनपद—जालौन के योगदान का मूल्यांकन

असहयोग आन्दोलन गाँधी जी ने जिस उत्साह एवं दृढ़ निश्चितता के साथ शुरू किया था उसको बीच में ही रोक देना आन्दोलन की असफलता को इंगित करता है। यह विश्व इतिहास में पहली बार हुआ था कि कभी सूर्य न डूबने वाले विस्तृत ब्रिटिश साम्राज्य को एक ऐसे व्यक्ति ने चुनौती दी थी जिसके तन पर धोती तथा अहिंसा एवं नैतिक शक्ति जैसे हथियारों का प्रयोग किया था। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास में यह पहली बार घटित हुआ था कि आन्दोलन के बीज शहरों, नगरों के साथ-साथ गाँव एवं कस्बों तक में भी बो दिये थे।

पूरे भारत देश की भाँति जनपद—जालौन में इसका आगाज गाँवों, कस्बों तक में हुआ। इस दौर में कांग्रेस केवल वाद—विवाद करने वाली संस्था न रहकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए एक संघर्षशील दल बन गया। इस आन्दोलन के दौर में जनपद की गतिविधियों का वो चक्र देखा गया जो शायद स्वतन्त्रता प्राप्ति का पूर्वाभ्यास था। प्रारम्भिक आन्दोलन में अपनी उदारवादी गतिविधियों द्वारा आन्दोलन में प्रतिभागी जालौन अब उग्र रूप में दिखने लगा। जनपद में यह पहला वाक्या था जब कि किसी सम्पादक पर अग्रलेख के प्रकाशन पर राजद्रोह का विधिवत् मुकद्मा चला और तीन वर्ष की सजा भी सुनाई गयी। इस आन्दोलन में जनपद ने अपनी उपस्थिति प्रान्तीय स्तर पर मन्नीलाल पाण्डेय की गिरफ्तारी देकर दर्ज की। जिससे जनपद की गतिविधियाँ अब प्रान्तीय स्तर की अनुरूप संचालित होने लगी। असहयोग आन्दोलन के दौर को यदि जनपद में जनसभाओं तथा जुलूसों को दौरा माना जाय तो कोई अतिशय न होगी, क्योंकि इस समय जो जुलूस तथा बहिष्कार हुए उनसे आन्दोलन का रूप ही बदल दिया। हालांकि इस समय तक जनपद के कुछ कांग्रेसी परिपक्व हो गये थे परन्तु ज्यादातर स्वतन्त्रता सेनानियों के लिए यह सीखने का समय था। इस काल में गाँधी जी के खादी प्रेमीजनों का प्रादुर्भाव भी हुआ जिनके लिए खादी एक संस्कृति न बनकर वरन् जीवन शैली ही बन गया।

असहयोग आन्दोलन का यह दौर केवल जनपद तक ही सीमित न रहकर वरन् सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में व्याप्त हो गया। जिससे आपस में मेल—मिलाप के साथ-साथ आन्दोलन को सक्रिय बनाने के लिए क्षेत्रीय जनसभायें भी आयोजित होने लगी। इस काल में जहाँ एक ओर उग्र स्वभावी बेनीमाधव तिवारी, मन्नीलाल पाण्डेय, चतुर्भुज शर्मा, बद्री प्रसाद पुरवार का उदय हुआ वहीं दूसरी ओर उदारवादी मुन्ना लाल खददरी जगन्नाथ चौरसिया, चन्द्रभानु विद्यार्थी, मोतीचन्द्र वर्मा ने भी आन्दोलन को सक्रिय करने के साथ

आम जनता को रोजपरक बनाने के लिए भी भागीरथी प्रयास शुरू किये। इस काल में एक प्रमुख कार्य जनता को आन्दोलन में शामिल करने के साथ दलितोद्धार तथा अछूतोद्धार के लिए भी प्रयास हुए।

इस प्रकार असहयोग आन्दोलन का दौर जनपद में नई सरगर्मियाँ पैदा करने में जहाँ सम्पूर्ण सफल रहा वहीं समस्त देश की भाँति आन्दोलन को अचानक स्थगित कर देने से इसकी सफलता को धूमिल कर दिया। इस काल में जनपदीय जनता में ऐसा उत्साह पहली बार देखा गया कि वह सरकार की दमनात्मक नीति को भूल जुलूसों, हड़तालों तथा प्रभातफेरियों में बढ़चढ़ कर शामिल हुई, तथा सरकार का खौफ छोड़कर वस्त्रों की होली जलाने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी। इस जनपद में गिरफ्तारी की शुरुआत भी असहयोग आन्दोलन की एक प्रमुख देन थी। इस तरह यदि आन्दोलन में जनपद के योगदान का मूल्यांकन किया जाय तो कहा जा सकता है कि जनपदीय जनता में अंग्रेजी सरकार का विरोध करने का प्रत्यक्ष साहस पैदा हो गया था।

सन्दर्भ सूची

1. खलीफा— हजरत मुहम्मद पैगम्बर के प्रतिनिधि रूप में इस्लामी आध्यात्मिक मुखिया।
2. अग्रवाल रामचन्द्र : राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भारतीय संविधान का विवेचन, संस्करण—IV, एस0चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली, पृष्ठ—132
3. पट्टाभि सीतारमैया : कांग्रेस का इतिहास, संस्करण 1935, पृष्ठ—274
4. The Disorders Inquiry committee, P-22
5. पट्टाभि सीतारमैया : कांग्रेस का इतिहास, संस्करण 1935, पृष्ठ—277
6. पट्टाभि सीतारमैया : कांग्रेस का इतिहास, संस्करण 1935, पृष्ठ—277
7. The Disorders Inquiry committee, P-30
8. पट्टाभि सीतारमैया : कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ—279
9. V. Chirol : India, Old And New, P- 178
10. पट्टाभि सीतारमैया : कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ—281
11. Thompson and Garrett : Rise and Fulfilment of British Rule in India, P-610
12. सिंह बलवन्त : जालौन गजेटियर, पृष्ठ—51
13. अग्रवाल आर0सी0 : राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भारतीय संविधान का विवेचन, संस्करण—IV, पृष्ठ—125
14. 1920 के कलकत्ता अधिवेशन में गांधी जी द्वारा रखे गये प्रस्ताव के कुछ अंश।
15. C.Y. Chintamani : Indian Politics since the mutiny, P-11
16. C. R. Das : Builders of Modern India, P- 40
17. डॉ0 पट्टाभि : कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ—350
18. Nehru J.L. : Autobiography, P-80
19. डॉ0 पट्टाभि : कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ—398
20. सुभाष चन्द्र बोस : इण्डियन स्ट्रगल, पृष्ठ—108
21. राहुल वाङ्मय : जीवन यात्रा, खण्ड एक, जिल्द एक, पृष्ठ—206
22. वर्गेज जेम्स : द क्रोनोलॉजी ऑफ इण्डिया हिस्ट्री, पृष्ठ—404
23. सिंह बलवन्त : जालौन गजेटियर, सन्—1989, पृष्ठ—50
24. सिंह बलवन्त : जालौन गजेटियर, सन्—1989, पृष्ठ—50

25. शर्मा चतुर्भुज : विद्रोही की आत्मकथा, पृष्ठ-31
27. Fighters of freedom, Who's who (Jhansi Division), P.-5
28. शर्मा चतुर्भुज : विद्रोही की आत्मकथा, पृष्ठ-30
29. Fighters of freedom, Who's who (Jhansi Division), P.-12, 20
30. दैनिक जागरण, कानपुर, 8 अगस्त 2010
31. Fighters of freedom, Who's who (Jhansi Division), P.-6
32. डॉ० भवानी दीन : समर गाथा, बसंत प्रकाशन, महोबा, सन्-1995, पृष्ठ-53, 54
33. सिंह बलवंत : जालौन गजेटियर, 1989, पृष्ठ-51
34. सिंह बलवंत : जालौन गजेटियर, 1989, पृष्ठ-51
35. व्यक्तिगत साक्षात्कार : श्री नम्रता तिवारी
36. पुरवार डॉ० राजेन्द्र कुमार : बुन्देलखण्ड की राजनैतिक प्रयोगशाला, जनपद जालौन, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-60
37. सिंह बलवंत : जालौन गजेटियर, पृष्ठ-51
38. सिंह बलवंत : जालौन गजेटियर, पृष्ठ-52
40. सिंह बलवंत : जालौन गजेटियर, पृष्ठ-52
41. सिंह बलवंत : जालौन गजेटियर, पृष्ठ-52
42. राम गोपाल : भारतीय राजनीति, पृष्ठ-296
43. व्यक्तिगत साक्षात्कार : श्री मुन्ना चौरसिया, दिनांक 21.09.2007
44. व्यक्तिगत साक्षात्कार : श्री अखिलेश विद्यार्थी, दिनांक 20.09.2007
45. व्यक्तिगत साक्षात्कार : डॉ० अरुण कुमार मेहरोत्रा, दिनांक 07.10.2007



सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लोकनायक : स्वामी विवेकानन्द

डॉ. हरिनिवास पाण्डेय

प्रवक्ता—हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू कालेज, पासीघाट (अ. प्र.)

पुस्तक का नाम— सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लोकनायक : स्वामी विवेकानन्द

संपादक— डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव

ISBN-978-93-82302-71-1

संस्करण—प्रथम, 2013, मूल्य—610.00

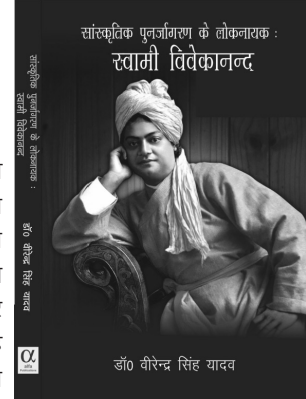
अल्फा पब्लिकेशन्स 4398/5, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002

स्वामी विवेकानन्द का जीवन और पहाड़ जैसा विराट आपका व्यक्तित्व व आपके द्वारा किए गए कार्य संपूर्ण मानवता के लिए प्रेरणा स्रोत हैं। इसीलिए 150 वर्षों के इतिहास में आज भी आपका चिंतन प्रासंगिक है। स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों पर दृष्टिगत हों तो आप अपने समय से बहुत आगे थे। आपका विचार था कि विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों के बीच संवाद हो। आप विभिन्न मतों—पंथों की अनेकरूपता को जायज मानते थे। वर्तमान समय के अनेक विवादों और कलह से ग्रस्त लोगों के लिए स्वामी विवेकानन्द जी के विचार बड़े महत्व के हैं। आपका यह मानना था कि वेदांत दर्शन न तो ब्राह्मण दर्शन है न बौद्ध न ईसाई न मुस्लिम, यह इन सभी धर्मों का सार तत्व है।

आज विश्व को विशेषकर भारत जैसे देश को ऐसे विचारकों, चिंतकों और समाज विज्ञानियों की जरूरत है जो नये युग की चुनौतियों को परिभाषित कर सके। सच तो यह है कि जिस तेजी से पुरानी अवधारणाएं टूटती हैं उस तेजी से नई अवधारणाओं का सृजन नहीं हो पाता। जरूरत इस बात की है कि कहीं से भी अगर कोई एक अन्तर्दृष्टि निकल रही हो या इसके कुछ संकेत भी मिल रहे हों, चाहे वह एक सीमित अर्थ में धर्म और आध्यात्म से ही क्यों न मिल रहे हों तो उन्हें समेटकर एक नये प्रयास की ओर बढ़ने के प्रयास किये जायें। जो भी नये सर्वमान्य विचार उभर रहे हैं उन्हें बिना किसी पूर्वाग्रह के ग्रहण करें। यही बात स्वामी विवेकानन्द ने भी कही थी। इस नई विश्वदृष्टि की तलाश में हमें सभी प्रकार की संकीर्णताओं से ऊपर उठना होगा और ऐसे संकीर्ण राष्ट्रवाद या पुनरुत्थानवाद से भी हमें मुक्त होना होगा जो पूर्व और पश्चिम की या विभेद को अति कट्टर रूप में देखता है। यह संकीर्ण राष्ट्रवादी दृष्टिकोण नैतिक बल या साहस से नहीं उपजा है, यह अपनी हीनता की प्रवृत्ति से जन्मी एक मिथ्या आत्मरक्षात्मक प्रतिक्रिया का फल है। यह उतना ही खतरनाक और हानिकारक है जितना “सर्वदेशीयता” या “कॉस्मोपोलिटैनिज्म” का छिछला सिद्धांत जो अपनी देशीय या जातीय जड़ों को काटकर एक ऐसी साजिश में भागीदार हो जाता है जहाँ विचारों का आदान—प्रदान नहीं, दो तरफा संवाद नहीं, एक दूसरे के लिए सम्मान नहीं, स्वीकार की तत्परता के साथ—साथ अस्वीकार का साहस नहीं और जहाँ सांस्कृतिक सहयोग वास्तव में सक्षम द्वारा अक्षम को अपने त्यागे हुए वस्त्रों से संवारने और अपने उच्छिष्ट तत्वों को पिछड़े लोगों के योग्य मानसिक भोजन के रूप में प्रस्तुत करने का दुस्साहस या कुप्रयास मात्र है।

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा सम्पादित इस पुस्तक को 17 अध्यायों एवं आठ खण्डों में विभाजित है—जो इस प्रकार है—स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व एवम् कृतित्व, सामाजिक—सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लोकनायक—स्वामी विवेकानन्द, स्वामी विवेकानन्द का धर्म—दर्शन, स्वामी विवेकानन्द : तेजस्वी विचारों के प्रखर प्रवक्ता, युवा पीढ़ी एवं शैक्षिक उन्नयन के महानायक—स्वामी विवेकानन्द, स्वामी विवेकानन्द के विचारों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता, मानवतावाद एवं विश्वात्मा के रूप में स्वामी विवेकानन्द, युग एवं राष्ट्रनिर्माण में स्वामी विवेकानन्द के अमृतमय विचारों का योगदान आदि में स्वामी विवेकानन्द के सैद्धान्तिक पक्ष एवं व्यवहारिक पक्षों पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक में देश भर के विद्वान प्राध्यापकों, बुद्धिजीवियों, साहित्य मनीषियों की लेखनी का प्रतिफल है जिन्होंने युगपुरुष स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व एवम् कृतित्व जैसे अति महत्वपूर्ण युगपुरुष पर तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से चिन्तन—मनन कर अपने विचार रखे हैं। कुल मिलाकर लेखनी के धनी डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा सम्पादित इस पुस्तक में स्वामी विवेकानन्द के विचारों को बहुत व्यापकता के साथ हमारे समक्ष रखती है जो मठों की परम्परा को तोड़कर एक नई समझ तथा नई बहस को जन्म देती है यही इस पुस्तक की सफलता और उपलब्धि भी कही जा सकती है।



भारतीय शिक्षा : मुद्दे, विकल्प और नीतियाँ

डॉ० सियाराम

वरिष्ठ प्रवक्ता—हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया (उ०प्र०)

शिक्षा के विकासक्रम को क्रमबद्ध ढंग से रेखंकित करते हुए डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि भारत में शिक्षा के विस्तार का मुख्य उद्देश्य, देश में तकनीकी प्रगति के अतिरिक्त एक ऐसे समाज की स्थापना भी है जिसके द्वारा लोगों को स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय तथा सभी को समान अवसर प्राप्त हो सकें। देश में नागरिकता के बन्धन को मजबूत करना, देशभर की श्रमशक्ति की क्षमता को बढ़ाना एवं सभी क्षेत्रों में प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का समुचित प्रयोग भी शिक्षा—विस्तार के उद्देश्यों में शामिल किया गया है। शिक्षा का उद्देश्य केवल अक्षर ज्ञान नहीं वरन् व्यक्ति विशेष में अन्तर्निहित विशिष्ट गुणों को उजागर करते हुए मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना है एवं मनुष्य में विभिन्न गुणों सभ्यता, नैतिकता, आत्मविश्वास स्वाभिमान, सद्व्यवहार, विनम्रता, मौलिक चिन्तन, सृजनात्मक क्षमता, नेतृत्व क्षमता, त्याग, सहनशीलता आदि का विकास करना है। अर्थात् शिक्षा का आदर्श जब तक व्यवहार बनकर इस स्तर तक न उतर आये जो मानव—हृदय को स्पन्दित कर बुद्धि को प्रकाशित कर दे, तब तक वह कल्याण का माध्यम नहीं बन सकती है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए पुस्तक में यह दर्शाने की कोशिश की गई है कि आज की शिक्षा वह है जो इंजीनियर बनाकर अमेरिका पहुँचा दे, किसी मल्टीनेशनल कंपनी में कोल्हू के बैल की भाँति जुतने योग्य बना दे। अर्थात् आज की शिक्षा का संस्कारों से कोई अधिक वास्ता नहीं रहा है। आज विद्यार्थी के भीतर का सर्वोत्तम उद्घाटित कर उसे विकसित करना शिक्षा का उद्देश्य नहीं। आज की शिक्षा बैलगाड़ी में रास्ता चलते थके मांदे राहगीर को बिठा लेने का साहचर्य न सिखाकर अपने तेज वाहन से उसके चेहरे को धूल—धूसरित कर देना सिखाती है। पुस्तक प्रश्न उठती है कि वर्तमान की शिक्षा व्यवस्था कैसी होनी चाहिए ? इसका प्रत्युत्तर प्रस्तुत पुस्तक सुझाती है।

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव की इस पुस्तक में 27 विद्वानों के लेख एवं दस खण्डों में विभाजित किया गया है। प्राचीन भारत में शिक्षा की अवधारणा एवम् बदलता स्वरूप, भारत में उच्च शिक्षा : मुद्दे, विकल्प एवं नीतियाँ, भारतीय संविधान में शिक्षा अधिकार एवं नीति अधिनियम : एक मूल्यांकन, 21वीं सदी में शिक्षा के बदलते आयाम, भारत में महिला शिक्षा के बदलते आयाम, साहित्य में शिक्षा के विविध सरोकार, बदलते परिदृश्य में शिक्षा की जीवन मूल्यों में उपादेयता, शिक्षा के विकास में अग्रज पीढ़ी का योगदान, भारत में आंचलिक शिक्षा की स्थिति एवं संभावनाएँ, भारत में शिक्षा विमर्श के अहम सवाल।

बदलते समय एवं मांग के साथ शिक्षा के स्वरूप को बदलने की आवश्यकता है। तभी सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक व्यवस्था सुदृढ़ होगी व परिणाम बेहतर होंगे व हम शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में अन्य देशों से अग्रणी स्थिति में खड़े हो पायेंगे जो प्रत्येक भारतवासी का स्वप्न है। इस स्वप्न को साकार करने के लिए हमें जरूरत खुद के सुधार की है तभी हम दूसरे के सुधार की उम्मीद कर सकते हैं। फिर भी हमारा ऐसा विचार है कि प्रस्तुत पुस्तक न केवल विषय विशेषज्ञों, शोधार्थियों, प्राध्यापकों एवं सामाजिक चिंतकों, बल्कि आम—जन के लिए भी उपयोगी एवं प्रेरणास्पद सिद्ध होगी।

पुस्तक — भारतीय शिक्षा : मुद्दे, विकल्प और नीतियाँ

लेखक — डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव

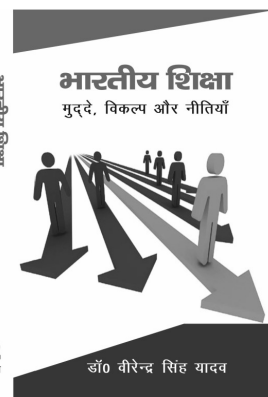
प्रकाशक — ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4 बी., जी. 4, जे.

एम. डी. हाउस, मुरारी लाल स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली

मूल्य — 995.00

संस्करण — 2013

ISBN : 978-81-8455-448-9

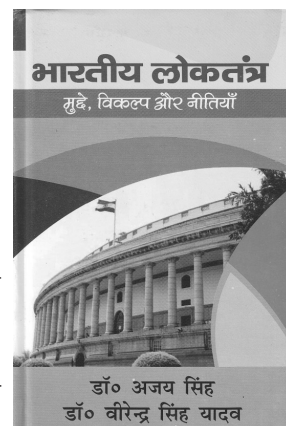


भारतीय लोकतन्त्र : मुद्दे, विकल्प और नीतियाँ

डॉ० कमलेश कुमार सिंह

विभागाध्यक्ष-राजनीति विज्ञान विभाग, के. ए. (पी.जी.) कालेज, कासगंज

पुस्तक	:	भारतीय लोकतन्त्र : मुद्दे, विकल्प और नीतियाँ
सम्पादक	:	डॉ. अजय सिंह एवं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	पैसिफिक पब्लिकेशन, 4231/1 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली
मूल्य	:	750.00,
संस्करण	:	2012
पृष्ठ	:	14+363-377
ISBN	:	81-7487-650-2



संपादक द्वय डॉ. अजय सिंह एवं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव की अगली कड़ी के रूप में प्रस्तुत पुस्तक में 21 विद्वान लेखकों को सम्मिलित कर इसे पॉच खण्डों में बाँटा गया है। लोकतंत्र की अवधारणा एवं विकास प्रक्रिया, लोकतन्त्र एवं राजनीति के बदलते सरोकार, भारतीय लोकतंत्र एवं व्यवस्था चुनाव : एक विश्लेषण, लोकतंत्र के विकास में न्यायपालिका की भूमिका, लोकतंत्र : चिन्तन-चिन्ता के विविध सन्दर्भ आदि।

शासन का प्रजातांत्रिक स्वरूप समानता, स्वतंत्रता व स्वनिर्णय को सम्भव बनाता है लोकतंत्र राजनीतिक सत्ता वितरण का वह स्वरूप है जो सामाजिक व आर्थिक भेदभाव से ऊपर उठकर समाज में प्रत्येक सदस्य को शासन का सहभागी बनाता है लोकतंत्र सबके लिये न केवल अपना शासक चुनना सम्भव बनाता है, वरन् सभी के लिये शासक बनने के अवसर भी प्रदान करता है। भारत के संविधानकारों में लोकतंत्र की इस उत्कृष्ट विशेषता को पहचानते हुये लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को देश में लागू किया। किसी भी देशकाल की बात करें इतना तो स्पष्ट है कि लोकतंत्र की सम्पूर्ण प्रक्रिया ही बुद्धिपूर्वक विचार-विमर्श पर निर्भर है। लोकतंत्रवाद एक आशावादी सिद्धान्त माना जाता है। यह सदाचार पर भरोसा करता है और इसके विकास के लिये उचित वातावरण/पर्यावरण प्रस्तुत करना चाहता है। समता और स्वतंत्रता लोकतंत्र के मूल आधार हैं। जटिलताओं, झंझों, बैनरों, नारों और विविध पहचानों के पीछे लोकतंत्र के इस व्यापक शासन-तंत्र को चलाती है। इस प्रभु वर्ग में शामिल पूंजीपतियों, सामंतों, द्वित जातियों, पिछड़ी, अल्पसंख्यकों, दलितों और आदिवासियों की शिक्षा, रहन-सहन, इच्छाएं और सपने एक जैसे ही हैं। यह भारतीय मध्य वर्ग अपने को दुनियाँ के सबसे बड़े तीसरे बाजार के रूप में पेश करता है। यही भूमण्डलीकरण, बाजारीकरण और उपभोक्तावाद का आधार है। इन तत्वों के प्रवेश की वजह से भारतीय लोकतंत्र में आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है जिसके फलस्वरूप राजनीति में विवेकहीनता, स्वार्थ लोलुपता, भ्रष्टाचार, अपराधीकरण और माफियाकरण की प्रवृत्तियाँ मुखर हुई हैं।

आज भारत में धर्म एवं जाति के नाम पर सरकारों का निर्माण हो रहा है। देश की बेरोजगारी, गरीबी, प्रदूषण, सामाजिक असमानता, दहेज प्रथा, उत्तम स्वास्थ्य, बाल विवाह, बाल श्रम, निरक्षरता की समाप्ति, भारतीय खेलों का गिरता स्तर आदि महत्वपूर्ण मुद्दे भारतीय राजनीतिक दलों की कार्य प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखते हैं। भारतीय लोकतंत्र में आम आदमी की साझेदारी कहीं न कहीं बाधित हो रही है क्योंकि वह भयमुक्त नहीं है। भयमुक्त समाज में सामान्य आदमी किसी भय, लालच, आतंक, प्रलोभन से दूर रहकर उसकी वैचारिक स्वतंत्रता और उसके अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता उसे स्वतः ही राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ देती है। जो गरीब है, जो पिछड़ा है। वह प्रभावशाली लोगों की विरासत से आज भी मुक्त नहीं हो पाया है। इसलिये उसकी अभिव्यक्ति राजनीति की मुख्यधारा को नहीं स्वीकार कर सकी, जिससे लोकतांत्रिक संस्कृति की जड़ें कमजोर होती जा रही हैं।

हमें उम्मीद है कि लोकतंत्र में आस्था रखने वाले शिक्षित युवा ही नहीं बल्कि शिक्षा जगत से सम्बद्ध, विद्वतजनों व समाज के प्रबुद्ध नागरिकों को लोकतंत्र जैसे ज्वलंत विषय पर इन विद्वानों के बहुमूल्य एवं सारगर्भित विचार पसंद आएंगे।



विकासशील भारत : परिदृश्य और विकल्प के नवीन सरोकार

डॉ. हेमा देवरानी

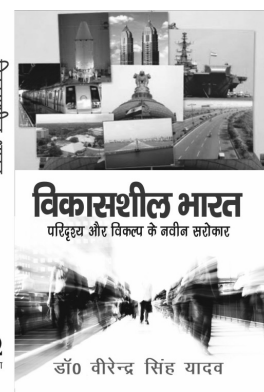
बाबू शोभाराम राज. कला महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

यह पुस्तक 26 विद्वानों के लेखों के साथ एवं छः खण्डों में विभाजित है। धर्म, अध्यात्म एवं योग में भारत के बढ़ते क्षितिज, इतिहास के झरोखों में भारत, महिला सशक्तिकरण का स्याह यथार्थ, भारत में मानवाधिकार के विविध सन्दर्भ, समसामयिक परिवेश में साहित्य के बदलते सरोकार, विकासशील भारत : परिदृश्य और विकल्प के नवीन सरोकार आज मानवता खतरे में है। आज समग्र विश्व में भोगलिप्सा में व्यस्त मानव एक दूसरे के रक्त का प्यासा हो गया है। व्यक्ति से व्यक्ति लड़ रहा है। एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से आपस में लड़ रहे हैं। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से लड़ रहा है। आज असत्य, हिंसा, स्वार्थ, भोग, अनाचार, युद्ध, रक्तपात और विध्वंस के अखण्ड ताण्डव से मनुष्यता काँप उठी है। आज का मानव दूसरों को तो दुःख तो दे ही रहा है इसके साथ ही स्वयं भी दुःखी हो रहा है। आज भी आदिम काल का पाशविक सिद्धान्त ही लागू हो रहा है—‘सबल दुर्बल को मिटा देता है’। आज पशु से उतना भय नहीं लगता जितना मानव से। ऐसे वातावरण में किसी प्रकार का विकास सम्भव नहीं है। आज के इस तनावपूर्ण एवं भययुक्त वातावरण से मुक्ति हेतु इन्सानियत या मानवता की आवश्यकता है। यदि हमें मानवता एवं चरित्रगत मूल्य शिक्षा ग्रहण करना है तो वेदों में ऋषियों द्वारा बताए निस्वार्थ मशविरों की शरण में जाना होगा, क्योंकि वेद सर्वज्ञानमय हैं। हमारी सभ्यता और संस्कृति को उच्च कोटि तक पहुँचाने वाले ग्रन्थ रत्न हैं। यदि सभी प्राणी इन वेद रूपी अहम सूत्र को अपने जीवन में अपना लें तो सभी का जीवन सुखमय हो जायेगा। जीवन को दानवता, पशुता, असुरभाव से हटाकर स्नेह आत्मीयता, सामंजस्य, सहानुभूति सहयोग एवं सेवाभाव जाग्रत कर सच्चा मानव बनाने वाले गुणों का नाम ही मानवता है। इन सब को अपनाकर ही किसी देश का वास्तविक विकास हो सकता है।

वर्तमान समय में भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक समन्वय का जो चित्र है वह सुखद और दुःखद दोनों की मिली-जुली स्थितियों का है, एक तरफ तो भारत अपने विकास के पथ पर है दूसरी तरफ दीपक तले अँधेरा नजर आ रहा है। पवित्र मंदिरों, मठों, बौद्ध विहारों में धन का बहुत अधिक केन्द्रीयकरण हो रहा है। धर्मगुरु, साध्वियाँ और छुट भैया नेता जी लोग आंतरिक तौर पर दहशत एवं आतंक फैलाने में लगे हुए हैं। देश के विकास के लिए वर्ल्ड बैंक से हम कर्जा ले रहे हैं और हमारे ही साथी उसको विकास कार्यों में उपयोग नहीं होने दे रहे हैं। लगातार हो रही किसानों की आत्महत्याएँ एवं उनमें बढ़ रहा सामाजिक हीनता का बोध किसे ध्यान आकृष्ट कर रहा है। फिर सरकार की क्या कहे— घोटालों, महाघोटालों और अपराधों का दौर शुरू है। कब कौन किसे बेच दे यह नहीं कहा जा सकता। इन सब के बीच आशा की किरण के रूप में वर्तमान सदी में सामाजिक सांस्कृतिक समन्वय की भावना का विकास व्यापक स्तर पर होना चाहिए। और यह सदी अभाव हीन, दीन-हीन लोगों के उठने की सदी होगी। ऐसी कल्पना एवं आशा मैं करता हूँ। क्योंकि जब दुःखी, सुखी हों और भूखे को रोटी मिले तभी सही सामाजिक-सांस्कृतिक समन्वय की अवधारणा फलीभूत होगी।

प्रस्तुत पुस्तक न केवल विषय विशेषज्ञों, शोधार्थियों, प्राध्यापकों एवं सामाजिक चिंतकों, बल्कि आम-जन के लिए भी उपयोगी एवं प्रेरणास्पद सिद्ध होगी। इस आशा विश्वास के साथ कि प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक विकासशील भारत : परिदृश्य और विकल्प के नवीन सरोकार जैसे समसामयिक विषय पर आम-जन के मध्य जिज्ञासा एवं उत्सुकता पैदा करेगी।

पुस्तक	—	विकासशील भारत : परिदृश्य और विकल्प के नवीन सरोकार
लेखक	—	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	—	ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4 बी., जी. 4, जे. एम. डी. हाउस, मुरारी लाल स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली
मूल्य	—	995.00
संस्करण	—	2013
ISBN	:	978-81-8455-449-6



शताब्दी की दहलीज पर भारतीय सिनेमा : संघर्ष और मुक्ति के नये क्षितिज

रामबाबू गौतम

220, व्हीलर स्ट्रीट क्लीफसाइट पार्क, O;W जर्सी-07010

सिनेमा समाज का दर्पण होता है। मानव-मन को सुख, दुख, क्रोध, करुणा, भय, विभ्रम, विलास आदि की मार्मिक अनुभूति होती है तो सहसा ही वह इन अनुभूतियों से प्रेरित होकर मनोभावों को प्रकट करता है। मूक अभिनय से शुरू हुआ भारतीय सिनेमा अब सेटेलाइट से देश भर के सभी डिजिटल सिनेमाघरों में पहुँच गया है। आज हीरो ही नहीं हीरोइन भी नंबर वन है। करीना कपूर, कैटरिना कैफ, विद्याबालन, प्रियंका चोपड़ा, कंगना रानावत, रानी मुखर्जी की फिल्में जबरदस्त हिट होकर एक-एक फिल्म करोड़ों का व्यवसाय कर रही हैं। जहाँ सन् 2011 ई0 में बाडीगार्ड, रावन, जिंदगी न मिलेगी दोबारा, मेरे ब्रदर की दुल्हन, नो वन किल्ड जेसिका, सात खून माफ, डान-2, आदि व्यावसायिक सफल फिल्में आईं। वहीं सन् 2012 ई0 की प्रमुख फिल्में जो आ चुकी हैं या आने को हैं कृश-2, सन आफ सरदार, हीरोइन, टाइटेनिक 3डी, अग्निपथ, धूम-3, एक था टाइगर, एक मैं और एक तू, फरारी की सवारी, बोल बच्चन। निश्चित ही ये फिल्में सन् 2012 ई0 के सिनेमाघरों में एक नयी मिसाल कायम कर रही हैं।

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की यह पुस्तक 19 विद्वानों के लेखों के साथ पाँच खण्डों में विभाजित है। जो इस प्रकार हैं। हिन्दी सिनेमा की ऐतिहासिक विकास यात्रा : एक मूल्यांकन, निर्माता, निर्देशकों से फिल्म समीक्षकों से बातचीत के अंश एवं फिल्म समीक्षाएं, सिनेमा का यथार्थवादी स्वरूप : सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक सरोकार का व्यवसायिक त्रिकोण, फिल्म एवं मीडिया : सम्बन्धों के बदलते सन्दर्भ, हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा के विविध सन्दर्भ प्रश्न यह उठता है कि क्या सिनेमा का दूषित प्रभाव ही समाज अथवा संस्कृति पर पड़ता है? जिस प्रकार यह संसार स्वयं में न खराब है, न अच्छा है बल्कि असली बात तो यह है कि हम उसे किस प्रकार से देखते हैं। हमारी विचार पद्धति और जीवन मूल्यों के अनुरूप हमारी जीवन शैली भिन्न-भिन्न प्रकार की हो जाती है। ठीक यही बात सिनेमा पर भी लागू होती है क्योंकि हर सिकके के दो पहलू होते हैं— अच्छा और बुरा, अब हम उसमें से अच्छाई को आत्मसात करते हैं या मात्र बुराई को ही ग्रहण करते हैं यह हमारे विवेक पर ही निर्भर करता है। उदाहरण के तौर पर फिल्म 'मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस.' ने जहाँ गाँधीगीरी दिखाई, वहीं आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों व टेक्नोलॉजी के माध्यम से उसका दुरुपयोग कर छात्रों को परीक्षा में नकल करने का एक आसान रास्ता दिखाकर गुमराह भी किया। अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम उसके किस पक्ष को कितना और कैसे आत्मसात् करते हैं।

आज के सन्दर्भ में यह अनिवार्य हो गया है कि फिल्म निर्माता अपने सामाजिक दायित्वों का ईमानदारी से निर्वाहन करें क्योंकि फिल्म समाज का आईना है। फिल्म निर्माण एक कलात्मक अभिव्यक्ति है जो दर्शकों को प्रभावित करने के साथ उनके मनो मस्तिष्क और भावनाओं पर कब्जा जमाती है। इस प्रकार यह महत्वपूर्ण है कि एक निर्माता का समाज के प्रति महत्वपूर्ण दायित्व बनता है। ऐसे में यह अनिवार्य हो जाता है कि फिल्मों में मनोरंजन के साथ यथार्थ का भी ऐसा चित्रण हो कि फिल्में सामाजिक सरोकार से वास्ता रखते हुये बने। आज के समय में जहाँ संस्कार और सभ्यता को लोग गुजरे जमाने की चीज मान रहे हैं, वहाँ निर्माता को एक आदर्श फिल्म बनाने में भय महसूस होता है कि उनका व्यवसाय डॉवाडोल न हो जाये।

पुस्तक : शताब्दी की दहलीज पर भारतीय सिनेमा संघर्ष और मुक्ति के नये क्षितिज

लेखक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

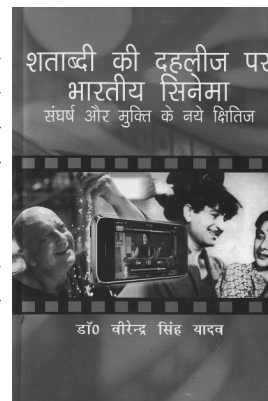
प्रकाशक : ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4 बी., जी. 4, जे.

एम. डी. हाउस, मुरारी लाल स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली

मूल्य : 695.00

पेज : 30 + 242 = 272

ISBN : 978-81-8455-397-0



लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति : परम्परा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य

डॉ० विजय कुमार वर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर—समाजशास्त्र विभाग उ०प्र० विकलांग उद्धार डॉ० शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

पुस्तक : लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति : परम्परा की
प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य
संपादक : डॉ० वीरेन्द्रसिंह यादव
पेज : 16+195=211
ISBN : 978-81-8455-398-7
संस्करण : प्रथम, 2012
मूल्य : 595.00

ओमेगा पब्लिकेशन्स, 4378/4B, G4 ए.जे.एम.डी. हाउस,

मुरारी लाल स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

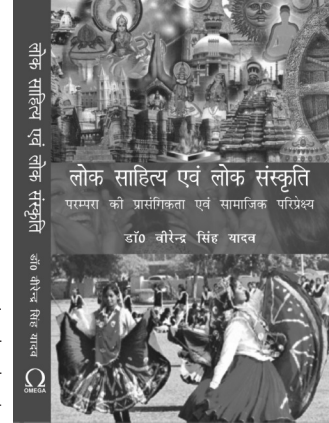
लोक साहित्य मानव विकास की एक लम्बी कहानी है। अधिकतर भारतीय विद्वानों की मान्यता है कि 'लोक' ऐसा जनसमूह है जो अभिजात्य संस्कार, सभ्यता और शिक्षा से रहित है जो अपने परंपरा प्रथित रीति रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित एवं अल्पसभ्य कहा जाता है, 'लोक' का प्रतिनिधित्व करता है तथा जो सुसंस्कृत लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और सहज जीवन जीने का अभ्यासी है। वह जनसमुदाय आदि प्रकृतियों से प्रभावित होता है तथा परंपरा के प्रवाह में ही इसका जीवन चलता है। 'लोक' नगर तथा ग्राम दोनों ही प्रकार की संस्कृतियों में विद्यमान है। साथ ही यह जनशक्ति का पर्याय भी है तथा समाज का गतिशील अंग भी। इसके कल्याण में समस्त मानव समाज का कल्याण निहित है।

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव की यह पुस्तक 16 अध्यायों एवं पाँच खण्डों में निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित है। लोक साहित्य एवं संस्कृति की अवधारणा एवं विकास प्रक्रिया, लोक साहित्य एवं संस्कृति के बदलते अभिप्राय, लोककला एवं लोक साहित्य के अन्तः सम्बन्धों के विविध विमर्श, लोक साहित्य एवं संस्कृति में लोकगीतों का महात्म, लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति : चिन्तन—चिन्ता के विविध परिदृश्य।

लोक साहित्य बहुधा अलिखित ही रहता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहता है। लोक का प्राणी जो कुछ कहता—सुनता है। उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह में घुला—मिलाकर ही कहता है। लोक साहित्य में लोक संस्कृति का वास्तविक प्रतिबिम्ब भी होता है। साधारण जनता का हँसना, गाना, खेलना, रोना जिन शब्दों में अभिव्यक्त हो सकता है वह सब कुछ लोक—साहित्य की परिधि में आ जाता है।

आज जबकि ई. वर्ड में देश—काल, संस्कृति—समाज, परिवार का विखण्डन आधुनिकता का पर्याय बन गया है। कभी परिवार का अर्थ कुटुम्ब हुआ करता था, परन्तु आज वह पति—पत्नी और बच्चों तक सीमित हो गया है। ऐसी स्थिति में अपराध, हत्या, आत्महत्या, प्रमाद, उन्माद जैसी मनोवैज्ञानिक जटिलताएँ मनुष्य को घेर रही हैं। परिवार टूट चुके हैं, यहाँ तक कि दाम्पत्य—सम्बन्ध तक नगरीकरण, आर्थिक उदारीकरण कम्प्यूरीकरण, वैश्वीकरण की बलि चढ़ चुके हैं। संवादहीनता, घुटन, आक्रोश, अविश्वास आज की मूल प्रवृत्तियाँ बन गयी हैं। एक स्वस्थ पारिवारिक परिवेश का वातावरण आज अविश्वसनीय हो गया है जो कल्पना एवं आख्यान का विषय बनकर रह गया है। पारिवारिक जीवन में भोग, छीना—झपटी, एक दूसरे को अवर कोटि का सिद्ध करने की होड़ लगी है। भाई—भाई का दुश्मन है, पति—पत्नी के बीच अधिकारों को लेकर टकराव है, माता—पिता अब कबाड़ का सामान हो गये हैं। ऐसे नवीन जीवन मूल्यों में भारतीय परम्पराओं को यदि जीवित रखना है, तो इसे मध्यकालीन एवं प्राचीनकालीन, भारतीय सांस्कृतिक—आख्यानों, कथाओं, गाथाओं के सांस्कृतिक संदेशों की संजीवनी देना अनिवार्य हो गया है। लोक—साहित्य एवं लोक संस्कृति इनका सर्वश्रेष्ठ स्रोत है। कुल मिलाकर लोक संस्कृति ही भारतीय संस्कृति की जड़ है। जिसके रस से भारतीय संस्कृति का पौधा पल्लवित, पुष्पित और सुफलित है। अतः वर्तमान समय में लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति की परम्परा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य को बनाए रखने तथा इसके संरक्षण एवं संवर्धन के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर प्रयास अवश्य होने चाहिए।

हमें उम्मीद है कि शिक्षित युवा ही नहीं बल्कि लोक साहित्य से सम्बद्ध, विद्वतजनों व समाज के प्रबुद्ध नागरिकों को लोक साहित्य जैसे परम्परागत विषय पर इन विद्वानों के बहुमूल्य एवं सारगर्भित विचार पसंद आएँगे।



आज का भारत : वैचारिकी एवं समकालीन विमर्श

डॉ. मनजीत सिंह

जवाहर नवोदय विद्यालय मल्हार बिलासपुर (छत्तीसगढ़) पिन-495551

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव की इस पुस्तक को 64 विद्वानों के लेख एवं पन्द्रह खण्डों में विभाजित किया गया है। धर्म, संस्कृति, अध्यात्म, नैतिकता एवं योग में भारत के बदलते परिप्रेक्ष्य, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य में भारत के स्वर्णिम क्षितिज, अछूते सन्दर्भ, अप्रवासी सृजन, अर्थव्यवस्था की दृष्टि से व्यापार पर्यटन एवं उद्योग में भारत की भूमिका, सुलगते सवाल एवं ज्वलंत प्रश्न, राज एवं राजनीति के बदलते अभिप्राय, नन्हें से जीवन की करुण कहानी, शिक्षा के बदलते परिदृश्य एवं गहराती चुनौतियाँ, महिला सशक्तिकरण का स्याह यथार्थ, भारत के निर्माण में अग्रज एवं अनुज पीढ़ी का योगदान, इतिहास के झरोखे, शताब्दी सिनेमा के विविध सरोकारों का सच, समय से हस्तक्षेप करता साहित्य, समकालीन साहित्य में आधी दुनिया की दस्तक।

पुस्तक की मान्यता है कि परिवर्तन के इस परिप्रेक्ष्य को यदि वर्तमान समय में की जाए तो देश में इतनी तेजी से बदल रहे घटनाचक्र को देखते हुए उनके घटने के निहितार्थ एवं उसके घटित होने की पृष्ठभूमि के सोचने का अवसर ही नहीं मिल पाता है लेकिन फिर भी इन सब परिस्थितियों के बीच इतना तो कहा ही जा सकता है कि सब कुछ सामान्य तो नहीं ही घटित हो रहा है। महंगाई घटने के बजाए बढ़ती जा रही है। दुनिया के बाजार में रुपये का मूल्य गिरता जा रहा है। प्रधानमंत्री का कहना है कि बाजार आधारित अर्थव्यवस्था के कारण ऐसा हो रहा है। अर्थव्यवस्था की गम्भीर जानकारी रखने वाले प्रधानमंत्री यदि कहें तो इससे दुःखद देश के लिए और क्या हो सकता है ? इन परिस्थितियों में अनेक आन्दोलन होने के बावजूद जनता सोच नहीं पा रही है कि आखिर किसकी ओर देखा जाए ? हर कोई कथनी और करनी में फर्क को मिटाता जा रहा है। आजादी के लिए शहीद हुए नेताओं में मतभेद के बावजूद समन्वय इसलिए था, क्योंकि उनकी कथनी और करनी में एकरूपता थी, पारदर्शी जीवन था। किसी व्यक्ति, संगठन अथवा समाज में इस आचरण की पैठ ही उसका उद्धार कर सकती है मुखौटा नहीं क्योंकि अनुशासन नेतृत्व के प्रति आदर, पद लोलुपता न होने जैसे गुणों के कारण लोग अपनी पहचान कायम कर पाते हैं।

पुस्तक में केवल निराशा ही नहीं है बल्कि आशा की किरण के रूप में इसे सुखद ही कहा जाएगा कि कुछ साल पहले कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि कैबिनेट मंत्री, ताकतवर राजनेता, भगवान कहे जाने वाले न्यायाधीश, डॉक्टर, मुख्यमंत्री के बेटे, वरिष्ठ अधिकारी और कम्पनी के सी.ओ. भ्रष्टाचार के आरोप में जेल की हवा खा रहे होंगे। रही बात इससे (भ्रष्टाचार से) निपटने की तो यह सर्वविदित है कि सी0 बी0 आई0 बेहद प्रभावशाली लोगों की गिरफ्तारी से भी नहीं डर रही है। शायद इसका प्रमुख कारण आत्मविश्वास से भरपूर मध्यम वर्ग की प्रतिक्रिया, सुप्रीमकोर्ट व कैंग की सक्रियता और इनका समर्थन करने वाले मीडिया के कारण आया है, न मीडिया का अधिकतर भाग बाबा रामदेव एवं अन्ना हजारे के आन्दोलन को उद्घोष को जाता है। इसके साथ ही भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए अनेक कदम उठाने की आवश्यकता में से एक प्रशासनिक, न्यायपालिका और पुलिस सुधारों की आवश्यकता है। साथ ही भ्रष्टाचार का जबाब है आर्थिक सुधार। क्योंकि भारत में अनेक सुधार अधूरे हैं, विशेष रूप से यहाँ अधिक भ्रष्टाचार पाया जाता है जैसे खनन, रियल एस्टेट, शिक्षा, डॉचागत सुविधाओं का निर्माण और सरकारी खरीद।

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव ने सम्पादकीय में कुछ गम्भीर प्रश्नों को उठाया है— बुद्धिजीवियों एवं माननीयों जी से यहाँ एक प्रश्न पूछा जा सकता है कि हर छोटी-बड़ी आर्थिक समस्या के लिए यूरोपीय संकट को जिम्मेदार आखिर क्यों ठहराया जाता है और इसका हमारे कर्णधार नेताओं के पास कोई सटीक उत्तर भी नहीं है क्योंकि हमारे माननीय बताने की स्थिति में नहीं हैं कि अन्य एशियाई देशों की तुलना में भारतीय मुद्रा का इतना अवमूल्यन क्यों हो रहा है ? क्या कारण है कि रिजर्व बैंक भी रुपये को गिरने से रोक नहीं पा रहा है ? कहीं इसके पीछे कोई राजनीतिक चाल तो नहीं ? ये ही यक्ष सवाल हैं जिनके जबाब सामने आने ही चाहिए ?

अनेक सुझावों एवं समाधान करती यह पुस्तक जीवन जीने की कला को भी दर्शाती है। साझा सूचियाँ, समान सोच, स्वभाव, संवेदना, विनोदप्रियता, क्या ये सब मायने नहीं रखते ? हम तो यही कहेंगे कि अपने शेष जीवन के वित्तीय, भावनात्मक और मानसिक तीनों पक्षों पर खूब सोच-विचारकर व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को आगे बढ़ना चाहिए। महाभारत में लिखा है कि मुहूर्ते ज्वलितं श्रेयः न द्यूमायित चिरम, अर्थात् जिंदगी भर धुँआ देते रहने से एक बार चमककर बुझ जाना बेहतर है। वस्तुतः यही जीवन जीने का सही सलीका है। इसी पर बल देते हुए जैन धर्म के प्रवर्तक भगवान महावीर ने कहा था, अप्पदीपो भव अर्थात् आत्म दीप बनें।

वर्तमान भारत की विभिन्न समस्याओं से रूबरू करवाती डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की इस प्रस्तुत पुस्तक में न केवल विशय विशेषज्ञों, शोधार्थियों, प्राध्यापकों एवं सामाजिक चिंतकों, बल्कि आम-जन के लिए भी उपयोगी एवं प्रेरणास्पद सिद्ध होगी।

पुस्तक : आज का भारत : वैचारिकी एवं समकालीन विमर्श

लेखक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

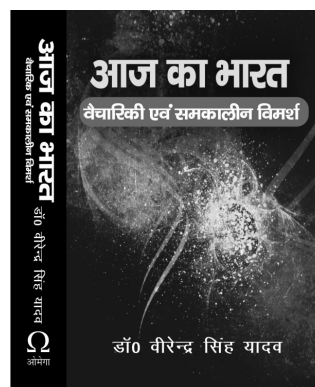
प्रकाशक : ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4 बी., जी. 4, जे.

एम. डी. हाउस, मुरारी लाल स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली

मूल्य : 995.00

संस्करण : 2013

ISBN : 978-81-8455-446-5



महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय, समाज और संवेदना

डॉ० कमलेश सिंह

6ए, कटरा रोड, इलाहाबाद-211002

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा सम्पादित इस पुस्तक में स्त्री-लेखन का एक और महत्वपूर्ण उद्देश्य स्त्री की विभिन्न भूमिकाओं का मानव-समाज को परिचय देना है, जीवन के उन अँधेरे कोनों पर प्रकाश डालना है जिसकी पीड़ा स्त्रियों ने सदियों से झेली है। जरूरत है कि स्त्री अपनी मानवीय गरिमा और अधिकार को समझकर संरचनात्मक, सांस्कृतिक तथा मानवीय दृष्टिकोण के मूल तत्वों का विश्लेषण करे, अपने लेखन में उन तमाम स्त्रियों को शक्ति दे, जो संघर्षरत हैं तथा जो स्त्री-समाज के विकास में सक्रिय हैं, वे जो समाज की नजरों से दूर, कहीं किसी कोने में सुबक रही हैं, जिनके पास मानवीय गरिमा के नाम पर केवल अपना शरीर है, उन्हें जीने की प्रेरणा दे और साहित्य के विकास के नए दृष्टिकोण तथा वैकल्पिक अवधारणाओं को विकसित करे।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की महिला उपन्यासकारों ने अपने परिवेश से प्रभावित होकर अपनी औपन्यासिक कृतियों में उन विचारों को प्रतिस्थापित करना शुरू किया है जो उन्नयन की ओर ले जा सकते हैं। उनकी रचनाओं में वे विचार ही प्रबलता के साथ प्रविष्ट होते जा रहे हैं जो विकास के रास्ते पर ले चलने वाले होते हैं। अर्थाभाव के कारण समाज में महिलाओं को वेश्या, कॉलगर्ल, चरित्रहीन, रखैल, भ्रष्टाचारी आदि मजबूरन बनना पड़ता है। इसलिए अधिकतर महिला कथाकारों ने अपने उपन्यास लेखन में आर्थिक समस्या के समाधान हेतु नारी की आत्मनिर्भरता पर विशेष बल दिया है। स्वावलंबन और आर्थिक निर्भरता नारी को स्वतंत्र अस्मिता और प्यार, सम्मान आदि देकर नारी विकास हेतु नई दिशा देने में एक सक्षम पक्ष है। प्रस्तुत इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में समय, संवेदना एवं समाज की प्रस्तुति अपने युग की माँग के मुताबिक ही माननी होगी जिसकी पूर्ति का प्रयास अनेक रचनाओं में नजर आता है। ये उपन्यास स्थापित परम्परागत व्यवस्था के दरवाजे पर प्रतिरोध की दस्तक देते हैं और विकास के अभियान में अवरोध बने हुए समाज के पारंपरिक ढाँचे को तोड़ने की हिमायत करते हैं इसलिए कि विकास का रास्ता प्रशस्त हो सके। कहना आवश्यक नहीं कि ये वे उपन्यास हैं जो विकासोन्मुख विचारों की प्रखर पहल करते हैं।

प्रस्तुत काल खण्ड के कुछ ऐसे उपन्यास हैं जिनमें नारी जीवन का यथार्थ भी है और है-व्यवस्था का विरोध, लोक की पीड़ा, शोषण की अनन्त कथा एवं नारी के संघर्ष एवं वर्ग चेतना का उद्घोष भी देखने को मिलता है। इन सभी महिला कथाकारों के उपन्यासों में पुरुष की मानसिकता पर उसकी व्यवस्था के खोखलेपन के यथार्थ पर करारी चोट की गयी है। जिनमें प्रमुख विषय एवं विचार निम्न रूप में उभर कर आये हैं ये कहीं परिवर्तनोन्मुखी हैं तो कहीं इतिहासोन्मुखी, तो कहीं-कहीं राष्ट्रोन्मुखी हैं तो कहीं ज्ञान-विज्ञानोन्मुखी, कहीं चेतना उन्मुखी हैं तो कहीं उपदेशोन्मुखी और कहीं-कहीं विद्रोहोन्मुखी हैं तो कह-कहीं वैश्वकोन्मुखी होकर तत्कालीन समय की सटीक व्याख्या करते नजर आते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 14 अध्यायों एवं दो खण्डों में विभाजित है-स्त्री लेखन के सैद्धान्तिक पक्ष एवं समीक्षा खण्ड। इन दोनों के अन्तर्गत प्रथम के तहत स्त्री लेखन के इतिहास को दर्शाते हुए इस पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य तक प्रकाश डाला गया है। दूसरे खण्ड में इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की महिला कथाकारों की चर्चित औपन्यासिक कृतियों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया जा सकता है।

प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक में देश भर के विद्वान प्राध्यापकों, बुद्धिजीवियों, साहित्य मनीशियों की लेखनी का प्रतिफल है जिन्होंने उपन्यास जैसे समसामयिक एवं अति महत्वपूर्ण ज्वलंत विषय पर तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से चिन्तन-मनन कर अपने विचार रखे हैं। कुल मिलाकर लेखनी के धनी डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा सम्पादित इस पुस्तक में समसामयिक ज्वलंत उपन्यासों को बहुत व्यापकता के साथ हमारे समक्ष रखती है और एक नई समझ तथा नई बहस को जन्म देती है यही इस पुस्तक की सफलता है और उपलब्धि कही जा सकती।

पुस्तक : महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय, समाज और संवेदना

संपादक : डॉ० वीरेन्द्रसिंह यादव

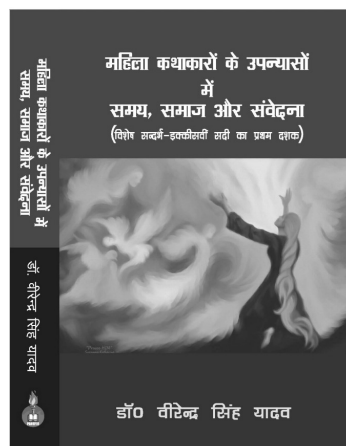
ISBN : 978-93-81630-05-1

संस्करण : प्रथम.2012

मूल्य : 895.00

संस्करण : 2012

पैसिफिक पब्लिकेशन्स-एन.187 शिवाजी चौक, सादतपुर एक्सटेंशन, दिल्ली-110094



भारतीय शिक्षा का बदलता परिदृश्य : चुनौतियाँ एवं समाधान की दिशाएँ

डॉ० राजेश कुमार गर्ग

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग यूडूंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद

पिछले छह बरसों में शिक्षा के क्षेत्र में भारत में जितने प्रयोग हुए हैं, उतने शायद ही किसी अन्य क्षेत्र में हुए हों। शिक्षा के निजीकरण और व्यावसायीकरण से देश में विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई है। साक्षरता का प्रतिशत भी बढ़ा है, और नई सदी में भारतवर्ष में शिक्षा की उत्तरोत्तर माँग बढ़ती जा रही है। प्रत्येक ग्राम विद्यालय की माँग कर रहा है, प्रत्येक कस्बा कॉलेज की एवं प्रत्येक शहर विश्वविद्यालय की। यह माँग देश की प्रगति के सम्बन्ध में बहुत स्वास्थ्यवर्धक है। किन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि शिक्षा कोई विलासिता नहीं है और कॉलेज या विश्वविद्यालय किसी स्थान के लिए प्रतिष्ठा चिह्न नहीं हैं। हमारे लिए जो महत्वपूर्ण बात है वह यह कि हम शैक्षिक प्रगति को किस प्रकार से शान्ति तथा सम्पन्नता से सम्बन्धित करते हैं।

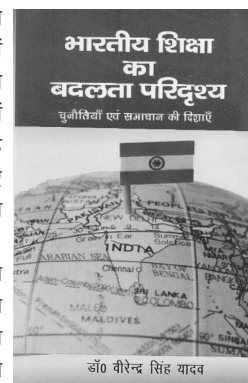
सम्पादकीय में कुछ गम्भीर मुद्दों को उठाते हुए डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि अक्सर उच्च शिक्षा की गुणवत्ता की कमी को आर्थिक मजबूरियों के मत्थे जड़ दिया जाता है। वास्तव में देखा जाए तो उच्च शिक्षा के लिए भारत में संसाधनों की उतनी कमी नहीं है जितनी की अच्छे प्रबंधन की, इसके साथ ही अत्यन्त कुशल एवं योग्य शिक्षकों की आवश्यकता है। ऐसे में उच्च शिक्षा का स्तर बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। हम अपने महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में चाहे जितना खर्च कर लें लेकिन तब तक सुधार सम्भव नहीं होगा, जब तक अच्छे प्रबंधन पर जोर नहीं दिया जायेगा। इस समय प्रतिवर्ष विश्वविद्यालयों में प्रवेश की समस्याओं को देखकर जगह-जगह नये कालेज खुलते जा रहे हैं। इसके साथ ही पत्राचार माध्यम से भी डिग्रियाँ थोक में प्रदान की जाती हैं। जिसके अन्तर्गत नियमों की धज्जियाँ उड़ाई जाती हैं, क्योंकि ऐसे कालेज एवं संस्थान न तो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित मानकों को पूरा करते हैं और न ही इनके पास पर्याप्त भवन एवं संसाधन होते हैं। हमें शिक्षा को एक अनिवार्य भागीदारिता को सुनिश्चित कर प्रगति की महान प्रक्रिया को बनाना चाहिए और शिक्षा की गुणवत्ता पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। तभी हम विश्व की शैक्षणिक संस्थाओं की समानता कर सकते हैं।

सम्पादकीय में कुछ ऐसे प्रश्न उठाए गए हैं जिनका जबाब शायद ही किसी के पास हो जैसे— शिक्षा में संविदा शिक्षकों की नियुक्ति भी एक विचारणीय विषय है। क्योंकि एक संविदा शिक्षक को मात्र कुछेक हजार रुपये में यह व्यवसाय करना पड़ रहा है। वेतन पेमेंट में हस्ताक्षर कराकर आधा से अधिक प्रबंधक हड़प लेते हैं। इस कारण ये उन शिक्षकों के सम्मुख जो कि चयनित हैं अपने को हीन भावना का शिकार महसूस करते हैं। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि ऐसे परिवेश में वह छात्र-छात्राओं को कैसे गुणवत्तापरक शिक्षा दे सकते हैं? जबकि उसका स्वयं का भविष्य ही निश्चित नहीं है। इसलिए सरकार को इस विषय पर शिद्द के साथ विचार करने की महती आवश्यकता है।

25 विद्वानों के लेख एवं आठ खण्डों में विभाजित डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव की इस पुस्तक को निम्न उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है। भारतीय शिक्षा की अवधारणा एवं विकास प्रक्रिया, भारत में उच्च शिक्षा का बदलता परिदृश्य : दशा एवं दिशा, शिक्षा की भारतीय संविधान में स्थिति : एक मूल्यांकन, बदलते परिदृश्य में नई सदी की शिक्षा के विविध आयाम, भारत सन्दर्भ में नारी शिक्षा के बदलते सरोकार, बदलते जीवन मूल्य एवं वर्तमान शिक्षा की उपादेयता, शिक्षा के विकास में अग्रज पीढ़ी का योगदान, बदलते परिदृश्य में भारतीय शिक्षा : कुछ अहम सवाल, कुछ बुनियादी समस्याएँ आदि।

मेरी यह व्यक्तिगत मान्यता है कि प्रस्तुत पुस्तक न केवल विषय विशेषज्ञों, शोधार्थियों, प्राध्यापकों एवं सामाजिक चिंतकों, बल्कि आम-जन के लिए भी उपयोगी एवं प्रेरणास्पद सिद्ध होने के साथ भारतीय शिक्षा जैसे परम्परागत एवं समसामयिक विषय पर आम-जन के मध्य जिज्ञासा एवं उत्सुकता पैदा करेगी।

पुस्तक : भारतीय शिक्षा का बदलता परिदृश्य : चुनौतियाँ एवं समाधान की दिशाएँ
लेखक : डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक : ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4 बी., जी. 4, जे. एम. डी. हाउस, मुरारी लाल स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली
मूल्य : 995.00
संस्करण : 2013
ISBN : 978-81-8455-447-2



स्वामी विवेकानन्द : सांस्कृतिक चेतना के वैश्विक प्रहरी

डॉ. अजीत सिंह राही

पो. बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस.डब्ल्यू., आस्ट्रेलिया

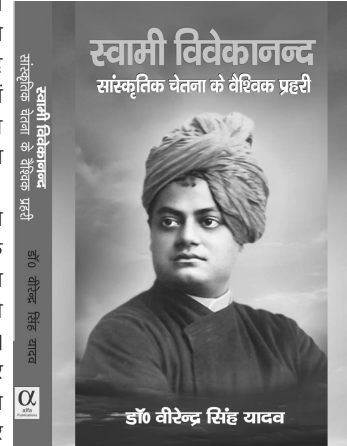
डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा सम्पादित इस पुस्तक को 16 अध्यायों एवं आठ खण्डों में विभाजित है—जो इस प्रकार है—व्यक्तित्व एवम् कृतित्व के आईने में स्वामी विवेकानन्द, स्वामी विवेकानन्द का धर्म-दर्शन एवं राजनीति, तेजस्वी विचारों के प्रखर प्रवक्ता : स्वामी विवेकानन्द, स्वामी विवेकानन्द और उनका शैक्षिक दर्शन, स्वामी विवेकानन्द के विचारों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता, नारी मुक्ति की अवधारणा और स्वामी विवेकानन्द, युवा पीढ़ी, आध्यात्मिकता एवं आधुनिकता के महानायक—स्वामी विवेकानन्द, युग एवं राष्ट्रनिर्माण में स्वामी विवेकानन्द के अमृतमय विचारों का योगदान आदि में स्वामी विवेकानन्द के सैद्धान्तिक पक्ष एवं व्यवहारिक पक्षों पर प्रकाश डाला गया है।

स्वामी विवेकानन्द बहुमुखी प्रतिभा के धनी महामानव थे। आपने न केवल भारत की सामाजिक स्थिति पर अपने विचार प्रस्तुत किये बल्कि आपने राजनैतिक, शैक्षिक, दार्शनिक समाजवादी एवं अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर बेहद सारगर्भित विचार बार-बार विश्व के समक्ष रखकर एक आदर्श प्रस्तुत किया। विवेकानन्द के सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा जीवन दर्शन को समझने के लिए उनके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में दिये गये विचारों का अवलोकन करना आवश्यक है। आज से प्रायः एक सौ पचास साल पहले पराधीन और पददलित भारत के जिस एकांकी और अकिंचन योद्धा सन्यासी ने हजारों मील दूर विदेश में नितान्त अपरिचितों के बीच अपनी ओजमयी वाणी में भारतीय धर्म साधना के चिरन्तन सत्यों का जयघोष किया, ऐसे उन समर्थ व्यक्तित्व और कृतित्व का श्रद्धापूर्वक स्मरण, मनन और अध्ययन हर पीढ़ी के लिये आवश्यक है क्योंकि उसका संदेश देश और काल की सीमाओं को लांघकर प्रेरणा का स्रोत बन गया है। यह सन्देश न कभी पुराना पड़ सकता है, न कभी मर सकता है, वह पुनर्नवा है, वह आज के लिये भी है, वह कल के लिये भी है। स्वामी विवेकानन्द का सन्देश बहुआयामी है। उसमें आत्मा की भूख मिटाने के लिये धर्म और संस्कृतियों से सनातन सिद्धान्तों का संगीत है, उसमें व्यक्ति जीवन के आमूल रूपान्तरण के लिये साधना की एक पद्धति है, उसमें समाज और समूची मानव जाति को नये सिरे से गठित करने की अपूर्व क्षमता है। स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य मानव निर्माण माना है। राष्ट्र निर्माण अथवा विश्व निर्माण की दिशा में यह पहला कदम है।

स्वामी विवेकानन्द ने लोगों को उत्साहित करमें हुए कहा था कि आज मैं तुम्हें भी अपने जीवन का मूल मंत्र बताता हूँ, वह यह है कि प्रयत्न करते रहो, जब तुम्हें अपने चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखता हो, तब भी मैं कहता हूँ कि प्रयत्न करते रहो! किसी भी परिस्थिति में तुम हारो मत, बस प्रयत्न करते रहो! पीछे मत देखो, आगे देखो, अनंत ऊर्जा, अनंत उत्साह, अनंत साहस और अनंत धैर्य तभी महान कार्य, किये जा सकते हैं। तुम्हें तुम्हारा लक्ष्य जरूर मिलेगा, इसमें जरा भी संदेह नहीं ! स्वामी विवेकानंद जी ने सुसुप्त भारत की आत्मा को जागृत करने, उसे स्वयं पर आत्म विश्वास करने और मुक्ति का मार्ग दिखाने की दृष्टि से विवेकानन्द का योगदान चिर स्मरणीय है तथा इतिहास के स्वर्ण अक्षरों में उल्लिखित किये जाने योग्य है। स्वामी विवेकानंद जी भारतीय होते हुए भी भारत के ही नहीं, विश्व के उद्धारक थे जिन्होंने सर्वधर्म सद्भाव का संदेश दिया। एक नये सुखी-समृद्ध विश्व की स्थापना में नेतृत्व प्रदान करने वाली भूमिका का निर्वहन किया तथा विभाजित विश्व को एकताबद्ध होने की प्रेरणा तथा संदेश प्रदान किया। इसके लिए भारत ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व उनका चिर ऋणी रहेगा।

प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक में देश भर के विद्वान प्राध्यापकों, बुद्धिजीवियों, साहित्य मनीषियों की लेखनी का प्रतिफल है जिन्होंने युगपुरुष स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व एवम् कृतित्व जैसे अति महत्वपूर्ण युगपुरुष पर तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से चिन्तन-मनन कर अपने विचार रखे हैं। कुल मिलाकर लेखनी के धनी डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा सम्पादित यह पुस्तक स्वामी विवेकानन्द के विचारों को बहुत ही व्यापकता के साथ हमारे समक्ष रखती है जो मठों की परम्परा को तोड़कर एक नई समझ तथा नई बहस को जन्म देती है यही इस पुस्तक की सफलता और उपलब्धि भी कही जा सकती है।

पुस्तक :	स्वामी विवेकानन्द : सांस्कृतिक चेतना के वैश्विक प्रहरी
संपादक :	डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव
ISBN :	978-93-82302-72-8
संस्करण :	प्रथम-2013
मूल्य :	750.00
प्रकाशक :	अल्फा पब्लिकेशन्स 4398/5, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002



डॉ० राममनोहर लोहिया : वैचारिक विमर्श

डॉ. सुरेश एफ. कानडे

प्लॉट नं. 48, साई बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम, हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड,
नासिक 422013 (महाराष्ट्र)

प्रस्तुत पुस्तक की सम्पादकीय में डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि डॉ० लोहिया निजी एवं सार्वजनिक जीवन में एकीकरण चाहते थे। डॉ० लोहिया के ये दोनों जीवन एकीकृत थे। डॉ० लोहिया के वास्तविक जीवन में इनका पूर्ण सामंजस्य था। डॉ० लोहिया का मानना था कि जब हमारा नेतृत्व आदर्श और अनुकरणीय होगा तो समाज में सुख-शान्ति आयेगी क्योंकि सीधा सा सिद्धान्त है—“यथाराजा तथा प्रजा” वे प्लेन लिविंग एण्ड हाई थिंकिंग के जीवंत प्रतीक थे। डॉ० लोहिया का जीवन एक फकीराना जीवन था, डॉ० लोहिया का मानना था कि “अगर मनुष्य व्यवहार को बिलकुल तोड़कर आदर्श को अपना लेता है, तब उसको कहना चाहिए, थोड़ा बहुत पागल है। और अगर मनुष्य आदर्श को तोड़कर व्यवहार को बिलकुल अपना लेता है तब उसको कहना चाहिए, मौकेबाज है। आदर्श और व्यवहार का हमेशा हर जगह फैंसला करना पड़ेगा। किसी राजनीतिक पार्टी में रहने वाले किसी भी आदमी को आदर्श और व्यवहार के बीच में कोई ऐसी जगह ढूँढ़नी चाहिए जो आदर्श को भी बढ़ाती हो और व्यावहारिकता को भी।”

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के विपरीत डॉ० लोहिया अपव्यय और खर्चीली राजनीति को देश के लिए अहितकर मानते थे। आप नेताओं के शाही मुगलिया ठाठ-बाट के खिलाफ थे। डॉ० लोहिया खर्च की एक सीमा के हिमायती थे। फरूखाबाद से सांसद चुने जाने तक उनके नाम से देश में कहीं भी कोई खाता नहीं था। सांसद चुनने के पश्चात् देय भत्ता के लिए उनका खाता खोला गया था। डॉ० लोहिया का अपना कोई निजी वाहन न था। डॉ० लोहिया रिक्शे से नहीं चलते थे। इस प्रकार डॉ० लोहिया का जीवन कर्म और विचार का अद्वैत था। डॉ० लोहिया दुविधा विभक्त नहीं थे।

प्रस्तुत डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव की यह पुस्तक 25 विद्वानों के लेखों एवं सात खण्डों में विभाजित निम्न उपशीर्षकों में व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आईने में डॉ० राममनोहर लोहिया, डॉ० राम मनोहर लोहिया के स्त्री सशक्तीकरण सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन, लोकतंत्र और डॉ० राम मनोहर लोहिया का समाजवाद : एक मूल्यांकन, डॉ० राम मनोहर लोहिया के भाषा सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन, डॉ० राम मनोहर लोहिया के राजनीतिक सम्बन्धी विचारों का अवलोकन, डॉ० राम मनोहर लोहिया के व्यक्तित्व से जुड़े विविध पहलुओं का मूल्यांकन, वर्तमान परिपेक्ष में डॉ० राम मनोहर लोहिया के विचारों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता में बांटी गई है।

विकल्प के रूप में डॉ० राममनोहर लोहिया को अपनाकर ही देश का विकास सम्भव हो सकता है। क्योंकि डॉ० लोहिया वर्तमान भारतीय सरकार एवं उस व्यवस्था के सार्थक विकल्प हैं। डॉ० लोहिया हमारी पीढ़ी के प्रेरणास्रोत हैं। और व्यवस्था एवं तमाम खामियों की तरफ इशारा करने वाले एक विरले साहस का प्रतिमान हैं। आज जब सत्ता-पक्ष की भूमिका एक बने-बनाए ढांचे में फिट होकर काम करने भर की रह गई है, और विपक्ष की पूरी भूमिका ही गौण हो गई है तो लोहिया जी एक ऐसे उदाहरण के रूप में हमारे समक्ष आते हैं जिनकी मिसाल देकर सार्थक समाजवाद और बेहतर लोकतंत्र की दिशा में कदम बढ़ाया जा सकता है। डॉ० लोहिया के पास एक तरफ जहां सम्पूर्ण विकास की कार्ययोजना थी तो दूसरी तरफ उनकी संसदीय भागीदारी देखकर सीखा जा सकता है कि सशक्त विपक्ष की भूमिका कैसे निभाई जाती है। डॉ० लोहिया जी अन्य राजनेताओं और बुद्धिजीवियों की तरह केवल नियम गिनाते भर नहीं हैं बल्कि नीतियों पर तत्काल अमल करने की बात भी दोहराते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में भारत के विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा जगत से सम्बद्ध प्राध्यापकों, शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों, समाजवादियों, भूगोलवेत्ताओं, मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों के डॉ० राममनोहर लोहिया पर सार्थक चिन्तन, मनन एवं गम्भीर विचारों को रखा गया है। आशा है कि समाजवादी विचारधारा से सम्बंध रखने वाले लोगों को यह पुस्तक अवश्य पसंद आएगी।

पुस्तक — डॉ० राममनोहर लोहिया : वैचारिक विमर्श

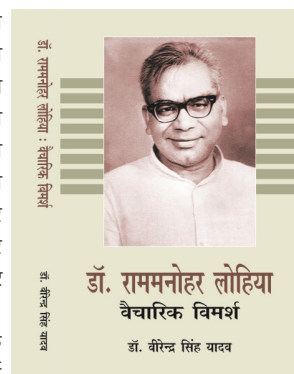
लेखक — डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

प्रकाशक — आराधना ब्रदर्स पब्लिकेशन्स, कानपुर

मूल्य — 600.00

पेज — 272, संस्करण—2013

ISBN — 978-81-89076-55-9

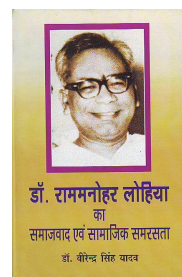


डॉ० राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता

डॉ० हितेन्द्र जे मौर्या

प्रवक्ता, इतिहास विभाग, महा स० राव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा (गुज.)

पुस्तक	—	डॉ० राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता
लेखक	—	डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	—	आराधना ब्रदर्स पब्लिकेशन्स, कानपुर
मूल्य	—	600.00
पेज	—	290, संस्करण—2013
ISBN	—	978-81-89076-56-6



डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव की यह पुस्तक 22 विद्वानों के लेखों के साथ आठ खण्डों में विभाजित है। जिसमें विशेष आकर्षण का केन्द्र इसके उपशीर्षक है। डॉ० राममनोहर लोहिया का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ० राम मनोहर लोहिया के शिक्षा एवं साहित्य सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन, डॉ० राम मनोहर लोहिया का स्त्री सशक्तीकरण सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन, डॉ० राम मनोहर लोहिया के राष्ट्रवाद एवं धार्मिक सम्बन्धी विचारों की समीक्षा, वर्तमान परिपेक्ष्य में डॉ० राम मनोहर लोहिया के विचारों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता, डॉ० राम मनोहर लोहिया के भाषा सम्बन्धी विचार, डॉ० राम मनोहर लोहिया के राजनीतिक सम्बन्धी विचारों का अवलोकन, डॉ० राम मनोहर लोहिया के व्यक्तित्व से जुड़े विविध पहलुओं का मूल्यांकन आदि प्रमुख हैं।

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव सम्पादकीय में लिखते हैं कि डॉ० राममनोहर लोहिया बीसवीं सदी के एक तिलस्मी व्यक्तित्व और विलक्षण प्रतिभा के धनी महान समाजवादी विचारक ही नहीं बल्कि एक महान लेखक और निर्भीक जुझारू पत्रकार भी थे। उनका जीवन दुखी, पीड़ित और शोषित जनता को समर्पित था, जीवन भर वे उनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील रहे, उनका मन भारत की गरीबी से विक्षुब्ध था लेकिन उन्होंने कभी भी अपने को केवल भारत की भूख तक ही सीमित नहीं रखा, समस्त मानव जाति की भूख उनके विचार और दुख का कारण बनी, उनके सपनों में एक ऐसा विश्व था—जिसमें गोरे—काले, स्त्री—पुरुष, गरीब—अमीर और ऊँच—नीच के बीच कोई भेद न हो। डॉ० लोहिया अनेक सिद्धान्तों, कार्यक्रमों और क्रान्तियों के जनक हैं। वे सभी अन्यायों के विरुद्ध एक साथ जेहाद बोलने के पक्षपाती थे।

अनेक बिन्दुओं को रेखांकित करती इस पुस्तक की मान्यता है कि इसमें कोई दो राय नहीं कि डॉ० लोहिया एक मिशन के साथ आते हैं और अपना कार्य पूरा करके विदा हो जाते हैं उनके कर्म, जीवन, विचार, सिद्धान्त और मूल्य अनुकरणीय बन जाते हैं। डॉ० लोहिया भावी पीढ़ी को दिशा—निर्देश एवं मार्ग दर्शन करते हैं। जिन्होंने अमीरी—गरीबी, दबे—कुचले, शोषित, पीड़ित, खेतिहर, मजदूर, किसान और दलितों के लिए डटकर संघर्ष किया और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। डॉ० लोहिया के इस मिशन में समाजवादी विचार धारा के पैरोकार अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, जे०पी०, आचार्य नरेन्द्र देव, लाडली मोहन निगम इत्यादि थे। किन्तु इन सभी में सर्वाधिक मुखर और प्रखर वक्ता, सिद्धान्त की तार्किक प्रस्तुति करने वाले डॉ० राममनोहर लोहिया ही एक मात्र प्रौढ़ चिन्तक थे। डॉ० लोहिया ने स्पष्ट रूप से कहा भी था कि 'मुझे आशा है कि मैं कभी कोई राज सत्ता पद ग्रहण नहीं करूंगा। मैं चाहता हूँ कि सारी दुनिया में कुछ ऐसे राजनयिक तैयार हों, जो शासन सत्ता में पद ग्रहण किये बिना अपने कर्तव्य पालन की विशेषता प्राप्त करें।

डॉ० लोहिया का मशहूर जुमला है कि जिंदा कौमें पांच साल इंतजार नहीं करती ? लेकिन हम पिछले छह सालों से इंतजार कर रहे हैं। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और कच्छ से लेकर कामरूप तक फैले इतने बड़े मुल्क में अलग—अलग विचारधाराओं को मानने वाले लोग बसते हैं लेकिन एक अरब से ज्यादा की आबादी को वैकल्पिक रास्ता दिखाने वाले किसी भारतीय विचारक की कल्पना डॉ० लोहिया के बगैर संभव नहीं है। आजादी मिलने के तुरंत बाद सदियों से सताए लोगों के मन में सत्ता से उम्मीदें जगी थीं। एक नवस्वतंत्र राष्ट्र के लिए ऐसा स्वाभाविक भी था। लेकिन गुजरते वक्त के साथ वे तमाम उम्मीदें पीछे छूट गईं जिन्हें पूरा करने के लिए आजादी की जंग लड़ी गई थी। नतीजा—देश में समस्याओं का अंबार बन गया। और आजादी के इतने साल बाद भी भारत की जनता के हिस्से कुछ न आया। अब तो हालात ऐसे हैं कि बेहाल भूखी जनता के मुंह से भ्रष्टाचारी सुख के निवाले निकालने में लगे हैं। ऐसे वक्त में युवाओं का एक बड़ा तबका जब निराशा करता है तो उसे बस डॉ० राममनोहर लोहिया ही नजर आते हैं।

प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक देश भर के विद्वान प्राध्यापकों, बुद्धिजीवियों, साहित्य मनीषियों की लेखनी का प्रतिफल है। इस आशा विश्वास एवं नेह के साथ कि प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक डॉ० राममनोहर लोहिया जी जैसे महान एवं समतामूलक समाजदृष्टा व्यक्तित्व पर आम—जन के मध्य जिज्ञासा एवं उत्सुकता पैदा करेगी, तो इसे हम लेखक की मेहनत का प्रतिफल समझेंगे।



डॉ० राम मनोहर लोहिया : समाजवादी विमर्श

डॉ० बिनोद कुमार पाल

इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार

समाजवाद पर विमर्श करती इस पुस्तक को डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव ने 23 विद्वानों के साथ तेईस अध्यायों में विभाजित किया है। सामाजिक समानता पर बल देकर डॉ० लोहिया अमीरी, गरीबी, समान शिक्षा एवं स्वास्थ्य में बराबरी के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। उन्हें किसी भी प्रकार की गैर बराबरी पसन्द ना थी। उनका विचार था कि समान अवसर के बजाय विशेष अवसर देकर दबे-कुचले तपके के लोगों को ऊपर उठाया जाय क्योंकि हजारों वर्ष की अमीरी, गरीबी समान अवसर से समाप्त नहीं होगी। हाँ, इतना अवश्य है कि विशेष अवसर देकर उनमें योग्यतम को उचित स्थान दिया जाय। उनका विचार था कि सभी को समान शिक्षा और स्वास्थ्य पाने का अधिकार है। कोई भी व्यक्ति इससे वंचित नहीं होना चाहिए। गरीबी के आधार पर प्रतिभा का पलायन हो या कुंठित हो ऐसा नहीं होना चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा और स्वास्थ्य की व्यवस्था के लिए वे रूस की व्यवस्था से प्रभावित थे। उनका विचार था कि गरीबी के कारण कभी-कभी प्रतिभा निरुद्ध हो जाती है। उसे आगे बढ़ने का अवसर नहीं मिलता है अथवा अर्थ के अभाव में स्वास्थ्य से हाथ धोना पड़ता है। ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित होना चाहिए जिसमें सुदामा और कृष्ण सहपाठी बन सकें। अपना-अपना विकास अपने ढंग से कर सकें। ऐसी व्यवस्था से अच्छे डाक्टर, वैज्ञानिक, इंजीनियर, अनुसंधाता, प्रोफेसर और कुशल कारीगर बन सकते हैं। सभी राष्ट्रीय चरित्र और स्वास्थ्य सर्वथा सुदृढ़ और सुन्दर होगा। ऐसा उनका विश्वास था।

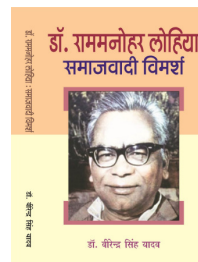
वर्तमान व्यवस्था के प्रति इस पुस्तक की मान्यता है कि डॉ० लोहिया का जीवन, विचार, कर्म हमें समाजवादी व्यवस्था की तरफ बढ़ा सकते हैं। डॉ० लोहिया ने कार्लमार्क्स के साम्यवाद में पूंजी के सम्बन्ध में अर्थ की ही वितरण व्यवस्था को असफल देख करके समाजवादी दर्शन को जन्म दिया था। मार्क्सवाद में जाति का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वे केवल पूंजी की बात करते हैं जबकि भारत में जाति-प्रथा एक ऐसा कारक/कारण है जिसके ईर्द-गिर्द अनेक समस्याएँ घूमती हैं। अतः यह प्रमुख विचारणीय बिन्दु है। डॉ० लोहिया अपने को समाजवाद का अन्वेषक नहीं मानते थे। डॉ० लोहिया का विचार था कि भारत में इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं और विश्व में भी इसका जन्म बहुत पहले हो चुका था। डॉ० लोहिया इसका मूल्य गीता के अनासक्ति योग को मानते हैं। उन्होंने समाजवादी आन्दोलन के इतिहास में लिखा है कि —“समाजवादी आन्दोलन की शुरुआत भारत में और दुनिया में एक अर्थ में तो बहुत पहले हो जाती है। वह अर्थ है अनासक्ति का, मिलकियत और ऐसी चीजों के प्रति लगाव खत्म करने या कम करने का, मोह घटाने का। इस अर्थ में समाजवादी आन्दोलन का आरम्भ भारत में और विश्व में बहुत पहले से है किन्तु जब से समाजवाद के ऊपर कार्लमार्क्स की छाया पड़ी है तबसे एक दूसरा अर्थ ज्यादा सामने आ गया। वह है सम्पत्ति की संस्था को खत्म करने का, सम्पत्ति रहे, चाहे कानून से, चाहे जन शक्ति से। पहला अर्थ था सम्पत्ति के प्रति मोह न रहे और अब अर्थ हुआ है कि सम्पत्ति रहे ही नहीं।

उनका विचार था कि समाजवादी समाज बनाने के लिए व्यक्ति सम्पत्ति के दायरे को लगातार सीमित करते जाना होगा। “बिना दूसरे को नौकर रखें, जो व्यक्तिगत सम्पत्ति चल सकती है, उसके अलावा बाकी सब सम्पत्ति को यथासंभव, यथाशीघ्र सामूहिक बनाना और समाज में गैरबराबरी को मिटाना या कम से कम अनवरत घटाते रहना होगा। लेकिन यहां यह भी नहीं भूलना चाहिए कि उन्होंने मानव में सम्पत्ति के प्रति गहरे मोह को नकारा भी नहीं है। उनका मानना है कि इस मोह या आसक्ति को समाप्त किये बगैर समाजवादी समाज की स्थापना शायद ही हो सकेगी। डॉ० लोहिया की आचार-संहिता में निजी सम्पदा के अस्तित्व और उसकी शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी से जुड़ा हुआ मामला आर्थिक समता और नियोजित उत्पादन का भी है। उन्होंने अपनी पुस्तक ‘इकानामिक्स आफ्टर मार्क्स’ में आर्थिक विषमता के कारणों की बुनियादी छानबीन की और विषमता के सभी रूपों पर कड़े प्रहार कर देश के शोषितों-दलितों में समता की चेतना जगाने तथा उसे तीव्रतर करने का दायित्व बखूबी निभाया। वह संघर्ष आज भी चल रहा है।

आज का दौर विचारधाराओं के अतिक्रमण का और विचारधाराओं का स्वघोषित रहनुमा बताने वाले बामपंथी सत्ता के लिए हर मूल्य की बलि देने की होड़ में लगे हैं। तथाकथित वामपंथी जन किसी भी बड़ी-छोटी कंपनियों के जरिए महज थोड़े से लाभ के लिए देश में कहीं भी कभी भी नंदीग्राम बनाने को तैयार बैठे हैं। अब तो गरीबों के हक की सशस्त्र लड़ाई लड़ने वाले नक्सल आंदोलनकारी भी संदेह में घिरने लगे हैं। ऐसे वैचारिक तंगी के दौर में जब युवाओं का एक बड़ा तबका निराशा के गर्त में गिरता जा रहा है, तो लोहिया जी आते हैं, और उनकी याद कोई संयोग नहीं है, बल्कि दुनिया के सबसे ज्यादा भूखे और बेरोजगारों के इस ‘शाइनिंग नेशन’ की मजबूरी है। डॉ० राममनोहर लोहिया ने जिन चुनौतियों से सालों पहले आगाह किया था, इतने दिनों बाद उन्हीं की नजर से समाधान नजर आता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पुस्तक में भारत के विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा जगत से सम्बद्ध प्राध्यापकों, शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों, समाजवादियों, भूगोलवेत्ताओं, मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों के सार्थक चिन्तन, मनन एवं गम्भीर विचारों को रखा गया है। जिसमें बीसवीं सदी के तिलस्मी व्यक्तित्व और विलक्षण प्रतिभा के धनी महान समाजवादी विचारक डॉ० राममनोहर लोहिया के विचारों को रखा गया है। इस उम्मीद के साथ कि प्रस्तुत माननीय जनों एवं समाजवादी विचारधारा के लोगों को अवश्य पसंद आयेगी।

पुस्तक :	डॉ० राम मनोहर लोहिया : समाजवादी विमर्श
लेखक :	डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक :	आराधना ब्रदर्स पब्लिकेशन्स, कानपुर
मूल्य :	600.00
पेज :	280, संस्करण-2013
ISBN :	978-81-89076-57-3



आराधना ब्रदर्स कानपुर के नवीनतम प्रकाशन

डॉ. राममनोहर लोहिया : वैचारिक विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. राममनोहर लोहिया : समाजवादी विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं अर्थ दर्शन	डॉ. यतीन्द्र नाथ शर्मा	500/-
डॉ. अंबेडकर : वैचारिकी एवं दलित विमर्श	डॉ. कालीचरण स्नेही	600/-
हिन्दी भाषा एक अबाध प्रवाह	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
आधुनिक हिन्दी कविता में लोक चेतना	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
रेणु का कथा साहित्य	डॉ. सुरेश चन्द्र मेहरोत्रा	500/-
रामचंद्रिका में वक्रोक्ति सिद्धांत का अनुशीलन	डॉ. ममता गंगवार	500/-
बुंदेलखण्ड के साहित्यकारों का साहित्यिक अवदान	डॉ. छाया राहुल	700/-
जायसी और कबीर : सामासिक संस्कृति के संदर्भ में	डॉ. डी.आर. राहुल	600/-
उरैन	डॉ. कामिनी	350/-
आलेख	डॉ. कामिनी	350/-
हाशिये पर (कहानी संग्रह)	डॉ. कामिनी	150/-
मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी	डॉ. भारती	400/-
वृंदावन लाल वर्मा के उपन्यासों में नारी	डॉ. राम प्रकाश जाटव	350/-
बाल कविता में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना	डॉ. शिरोमणि सिंह 'पथ'	500/-
हिन्दी बाल कविता की प्रवृत्तियाँ	डॉ. उदय सिंह जाटव	500/-
हिन्दी बाल साहित्य में चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक' की साहित्य साधना	डॉ. कंचनलता यादव	550/-
डॉ. देवीशंकर अवस्थी की आलोचना दृष्टि	डॉ. निशा सिंह	500/-
उ. प्र. के पंचायत चुनावों में महिलाओं की सहभागिता	डॉ. अनीता	400/-
'रामायण' और 'महाभारत' में राजनीतिक विचार	डॉ. कान्ती शर्मा	600/-
शब्द-सामर्थ्य	डॉ. रामस्वरूप त्रिपाठी	400/-
विश्व पर्यावरण एवं राजनीतिक संघर्ष	डॉ. आर.के. त्रिपाठी	400/-
स्थानवाची नामों का समाजभाषाशास्त्रीय विश्लेषण	डॉ. सबीहा ताबीर	350/-
राजाराम मिश्र 'कमलेश' : व्यक्तित्व कृतित्व	डॉ. प्रदीप मिश्र	200/-
शिवानी के उपन्यासों में कूर्माचलीय लोक संस्कृति	डॉ. अलका मिश्र	300/-
महाप्राण निराला : पुनर्मूल्यांकन	डॉ. प्रदीप मिश्र	400/-
बुन्देलखण्ड की साहित्य सर्जना	डॉ. किरण शर्मा	350/-
अनाम सखे	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	150/-
नारी स्वर	ज्ञानचन्द्र गुप्त	200/-
शृंगार शिरोमणि का रस-भाव विवेचन	डॉ. प्रदीप मिश्र	500/-
शिवानी के उपन्यासों के पात्र	डॉ. सुषमा पुरवार	400/-
कालजयी नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र	डॉ. मंजुला श्रीवास्तव	400/-
भारतीय नारी का धर्मशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. पूजा श्रीवास्तव	300/-
जैनेन्द्र का साहित्य चिंतन	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	300/-

तुम न आये सितारों को नींद आ गई	मंजुल मयंक	300/-
मेरी हम जिन्दगी मेरी हमशाइरी	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	200/-
पं. भगवती प्रसाद बाजपेयी की कहानियाँ कथ्यसौंदर्य	श्रीराम वर्मा	125/-
गीत से नवगीत	डॉ. शुभा श्रीवास्तव	250/-
उर्वशी काव्य में नारी चेतना	डॉ. मीता अरोरा	200/-
उठी हाट के हम व्यापारी	रामस्वरूप	80/-
सबका अंतरिक्ष	डॉ. सीता किशोर	150/-
इस दौर से गुज़रे हैं हम	डॉ. सीता किशोर	200/-
सिर्फ रेत ही रेत	डॉ. कामिनी	100/-
आधुनिक बुन्देली काव्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	300/-
सहमे सहमे अक्षर	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	300/-
पुरवा	मंजु सिंह	200/-
मनन और मूल्यांकन	डॉ. विश्वम्भरनाथ	250/-
साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी	150/-
आजादी के दीवाने	अवध किशोर सक्सेना	125/-
स्थान नाम बोलते हैं	डॉ. कामिनी	75/-
भदावरी बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. श्यामसुन्दर सौनकिया	150/-
जन्म जन्मान्तर	मंजु सिंह	200/-
महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनि तत्व	डॉ. शिवबालक द्विवेदी	225/-
पं. बनारसी दास चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. कालीचरण 'स्नेही'	400/-
वासुदेव गोस्वामी और उनका साहित्य	डॉ. श्रीमती गीता पाण्डेय	150/-
विचार-वीथी (निबन्ध-संग्रह)	डॉ. पुरुषोत्तम बाजपेयी	75/-
दतिया जिले में पत्र-पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. कामिनी,	120/-
ग्वालियर संभाग में व्यवहृत बोली रूपों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. सीता किशोर	200/-
हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी	डॉ. हरिशंकर शर्मा	140/-
संस्मरण और संस्मरणकार	डॉ. मनोरमा शर्मा	60/-
ब्रजनन्दन व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. ओमप्रकाश सिंह	60/-

- नोट : (1) हमारे यहाँ इस सूची के अतिरिक्त भी हिन्दी साहित्य की स्तरीय पुस्तकें उपलब्ध हैं।
 (2) हमारी संस्था महाविद्यालय/विश्वविद्यालय एवं सार्वजनिक पुस्तकालय हेतु समस्त विषयों में समस्त प्रकार की पुस्तकों की आपूर्ति आपकी माँग के अनुसार करती है।
 (3) पुस्तकों का आदेश भेजते समय अपना नाम, पता, पिनकोड व फोन नं. लिखें या मेल करें।

आराधना ब्रदर्स

प्रकाशक एवं वितरक

124/152-सी ब्लॉक, गोविन्द नगर, कानपुर-208 006 (उ.प्र.)

ईमेल : aradhanabooks@rediffmail.com

दूरभाष : 09935007102, 09889121111, 0512-2651490

कृतिका परिवार

मुख्य परामर्शदाता एवं मानद संरक्षक

- रूपनारायण सोनकर, दून यू कॉलेज सिंग रोड, मसूरी 7248179
- डॉ. आदित्य कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालीन) उ. प्र.
- डॉ. आनन्द कुमार खरे, एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालीन) उ. प्र.
- डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, रीडर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग (पी.जी.) महाविद्यालय, पुष्कराया, कानपुर देहात
- डॉ. उमास्वत यादव, रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)

प्रमुख अप्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति

- डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव, 64 लॉगसवर्ड, ब्राइव, रकारवोरो ओनटारियो, कनाडा, एम.आई.बी. 3 ए. 3
- डॉ. अजीत सिंह राही, पो. बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस.डब्ल्यू, आस्ट्रेलिया
- डॉ. तिलकराज चौपड़ा, हाजल येग 15ए 53340 मेकन्हाईम, जर्मनी
- डॉ. दिव्या माथुर, नेहरू सेंटर, 8 साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन-डब्ल्यू 1 के 1 एच. एक.
- श्री रामबाबू गौतम, 220, व्हीलर स्ट्रीट क्लीफसाइट पार्क, ऑर्जसो-07010

विशेष परामर्शदात्री समिति

- डॉ. हेमा देवरानी, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बाबू शो 0 कला महा. अलवर, राजस्थान
- डॉ.0 रावेन्द्रकुमार साहू, सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शास. स्व. स्नात. महा., सतना (म.प्र.)
- डॉ. वीणा श्रीवास्तव, एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालीन)
- डॉ. ज्योति सिन्हा, प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी. जी. कॉलेज, जौनपुर (उ. प्र.)
- डॉ. पुनीत बिसारिया, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, नेहरू पी. जी. कालेज, ललितपुर

संपादकीय परामर्शदात्री समिति

- डॉ.0 विनोद कुमार पाल, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- डॉ. अलका द्विवेदी, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स कालेज, कानपुर
- डॉ. अंजु दुआ जैमिनी, 839ए सेक्टर-21 सी. पार्क-2, फरीदाबाद
- डॉ. हरिनियास पाण्डेय, प्रवक्ता हिन्दी, जवाहर लाल नेहरू कालेज, पासीघाट (अ. प्र.)
- डॉ. शुभा जीहरी, रीडर, इतिहास विभाग, राष्ट्र संत तुलसी नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर (म.प्र.)
- डॉ. गोवर्धन सिंह, अध्यक्ष, भोजपुरी विभाग, वीर कुंजर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- डॉ. हितेन्द्र जे मीर्या, प्रवक्ता, इतिहास विभाग, महा सो राव विश्वविद्यालय, बडोदरा (गुज.)
- डॉ. अरविन्द कुमार शुक्ल - प्रवक्ता राजनीति वि. राजकीय महाविद्यालय, समथर, झाँसी
- श्री राघवेंद्र सिंह राजू, 7 जाफ्लिन रोड, लखनऊ (उ.प्र.)

- डॉ. प्रदीप कुमार दीक्षित, एसो 0 प्रो 0, संस्कृत विभाग, अकबर कालेज, अकबरपुर (रो 80 नगर)
- डॉ. आलोक रंजन, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, मारवाड़ी कॉलेज, भागलपुर
- डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह, प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर, यमोली (उत्तराखण्ड)
- डॉ. आशा वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी.बी. एस. कालेज, कानपुर
- डॉ. सुनीता शर्मा, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब)
- डॉ. एल.के.कुन्दन, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, राँची कालेज, राँची
- डॉ. अखिलेश शुक्ल, सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, राँचा (म. प्र.)
- डॉ. परमात्मा शरण गुप्ता, अर्थशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई

मुख्य सम्पादक मण्डल

- डॉ. चन्द्रमा सिंह, नयकागाँव जी.टी. रोड, सासाराम (बिहार)
- डॉ. सुरेंद्र कुमार सिंह, म. नं. नन्दन सदन प. पल्लो, शेरशाह रोड, शकरी गली, पो. आ. गुलजार बाग, पटना 800007 (बिहार)
- डॉ. किशन यादव, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)
- डॉ. सुरेश एक. कानडे, प्लॉट नं. 48, साई बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजयम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापूर रोड, नासिक-422013
- डॉ. नीना शर्मा 'हरेश', व्याख्याता हिन्दी, आनन्द आर्ट्स कालेज, गुजरात (गुजरात)
- डॉ. कश्यपी देवी, म. नं. 1651/21 हैफेड चौक, रोहतक (हरियाणा)
- डॉ. राधा वर्मा, गाहन, कमला नगर, संजौली, शिमला (हि. प्र.)

विशेष सम्पादन सहयोग

- डॉ. अजय कुमार सिंह, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, हंडिया (पी. जी.) कालेज, हंडिया, इलाहाबाद, मोबाइल : 09415638535
- डॉ. सियाराम, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरंगा, मो. : 09219828316
- डॉ. रणविजय सिंह, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
मो. : 09919123763, ई-मेल : rajuranvijay@gmail.com

सम्पादक

- डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, रीडर हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग उ.प्र. विकलांग उद्धार डॉ. शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ, सम्पर्क : 07607762917, 09415924888,
Email : dr.virendrayadav@gmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com
Email : virendra_kritika@rediffmail.com
<http://kritika-shodh.blogspot.com>

प्रबंधन

- आराधना ब्रदर्स (प्रकाशक एवं वितरक)
124 / 152- सी ब्लॉक, गोविन्दनगर, कानपुर-208006, उ.प्र.
दूरभाष - 09935007102, 05122651490
Email : kritika_orai@rediffmail.com, aradhanabooks@rediffmail.com

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)
समाजवादी विमर्श-विशेषांक-2013-2014

भारत में समाजवाद : दशा एवं दिशा (भारत के भविष्य के लिए आम आदमी की चिन्ता)

- ▶ समाजवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि, इतिहास एवं परम्परा के बदलते प्रतिमान
- ▶ समाजवाद के प्रमुख सम्प्रदाय, प्रमुख सामाजिक विचारधाराएँ एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत
- ▶ समाजवाद ही क्यों ?
- ▶ वैश्विक समाजवाद के बदलते परिदृश्य: दशा एवं दिशा
- ▶ भारतीय समाजवाद : चिन्तन-चिन्ता के विविध परिदृश्य
- ▶ भारतीय राजनीति में समाजवाद की भूमिका, नया समाज, नयामन
- ▶ राष्ट्रीयता और समाजवाद, समाजवाद और हिन्दुवाद
- ▶ प्रमुख पाश्चात्य समाजवादी चिन्तक, आधुनिक भारतीय समाजवादी विचारक
- ▶ समाजवाद के आधार स्तम्भ एवं प्रमुख भारतीय समाजवादी चिन्तक / विचारक, जयप्रकाश नारायण, युसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द, डॉ० राममनोहर लोहिया
- ▶ समाजवादी दर्शन और डॉ० राममनोहर लोहिया
- ▶ भारतीय समाजवाद और आचार्य नरेन्द्र देव
- ▶ राजनारायण का समाजवादी व्यक्तित्व
- ▶ भारतीय समाजवाद और आचार्य नरेन्द्र देव
- ▶ भारतीय समाजवाद के नये क्षितिज छोटे लोहिया कहलाने वाले जनेश्वर मिश्र
- ▶ चंद्रशेखर, मुलायम सिंह यादव व अखिलेश यादव
- ▶ नव समाजवाद की परिकल्पना एवं सप्तक्रांति
- ▶ मार्क्सवाद और समाजवाद, डॉ० राममनोहर लोहिया
- ▶ राम मनोहर लोहिया : मार्क्स गाँधी एण्ड सोशलिज्म
- ▶ समाजवाद और चौखम्मा व्यवस्था
- ▶ बहुआयामीय सांस्कृतिक क्रान्ति और समाजवाद

दुनिया को बेहतर और मानवीय बनाने तथा मानव अस्तित्व को नये विस्तार देने के उद्देश्य से समय-समय पर अनेक सिद्धांतकारों और सैद्धांतिकियों के सक्रिय हस्तक्षेप समाज में निरंतर विद्यमान रहे हैं, जिनका सारतत्व मानवीय गरिमा को स्थापित करने तथा समतामूलक समाज बनाने में रहा है, इस बुनियादी एकरूपता के बावजूद किसी एक दर्शन पर बात समाप्त नहीं हुई, बल्कि भिन्न-भिन्न सैद्धांतिकियों निर्मित होती रही, जो सामाजिक संरचना के वैविध्य को तथा विचारधाराओं की गतिशीलता का प्रमाण है।

आधुनिक युग में समाजवाद एक ऐसा शब्द एवं ऐसी विचारधारा है, जिससे अधिकांश विचारक स्वयं को जोड़कर गौरवान्वित महसूस करते हैं। यह एक ऐसा सपना है जिसने बीसवीं सदी में दुनिया को सर्वाधिक आन्दोलित किया तथा वर्तमान सदी में भी इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अलग-अलग ढंग से व्यक्ति, संस्थाएँ एवं सरकारें जुझ रही हैं। हालांकि समाजवादी आंदोलन का आरम्भ यूरोप से माना जाता है, किन्तु उसका देशी भारतीय संस्करण जयप्रकाश नारायण, युसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द आदि की भाँति डॉ० राममनोहर लोहिया भी भारतीय राजनीति के अन्य महान समाजवादी प्रणेताओं में से एक थे। यह सब महान स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, निर्भीक वक्ता, लोकतंत्र के रक्षक, एवं आम आदमी की आवाज के यथार्थवादी प्रखर प्रवक्ता एवं चिन्तक थे, जो आजीवन एक सच्चे समाजवादी के रूप में जाने जाते हैं। यह सत्य है कि व्यक्ति का शरीर अवश्य समाप्त हो जाता है, किन्तु उसके शाश्वत विचार एवं कर्म अजर-अमर होकर प्रकाश स्तम्भ की भाँति जन-जन को आलोकित करते रहते हैं। इन्हीं कुछ संदर्भों को दृष्टिगत रखकर कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख / लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।